भातखंडे संगीत-शास्त्र

[हिंदुस्तानी संगीत-पद्धति]

प्रथम भाग

वि० ना० भातखंडे

संगीत कार्यालय, हाथरस (उ० प्र०)

'संगीत' का विशेष प्रकाशन

भातखंडे-संगीतशास्त्र

[भाग १]

'हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति' (थ्योरी मराठी) के प्रथम भाग का
हिन्दी-अनुवाद

मूल लेखक
पं० विष्णुनारायण भातखंडे ('विष्णु शर्मा')

अनुवादक
श्री विश्वम्भरनाथ भट्ट, एम. ए., संगीत विशारद
श्री सुदामाप्रसाद दुबे, सगीताचार्य, साहित्यरत्न



प्रकाशक
© संगीत कार्यालय, हाथरस (उ० प्र०)

मूल्य ~~[illegible]५~~



प्रथम संस्करण :
सितम्बर, १९५१
द्वितीय संस्करण :
अप्रैल, १९५६
तृतीय संस्करण :
मार्च, १९६४
चतुर्थ संस्करण :
जनवरी, १९७५

भातखंडे संगीत-शास्त्र

[हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति]

भाग १

पाठ्यक्रम में स्वीकृत

भातखंडे-यूनिवर्सिटी आफ इण्डियन म्यूजिक, लखनऊ
माधव-संगीत-महाविद्यालय, ग्वालियर
भारतीय संगीत-विद्यापीठ, बम्बई
आर्य-संगीत-विद्यापीठ, कलकत्ता
आल इण्डिया म्यूजिक-कालेज फॉर गर्ल्स, कलकत्ता
संगीत-समाज-कालेज, मेरठ
नेशनल स्कूल आफ इण्डियन म्यूजिक, कानपुर
बंगाल-म्यूजिक-कालेज, कलकत्ता
चतुर-संगीत-महाविद्यालय, नागपुर
भातखडे-संगीत-विद्यालय, जबलपुर
आदि विभिन्न संगीत-संस्थाओं के पाठ्यक्रम में यह पुस्तक स्वीकृत है।

संगीत प्रेस, हाथरस ।

अपनी ओर से

भाषा के विकास के पश्चात् व्याकरण की सृष्टि हुई है और व्याकरण का रूपान्तर भाषा के परिवर्तनों पर आश्रित रहता है। इसी प्रकार 'संगीत-पद्धति' का जन्म और रूपान्तर हुआ है, अतः संगीत में पद्धति की अनिवार्यता होने पर भी इसकी 'रचना' पद्धति के आश्रित नहीं की जा सकती।

पद्धति परिवर्तनमय होती है और उससे केवल रूप-रेखा-मात्र का आभास कराया जा सकता है। संगीत का सम्बन्ध आँखों की बनिस्बत कानों से अधिक है, अतः जीवित कला का दर्शन पद्धति-ग्रंथ में आँखों द्वारा नहीं, वरन् कानों से प्रत्यक्ष सुनकर ही किया जा सकता है।

संगीत के तीनों अंग—गीत, वाद्य और नृत्य में अभिन्नता है। गीत भावाभिव्यक्ति का आंगिक रूप है, वाद्य गीत का पूरक क्षेत्र है और नृत्य भावोन्माद का गठित स्वरूप है। इस प्रकार गीत में वाद्य और नृत्य के मूल तत्त्व सन्निहित रहते हैं, अतः उसकी प्रधानता स्पष्ट हो जाती है।

संगीत-पद्धति में प्रधानतः गीत और उसकी स्वर-रचना पर एवं ध्वनि-क्षेत्र की उँचाई-निचाई पर ही विचार किया जाता है। इस ध्वनि-क्षेत्र के स्थायित्व पर ही संगीत-भवन खड़ा हुआ है और ध्वनि (स्वर)-विचार को ही अनेक रूपों में विभागीकरण द्वारा भिन्न-भिन्न संज्ञाएँ देकर इस योजना को विस्तृत किया है। सम्पूर्ण रूप से यदि संगीत पर विचार किया जाए, तो पद्धति-ग्रंथों में ताल और नृत्य का विधान भी दिया जाना आवश्यक होना चाहिए, किन्तु प्रायः पद्धतिकारों द्वारा ऐसा नहीं किया गया। ताल और नृत्य का साहित्य स्वतन्त्र रूप से अलग ही पाया जाता है। इस प्रकार सामान्य रूप से 'संगीत-पद्धति' का अर्थ केवल स्वर-रचना और राग-रचना ही माना गया है।

हमारी संगीत-पद्धति के क्रमिक रूप से ऐतिहासिक आधार-ग्रंथ प्राप्त नहीं हैं। 'सामवेद' की ऋचाओं को आदि-स्रोत माना जाता है, परन्तु इसके पश्चात् यह पयस्विनी जिन अगणित अज्ञात स्थलों में घूमती-फिरती आज हमारे सामने प्रस्तुत है, वह रूप इसके प्राचीन उन्नत स्वरूप से बिलकुल ही भिन्न है। शास्त्रकारों की उपलब्ध रचनाओं से जितना ज्ञात हो सकता है, वह ऐतिहासिक क्रमबद्धता की दृष्टि से बहुत अपूर्ण है। प्राप्य रचनाओं में भी मतैक्य प्राप्त नहीं होता; कई स्थल अस्पष्ट भी हैं। स्वरलिपि-जैसी कोई सुविधा भी प्राप्त नहीं होती, जिससे इन प्राचीन राग-रूपों एवं विधानों को समझा जा सके। सचमुच ही हमारे पुरातन को पढ़ सकने का एक-मात्र साधन स्वरांकन ही हो सकता था, जोकि दुर्भाग्यवश हमें प्राप्त नहीं है। आज हम भरत, कृष्ण और हनुमत्-मतों के मूल ग्रंथ ही नहीं पा रहे हैं, तब इन मतों की दुहाई देना एक ऐतिहासिक वस्तु-मात्र कहा जा सकता है। शार्ङ्गदेव, सोमनाथ, विद्यापति और

अहोबल के विवेचन से हम उन्हें समझ ही कितना सके हैं ? इन महोदयों द्वारा यदि तत्कालीन रागों की स्वरलिपियाँ भी दी गई होतीं, तो आज हमें उन चमत्कृत राग-स्वरूपों का पता चल सकता, जोकि इनके द्वारा आदरणीय हुए थे। मतभेद के सघन वन से एक निर्णय-पथ पर आ जाना कितना कठिन है, यह इन रचनाओं के अध्येता जान सकेंगे।

परंतु यह मतभेद और मतान्तर का चक्र जहाँ समय के साथ-साथ परिवर्तन का द्योतक है, वहाँ हमारी भारतीय भावना का पोषक भी है। भारतीय विचारकों ने विचार-स्वातंत्र्य को जो महत्त्व दिया है, उसके दर्शन आपको उपनिषद्, पुराण, स्मृति, न्याय, सांख्य—सभी रचनाओं में दिखाई पड़ेंगे। प्रत्येक मनीषी ने अपने अनुभव अपने विचार मुक्त कंठ से कहे हैं और उसके स्वतन्त्र स्वर को सदैव हमारे यहाँ सम्मान प्राप्त हुआ है। यह विचारधारा भी इस धर्म-प्राण और आस्तिक देश की विशेषता है कि प्रायः सभी कलाएँ और विद्याएँ अत्यन्त पावन रूप से देवी और देवताओं से सम्बन्धित मानी गई हैं, उनमें सप्राण शक्ति का-जीवन का निवास माना है और उन्हें मोक्ष-मार्ग का साधन तक माना है। 'मोक्ष' भारतीय विचारकों का चरम लक्ष्य रहा है और उससे एवं ईश्वरी शक्ति से सम्बन्धित करने में उनका उद्देश्य कला के उपासकों को कठोर साधना, एकाग्रता एवं तन्मयता, स्नेह, आदर आदि अनिवार्य हेतुओं के लिए आदेश देना माना जा सकता है।

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से अब हमारे पास न प्राचीन स्वर ही हैं और न राग-रूप ही हैं। हमारे रागों के नाम यदि प्राचीन नामों से मिल भी जाते हों, तो पुरातन के नाम पर सिवा नाम-सादृश्य के, हमारे पास कुछ नहीं है। श्रुति-स्थानों के अनिश्चय एवं स्वर-स्थानों के विकृत रूप से हमारे प्रचलित राग-रूप सभी आधुनिक हैं। इस प्रकार से हम एक नवीन प्रणाली के संगीत पर विचार करते समय उन प्राचीन उल्लेखों को इन प्रचलित रूपों के लिए कदापि ठीक नहीं मान सकते। जबकि हमारे स्वर ही नहीं हैं (श्रुति-स्थान के अंतर के कारण), तब इन स्वरों के उपयोग से जो स्वरूप उत्पन्न होगा, वह किसी भी दृष्टि से हमारे प्राचीन स्वरूप का प्रतिबिंब नहीं कहा जा सकता। संगीत-शास्त्र में श्रुतियों का स्थान सूक्ष्म माना गया है और प्राचीन काल में इसके उपयोग द्वारा ही राग-स्वरूप सिद्ध किया जाता था। इस समय इनकी संख्या २२ से घटकर १२ रह गई है या की जा चुकी है। यह संक्षिप्तीकरण सुगमता की दृष्टि से बहुत अच्छा कहा जा सकता है, परंतु शेष १० श्रुतियों के अभाव ने प्राचीन रागों का तो अन्त ही कर दिया। इन १२ श्रुतियों में भी कुछ स्थान प्राचीन श्रुतियों के सूक्ष्म अंतर पर अवस्थित हैं। सारांश में, इस समय प्राप्त प्रचलित स्वरूप नवीन हैं और इन नव-परिवर्तित स्वरूपों के लिए प्राचीन विवेचकों के विवेचन से सहायता चाहना सर्वथा गलत चीज है।

इस परिवर्तन के कारण का पता देश के इतिहास से सहज ही जाना जा सकता है। मुसलमानों के आगमन के पूर्व हमारे संगीत का चरम श्रेणी का

विकास हो चुका था विदेशी शासकों और हमलावरों के कारण उत्तर-भारत की शांति सैकड़ों वर्षों तक नष्ट रही। इस संगीत-लता के क्रमशः मुरझाने का समय यही था। मुगलों के राज्य-काल में अकबर-जैसे सम्राट् ने धार्मिक आदेश ठुकराकर भी संगीत का सम्मान 'तानसेन' के रूप में किया। यह पुरातन संगीत-प्रदीप की अंतिम प्रकाशवान् लौ थी। इसके पश्चात् यह प्रदीप ज्योतिहीन हो गया। ऐयाश बादशाहों और नवाबों ने संगीत को विलासिता का साधन बनाया। आर्थिक प्रलोभनों और दरबारी नियमों की दृष्टि से मुसलमानों ने इस कला को अपने हाथ में लिया और मनमाने स्वरूपों से तोड़-मोड़कर एक जलसों की चीज बना ली। शादी-सम्मान के गौरव से इसे अपने खानदान तक ही सीमित रखना आरम्भ कर दिया। हिन्दुओं का प्रवेश न तो राज-दरबार में ही था और न उनका महत्त्व सच्चे कलाकार होने पर भी मुस्लिम-गायकों के सम्मुख स्वीकार किया जाता था। फलतः हिन्दू लोग इस उत्साहहीन दशा में इसे छोड़ बैठे और परिणामस्वरूप बिना शास्त्र-ज्ञान के, सुने-सुनाए ज्ञान के फलस्वरूप, तत्कालीन मुस्लिम-गायकों ने संगीत का जो स्वरूप उत्पन्न किया तथा बाद में उनके घरानों में जिस स्वरूप का संवर्धन होता रहा, वह रूप हमें प्राप्त होता है।

यह रूपान्तर पिछले पाँचसौ वर्षों से होते हुए आज इस दशा में प्राप्त होता है। निरक्षर गायकों के आश्रित भारतीय संगीत, पद्धति और शृंखला से विहीन हो गया था। आश्चर्य यह था कि ये गायक प्राचीन नामों से अपना नवीन रूप सुनाते रहते थे, जिससे एक अध्येता को बड़ी कठिनाई होती थी। इन उस्तादों की उस्तादी का प्रदर्शन स्वनिर्मित स्वरूपों में भी हुआ है। इस प्रकार प्राचीन संगीत का भ्रष्ट उच्छिष्ट इन खाँसाहबों की कृपा-कोर से प्राप्त हुआ और उसी को स्वर्गीय पं० भातखंडे ने तरतीबवार धो-पोंछ और सजाकर एक थाल में जमा दिया है। ये भग्नावशेष भी हमारे आँसू पोंछने के लिए काफी हैं; अन्यथा हमारे पास इस समय अपना कहा जा सकनेवाला कुछ भी नहीं है। अस्तु—

स्वर्गीय पं० भातखंडे—उत्तर-भारतीय संगीत के लिए एक उद्धारक, पोषक एवं संवर्धक सिद्ध होते हैं। उनकी विशाल कर्तृत्व शक्ति, महान् परिश्रम और ज्वलंत प्रतिभा का प्रमाण उनकी रचनाओं से स्पष्ट दिखाई देता है। संगीत-जिज्ञासु के रूप में समस्त देश का भ्रमण करने, प्राप्य हो सकनेवाले समस्त ग्रंथों का गहन अध्ययन करने एवं देश के चोटी के गायकों के सहवास तथा शिष्यत्व में रहकर सहस्रों राग-गीतों का संग्रह करने के पश्चात् उन्होंने इस विषय पर अपनी लेखनी उठाई है। 'लक्ष्यसंगीत' उनका पद्धति-ग्रंथ है, जिसकी विवेचना विस्तृत रूप से 'हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति' के चार बड़े-बड़े भागों में की है। 'लक्ष्यसंगीत' की पूरक रचना 'अभिनव रागमंजरी' है। पद्धति के शास्त्रीय विवेचन के उपरान्त उदाहरण-स्वरूप अनेक रागों की लगभग १८७५ चीजें अपनी सरल और सुबोध स्वरलिपि-पद्धति में बाँधकर 'क्रमिक पुस्तक-मालिका' के ६ भागों में प्रस्तुत की हैं। रागों के आरंभिक अध्ययन की 'स्वरमालिका' और 'स्वरबोध' नामक रचनाएँ भी अनुपम हुई हैं। इस प्रकार स्वर्गीय भातखंडे का सम्पूर्ण साहित्य, एक सम्पूर्ण चित्र-जैसा है,

जो आज उत्तर-भारत की शिक्षण-संस्थाओं और शिक्षार्थियों के लिए पूजनीय हो रहा है। इस सम्पूर्ण रचना में जहाँ प्रचलित राग-रूपों का स्पष्ट चित्रण हुआ है, वहाँ रचनाकार की प्रतिभा का दर्शन, ठाठ-पद्धति, स्वरलिपि, रागों के लक्षणगीत आदि के द्वारा होता है। इस समय के संगीत-विद्यालयों में ये रचनाएँ ही आधार-ग्रंथ मानी गई हैं और स्वर्गीय भातखंडेजी का चित्रित किया हुआ पद्धति-स्वरूप ही सभी के द्वारा ग्रहणीय माना गया है। उनका यह कार्य संगीत-संसार में उनके श्रेय को सदैव बनाए रखेगा।

कुछ घरानेदार गायकों और संगीत-विवेचकों ने प्रस्तुत पद्धति के लिए अपने इस प्रकार विचार भी प्रकट किए हैं कि इस पद्धति में कम ठाठों में अधिकाधिक रागों को रख देने के प्रयत्न में कुछ रागों के साथ अन्याय हुआ है। इसी प्रकार रागों के स्वरूप, वादी-विवादी एवं गायन-समय आदि में भी ज्यादती हुई है। स्वरलिपि की अपूर्णता एवं एक-दो बार सुनकर ही स्वरलिपि बना देने के प्रयत्न में घरानेदार बन्दिशों का रूप विकृत हो गया है। पाश्चात्य स्वरों के अनुकरण पर स्वर-स्थान निश्चित करने से श्रत्यंतर के कारण रागों में भी अंतर आ गया है, इत्यादि। परंतु ये सब तर्क इस रत्नराशि को नगण्य सिद्ध नहीं कर सकते। यदि ये कमियाँ रह भी गई हों, तो भी उनका संस्कार इसी भवन के आधार पर किया जाना युक्ति-संगत होगा। लेखक तो अपनी रचना को वर्तमान का एक चित्र-मात्र कहता है और भविष्य में आगे बढ़नेवालों के लिए एक सुसंगत मार्ग-मात्र ही मानता है। उसका कथन उसी के शब्दों में इस प्रकार है:—

"लक्ष्यसंगीतकाराचे वेली संस्कृत-ग्रंथ होते व ते त्यानें पावलें होतें, परन्तु प्रत्यक्ष उपयोगांतलें संगीत-ग्रंथाना सोडून परिवर्तन पावलें होतें, म्हणून 'लक्ष्य-प्रधानानिशास्त्राणि' या न्यायाने त्याने प्रचारांतलें संगीत आपल्या ग्रथांत सामील केलें'— और —'आणखी शेंपन्नास वर्षांनी जर पंडित आपल्या या कालचें संगीत कसें होतें' ते शोधूं लागले तर या लक्ष्यसंगीताची त्यांस मदत होईल."

इससे अधिक संयमित और विनम्र अभिलाषा क्या हो सकती है!

× × × ×

अब कुछ बातें प्रस्तुत अनुवाद के विषय में कह देना चाहता हूँ। मूल पुस्तिका 'हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति' मराठी में है। यह देश के सम्पूर्ण संगीत-विद्यालयों में थ्योरी के नाम से पाठ्य-ग्रंथों में नियत है। मूल ग्रंथ चार बड़े-बड़े भागों में है। प्रस्तुत प्रथम भाग का हिन्दी-भाषान्तर हिन्दी-ज्ञाता एवं मराठी न जानने-वाले शिक्षार्थियों के हेतु किया गया है। इस ग्रंथ की उपयोगिता विद्यार्थियों तथा शिक्षकों, गायकों और संगीत-प्रेमियों—सभी के लिए समान है। यह आज के संगीत का एक-मात्र पद्धति-ग्रंथ है, अतः इसका महत्त्व सर्वमान्य हो ही जाता है। आशा है, संगीत-प्रेमी इस हिन्दी-भाषान्तर से लाभान्वित होंगे।

संगीत-प्रेमियों के सम्मुख इस लाभदायक एवं उपयोगी भाषान्तर को प्रस्तुत करने का सम्पूर्ण श्रेय 'संगीत' के संचालक—श्री प्रभूलाल जी गर्ग को ही है। श्रीमान् गर्गजी द्वारा की जानेवाली संगीत-सेवाओं का महत्त्व संगीत-संसार में चिर-स्मरणीय रहेगा। आपने ही आज से १७-१८ वर्ष पूर्व से हिन्दी का एक-मात्र संगीत-सम्बन्धी मासिक पत्र 'संगीत' निकालकर एवं संगीतसागर, रागदर्शन, संगीतसीकर, संगीतअर्चना, संगीतकादम्बिनी आदि ग्रंथ प्रकाशित करके तथा संगीत के संस्कृत-ग्रंथ संगीतपारिजात, संगीतदर्पण, स्वरमेलकलानिधि आदि की हिन्दी-टीका तथा उर्दू के मारिफुन्नग़मात का हिन्दी-अनुवाद कराकर सहस्रों नर-नारियों को संगीत-प्रेमी बनाया है। उन्हीं की प्रेरणा के फलस्वरूप यह भाषांतर पाठकों के सम्मुख आ रहा है।

इस भाषान्तर में यथासम्भव बोलचाल की और सरल भाषा का ही प्रयोग किया है, जिससे सर्वसाधारण लाभान्वित हो सकें। ग्रंथकार द्वारा दिए हुए संस्कृत और इङ्गलिश के प्रमाणों को मूल रूप में ही रख दिया है, ताकि पाठक प्रमाण का उद्धरण प्रमाणदाता के शब्दों में ही जान सकें। यथासम्भव मेरा प्रयत्न मूल ग्रंथकार के प्रत्येक भाव, विचार और तर्क की स्पष्टता ही रहा है और यह भाषान्तर पूर्ण सावधानी से ही किया है, फिर भी दृष्टिदोष से होनेवाली भूलों का मैं उत्तरदायी हूँ।

अंत में इस भाषान्तर-कार्य में सहयोग देनेवाले बन्धुओं के प्रति अपनी आन्तरिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। कुछ मित्रों ने अपना अमूल्य समय देकर इसकी प्रतिलिपि तैयार करने में जो सहायता दी है, उसके लिए मैं उनका आभारी रहूँगा।

खातेगाँव
(मध्यभारत)
मार्गशीर्ष १५, सं० २००६

किमधिकम्

सुदामाप्रसाद दुबे

प्रकाशक का वक्तव्य

आज के संगीत-समाज में ऐसा कौन व्यक्ति होगा, जिसने संगीत के पंडित श्री विष्णुनारायण भातखंडे का नाम न सुना हो ! इस संगीताचार्य ने अपने जीवन-काल में देश-देशान्तर का भ्रमण करके संगीत के अनेक ग्रंथों का निर्माण किया था, जिनमें से हिन्दी-भाषी संगीत-विद्यार्थियों तक उनकी 'क्रमिक पुस्तक-मालिका' की पहुँच तो हो सकी, शेष ग्रंथ संस्कृत या मराठी में होने के कारण, हिन्दी-विद्यार्थी उनके पठन-पाठन से लाभान्वित न हो सके ।

यद्यपि क्रमिक पुस्तकें भी आरंभ में मूल रूप से मराठी भाषा में ही थीं, किन्तु उनकी स्वरलिपियों से तो हिन्दीवालों ने लाभ उठाया ही, शेष राग-वर्णन या शास्त्रीय विवेचन इन पुस्तकों में भी मराठी में होने के कारण हिन्दी-विद्यार्थियों की समझ से दूर ही रहा है । कुछ समय बाद जैसे-तैसे इनका प्रथम भाग हिन्दी में प्रकाशित हुआ । यह भाग तो एक छोटी-सी पुस्तिका के रूप में था, अत: आसानी से प्रकाशित हो गया, किन्तु कई वर्ष तक अन्य भागों के हिन्दी-भाषान्तर के लिए विद्यार्थी तड़पते रहे और कोई सुनवाई न हुई; अन्त में हमारी बहुत कोशिशों के फलस्वरूप इनका हिन्दी-अनुवाद प्रकाशित हुआ और तब विद्यार्थियों ने संतोष की साँस ली ।

हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति 'क्रमिक पुस्तक-मालिका' के कुल ६ भाग हैं, जिनमें अनेक रागों की स्वरलिपियाँ दी गई हैं । थ्योरी या शास्त्रीय विवेचन तो इनमें संक्षिप्त रूप से थोड़ा-थोड़ा दिया गया है । संगीत के शास्त्रीय विवेचन पर तो श्री भातखंडेजी ने एक स्वतन्त्र ग्रंथ का निर्माण अलग ही किया था । जिसका नाम है—'हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति' (थ्योरी मराठी) । इसके बड़े-बड़े चार भाग हैं । प्रथम भाग में ३६४, दूसरे में ५००, तीसरे में ४७८ और चौथे भाग में ११२० पृष्ठ हैं, जिनमें संगीत-कला का भंडार भरकर यह महान् व्यक्ति संगीत-विद्यार्थियों के लिए रख गया है; किन्तु दुर्भाग्यवश संगीत के हिन्दी-भाषी विद्यार्थी इनके दर्शन तक नहीं कर सके, क्योंकि मूल ग्रंथ के चारों भाग मराठी भाषा में थे ! इनकी लोकप्रियता मराठी-जनता तक ही सीमित रही और वही इनका लाभ भी उठा सकी ।

इन पुस्तकों की विशेषता का इससे अधिक और क्या प्रमाण होगा कि लखनऊ की प्रसिद्ध भातखंडे-यूनीवर्सिटी तथा संगीत की अनेक शिक्षण-संस्थाएँ, जो कि हिन्दी के गढ़ उत्तरप्रदेश, मध्यभारत, राजस्थान और बिहार आदि में हैं, उक्त मराठी-ग्रंथों को ही अपने पाठ्यक्रम (कोर्स) में रखने पर मजबूर हुईं ! इसका कारण सिवाय इसके और क्या हो सकता है कि हिन्दी भाषा में संगीत की थ्योरी की अन्य कोई पुस्तक उस समय नहीं थी और उक्त ग्रंथों को हिन्दी में अनुवाद

करके प्रकाशित करने का किसी भी प्रकाशक ने साहस नहीं किया ! विद्यार्थियों के लिए तो कुछ रखना ही था, अतः हम तो यही समझते हैं कि विवश होकर ही उन शिक्षा-संस्थाओं को हिन्दी-प्रदेशों में मराठी के उक्त ग्रथ अपने कोर्स में रखने पड़े।

प्रकाशकों की इस उदासीनता का भी एक कारण है, वह यह है कि संगीत का क्षेत्र सीमित होने के कारण तत्सम्बन्धी पुस्तकों की खपत बाजार में आसानी से इतनी नहीं हो पाती कि प्रकाशकों को अपनी पूँजी सुरक्षित रूप से कुछ मुनाफा-सहित वापस मिलने की आशा हो। इसलिए हम देखते हैं कि हिन्दी के प्रकाशक जहाँ अन्य विषयों की पुस्तकों के लिए शिक्षा-विभाग के चक्कर काटा करते हैं, वहाँ संगीत-सम्बन्धी पुस्तकों के प्रकाशन से बचते रहने में ही अपना कल्याण समझते हैं। संगीत या साहित्य के प्रचार की अपेक्षा इन प्रकाशकों को अपने लाभ की ही चिन्ता विशेष रूप से रहती है। लेकिन उक्त परिस्थिति में संगीत के हिन्दी-विद्यार्थियों को कैसी-कैसी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा होगा, इसका अनुमान सहज में ही लगाया जा सकता है।

'संगीत-कार्यालय' इस ओर प्रयत्नशील था और उस अवसर की प्रतीक्षा कर रहा था कि विद्यार्थियों की यह कठिनाई दूर हो जाए। हमने निश्चय कर लिया कि कार्यालय को चाहे इन पुस्तकों के प्रकाशन में घाटा ही क्यों न उठाना पड़े, किन्तु ऐसे महत्त्वपूर्ण ग्रंथों को हम अंधकार में विलीन नहीं होने देंगे। इस शुभ संकल्प के बाद, तलाश करने पर मालूम हुआ कि उक्त ग्रंथ के मराठी भाग भी अब किसी भी मूल्य पर बाजार में नहीं मिल सकते। तब हमने 'संगीत' मासिक पत्र में एक विज्ञापन छापकर दुगुने-तिगुने मूल्य पर भी इन पुस्तकों की एक-एक प्रति खरीदने की इच्छा प्रकट की ! सौभाग्य से हमारे एक आदरणीय संगीत-ग्राहक श्री बी. एच. देवकरन (गुलबर्गा) ने मराठी के तीनों भाग हमारे पास बिना मूल्य भेज दिए और हमने अनुवाद-कार्य का श्रीगणेश कर दिया। यदि इन महोदय का हमें उस समय सहयोग प्राप्त न हुआ होता, तो यह हिन्दी-अनुवाद, जो इस समय हम उपस्थित कर रहे हैं, शायद अभी न कर सके होते; अतः इस महती कृपा के लिए हम श्री देवकरनजी के अत्यन्त आभारी हैं।

प्रथम भाग के इस अनुवाद का कुछ अंश जब हमने 'संगीत' मासिक पत्र में निकालना आरम्भ किया, तो उसे पढ़कर हमारे पाठक अत्यन्त प्रभावित हुए और जोरदार शब्दों में पुस्तक के प्रकाशन की माँग करने लगे। प्रसन्नता की बात है कि उनकी इच्छा के साथ-ही-साथ संगीत के हिंदी-विद्यार्थियों की भी इच्छा पूर्ण करने में हमें सफलता मिली है, और 'हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति' के प्रथम भाग का यह हिन्दी-अनुवाद 'भातखंडे-संगीतशास्त्र' के नाम से हम संगीत-प्रेमियों के सम्मुख उपस्थित कर सके हैं।

मूल पुस्तक के नाम में परिवर्तन करने के कारण का उल्लेख भी यहाँ कर देना आवश्यक प्रतीत होता है। प्रायः अनेक व्यक्ति इस भेद को नहीं समझते कि 'हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति क्रमिक पुस्तक-मालिका' यह अलग ग्रंथ है और 'हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति' यह एक दूसरा ही ग्रंथ है। बहुत-से ग्राहक पुस्तक मँगाते समय

प्राय: यह लिख देते हैं कि 'हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति' भेज दीजिए। ऐसी स्थिति में पुस्तक-विक्रेता का इस विचार में पड़जाना स्वाभाविक है कि ग्राहक 'क्रमिक पुस्तक' चाहता है या थ्योरी की पुस्तक माँग रहा है। इसी अड़चन से बचने के लिए प्रस्तुत पुस्तक का नाम 'भातखंडे-संगीतशास्त्र' रखना हमने उचित समझा है, जिससे कोई भ्रम न रहे और पाठकों की इच्छानुसार उन्हें पुस्तक प्राप्त हो जाए।

प्रस्तुत पुस्तक के प्रारम्भिक ८८ पृष्ठ तक का हिन्दी-अनुवाद 'संगीत' के सम्पादक श्री विश्वम्भरनाथ जी भट्ट 'संगीतविशारद' ने किया है और शेष संपूर्ण अंश का अनुवाद श्री सुदामाप्रसाद जी दुबे द्वारा हुआ है। अनुवादकद्वय ने जिस परिश्रम और लगन से यह कार्य किया है, उसके लिए हम उन्हें धन्यवाद देते हैं और आशा करते हैं कि आगे भी इनका सहयोग हमें प्राप्त होता रहेगा।

इस पुस्तक की बिक्री सन्तोषजनक रूप से होगी या नहीं, इसका विचार छोड़कर हम अपने निश्चय पर अटल हैं, अत: आगे के भागों का हिन्दी-अनुवाद भी करा दिया गया है। आशा है, संगीत-प्रेमियों का प्रेम और सहयोग हमें प्राप्त होता रहेगा और हम अपने उद्देश्य में सफल होंगे।

जन्माष्टमी

संवत् २००७ वि०

अनुक्रमणिका



ग्रंथकार : पंडित विष्णुनारायण भातखंडे, बी. ए., एल्-एल्. बी.

(चतुर पंडित)

जन्म : गोकुलाष्टमी, शाके १७८२
१० अगस्त, १८६०

मृत्यु : गणेशचतुर्थी, शाके १८५८
१९ सितंबर, १९३६

'मद्भक्ता यत्र गायंति तत्र तिष्ठामि नारद'

हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति

(थ्योरी मराठी प्रथम भाग का हिंदी-अनुवाद)

प्रिय मित्रो ! मैंने बहुत दिनों से यह निश्चय कर रखा था कि एक बार तुम्हें योग्य स्वर-ज्ञान हो जाने पर, अपनी आधुनिक संगीत-पद्धति, जिसे प्रचार में कहीं-कहीं हिंदुस्तानी संगीत-पद्धति भी कहते हैं, सविस्तार तथा स्पष्ट रूप से समझा दूँगा। मेरा अनुमान है कि 'स्वरबोध', 'स्वरमालिका' इत्यादि पुस्तकों का तुमने भलीभाँति अध्ययन कर लिया है तथा स्वर-ज्ञान भी तुम्हें अच्छा हो गया है। अतः जितना संभव हो सकता है, उतनी सरल रीति से मैं उस पद्धति को तुम्हें समझाने का प्रयत्न करता हूँ। तथापि मेरा अनुमान है कि ऐसा करने के पूर्व दो-एक बातों का स्पष्टीकरण कर देना उचित होगा। में अभी, जिस पद्धति का उल्लेख करनेवाला हूँ, उसमें यद्यपि 'हिंदुस्तानी'—यह विशेषण जुड़ा हुआ है, तथापि इससे यह न समझना चाहिए कि आजकल यह हमारे संपूर्ण देश में समान रूप से प्रचलित है। संगीत की दृष्टि से, सुविधा के लिए हमारे देश के दो भाग किए जा सकते हैं। पहला उत्तर-भाग तथा दूसरा दक्षिण भाग। हम दक्षिण-भाग से मद्रास प्रांत का आशय समझेंगे तथा शेष संपूर्ण देश को उत्तर भाग कहेंगे। दक्षिण में कर्णाटकी-पद्धति प्रचलित है। इस समय मैं तुम्हें उसे न सिखाऊँगा। मैं जानता हूँ कि उस पद्धति के आधार-ग्रंथों के विषय में अथवा उसकी राग-रचना के तत्त्वों के विषय में मुझे थोड़ा-बहुत बोलना पड़ेगा, परंतु वह हमारा आज का विषय नहीं है। यदि तुम यही मानकर चलो कि उत्तर-भाग में सर्वत्र हिंदुस्तानी पद्धति प्रचलित है, तब भी हर्ज नहीं है। जगह-जगह विशिष्ट कारणों से राग-रूपों के संबंध में मतभेद हो सकते हैं और यह भी मैं मानता हूँ कि मतभेद हैं, परंतु यह अवश्य कहा जा सकता है कि संगीत-पद्धति सर्वत्र एक ही है। तुम्हें अब भलीभाँति स्वर-ज्ञान हो गया है, अतः मैं जो कुछ कहूँगा, वह तुम्हारी समझ में अच्छी तरह आ सकेगा। योग्य स्वर-ज्ञान हुए बिना संगीत का औपपत्तिक अथवा शास्त्रीय भाग समझ में नहीं आता।

स्वर-ज्ञान उत्तम हो जाने की पहचान यह है कि यदि कोई यह कहे कि अमुक स्वर गाओ, तो तत्काल वह स्वर गले से निकाला जा सके; इसी प्रकार यह पूछने पर कि अमुक ध्वनि का स्वर क्या है, तुरंत उस ध्वनि का स्वर-नाम लिया जा सके। एक बार ऐसा स्वर-ज्ञान हो जाने पर, फिर आगे का संपूर्ण मार्ग सरल है। दक्षिण में स्वर ज्ञान की ओर विशेष ध्यान दिया जाता है। खेद की बात है कि हमारे यहाँ इस विषय पर उचित परिश्रम नहीं किया जाता। तुम्हें यह सुनकर आश्चर्य होगा कि हमारे यहाँ संगीत से ही अपना पेट पालनेवाले अनेक ऐसे लोग निकलेंगे, जिन्हें स्वर-ज्ञान अथवा राग-नियमों का यथोचित ज्ञान नहीं है। इस विषय पर यहाँ आलोचना करना मेरा उद्देश्य नहीं है, तथापि मैंने वस्तुस्थिति का उल्लेख-मात्र कर दिया है। मेरा तो कहना यह है कि स्वर-ज्ञान के बिना न तो पद्धति का वास्तविक

रहस्य समझ में आता है और न सच्चा आनन्द ही प्राप्त होता है। एक अन्य बात तुम्हें यह बताए दे रहा हूँ कि मैं जिस पद्धति को तुम्हें अभी सिखानेवाला हूँ, उसे कुछ नवीन ही ढंग से सिखाऊँगा। वह ढंग यह है कि तुममें से कोई एक, हर बार मुझसे प्रश्न पूछता चले और मैं उस प्रश्न का उत्तर देते हुए तुम्हारा समाधान करता चलूँ। जिसे जो प्रश्न सूझे, उसे वह अवश्य पूछ ले। मेरा अनुमान है कि इस प्रकार तुम्हें शीघ्र तथा उत्तम ज्ञान हो जाएगा। तुम लोग शिक्षित हो, अतः तुम्हें भी यह ढंग पसन्द आएगा। मैं जानता हूँ कि पहले तो यह सुनकर तुम कुछ असमञ्जस में पड़ोगे। तुम सोचोगे कि संगीत-जैसे अज्ञात विषय पर प्रश्न कैसे पूछे जा सकेंगे, परंतु ऐसी अड़चन लेश-मात्र भी नहीं है। एक बार तुमने प्रश्न शुरू किया नहीं कि फिर एक-पर-एक, अनेक प्रश्न तुम्हें अपने-आप ही सूझने लगेंगे। यह भी मैं जानता हूँ कि पहले-पहल तो तुम्हें बहुत-से प्रश्न पूछने पड़ेंगे, परंतु जैसे-जैसे तुम्हारा ज्ञान बढ़ता जाएगा, वैसे-वैसे वे अपने-आप ही कम होते जाएँगे। संभवतः कुछ प्रश्न अनर्गल भी होंगे, परंतु उन्हें पूछने में लज्जित न होना! तुम्हारे प्रश्न चाहे-जैसे क्यों न हों, परंतु मुझे उनसे कभी क्षोभ न होगा। मेरी तो यही हार्दिक इच्छा है कि इस हिन्दुस्तानी पद्धति को जिस प्रकार मैंने समझा है, प्रामाणिक रूप से उसी प्रकार तुम्हें भी समझा दूँ। प्रश्नोत्तर के इस ढंग का मैंने कोई नवीन आविष्कार किया हो, यह बात नहीं है, तथापि इस पद्धति में इस शैली का उपयोग मैंने कहीं देखा नहीं, इसी कारण मैंने इसे नवीन कहा है। हमारी प्रचलित हिन्दुस्तानी पद्धति प्राचीन ग्रन्थों को छोड़कर अत्यधिक भिन्न हो गई है, अतः उसे अब ग्रन्थों की सहायता से नहीं सिखाया जा सकता। इसी से मैं तुम्हें ग्रन्थों के खटराग में नहीं डालता। यह ठीक है कि वे भी तुम्हें पढ़ाए जाएँगे, परंतु यह फिर देखा जाएगा। कहीं-कहीं यदि प्राचीन ग्रन्थों के वाक्यों का मैंने प्रयोग किया भी, तब भी प्रत्येक सिद्धान्त पर ग्रन्थों का प्रमाण देने का मैं वचन नहीं देता। हमारी प्रचलित पद्धति का समर्थन करनेवाले ग्रन्थ भी हैं, परंतु वे किस प्रकार तथा किस सीमा तक सहायक हैं, यह तुम्हें आगे चलकर विदित होगा। हाँ, तो अब हम अपने हिन्दुस्तानी संगीत के विवेचन में अग्रसर होते हैं। पहले तुम्हें 'संगीत' शब्द का अर्थ समझ लेना चाहिए।

प्रश्न : 'संगीत' शब्द का क्या कोई विशेष अर्थ माना जाता है?

उत्तर : हाँ, संगीत समुदायवाचक नाम माना जाता है। इस नाम से तीन कलाओं का बोध होता है। ये कलाएँ गीत, वाद्य तथा नृत्य हैं। इन तीनों कलाओं में गीत का प्राधान्य है, अतः केवल 'संगीत' नाम ही चुन लिया गया है।

प्रश्न : इन तीनों कलाओं में से आप हमें कौन-सी कला सिखाएँगे?

उत्तर : मुझे तुम्हें 'गायन' कला सिखानी है।

प्रश्न : 'गायन' कला में आप हमें क्या सिखाएंगे?

उत्तर : 'गायन' पूर्णरूपेण अपनी राग-रचना पर अवलम्बित रहता है, अतः गायन सिखाने का अर्थ उसके अन्तर्गत राग सिखाना होगा। यह स्पष्ट ही है कि सभी राग स्वरों पर अवलम्बित रहते हैं। तुमने जिन पुस्तकों का अध्ययन किया है, उनमें स्वरों के नामों तथा रागों के नामों को देखा ही है, अब तुम्हें उन रागों की रचना के

तत्त्व इत्यादि निश्चित पद्धति से सीखने हैं। हमारे यहाँ उत्तम गायक हैं, परंतु यह नहीं कि वे सभी पद्धति को जाननेवाले हों। मैं समझता हूँ कि तुम्हें पद्धति का महत्त्व समझाने की आवश्यकता नहीं है।

प्रश्न : हमने जो स्वर सीखे हैं, वे ही इस हिंदुस्तानी पद्धति में प्रयुक्त होंगे अथवा कुछ दूसरे ही स्वरों का प्रयोग होगा ? इन सभी को आप एक बार शुरू से अच्छी तरह समझा दें, तो बड़ा अच्छा हो।

उत्तर : तुमने जिन स्वरों को सीखा है, उन्हें ही इस हिंदुस्तानी पद्धति में प्रयुक्त होनेवाले स्वर समझो। उन्हीं की सहायता से तुम्हें अपनी पद्धति सीखनी है। यद्यपि उन स्वरों के विषय में विशेष कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है, तथापि मुझे यह उचित प्रतीत होता है कि चलते-चलाते उनके विषय में भी कुछ बातें कहकर आगे बढ़ा जाए। इसमें पुनरुक्ति हो, तब भी हर्ज नहीं है। हम अपने शास्त्र का आरंभ ही तो कर रहे हैं, अत: स्वरों पर भी थोड़ा-सा विचार कर लें।

प्रश्न : अवश्य, ऐसा ही कीजिए; यह बड़ा उपयोगी होगा।

उत्तर : मुख्य स्वर तो सात ही हैं, अर्थात् सा, रे, ग, म, प, ध, नि। गायक 'री' के बदले 'रे' का उच्चारण करते हैं, इसलिए यहाँ 'रे' कहा गया है। ग्रंथों में इन सात स्वरों के नाम हैं—षड्ज, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत तथा निषाद। ये स्वर अच्छी तरह से तुम्हारे पहचाने हुए हैं। स्वरों के शुद्ध तथा विकृत—दो भेद माने जाते हैं, जिन्हें हिंदुस्तानी पद्धति में तीव्र तथा कोमल नाम दिया गया है। 'शुद्ध स्वरों को गायक तीव्र कहते हैं। केवल मध्यम को उपर्युक्त संज्ञा प्राप्त नहीं है। इसका कारण आगे बताया जाएगा। हारमोनियम वाद्य पर शुद्ध स्वर सफेद पट्टियों पर दिखाए जाते हैं। हमारे यहाँ नवीन शिक्षार्थियों को पहले-पहल बहुधा ये ही सातों शुद्ध स्वर सिखाए जाते हैं। अब यह समझाता हूँ कि विकृत स्वर किस प्रकार माने जाते हैं। मैं यह भी कह देना चाहता हूँ कि हारमोनियम का उदाहरण मैंने केवल सुविधा की दृष्टि से लिया है। उसके स्वरों से हमारे स्वर बहुत-कुछ मिलते हैं, यही सोचकर इस वाद्य का उदाहरण रखा है। कहा जाता है कि हारमोनियम के स्वरों में तथा हमारे प्रचलित बारह स्वरों में कहीं-कहीं अंतर है। स्वरों को विकृत करने का अर्थ है, उन्हें उनके निश्चित स्थान से विचलित कर देना। पंडितों ने इसकी यही व्याख्या की है। हम भी इसी व्याख्या को स्वीकार करेंगे। हमारी पद्धति में षड्ज तथा पंचम, ये दो स्वर कभी विकृत नहीं होते। इन्हें अचल स्वर कहते हैं। ग्रंथों में इनके विषय में कहा गया है— हिंदुस्तानीयपद्धत्यां तौ स्वरौत्वचलौ मतौ'। विकृत स्वरों के विषय में आगे चलकर ग्रंथ-वर्णन उत्तम है, उसे याद रखो :—

स्वरस्तु प्रच्युतः श्रुत्या नियताया यदा भवेत्।
तदातस्य विकृतत्वमंगीकुर्वन्ति पंडिताः ॥
रिगमधनयो लच्चे विकृताः संभवंति यत्।
अथतेषां विकारांस्तन्वर्णयामि सविस्तरम् ॥

षड्जर्षभयोश्च मध्ये कोमलो रिषभः स्थितः ।
कोमलोधैवतश्चापि पधयोरंतरे पुनः ॥
गांधारो रिगयोर्मध्ये संमतः कोमलाभिधः ।
निषादोपि धनीमध्ये मृदुसंज्ञः सुसंस्थितः ॥
तीव्रमध्यमस्तु प्रोक्तो ह्यंतरे मपयोरपि ।

प्रत्येक सप्तक में रि, ग, म, ध, नि, ये पाँच स्वर विकृत हो सकते हैं। इनमें से रि, ग, ध, नि, इन्हें कोमल तथा मध्यम को तीव्र संज्ञा प्राप्त होती है।

प्र० : 'सप्तक' शब्द से किस वस्तु का बोध होता है ?

उ० : 'सप्तक' का अर्थ 'सातों का समुदाय' स्पष्ट ही है। सातों स्वरों का क्रम से उच्चारण किया और सप्तक बना। रि, ग, म, ध, नि, इन पाँच स्वरों को उपर्युक्त कथनानुसार सप्तक में स्वीकार कर लेने से कुल बारह स्वरों की उपलब्धि होगी। इसी प्रकार प्रत्येक सप्तक में हम बारह स्वर मानेंगे। इस कथन से तुम्हें किंचित् विरोध का आभास दिखाई देगा। तथापि ऐसा मानने में कुछ नुकसान नहीं है। इस प्रकार यद्यपि स्वर तो बारह हो जाएँगे, परंतु उनके नाम हम सात ही रखेंगे। सप्तक को ग्रंथों में मेल, संस्थिति इत्यादि नामों से पुकारा गया है। प्रचार में गायक इसे ठाठ कहते हैं। इस अंतिम नाम को भलीभाँति याद रखना। यह नाम तुम्हें अत्यधिक सुनाई देगा।

प्र० : तब तो इस 'ठाठ' के विषय में आप हमें पूर्ण अभिज्ञान करा दें, तो अच्छा हो ?

उ० : मैंने तुमसे पहले ही कहा था कि हमें अपनी संगीत-रचना को एक अर्थ में राग-रचना ही समझना चाहिए। इस राग-रचना का संबंध ठाठ-रचना से है। ठाठ ही राग का उत्पत्ति-स्थान माना जाता है। प्रत्येक राग किसी-न-किसी नियमित स्वर-सप्तक से निकलता है। इस विधान में ऐसा कोई रहस्य नहीं है, जो समझ में न आ सके। प्रत्येक राग को गाते समय, तुम कतिपय स्वरों को (सभी शुद्ध स्वर अथवा कुछ शुद्ध तथा विकृत स्वरों को) व्यवहृत करोगे ही। और जहाँ तुमने ऐसा किया कि अपने-आप ही कोई-न-कोई ठाठ उत्पन्न हो जाएगा। इसलिए प्रत्येक राग की जो आवश्यक स्वर-रचना है, उसी का नाम 'ठाठ' समझो।

प्र० : इसे हम समझ गए। जितने राग हैं, क्या उतने ही ठाठ भी हैं ? आपके कथन से तो यही प्रकट होता है कि प्रत्येक राग में एक ठाठ प्रयुक्त होगा।

उ० : नहीं-नहीं ! तुम्हें आगे चलकर यह मालूम होगा कि एक ठाठ से अनेक राग उत्पन्न हो सकते हैं। यह विषय क्रम से आगे आनेवाला ही है।

प्र० : तब फिर हमें ऐसी स्वर-रचना अथवा रागोत्पादक ठाठ कितने सीखने हैं ?

उ० : आजकल गायक प्रचार में जितने राग गाते हैं, वे सभी भिन्न-भिन्न प्रकार से हमारे दस मुख्य ठाठों से उत्पन्न किए जाते हैं। इसलिए तुम्हें वे ही दस ठाठ सीखने हैं। तुमने 'स्वरमालिका' नामक पुस्तक का अध्ययन किया है, उसमें इन ठाठों के नाम तुम्हें दृष्टिगत हुए ही होंगे। उन ठाठों की रचना इस प्रकार की जाती है, इन बातों को अब तुम्हें बताया जाएगा। अब तुम इस विषय को एक पद्धति से सीख रहे हो।

प्र० : मालूम होता है कि ठाठों की कुल संख्या दस से भी अधिक है ?

उ० : हाँ, ठाठों की कुल संख्या तो बहुत अधिक है। इसे तुम आसानी से समझ लोगे। यों समझो कि 'सा रे ग म प ध नि', इन शुद्ध स्वरों को क्रम से कहते ही, तुरंत एक ठाठ बन जाता है। क्या यही 'स्वरमालिका' नामक पुस्तक का बिलावल ठाठ नहीं है ? इन्हीं में से कोई स्वर विकृत किया नहीं कि ठाठ बदला। दो स्वर विकृत होने से कोई और नवीन ठाठ बन जाएगा।

प्र० : यह हम समझ गए, परंतु एक शंका है। हमारी इस पद्धति में शुद्ध स्वर सात तथा विकृत स्वर पाँच हैं। यदि इन ठाठों की रचना करने में इतने ही स्वरों का प्रयोग होता है तथा प्रत्येक ठाठ में स्वरों का क्रम 'सा रे ग म प ध नि', यही रखना पड़ता है, तो हर बार इन बारह स्वरों में से सात-सात स्वर लेकर जो ठाठ बनाए जाएँगे, क्या उनकी संख्या गणित-शास्त्र से निर्धारित हो सकती है ?

उ० : तुम्हारी कल्पना यथार्थ है। इस प्रकार की संख्या अवश्य निर्धारित हो सकती है। प्रस्तुत प्रसंग में हम दक्षिण-पद्धति पर विचार नहीं कर रहे हैं, इसलिए मैं अधिक कुछ नहीं कह सकता, परंतु उधर के पंडितों ने जैसे तुम कह रहे हो, उसी तरह मुख्य बारह स्वरों से राग-जनक ७२ ठाठ निश्चित किए हैं। कहा जाता है कि लगभग तीनसौ वर्ष पूर्व दक्षिण में वेंकटमखी नामक संगीत के एक प्रसिद्ध पंडित ने इन ७२ जनक मेलों की व्यवस्था की थी। उनके ग्रंथ का नाम 'चतुर्दंडि-प्रकाशिका' है। उन्होंने पहले तो शुद्ध स्वर-सप्तक के 'सा रे ग म', 'प ध नि सा', ये दो बराबर के भाग किए। इसके बाद पहले भाग में 'रे, ग', ये दो स्वर कोमल जोड़कर उस भाग को छह स्वरों का बना लिया। अर्थात् सा, रे (कोमल), रे (शुद्ध), ग (कोमल), ग (शुद्ध), म। इसी प्रकार ध, नि, इन दो स्वरों को कोमल-विकृत जोड़-कर उसे भी छह स्वरों का बना लिया। अब पहले भाग के छह स्वरों में से प्रत्येक बार चार स्वर (सा रे ग म) लेने से, परस्पर भिन्न केवल छह ही मेलार्द्ध बनने शक्य हैं। यह बात तुम आसानी से समझ लोगे। इसी प्रकार उत्तर भाग में भी छह ही मेलार्ध बनने शक्य हैं। पहले भाग के प्रत्येक मेलार्द्ध अथवा प्रकार से अगर दूसरे भाग के छह-छह मेलार्द्ध जोड़ दिए जाएँ, तो ३६ ठाठ उत्पन्न होंगे, परंतु तुमने जो ये ३६ मेल सिद्ध किए हैं, उनमें मध्यम स्वर शुद्ध ही था। तीव्र मध्यम का प्रयोग अभी तक नहीं किया था। बाकी के मेल-स्वरों को उसी तरह कायम करके जहाँ शुद्ध म है, वहाँ केवल तीव्र मध्यम कर देने से तुम्हें अन्य ३६ मेल प्राप्त हो सकते हैं। ठीक है न ? वेंकटमखी पंडित ने भी इसी रीति से अपने ७२ जनक मेल स्थापित किए थे।

तुम्हें इन सभी ७२ मेलों के खटराग में पड़ने की लेशमात्र भी आवश्यकता नहीं है। वह दक्षिण-पद्धति है। तुम्हें तो केवल दस मेल ही सीखने हैं। ये सब इन ७२ मेलों के अन्तर्गत आ ही जाएँगे, बस यही समझने की बात है। यह भी मत सोचना कि दक्षिण में ये सभी ७२ मेल प्रचलित हैं। 'लक्ष्यसंगीत' में कहा है:—

एतावती यदि संख्या रागाणां शास्त्रनिश्चिता।
लक्ष्यमार्गे नतेसर्वे प्रतीता इति प्रस्फुटम्॥
मेलसंख्या ग्रंथकृद्भिर्महत्योऽपि प्रपंचिताः।
लक्ष्ये प्रसिद्धिवैधूर्या द्वहवस्ता ह्यपेक्षिताः॥

प्रश्न : तब तो हमारे वे दस मेल ही हमें समझा दीजिए, वे ही काफी हैं?

उत्तर : मैं अब ऐसा ही करनेवाला हूँ। अपनी पद्धति के ये दस ठाठ एक बार तुम्हारी समझ में अच्छी तरह आ जाएँ, तो फिर एक-एक ठाठ से जन्यराग कैसे-कैसे उत्पन्न किए जाते हैं, यह समझा देना आसान होगा। रचना के तत्त्वों को समझ लेने पर तुम्हारे समान सुशिक्षित लोग सहज में तथा अच्छी तरह से अपनी बुद्धि का उपयोग कर सकते हैं।

प्रश्न : यदि सभी ठाठों में जन्यराग उत्पन्न करने का तत्त्व समान रूप से प्रयुक्त होता है, तो किसी ठाठ में उसका प्रयोग करके हमें अभी समझा दीजिए। यदि हम एक बार इसे भलीभाँति समझ गए, तो फिर अन्यान्य ठाठों में इसका प्रयोग करना हमारे लिए सरल होगा। इसे समझाने में यदि और कोई आपत्ति न हो, तो यह बात हमें अभी बता दीजिए?

उत्तर : इसमें कोई हर्ज नहीं है। बड़ी खुशी से यह बात मैं तुम्हें अभी बताता हूँ। भलीभाँति ध्यान दो कि 'सा रे ग म प ध नि', इस प्रकार शुद्ध स्वरों को ग्रहण करते ही तुम्हारा पहला ठाठ बन जाएगा। इसे मानकर आगे चलो। अब मुझे यह कहना है कि इन सात स्वरों में से प्रत्येक बार हम एक या दो स्वर कम कर दें, तो पहले जो सात स्वरों का ठाठ था, वह भिन्न प्रकार का हो जाएगा। ठीक है न? मैं समझता हूँ कि एक-आध उदाहरण देकर यह बात तुम्हें समझाऊँ, तो जल्दी समझ सकोगे।

प्रश्न : हाँ, हम भी आपसे ऐसा ही करने की प्रार्थना करनेवाले थे!

उत्तर : अच्छा, तो देखो शुद्ध स्वरों का तुम्हारा प्रकार है—'सा रे ग म प ध नि'। गाते समय बहुधा इसके दो रूप अपने-आप हो जाते है, और वे हैं—आरोह तथा अवरोह। तुम्हारे शिक्षक ने ये दोनों शब्द तुम्हें सिखाए ही हैं। 'सा' से ऊपर की तरफ 'नि' स्वर की ओर गाते चले जाने का अर्थ है 'आरोह करना' तथा इसी प्रकार 'नि' से नीचे की ओर 'सा' की तरफ उतरते जाने को 'अवरोह करना' कहते हैं। ठाठों से राग कैसे उत्पन्न होते हैं—यह बात समझाने में हमें इन दोनों शब्दों का बार-बार प्रयोग करना पड़ेगा। इसी से इन शब्दों को इनके अर्थ के सहित मैंने यहाँ पुनः समझा दिया है। यह कभी न भूलना कि प्रत्येक राग में आरोह तथा अवरोह, दोनों ही की अपेक्षा होती है। अब हम कुछ और आगे बढ़ें। मुख्य स्वर सात ही हैं, इसलिए जिस समुदाय में ये

सभी स्वर होते हैं, उसे 'संपूर्ण' संज्ञा प्राप्त होती है। जिस समुदाय में छह स्वर होते हैं, उसे 'षाडव' तथा जिसमें पाँच स्वर होते हैं, उसे 'औडव' प्रकार कहते हैं। इन नामों को तुम याद रखना, क्योंकि ये तुम्हें बार-बार दृष्टिगत होंगे। मैंने तुम्हें पहले ही बताया था कि सात स्वरों के ठाठ में एक या दो स्वर कम करते जाने से भिन्न-भिन्न प्रकार बनते हैं। यह बात तुम्हें याद ही होगी। इन प्रकारों को ही हम 'षाडव' तथा 'औडव' नामों से पुकारेंगे। अब इन शब्दों का—आरोह तथा अवरोह—इन दो शब्दों से संबंध स्थापित कर देना शेष है और ऐसा करते ही तुम्हारे इस शुद्ध स्वरों के ठाठ के अनेक प्रकार बन जाएँगे।

प्रश्न : हाँ-हाँ, इसे हम अब समझे। एक बार संपूर्ण आरोह तथा संपूर्ण अवरोह, पुनः संपूर्ण आरोह और षाडव अवरोह और पुनः संपूर्ण आरोह तथा औडव अवरोह—इस तरह करते जाएँ, ऐसे ही न ?

उत्तर : ठीक समझे ! इस तरह नौ प्रकार हो सकते हैं; अर्थात् १. संपूर्ण-संपूर्ण, २. संपूर्ण-षाडव, ३. संपूर्ण-औडव, ४. षाडव-संपूर्ण, ५. षाडव-षाडव, ६. षाडव-औडव, ७. औडव-संपूर्ण, ८. औडव-षाडव, ९. औडव-औडव। यह भी समझ लो कि इनके अतिरिक्त और अधिक बन भी नहीं सकते।

प्रश्न : यह तो जान गए, लेकिन अभी इतना ही समझ सके हैं कि हम यदि इस रीति से शुद्ध ठाठ के प्रकार बनाने लगें, तो वे ९ बनेंगे। फिर इसके बाद ?

उत्तर : इन नौ प्रकारों का उपयोग तुम्हारी समझ में भली-भाँति नहीं आया। यह भाग उदाहरण देकर ही समझाता हूँ। पहला संपूर्ण-संपूर्ण प्रकार है। यानी इसका आरोह सात स्वरों का और अवरोह भी सात ही स्वरों का होना चाहिए। इस तरह का प्रकार एक ही होगा। यानी 'सा रे ग म प ध नि, नि ध प म ग रे सा'। लेकिन संपूर्ण आरोह तथा षाडव अवरोह, इस तरह के प्रकार तुरंत छह बनेंगे, क्योंकि पहले सा स्वर के अतिरिक्त अन्य छह स्वरों में से हर बार एक-एक स्वर छोड़ देना होगा; यानीः-

	आरोह							अवरोह						
१.	सा	रे	ग	म	प	ध	नि	×	ध	प	म	ग	रे	सा
२.			,,					नि	×	प	म	ग	रे	सा
३.			,,					नि	ध	×	म	ग	रे	सा
४.			,,					नि	ध	प	×	ग	रे	सा
५.			,,					नि	ध	प	म	×	रे	सा
६.			,,					नि	ध	प	म	ग	×	सा

सातवाँ प्रकार शक्य ही नहीं है, क्योंकि 'सा' कभी नहीं छोड़ा जाता। इसी तरह षाडव-संपूर्ण प्रकार भी छह ही होंगे; क्योंकि वे ही छह स्वर आरोह में क्रम से छूट जाएँगे।

प्रश्न : यह तो बड़ी मनोरंजक बात है। इस रीति से तो षाडव-षाडव प्रकार ६×६=३६ होंगे, क्योंकि प्रत्येक षाडव आरोह से छह षाडव अवरोह जोड़ दिए जाएँगे।

उत्तर : हां, है तो ऐसा ही। षाडव-षाडव प्रकार ३६ ही हैं। कदाचित् संपूर्ण-औडव प्रकारों को तुम तुरंत न समझ सको, इसलिए समझाता हूँ :—

	आरोह	अवरोह
१.	सा रे ग म प ध नि	× × प म ग रे सा
२.	"	× ध × म ग रे सा
३.	"	× ध प × ग रे सा
४.	"	× ध प म × रे सा
५.	"	× ध प म ग × सा
६.	"	नि × × म ग रे सा
७.	"	नि × प × ग रे सा
८.	"	नि × प म × रे सा
९.	"	नि × प म ग × सा
१०.	"	नि ध × × ग रे सा
११.	"	नि ध × म × रे सा
१२.	"	नि ध × म ग × सा
१३.	"	नि ध प × × रे सा
१४.	"	नि ध प × ग × सा
१५.	"	नि ध प म × × सा

इस तरह ये १५ प्रकार बनेंगे। पुनः औडव-संपूर्ण प्रकारों को देखो, तो वे भी पंद्रह ही होंगे, यह तो समझ ही लोगे।

प्रश्न : तब तो फिर मेरा अनुमान है कि बाकी के प्रकार यों बनेंगे। षाडव-औडव=९०, औडव-षाडव=९०, औडव-औडव=२२५ और इसी न्याय से आपके बताए हुए ९ प्रकारों में से ये प्रकार निकल सकेंगे :—

संपूर्ण-संपूर्ण=१
संपूर्ण-षाडव=६
संपूर्ण-औडव=१५
षाडव-संपूर्ण=६
षाडव-षाडव=३६
षाडव-औडव=९०
औडव-संपूर्ण=१५
औडव-षाडव=९०
औडव-औडव=२२५

योग ४८४

उत्तर : तुम बिलकुल ठीक समझे। तुम्हारे इस शुद्ध ७ स्वरों के ठाठ से ही इतने प्रकार बने हैं, इसी रीति से यदि बारह स्वरों से उत्पन्न होनेवाले ७२ ठाठों से हम प्रकार-संख्या निकालने लगें, तो ७२ × ४८४=३४८४८ होगी। यह सब कहने का मतलब इतना ही है कि ये जो औडव, षाडव, संपूर्ण प्रकार हैं, वे सब एक अर्थ में राग ही माने जाते हैं।

प्रश्न : क्या ये सभी राग हमें सीखने हैं ? ये कैसे शक्य होंगे ?

उत्तर : नहीं-नहीं यह बात नहीं है। यद्यपि गणित द्वारा इतने राग सिद्ध होते हैं, परन्तु वे सभी रागत्व प्राप्त नहीं करते। 'राग'—इस शब्द को व्याख्या ग्रन्थों में इस प्रकार की गई है :—

योऽयं ध्वनिविशेषस्तु स्वरवर्णविभूषितः ।
रंजको जनचित्तानां स रागः कथितो बुधैः ॥

भावार्थ : एक विशिष्ट स्वर-समुदाय, जो स्वर या वर्ण से सुशोभित होकर मनुष्यों के हृदयों का रंजन करता है, उसे पण्डित जन 'राग' कहते हैं। उपर्युक्त विस्तृत राग-संख्या को इस व्याख्या की कसौटी पर कसने से वास्तविक रागों की संख्या नितान्त मर्यादित हो जाती है।

प्रश्न : उपर्युक्त व्याख्या में 'वर्ण' शब्द आया है, उसका क्या अर्थ है ?

उत्तर : ग्रन्थों में इसकी व्याख्या यह है—'गानक्रियोच्यते वर्णः'। अगर हम कुछ भी गाने लगें, तो उसमें ये आरोह-अवरोह अपने-आप ही बनने लगेंगे। यदि यह कहा जाए कि इन्हीं की संज्ञा 'वर्ण' है, तब भी काम चल सकता है। वर्ण चार हैं—१. स्थायी, २. आरोही, ३. अवरोही, ४. संचारी। जहाँ एक-एक स्वर रुक-रुककर उच्चरित होता है, वहाँ स्थायी वर्ण होता है। आरोह तथा अवरोह तो तुम जानते ही हो। बीच ही में आरोह तथा अवरोह इत्यादि करने को संचारी वर्ण मानते हैं। अब तुम्हारे शुद्ध शंकराभरण ठाठ की ओर हम पुनः अग्रसर हों !

प्रश्न : यह नाम हमारे लिए नया है। शुद्ध स्वरों के ठाठ को हम बिलावल ठाठ समझे हुए थे।

उत्तर : तुम्हारा कहना ठीक है, हमारी 'हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति' में शंकराभरण ठाठ को ही बिलावल ठाठ माना गया है। यह नाम बड़ा पुराना है।

प्रश्न : इन ठाठों के नामकरण का भला क्या उद्देश्य है ?

उत्तर : ऐसा करना अतीव सुविधाजनक होता है। किसी ठाठ का नाम लेते ही फिर उसमें अमुक स्वर तीव्र है, अमुक कोमल है, इस प्रकार के विवरण की आवश्यकता नहीं रहती। यह मालूम होते ही कि अमुक राग अमुक ठाठ का है, तुरन्त यह पता चल जाता है कि उसमें कौन-से स्वर लगेंगे। रागों में प्रयुक्त होनेवाले स्वरों को हमारे ग्रन्थों में इसी रीति से समझाया गया है। दूसरी याद रखने योग्य बात यह है कि इन ठाठों के नाम प्रायः रागों के ही नामानुसार हैं। यदि तुम शंकराभरण ठाठ का अर्थ वह ठाठ मान लो, जिससे शंकराभरण राग उत्पन्न होता है, तब भी काम चल सकता है। निदान यह स्पष्ट है कि यह तत्त्व हमारी 'हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति' में भी गृहीत है। हमने अपने दस ठाठों को, जिन दस रागों के नामों से पुकारा है, वे हमारे यहाँ के नितान्त साधारण राग हैं। यह न समझना कि ग्रन्थोक्त ठाठों के भी ये ही नाम दृष्टिगोचर होंगे।

प्रश्न : तब तो फिर यह प्रतीत होता है कि पुराने नामों में तथा हिन्दुस्तानी नामों में भेद दिखाई देना सम्भव है।

उत्तर : हाँ, वैसे भेद तो दिखाई देगा, परन्तु इससे कोई खास अड़चन नहीं है। एक ठाठ के दो-दो नाम भी हों, तो क्या हुआ ?

हमें तो ठाठ के स्वरों की आवश्यकता है, 'लक्ष्यसंगीत' में इस प्रकार के दो-दो नामों का स्पष्ट उल्लेख है। इन श्लोकों को तुम कंठाग्र ही कर डालो; देखो—

कल्याणी मेलको लक्ष्ये ग्रन्थेष्वपि तथैव च।
भवेद्बिलावलीमेलः शंकराभरणाभिधः॥
खंमाजी मेलकोऽस्माकं ग्रंथे कांभोजिनामकः।
लक्ष्यज्ञानां भैरवो यस्तत्र मालवगौडकः॥
भैरव्यासावरीमेलौ तोडीभैरविनामकौ।
तोडिव्यपदिष्टमेलो वरालीनामकः पुनः॥
लक्ष्येऽत्र पूर्विसंज्ञो यस्तत्र स्यात्कामवर्धनः।
मारवाख्यो लक्ष्यगतो ग्रन्थेषु गमनश्रमः।
काफिनामाऽऽधुनिकोऽपि तत्र श्रीरागमेलकः।
एवं जनकमेलानां संज्ञाःस्युर्ग्रन्थसंमताः॥

ये श्लोक तुम्हें याद रहें, तो अच्छा होगा। ठाठोल्लेख करते समय इन सभी नामों को मैं फिर से कहूँगा, परंतु श्लोकों की सहायता से ये नाम शीघ्र याद हो सकेंगे। रागों के ठाठों के नामों के विषय में ग्रन्थों में अनेक मतभेद दृष्टिगोचर हो सकते हैं। इन नामों के विषय में अभी विशेष विवरण उपलब्ध नहीं है। 'राग' शब्द की व्याख्या तुम देख चुके हो। राग की पूरी परीक्षा उसके रंजकत्व पर निर्भर है। भिन्न-भिन्न ग्रन्थों ने भिन्न-भिन्न शब्दों में अपनी-अपनी व्याख्या की है, परंतु उन सभी को उपर्युक्त कसौटी स्वीकार है। कौन-सा स्वर-समुदाय रंजक है तथा कौन-सा नहीं, इसका निर्णय समाज पर अवलम्बित है। इसे तुम समझ ही सकते हो, तथापि पर्याप्त अनुभव से हमारे पण्डितों ने कतिपय बड़े चमत्कारपूर्ण नियमों को निश्चित किया है।

प्रश्न : उनमें से कुछ हमें भी बता दें, तो अच्छा हो ?

उत्तर : ऐसे दो-एक नियमों का यहाँ उल्लेख करता हूँ। किसी भी राग में पाँच से कम स्वर नहीं लगेंगे, यह पहला नियम समझो। पहले मैंने रागों के तीन ही प्रकार किए थे, अर्थात् औडव, षाडव तथा सम्पूर्ण। वे प्रकार इसी नियम के अनुसार थे। हमारी पद्धति में तीन या चार स्वरों के समुदाय को राग नहीं मानते। दूसरा एक नियम यह याद रखो कि किसी भी राग में मध्यम तथा पंचम, ये दोनों स्वर वर्जित नहीं किए जाते।

प्रश्न : यहाँ, बीच में ही मैं एक अप्रासंगिक प्रश्न पूछता हूँ। रागों के विषय में, हम प्रायः छह राग तथा उनकी तीस अथवा छत्तीस रागिनियों, उनके पुत्रों इत्यादि की बातें सुना करते हैं। इस रचना के विषय में भी क्या आप दो शब्द कहेंगे ?

उत्तर : इस विषय पर आगे चलकर बहुत-कुछ कहना है, तथापि अभी Capt. Willard के 'Treatise on the music of Hindustan' ग्रन्थ के पृष्ठ ५१ पर इस विषय में क्या लिखा है, यह तुम्हें पढ़कर सुनाता हूँ।

"A *Thaat* come nearest to what with us is implied by a mode, and consists in determining the exact relative distances of the several sounds which constitute an octave, with respect to each other, while the *Raaginee* disposes of those sounds in a given succession, and determines the principal sounds. The same that may be adapted to several *Raaginees* by a different order of succession; whereas no *Raaginee* can be played but in its own proper *Thaat.* It is likewise not a song, for able performers can adapt the words of a song to any *Raaginee*; nor does a change of time destroy its inherent quality, although it may so far disguise the *Raaginee* before an experienced ear as to appear a different one.

After the anceints had made pretty good observations on the firmament of fixed stars, and had as nearly as they could ascertain their respective situations, they thought of reducing them into concatenation under the representation of certain familiar objects, in order to assist the memory to retain them better and easier. To connect a variety of heterogeneous subjects that have no relation with each other under one common head, in order to preserve a concatenation, has been a practice common amongst the oriental nations, and subsists to this very day. The Arabian Nights, the Tooteenamah, the Bahardanish, and a variety of works in all Languages of the east are proofs known to every person who has trod the paths of oriental literature.

It seems probable, therefore, that the author of the *Raags* and *Raaginees,* having composed a certain number of tunes resolved to form some sort of fable in which he might introduce them all in a regular series. To this purpose, he pretended, that there were six *Raags*, or a species of divinity, who presided over as many peculiar tunes or melodies, and that each of them had agreeably to Hanuman five, ar as Kallinath says, six wives, who also presided each one over her tune. Thus having arbitrarily, and according to his fancy distributed his compositions among them, he gave the names of those pretended divinities to the tunes.

It is also probable that the *Putras* and *Bharyas* are not the compositions of the same but some subsequent genius, who

apprehending that their number would be greatly increased by this additional acquisition, or dreading an innovation in the number established by long usage might not by well received, or that sometime or other it might cause a rejection of the supernumberary tunes as not genuine, contrived the story that the Raags and Raaginees had begotten children. This opinion is strengthened by its being asserted that fortyeight new modes were added by Bhurut.

ये Willard साहब के उद्‌गार हैं। ये समीचीन हैं अथवा नहीं, इसपर हम अभी विचार नहीं कर रहे हैं। राग-रागिनी की रचना को भलीभाँति समझ चुकने पर तुम उपर्युक्त मत पर स्वयं विचार कर सकोगे। मैं सोचता हूँ कि अब हम अपने ठाठों की ओर अग्रसर हों तो अच्छा है।

प्रश्न : हाँ, ऐसा ही कीजिए। पहला ठाठ तो हमें बताया ही जा चुका है। उसमें सब स्वर शुद्ध ही हैं।

उत्तर : यह ठीक है। तुमने 'स्वरमालिका' का अध्ययन किया है। वह अपने दस ठाठों के अनुरोध से लिखी गई है। उसमें ठाठों के नामों का उल्लेख दृष्टिगोचर होगा। अब हम यहाँ उनके विषय में अधिक स्पष्टीकरण कर रहे हैं। तुम्हारे इसी शुद्ध ठाठ को ग्रन्थों में शंकराभरण कहा गया है, यह मैं बता ही चुका हूँ।

प्रश्न : इस ठाठ को हम समझ गए, अब अगला समझाइए ?

उत्तर : यह तुम देख ही चुके हो कि पहले ठाठ में जो ७ स्वर थे, वे शुद्ध स्वर थे। दूसरा ठाठ भी बहुत-कुछ वैसा ही है, परन्तु इसमें केवल एक मध्यम स्वर को बदला जाता है। पहले ठाठ में वह 'शुद्ध' था, यहाँ उसे 'तीव्र' कर दिया जाता है। पहले मैंने तुमसे यह कहा था कि स्वरों के दो भेद किए जाते हैं–१. शुद्ध तथा २. विकृत। अब इस ठाठ में हम मध्यम बदल देते हैं, यानी उसे विकृत कर देते हैं। मध्यम की इस विकृति के सम्बन्ध में थोड़ा-सा स्पष्टीकरण कर देना उचित है। मैंने तुमसे कहा था कि स्वर को उसके स्थान से विचलित करने से वह विकृत हो जाता है। स्वर दो प्रकार से विचलित हो सकता है; अर्थात् उस स्वर को या तो कुछ ऊँचा कर दिया जाए या कुछ नीचा कर दिया जाए। स्वर को उसके शुद्ध स्थान से ऊंचा करने पर उसे तीव्र किया हुआ मानते हैं। यदि उसे नीचा कर दें, तो उसे कोमल किया हुआ कहते हैं। यह मैं कह ही चुका हूँ कि षड्ज और पंचम, ये दो स्वर विकृत नहीं होते। अब तुम दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह याद रखो कि हमारी इस 'हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति' में रे, ग, ध, नि, इन स्वरों की 'तीव्र' विकृति नहीं मानी जाती। ये स्वर केवल कोमल होते हैं, यह बात तुम्हें कुछ विचित्र-सी प्रतीत होगी।

प्रश्न : वस्तुतः विचित्र ही प्रतीत होती है; क्योंकि अभी तो आपने यह कहा था कि स्वर को अपने शुद्ध स्थान से विचलित करने से वह विकृत हो जाता है तथा यह कृत्य दो प्रकार से हो सकता है, अर्थात् उसे कुछ ऊँचा करके अथवा कुछ नीचा करके। यह होते हुए भी अब आप यह कहते हैं कि रे, ग, ध, नि, ये 'तीव्र' नहीं होते,

केवल कोमल ही होते हैं। यह तो हम भलीभाँति नहीं समझे। यह बताइए कि क्या तीव्र रे, तीव्र नि, तीव्र ध इत्यादि का प्रयोग नहीं हो सकता ?

उत्तर : इसमें कुछ निराला ही रहस्य है। अपनी हिन्दुस्तानी पद्धति में उपर्युक्त तीव्र ग इत्यादि के प्रयोग तुम्हें अवश्य दृष्टिगोचर होंगे, परन्तु तुम्हें यह भी दिखाई देगा कि ये तीव्र स्वर वे ही हैं, जिन्हें तुम अभी तक शुद्ध मानते आए हो।

प्रश्न : हमें तो यह सुनते ही भ्रम होता है, फिर तुरन्त ही यह कहना कि शुद्ध स्वर को ही तीव्र स्वर माना जाता है, कदापि सुसंगत नहीं हो सकता।

उत्तर : तुम्हारी शंका बिलकुल ठीक है। किसी सीमा तक इसका समाधान इस प्रकार किया जा सकता है कि जिन्हें हम अभी तक शुद्ध स्वर मानते आए हैं, वे प्राचीन ग्रन्थों के शुद्ध स्वर नहीं हैं। यदि तुम दक्षिण की ओर गए और वहाँ तुमने किसी गायक से केवल सात शुद्ध स्वर बजाने के लिए कहा, तो सुनने पर वे तुम्हें बहुत-कुछ नवीन से प्रतीत होंगे।

प्रश्न : भला यह क्यों ? क्या वह इस बिलावल ठाठ के ही स्वरों को शुद्ध स्वर मानकर नहीं बजाएगा ? और यदि नहीं, तो कौन-से शुद्ध स्वर बजाएगा ?

उत्तर : 'सा, म, प,' ये तो तुम्हारे ही बजाएगा, लेकिन 'रे, ग, ध, नि', ये स्वर तुम्हें अवश्य भ्रम में डाल देंगे। जिन्हें तुम हिन्दुस्तानी पद्धति में कोमल रें, ध मानोगे, उन्हीं को दक्षिण में शुद्ध 'रे, ध' माना जाएगा। इतना ही नहीं, प्रत्युत जिन स्वरों को तुम अपनी पद्धति में शुद्ध 'रे, ध' मानते हो, वे ही वहाँ क्रम से शुद्ध 'ग, नि' होंगे।

प्रश्न : अरे-अरे ! संगीत के संबंध में उधर कैसा अज्ञान है, परन्तु उन लोगों की ऐसी अनर्गल धारणा कैसे हो गई ?

उत्तर : ठहरो, उतावली में तुम अपना ऐसा मत निश्चित न करो। यह न समझना कि दक्षिण में जो ये स्वर-नाम हैं, वे निराधार ही हैं। उन्हें संस्कृत-ग्रन्थों का उत्तम आधार प्राप्त है। वे लोग तो उलटे हमारे यहाँ के नामों को दूषण देते हैं। किन्हीं अंशों में उनका कहना ठीक ही है।

प्रश्न : तब क्या फिर आपको भी यही प्रतीत होता है कि हमारे इन शुद्ध स्वरों को शास्त्राधार प्राप्त नहीं है ? हमारी पद्धति जिन मुख्य सात स्वरों पर अवलंबित है, वे ही यदि निराधार हो गए, तब फिर हमारे संगीत की सशास्त्रता ही क्या रही ? क्या हमारी पद्धति का समर्थन करनेवाले ग्रन्थ कोई नहीं हैं ?

उत्तर : तुम्हें निराश होने का कोई कारण नहीं है। यह बात ठीक है कि जो ग्रन्थ प्राचीन कहे जाते हैं, उनके स्वर—अर्थात् शुद्ध स्वर बिलावल ठाठ के नहीं हैं, परन्तु यह नहीं है कि हमारी पद्धति को बिलकुल ही आधार उपलब्ध न हो। चतुर पंडित-कृत 'लक्ष्यसंगीत' नामक जो ग्रंथ है, वह तुम्हारी ही पद्धति का समर्थन करनेवाला है। प्राचीन ग्रन्थों में ही मतैक्य कहाँ दिखाई देता है ? 'संगीत-पारिजात', 'संगीतरागतरंगिणी' इत्यादि ग्रन्थों के स्वर दक्षिण की पद्धति के स्वरों से भी निराले हैं। मैं तो यह समझता हूँ कि देश-देश के भिन्न-भिन्न भागों में पद्धति का भिन्न-भिन्न होना बिलकुल स्वाभाविक है। भाषा, क्या भिन्न-भिन्न नहीं होती ? ऐसा होते हुए

भी क्या हम इसके लिए दुखी होते हैं ? तात्पर्य यह है कि एक सप्तक में जो १२ स्वर माने गए हैं, वे यदि सर्वत्र एक-से ही हों, तो उनके नाम-गाँव के भेद से हमें भ्रम में न पड़ना चाहिए। अस्तु, हमारा विचार-विन्दु यह था कि हमारे शुद्ध स्वरों का 'तीव्र', यह नाम किस प्रकार उचित होगा ? अब तुम्हीं देखो कि यदि शुद्ध 'रे, ग, ध, नि' स्वर दक्षिण के मत के अनुसार ठीक हुए, तो क्या उन स्वरों का तुम्हारा वर्तमान स्थान तीव्र नहीं है ? इस बात पर भलीभाँति विचार करके देखना—भला ! यह न भूलना कि तुम्हारा 'लक्ष्यसंगीत' नामक ग्रन्थ बहुत प्राचीन नहीं है। यह स्पष्ट दिखाई देता है कि वह 'पारिजात' के बाद का है।

प्रश्न : बिलकुल ठीक है। आपका कथन युक्तियुक्त दृष्टिगोचर होता है। इस दृष्टिकोण से देखने से हमारे स्वर तीव्र ही होंगे तथा जो इस प्रमाण के पूर्व ही तीव्रत्व प्राप्त कर चुके हैं, उनका पृथक् तीव्रत्व न मानना चाहिए, यही बात है न ?

उत्तर : ठीक समझे ! अब 'मध्यम' यह स्वर पुराना तथा नवीन एक ही है। यह समझकर चलो कि इसके दो नाम हैं। पहला 'शुद्ध म' तथा दूसरा 'कोमल म'। हिन्दुस्तानी पद्धति में कुछ लोग 'कोमल म' नाम भी व्यवहृत करते हैं। 'तीव्र म' यह स्वर उस 'कोमल म' से भी ऊँचा है, इसलिए उसका 'तीव्र', यह नाम ठीक ही है। 'शुद्ध म' तथा 'कोमल म', ये भिन्न स्वर नहीं हैं, यह समझकर आगे बढ़ना उचित होगा।

प्रश्न : ठीक है। अब अपने ठाठों का वर्णन कीजिए।

उत्तर : हाँ, मैं दूसरा ठाठ समझा रहा था। इस दूसरे ठाठ में केवल मध्यम तीव्र लिया जाता है. बाकी के छह स्वर बिलावल ठाठ के ही लिए जाते हैं।

प्रश्न : इस ठाठ के कौन-से दो नाम रखे जाएँगे ?

उत्तर : इस ठाठ को कल्याण ठाठ कहते हैं। यहाँ दो विभिन्न नाम नहीं हैं। मैं दो नाम बताता हूँ। इसका कारण कदाचित् तुम समझ ही गए होगे, तथापि मैं पुनः समझाता हूँ। आगे चलकर तुम्हें ग्रन्थों को भी पढ़ना है। उनमें भी ठाठ-रचना है। उनमें भी ठाठों के नाम दिए हुए हैं। यहाँ हम जिन दस ठाठों को स्वीकार करनेवाले हैं, वे भी ग्रन्थों में उपलब्ध होंगे; परन्तु यह नहीं है कि वहाँ वे अपनी पद्धति के नामों के अनुसार हों। तथापि यह समझकर कि ग्रन्थों में आए हुए नामों को आजकल के नवीन प्रचलित नामों के साथ बताते जाना सुविधाजनक होगा, मैं उन्हें भी कहता जा रहा हूँ।

प्रश्न : हाँ, ऐसा करना उचित होगा। इन्हें इसी प्रकार कहते चलिए। हम उन-सबको याद रखेंगे। ग्रन्थों में इस दूसरे ठाठ का नाम कल्याण है, यह हम समझ गए; अब तीसरा ठाठ बताइए ?

उत्तर : तुम्हारे जो मूल सात शुद्ध स्वर हैं, उन्हीं को लेकर उनमें जो 'निषाद' स्वर है, उसे 'कोमल' कर देना है। इस ठाठ को हम हिन्दुस्तानी पद्धति में 'खमाज' ठाठ कहते हैं। ग्रन्थों में यह ठाठ 'कांभोजी' नाम से उपलब्ध होगा।

प्रश्न : इस नाम को हम याद रखेंगे। अब अगला बताइए। आप यह पहले ही बता चुके हैं कि ये ठाठ हमारी पद्धति के आधार-स्तम्भ कहे जाते हैं, क्योंकि आगे चलकर इन्हीं से हमारे अनेक राग निकलेंगे।

उत्तर : यह तो है ही ! ग्रन्थों में इन ठाठों का बहुत महत्त्व माना जाता है। इन्हें राग-जनक मेल कहा जाता है। मैं समझता हूँ कि यह व्यवस्था केवल संगीत की ही नहीं है। इतर शास्त्रों को भी देखो – वनस्पति-शास्त्र अथवा प्राणी-शास्त्र ही लो, तो क्या वहाँ भी मुख्य Orders अथवा वर्ग नहीं माने गए हैं? उत्तम पद्धति को इसी प्रकार सुव्यवस्थित होना चाहिए। दक्षिण में इन मेलों का महत्त्व अभी तक वैसा ही है। उधर यद्यपि ग्रंथाध्ययन करनेवाले अधिक उपलब्ध नहीं हैं, तथापि यह प्राचीन क्रम अभी तक अव्याहत रूप से वैसा ही चला आ रहा है।

उद्भ्रम तो केवल हमारे उत्तर में ही होता है; जैसा चाहा वैसा मनःपूत गायन। दुर्दैव से, आगे चलकर सरल तथा उत्तम पद्धति का भी लोप होता चला गया। कुछ लोग इस स्थिति का कारण यह बताते हैं कि मुसलमानों के हाथ में हमारे संगीत के चले जाने से ही यह दशा हुई है। उनका यह कथन अर्थ-शून्य नहीं है। मुसलमानी शासन में मुसलमान गायकों को अधिक प्रोत्साहन तथा महत्त्व मिला हो, तो कोई आश्चर्य नहीं है। उन गायकों को संस्कृत-ग्रन्थ तथा उनकी सुसंगत पद्धति कौन सिखाता? वे लोग किसी सीमा तक स्वधर्माभिमानी भी थे, अतः शान्तिपूर्वक हिन्दू संस्कृत-पण्डितों से इस शास्त्र को सीख लेना सम्भव भी न था। यह भी कहा जा सकता है कि वह समय इस विषय के लिए अधिक अनुकूल न था। हमारे वर्तमान शासक, जिस प्रकार हमारी पुरानी विद्या सीखने की आस्था दिखाते हैं, वैसे मुसलमानी शासक न थे। आजकल तो विलायत में भी हमारी धर्म-पुस्तकों का उत्तम अध्ययन किए हुए अनेक विद्वान् मिलेंगे। बादशाही जमाने में ऐसे उदाहरण सुनाई न देते थे। संस्कृत-ग्रन्थ लिखनेवाला कोई मुसलमान पण्डित मुझे तो इतिहास में दिखाई दिया नहीं। मुसलमान गायकों की संगीत में रुचि थी। यह भी कहना पड़ेगा कि उनमें अलौकिक बुद्धि थी। परन्तु प्राचीन ग्रन्थों को सीखने की उनमें वैसी उत्कण्ठा न थी। स्वयं तानसेन इत्यादि बड़े-बड़े लोगों को ही लो, उन्होंने ही हमारे आगे कौन-से स्मारक ग्रन्थ रखे हैं? यदि हम लोगों में से कोई यह सिद्ध करने को कहें कि उन्होंने सभी ग्रन्थ भलीभाँति समझ लिए थे, तो मानना पड़ेगा कि उसे प्रमाण उपस्थित करने में बड़ी कठिनता होगी। अब कोई यह कहेगा कि हमारे पुराने गीतों में 'सप्तसूर, तीनग्राम, एकईस मूरछान, बाईस श्रुति, बारा बिकरत, उनचास कोट तान' इत्यादि क्या हिन्दी भाषा में दिखाई नहीं पड़ते? यह ठीक है, परन्तु ग्रन्थों को पढ़ने से तुम्हारी समझ में आ जाएगा कि यह ग्रन्थों को समझ लेने का पर्याप्त प्रमाण नहीं है। अस्तु, वे अप्रतिम गायक थे तथा अब हमें उनके द्वारा रूपान्तरित संगीत ही प्रचार में अधिक मिलेगा, यह बात प्रमाणिक रूप से माननी पड़ेगी। मेरी इच्छा तुम्हें विषयान्तर में ले जाने की नहीं है। ऐसे विषय बड़े विवादग्रस्त होते हैं। जनक ठाठ तथा उनसे उत्पन्न जन्यराग, यह पद्धति सीखने-सिखाने के लिए उत्तम है, इस विषय पर मैं बोल रहा था। इतना ही कहना था कि यह पद्धति अत्यन्त प्राचीन है और इसी को मैं भी स्वीकार कर रहा हूँ।

प्रश्न : यह हम समझ गए। हमारी समझ में यह भली-भाँति आ गया है कि यह ठाठ-रचना बड़ी ही कौशलपूर्ण है। क्या हमारे सभी गायक ठाठों की

इस पद्धति को भलीभाँति समझकर गाते हैं। यदि ऐसा हो, तो उनकी बड़ी प्रशंसा ही करनी होगी।

उत्तर : जो तन्तुवाद्यों के बजानेवाले हैं, उन्हें बार-बार 'ठाठ' शब्द का प्रयोग करना पड़ता है, क्योंकि अपने वाद्यों पर भिन्न-भिन्न राग बजाने के लिए उन्हें विभिन्न स्वर-रचनाएँ करनी पड़ती हैं, परंतु जो लोग केवल गायक ही हैं, वे ठाठों के इस झमेले में नहीं पड़ते। वे लोग जिन रागों को गाते हैं, वे अपने-आप समुचित ठाठ के अन्तर्गत आ जाते हैं, लेकिन यदि तुम उन गायकों से इस ठाठ-पद्धति के बारे में कुछ पूछने लगो, तो तुम्हें बहुधा समाधानकारक उत्तर न मिलेगा। इसका कारण केवल यही है कि वे पद्धति के अनुसार सीखे हुए नहीं हैं। अस्तु, अब तुम्हें चौथा ठाठ बताता हूँ। इस ठाठ का प्राचीन नाम 'मालवगौड़' है। अपनी पद्धति में हम इसे भैरव ठाठ कहेंगे। ध्यान रखने के लिए ही मैं तुम्हें ठाठों के ये दो-दो नाम बता रहा हूँ। इससे एक और भी लाभ होगा। यह बात प्रसिद्ध ही है कि हमारा प्राचीन संगीत ग्रंथों में वर्णित है। हिन्दुस्तानी संगीत तो नया ही है; अर्थात् पिछले दो-ढाईसौ वर्षों में, विद्वान् अथवा अज्ञान गायकों ने उसमें बड़ा उलट-फेर कर डाला है. यह बात अब प्रायः सभी को स्वीकार है। अतः स्पष्ट है कि हमारे नवीन संगीत का प्राचीन संगीत से मेल बैठना बहुत कम सम्भव है। तथापि मेरा विचार है कि यदि किसी के मन में इस नवीन संगीत की पुराने संगीत से तुलना करने की इच्छा हुई, तो इन ठाठों के पुराने तथा नए नाम जानना उपयोगी होगा।

प्रश्न : यह बिलकुल ठीक है। यह बात पहले ही हमारी समझ में आ गई थी। ये नाम बड़े उपयोगी होंगे। इसका ज्ञान होने से यह तुरन्त पता चल जाएगा कि हमारी प्रचलित पद्धति में जो राग-स्वरूप हैं, उन्हें प्राचीन ग्रंथों में कहाँ ढूँढ़ा जा सकता है। यही बात है न ?

उत्तर : ठीक समझे। इस भैरव ठाठ के 'रे' और 'ध', केवल ये दो स्वर कोमल हैं; बाकी के सब शुद्ध ही हैं। इस ठाठ के विषय में अधिक कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। पाँचवें ठाठ का स्वरूप भी कुछ इसी की तरह है, इसलिए उसे भी यहीं कहे देता हूँ। भैरव ठाठ में जिस प्रकार हमने 'रे, ध', इन स्वरों को कोमल लिया है, उसी तरह इस पाँचवें ठाठ में भी वे कोमल हैं। भैरव में केवल मध्यम स्वर कोमल अथवा शुद्ध है और इस ठाठ में वही तीव्र है। यह बात नहीं है कि इस ठाठ को उत्पन्न करने के लिए पहले भैरव ठाठ की स्थापना करनी पड़े। शुद्ध स्वरों का ठाठ लेकर उसमें 'रे, ध' कोमल और 'म' तीव्र करने से यह पाँचवाँ ठाठ बनता है। इसका यही वर्णन ठीक होगा। इस ठाठ के प्राचीन नाम ,रामक्रिया', 'कामवर्धनी' हैं। हमारी अर्वाचीन पद्धति में इसे पूर्वी ठाठ कहते हैं। हमारी पद्धति में भैरव और पूर्वी ठाठ बड़े महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं। इस ठाठ को कुछ लोग दीपक ठाठ भी कहते हैं। दक्षिण में इस ठाठ को 'कामवर्धनी' नाम से पहचानते हैं। यहाँ मैंने दो से भी अधिक नाम बताए हैं, इससे भ्रम में न पड़ना।

प्रश्न : नहीं-नहीं, हमें तो इस प्रकार का अभिज्ञान महत्त्वपूर्ण प्रतीत होता है। अब अगला ठाठ बताइए ?

उत्तर : पाँचवें ठाठ में तुमने रे, ध कोमल और मध्यम तीव्र लिए थे। छठे ठाठ में रे कोमल तथा म तीव्र लेना है। धैवत शुद्ध ही रहने देना है। इस ठाठ को प्राचीन नाम से 'गमनश्रम' अथवा 'गमनश्रिय' कहेंगे तथा हिंदुस्तानी पद्धति में इसका नाम 'मारवा' मानेंगे। मैं जिन छह ठाठों का उल्लेख कर चुका हूँ, उनमें से पहले तीन अर्थात् बिलावल, कल्याण तथा खमाज में 'रे, ध' स्वर तीव्र थे और 'ग' तो तीनों ही ठाठों में तीव्र था। अगले तीन ठाठों में 'रे' कोमल है, इस बात को ध्यान में रखना। इसका उपयोग आगे चलकर शनैः-शनैः विदित होगा। यह ठीक है कि तुमने 'स्वर-मालिका' का अध्ययन किया है। उसमें ठाठों का क्रम कुछ भिन्न है, परंतु यहाँ हम इसी क्रम से आगे चलेंगे।

प्रश्न : ठीक है। इन अंतिम तीन ठाठों में ग, नि, ये स्वर तीव्र थे, यह हमने देखते ही ध्यान में रख लिया था। अब सातवाँ ठाठ लीजिए।

उत्तर : सातवाँ ठाठ हम भैरवी का ही मानेंगे। इसमें सभी स्वर कोमल हैं। सब स्वर कोमल कहने से यह न समझना कि 'सा' और 'प' भी कोमल हैं। ये तो अचल माने गए हैं। यह तुम्हें विदित ही है कि मध्यम कोमल का अर्थ शुद्ध से भिन्न नहीं है। यदि तुम इस ठाठ की ग्रंथों में खोज करो, तो तुम्हें 'तोड़ी' नाम दृष्टिगोचर होगा। यहाँ तुम्हें एक बात ध्यान में रखनी होगी। अपनी हिंदुस्तानी पद्धति में हम जो दस ठाठ कायम कर रहे हैं, उनमें भी 'तोड़ी' नाम का एक ठाठ है। वह भैरवी ठाठ से भी अलग है। ग्रंथों में तोड़ी ठाठ में 'रे, ग, ध, नि', ये स्वर कोमल हैं। प्रचलित तोड़ी ठाठ में ऐसा नहीं है। सारांश, इस बात को न भूलना कि ग्रंथगत ठाठ तथा प्रचलित ठाठ, इन दोनों में भेद है। यहाँ यह कह देना चाहता हूँ कि दाक्षिणात्य पद्धति में ग्रंथोक्त तोड़ी ठाठ अभी तक प्रचलित है।

प्रश्न : तब क्या आपके कहने का तत्पर्य यह है कि उधर का संगीत बहुतांश में ग्रंथों के अनुसार है ? आपने यह भी कहा था कि ग्रंथोक्त स्वर उधर यथायोग्य रीति से प्रचार में हैं। यदि यही बात है, तो उधर के लोगों का सशास्त्र होने का दावा अथवा अभिमान निराधार नहीं कहा जा सकता ?

उत्तर : उनका यह दावा किन्हीं अंशों में न्यायपूर्ण ही कहा जाएगा, तथापि यह न समझना कि हमारे यहाँ का संगीत बिलकुल ही कम कीमत का है। यह बात नहीं है कि हमारे संगीत के समर्थक पर्याप्त ग्रंथ न हों। 'रागतरंगिणी', पारिजात', 'लक्ष्यसंगीत' इत्यादि हमारे लिए उपयोगी होंगे। इसी प्रकार भावभट्ट पंडित के ग्रंथ भी तुम्हारी ही तरह के हैं। जब दक्षिण के लोगों की भाषा उनके आचार-विचार इत्यादि सभी बातें अलग हैं, तब फिर उनका संगीत भी अलग हो, तो इसमें नवीनता कैसी ? यदि उनके संगीत की कुछ बातें हमारे लिए ग्रहण करने योग्य हैं, तो हमारे संगीत की बहुत-सी बातें उनके लिए भी ग्रहण करने योग्य हैं।

प्रश्न : यह ठीक है। अब हमें आठवाँ ठाठ बताइए ?

उत्तर : आठवाँ ठाठ हम आसावरी का मानेंगे। बहुमत के कारण ही हम इस नाम को पसंद कर रहे हैं। आसावरी को भैरवी ठाठ का राग माननेवाले

लोग भी हैं। जैसे कि भैरवी और आसावरी के स्वरों में भेद माननेवाले लोग भी दिखाई देते हैं। इन दोनों ठाठों में ऋषभ स्वर का भेद है। आसावरी में ऋषभ तीव्र मानते हैं तथा भैरवी में उसे ही कोमल मानते हैं। इस ठाठ के विषय में यदि तुम ग्रंथों में खोज करने लगो; तो वहाँ हमारे आसावरी ठाठ का 'भैरवी' अथवा 'नटभैरवी' नाम दिखाई देगा। यहाँ तुम्हें इतना ही याद रखना है कि हमारे प्रचलित आसावरी ठाठ में, रे तीव्र तथा ग, नि, ध स्वर कोमल माने गए हैं। यह आसावरी ठाठ बड़े महत्त्व का है तथा वैसा ही यह लोकप्रिय भी है।

प्रश्न : यह समझ गए। अब अगला लीजिए। आसावरी ठाठ की स्वरमालिका हमारी समझ में भलीभाँति आ गई है।

उत्तर : नवें ठाठ में निषाद तथा गांधार स्वर कोमल हैं। यदि आसावरी ठाठ से इस ठाठ को उत्पन्न करना हो, तो वहाँ जो धैवत स्वर कोमल था, उसे शुद्ध अथवा तीव्र ही रहने देने पर यह ठाठ बन जाएगा। ऐसा करने से इस ठाठ में 'ग, नि', केवल ये ही दो स्वर कोमल तथा बाकी के सब शुद्ध रहेंगे। हमें इस ठाठ के अनेक राग प्रचार में मिलेंगे। इसे 'काफी' का ठाठ कहते हैं। ग्रन्थों में इस ठाठ को 'श्री' राग का ठाठ अथवा कुछ ग्रन्थों के अनुसार 'हरप्रिय' ठाठ कहा जाता है। दक्षिण की ओर यही नाम प्रचलित है।

प्रश्न : यह ठाठ हमारी समझ में भलीभाँति आ गया, अब दसवाँ बताइए ?

उत्तर : दसवाँ ठाठ 'तोड़ी' का है। इसके विषय में मैं पहले भी कुछ कह चुका हूँ। इस ठाठ में भैरवी ठाठ की तरह 'रे, ग, ध', ये तीन स्वर कोमल हैं तथा 'म' और 'नि', ये स्वर तीव्र हैं। इसका गाना कुछ कठिन पड़ता है। तुम्हें इस ठाठ का अनुभव हो ही गया है। स्वरमालिका में इस ठाठ की स्वरमालिका सीखते समय तुम्हें अधिक प्रयास करना पड़ा होगा; है कि नहीं ?

प्रश्न : हाँ, वह हमें कठिन ही प्रतीत हुई। 'तीव्र म' तो बड़ा कठिन लगा। आश्चर्य यह है कि 'कल्याणी', 'पूर्वी' इत्यादि ठाठों में यही 'तीव्र म' हमें इतना कठिन प्रतीत न हुआ था, परन्तु 'तोड़ी' के ठाठ की स्वरमालिका गाते समय हमारे शिक्षक हमारी अनेक भूलें बताते थे। यह तो हम न समझ सके कि इस ठाठ के स्वरों को गाना इतना कठिन क्यों प्रतीत होता है, परन्तु यह चमत्कारपूर्ण तो अवश्य ही है। यह भी समझ गए हैं कि इस ठाठ का अर्वाचीन नाम तोड़ी है, परन्तु इसका प्राचीन नाम क्या है ?

उत्तर : प्राचीन नाम 'वराली' अथवा 'पन्तुवराली' है। यह नाम ग्रन्थों में तथा दक्षिण में अभी तक प्रचलित है। अब यह मानकर कि ये दस ठाठ तुम्हारी समझ में अच्छी तरह आ गए हैं, मैं आगे चलूँगा। इन 'ठाठों' को हम अपनी प्रचलित हिन्दुस्तानी पद्धति में संगृहीत रागों के जनक मानेंगे। यह व्यवस्था प्राचीन ग्रंथों के अनुसार हो या न हो, परन्तु तुम्हें इसे स्वीकार करके ही आगे बढ़ना है।

हिन्दुस्तानी पद्धति के प्रचलित सभी राग भलीभाँति समझ लिए जाएँ, यही तुम्हारा अन्तिम साध्य है। यह उत्तम तथा शीघ्र समझ में आ जानेवाली पद्धति से हो जाए, त कार्य-भाग को पूरा हुआ समझना चाहिए। भिन्न-भिन्न प्रदेशों में भिन्न-भिन्न पद्धतियाँ होती ही हैं। जब तुम प्राचीन ग्रन्थों का अध्ययन करोगे, तो तुम्हें ऐसी अनेक पद्धतियाँ दृष्टिगोचर होंगी। तथापि प्रत्येक ग्रंथकार का हेतु अपने समय के संगीत को पद्धति से उपस्थित करना होता है। बस, यही तुम्हें सब जगह मिलेगा। अब आगे मैं तुम्हें यह बतानेवाला हूँ कि इन ठाठों से राग कैसे उत्पन्न होते हैं। यह कुछ निराला ही तथा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विषय है।

प्रश्न : यह क्या आपने हमें भलीभाँति समझा नहीं दिया है? प्रत्येक ठाठ को लेकर उसके स्वरों में से एक या दो निकालकर आरोह तथा अवरोह करते जाने से, हजारों राग बनना सम्भव है, यह हम बहुत अच्छी तरह समझ गए हैं।

उत्तर : यह ठीक है, परन्तु इन रागों के महत्त्व के विषय में कुछ अन्य बातों का ज्ञान भी तुम्हें होना चाहिए। ठाठों के स्वरों को निकालकर ऊपर तथा ऊपर से नीचे कहने से ही राग तैयार न होंगे। यह तो निर्विवाद है कि स्वरों को वर्जित करने के नियमों का सदैव पालन करना पड़ता है, परन्तु यही सब-कुछ नहीं है। यह मैंने कहा ही था कि राग में रंजकत्व आना चाहिए, इस बात का तुम्हें स्मरण ही होगा। यह भी मैं बता चुका हूँ कि गणित से जो राग सिद्ध होते हैं, उनमें से सभी वास्तविक अर्थ में राग नहीं हैं। यद्यपि रागों के बीज ये ही हैं, परन्तु समाज में खरे राग थोड़े-से ही हैं। यह निश्चित करना बड़ी कुशलता का काम है कि कौन-से स्वर-समुदाय लोकप्रिय होंगे, और फिर वे किस रीति से गाए जाने पर लोकप्रिय होंगे, यह मालूम होना भी बड़ा महत्त्वपूर्ण है। अब मैं तुम्हें इसी विषय में कुछ बताने वाला हूँ। ग्रंथों में राग उत्पन्न करने के भिन्न-भिन्न ढंग बताए गए हैं; जैसे :—

हिन्दुस्थानीयपद्धत्यां मार्गाः स्युरपरा अपि।
निरूपिता लक्ष्यविद्भी रागोत्पादनहेतवः॥
आरोहणे चालितास्ते स्वरा नस्युर्विलोमके।
अथवा तद्विपर्यासो जनयेद्रागभेदकम्॥
स्याद्रागोचितस्वरेषु विशिष्टा वक्रतापुनः।
समानस्वरेष्वथवा वादिभेदाद्भवेद्भिदा॥
नरागाणां नतालानां मंतः कुत्रापिविद्यते।
इति यच्छ्रूयते लोके केवलं तद्यथार्थकम्॥

ठाठ तो तुम्हें केवल यह बताता है कि राग में कौन-से स्वर लगेंगे। इसके बाद स्वर कैसे लगाए जाएँ यह बात आरोह-अवरोह से विदित होगी। फिर आरोह-अवरोह के भी शुद्ध और वक्र, इस प्रकार भेद किए जाते हैं। क्रमशः स्वर कहते हुए

आगे चलें, तो उसे शुद्ध आरोह कहते हैं। कुछ स्वरों को कहते जाने पर कुछ पीछे लौटकर फिर आगे बढ़कर आरोह पूरा करें, तो उसे वक्र आरोह समझते हैं। यही न्याय अवरोह के विषय में समझना चाहिए। तुम्हें आगे चलकर विदित होगा कि ये कृत्य बड़े महत्त्वपूर्ण हैं।

प्रश्न : इस तरह से देखें, तब तो असंख्य राग होंगे, है कि नहीं ?

उत्तर : इसी से तो ऊपर के अन्तिम श्लोक में कहा है 'न रागाणां'। यह केवल आरोह व अवरोहों की वक्रता से ही है, परन्तु स्वर एक-से ही होने पर वादी-संवादी स्वरों की सहायता से दो राग पृथक् हो सकते हैं, यह तुम आगे चलकर समझोगे। इसलिए अब मेरे ध्यान में यह आया है कि वादी. संवादी, अनुवादी, विवादी—ये नाम तुम्हें अच्छी तरह से समझा दूँ। इसका कारण यह है कि आगे राग-वर्णन समझाने में इन नामों का बार-बार उपयोग किया जाएगा।

प्रश्न : यह बात है, तब तो अच्छी तरह समझा दीजिए। ये कैसे नाम हैं ?

उत्तर : ये संज्ञाएँ स्वरों की ही हैं। स्वरों के ये चार प्रकार अथवा वर्ग हैं। विकृत व शुद्ध, ऐसे जो तुमने बारह स्वर सीखे हैं, उन्हीं में ये चार और जोड़ दिए जाएँगे, ऐसा न समझना। ये वर्ग कुछ भिन्न ही धारणा पर हैं। ग्रन्थों में इस सम्बन्ध में यह कहा है :—

प्रतिरागे लक्षितव्याश्चतुर्विधाः स्वरा बुधैः।
वादिसंवाद्यनुवादिविवादिनश्च नित्यशः ॥
वादीस्वरस्त्वेक एव संवाद्यपि तथैव च।
शेषाणामनुवादित्वं विवादी वर्जितस्वरः ॥

प्रत्येक राग में चार प्रकार के स्वरों की ओर सदैव ध्यान देना चाहिए। ये वादी, सवादी, अनुवादी तथा विवादी हैं। प्रत्येक राग का वादी एक ही होता है। इसी प्रकार संवादी स्वर भी एक ही होता है। इन दोनों स्वरों को छोड़कर शेष सब अनुवादी स्वर समझने चाहिए। राग में न लगनेवाले स्वर विवादी स्वर हैं। ऊपर के श्लोक का यही भावार्थ हुआ। उपर्युक्त प्रत्येक स्वर के विषय में अब हमें विचार करना है। राग में कम-से-कम पाँच स्वर तो होने ही चाहिए, यह हमारे संगीत का एक नियम है। यह मैं तुमसे कह ही चुका हूँ कि रागों के तीन वर्ग औडव, षाडव तथा संपूर्ण माने गए हैं। अभी मैं यह भी बता चुका हूँ कि एक राग का वादी स्वर भी एक ही होगा। अब इससे तुम सरलता-पूर्वक समझ लोगे कि राग में लगने-वाले पाँच, छह अथवा सात स्वरों में से कोई एक वादी स्वर हो जाएगा। वादी का अर्थ दावा करनेवाला नहीं है। 'वदतीति वादी'—मैं अमुक राग हूँ, यह बात जो स्वर बतलाता है, वह वादी है—यह अर्थ समझना चाहिए। वादी स्वर पर ही प्रत्येक राग की मुख्य परख निर्भर है। ऐसा मानते हैं कि वह पूरे राग का राजा है। अनेक बार

उसे अंश स्वर भी कहते हैं। जब वादी स्वर का इतना अधिक महत्त्व है, तो राग में जहाँ-तहाँ उसका प्राधान्य दिखाई देना स्वाभाविक ही है। इस महत्त्व को कुशल गायक कैसे-कैसे प्रकट करते हैं इसे ध्यान में रखना चाहिए। ऐसा वे अनेक युक्तियों से प्रकट करते हैं। प्रयोग में वादी स्वर अनेक बार लाया जाता है। कभी बड़ी देर तक उसे लंबा कर देते हैं, कभी-कभी उसे गीत के महत्त्वपूर्ण भाग में लाते हैं। ऐसी अनेक युक्तियों से वादी प्रदर्शित किया जाता है। भिन्न-भिन्न राग गाते समय, मैं वादी कैसे दिखाता हूँ, इसे अच्छी तरह देखने से तुम्हें ज्ञान हो जाएगा। जिस गायक को इस वादी स्वर का महत्त्व विदित नहीं होता, उसे अपने राग में रंजकत्व का सँभालना नहीं आता। ऐसे भी बहुत-से गायक तुम्हें देखने में आएँगे। ऐसा नहीं है कि यह कृत्य कठिन हो; तुम्हारे समान सुशिक्षितों की समझ में यह तुरंत आ जाएगा। भिन्न-भिन्न ग्रंथों में वादी स्वर की व्याख्या भिन्न-भिन्न शब्दों से की गई है, जो इस प्रकार है :—

'प्रयोगे बहुलः स्वरः;' 'वादी राजाऽत्र गीयते' ।
'सप्तस्वराणां मध्येऽपि स्वरे यस्मिन्सुरागता' ॥
स जीवस्वर इत्युक्तो ह्यंशो वादीति कथ्यते ।
'प्रयोगे बहुधावृत्तः स्वरो वादीति नामकः' ॥
रागस्य जीवभूतोऽसौ मन्यते गानकोविदैः ।
प्रत्येकस्मिंस्तु रागेऽसौ वादी ह्यति महत्त्ववान्' ॥
निश्चायको रागनाम्नः समयस्यापि व्यंजकः ।

इस व्याख्या का मर्म एक ही है, केवल भाषा का भेद है।

प्रश्न : अब हमें वादी स्वर की अच्छी कल्पना हो गई है। आप संवादी के विषय में समझाएँ ?

उत्तर : संवादी स्वर का अर्थ है—राग में लगनेवाला एक ऐसा स्वर, जो महत्त्व में केवल वादी की अपेक्षा ही कम हो, परंतु उस राग के अन्य सभी स्वरों की अपेक्षा अधिक महत्त्व का हो। प्रत्येक राग के वादी और संवादी, ये दो बड़े आधार-स्तम्भ मानें, तब भी ठीक है। इसी पर संपूर्ण राग की स्थिति है। राग में लगनेवाले ठाठ के यदि दो भाग किए जाएँ, तो ये दो स्वर इसके दो भागों में रहेंगे। एक दूसरे की बड़ी ही मदद करता है। यह बात प्रत्यक्ष करके दिखाने से तुम्हारी समझ में अच्छी तरह आएगी। जब मैं ये बातें करके दिखाऊँगा, तब तुम्हारी बुद्धि अधिक विकसित होगी। वादी व संवादी, इन स्वरों का एक-दूसरे के निकट होना कभी शोभनीय नहीं है, अतः हमारे विद्वान् पंडितों ने एक नियम बना दिया है और वह यह है कि वादी से संवादी बहुधा पाँचवाँ होना चाहिए।

प्रश्न : वाहवा, ये कैसा सरल नियम बताया ! इस प्रकार से 'सा' का संवादी 'प', 'रे' का 'ध', 'ग' का 'नि', यह निश्चित होगा। है न यही बात ?

उत्तर : बिलकुल ठीक है; नियम ऐसा ही है। कहीं-कहीं इसका चाहे अपवाद हो, पर तुम नियम ठीक समझ गए हो।

प्रश्न : इस नियम में अपवाद कैसे होंगे, यह समझ में नहीं आया।

उत्तर : तो समझो, 'सा रे ग प ध' इस प्रकार तुम्हारा पाँच स्वरों का औडव राग है। मान लो, तुम्हें इसमें 'ग' स्वर को वादी करना है; अब तुम इसमें अपना नियम लगाओ तो देखूँ !

प्रश्न : ठीक है, संवादी के लिए हमें 'नि' स्वर चाहिए; लेकिन वह वर्जित है, यहाँ क्या करना चाहिए ?

उत्तर : यही मैं अभी बतानेवाला था। ऐसे प्रसंग में नियमानुसार आनेवाले स्वर के निकट का, अर्थात् वादी से चौथा अथवा छठा संवादी समझो। यद्यपि यह किसी ने स्पष्ट नहीं कहा है कि इन दोनों में से कौन-सा लिया जाए, तथापि वादी से संवादी दूर होना चाहिए, इस तत्त्व को याद रखो, तब भी काम चल सकता है। अभी मैंने वादी-संवादी स्वरों के विषय में दो नियम बताए हैं, उन्हें साधारण समझना। प्रचार में तो ऐसे भी प्रकार तुम्हें दिखाई देंगे कि धैवत का संवादी ऋषभ, ऋषभ का पंचम, षड्ज का मध्यम, मध्यम का षड्ज इत्यादि-इत्यादि।

प्रश्न : यह हम समझ गए, अब अनुवादी के विषय में बताइए ?

उत्तर : हाँ, औडव, षाडव व संपूर्ण, ये राग के तीन वर्ग माने गए हैं। अर्थात् प्रत्येक राग में कम-से-कम पाँच स्वर आने चाहिए, यह तुम्हें मालूम ही है। इन पाँच स्वरों में से दो स्वरों की व्यवस्था तो तुमने कर ली, अर्थात् एक को वादित्व प्रदान किया और दूसरे को संवादी माना; तथापि बाकी के स्वर रह जाते हैं। ठीक है न ? उन्हीं को अनुवादी स्वर कहते हैं। केवल वादी और संवादी स्वरों से राग शक्य नहीं है। हीरे के लिए जिस प्रकार कुंदन होता है तथा उसके योग से जिस प्रकार उसकी शोभा बढ़ती है, उसी प्रकार यह अनुवादी स्वर भी वादी और संवादी, इन मुख्य स्वरों की शोभा बढ़ा देते हैं। गायक-वर्ग वादी अथवा संवादी के साथ भिन्न-भिन्न अनुवादी स्वरों के समुदायों को जोड़कर राग-विस्तार करते हैं तथा ऐसा करके श्रोताओं के हृदयों को आह्लादित करते हैं।

प्रश्न : विवादी स्वर का हम क्या अर्थ समझें ?

उत्तर : यह न समझना कि यह स्वर राग में नियमानुसार लगता है। 'रागमंजरी' में विवादी स्वर की व्याख्या स्पष्ट इस प्रकार दी हुई है—'विवादी तु सदा त्याज्यः'। यह अर्थ आजकल भी प्रचार में है, इसमें संदेह नहीं। तुम भी इसे ऐसे ही स्वीकार कर लो। 'संगीतसारकलिका' नामक ग्रंथ में वादी-संवादी इत्यादि स्वरों के विषय में यह कहा है :—

रागानुरागसंपत्तिं वादी वदति राजवत् ।' संवादी
स्वरः संवादात् मंत्रिवत्, रागसंपत्ति वदति; अनुवादी
तु भृत्यवत्; विसंवादाय रागेषु शत्रुतुल्याः विवादिनः।

प्राचीन ग्रंथों से यह प्रकट होता है कि इन अनुवादी तथा विवादी स्वरों के विषय में प्राचीन काल में कुछ निराली ही धारणा थी। जिस उद्देश्य से अभी हम ग्रंथों के विषय में कुछ नहीं कह रहे हैं, उसी अर्थ से इस विषय में भी हम नहीं जाएँगे। जब मैं तुम्हें 'रत्नाकर' इत्यादि ग्रंथों को समझाऊँगा, तब इस विषय पर भी जरूर कहूँगा। लक्ष्यसंगीतकार को देखो, तो उसने भी ऐसा ही कहा है :—

विवादिस्वरव्याख्याने रत्नाकरप्रपंचितम् ।
रहस्यं किंचिदप्यासीत् भिन्नं मर्मविदां मते ॥

उसका यह कहना युक्तियुक्त प्रतीत होता है, क्योंकि 'रत्नाकर' में विवादी स्वर का वर्णन करते हुए शार्ङ्गदेव पंडित ने कहा है :—

श्रुतियो द्वादश अष्टौवा ययोरंतरगोचराः ।
मिथः संवादिनौ तौ स्तो, निगावन्यविवादिनौ ॥
रिधयोरेव वा स्यातां तौ, तयोर्वा रिधावपि ।
शेषाणामनुवादित्वं वादी राजाऽत्र गीयते ॥

प्रश्न : तब तो फिर प्राचीन काल में रागों में विवादी स्वर दिखाया जाना संभव रहा होगा ?

उत्तर : यद्यपि इस प्रश्न का पूर्ण समाधानकारक उत्तर देना संभव नहीं है, तथापि तुम्हें ग्रंथों के दो-एक मत बताता हूँ।

विदग्धा गायका गीते विवादिनमपिस्वरम् ।
ईषत्स्पर्शचालनेन प्रदर्शयंति लक्ष्यके ॥
प्रायः स्वरं विवादिनं योजयंत्यवरोहणे ।
न तच्छास्त्रेपि दोषार्हं ग्रंथेषु नियमो ह्यसौ ॥
सुप्रमाणयुतो मन्ये विवाद्यपि सुरक्तिदः ।
यथेषत्कृष्णवर्णेन शुभ्रस्यातिविचित्रता ॥

योरोपियन संगीत के विषय में मेरा ज्ञान मर्यादित है, परंतु Prof. Blasserna की 'Theory of Sound' नामक पुस्तक में मैंने एक जगह यह पढ़ा है :—

Up to this point only the case of consonant chords has been considered, but music would be very poor if it were limited to these, and to the few rotes that compose them. It may be further said that music formed, only of consonant chords would be extremely monotonus and quite without vigour; it would be a sort of lullably only intended to catch the ear without touching the mind and without expressing anything.

To increase their resources and to acquire greater vigour and strength in the expression of their ideas, musicians have been obliged to have recurse to dissonant notes and chords.

Strictly speaking, much greater satisfaction is felt when a dissonant chord is resolved into a consonant chord than when nothing but consonant chord has been heard. It is the force of contrast which produces these sensations in us, just as we doubly appreciate a calm after a storm. This is exactly the idea which has unconsciously guided music up to our time. Its strength lies in dossonances, if they do not last too long and they be at last resolved into consonant chords.

योरोपियन संगीत में Harmony नामक जो भाग है, वैसा हमारे यहाँ नहीं है। यह ठीक है, तथापि प्रयोग में विवादी स्वर का क्वचित् उपयोग हो सकता है या नहीं ? इस प्रश्न पर मेरा अनुमान है कि उपर्युक्त उद्धरण पर्याप्त प्रकाश डालेगा। आजकल हमारे गायक विवादी स्वर का बहुत ही थोड़े परिमाण में प्रयोग करते हैं और हम कभी-कभी उनके इस कृत्य की लोगों के द्वारा की हुई प्रशसा भी देखते हैं। परंतु यहाँ हमें इतना गहरे में जाने की आवश्यकता नहीं है। इन वादी-संवादी स्वरों के महत्त्व को सरल घरेलू उदाहरण के द्वारा समझाने के हेतु यह कहा जा सकता है कि जैसे किसी सभ्य कुटुम्ब में घर का बड़ा जिस प्रकार सभी में श्रेष्ठ होता है तथा उसका बड़ा लड़का उसकी अपेक्षा महत्त्व में कम, परंतु घर के इतर लोगों की अपेक्षा अधिक ही होता है; इसी प्रकार इस राग-रूपी घर में वादी-संवादी इत्यादि स्वरों की स्थिति समझनी चाहिए। घर में जिस प्रकार नौकरों की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार हमें इन अनुवादी स्वरों की अपेक्षा है। ये नौकर सदैव ऐसे होने चाहिए, जो गृहपति के इष्ट कार्य को पूरा कर सकें। यही बात अनुवादी स्वरों के लिए है। चुगलखोर अथवा वाचाल नौकर से काम नहीं चलता। ऐसे ही विवादी स्वर को समझना चाहिए। विवादी स्वर अत्यंत ही थोड़े परिमाण में ग्रहण करने पर शोभित होता है. इस मत को स्वीकार करके यदि हम अपने उदाहरण में इस तत्त्व का समावेश करें, तो यह कहेंगे कि हिंदू-कुटुम्ब में कहीं-कहीं मुसलमान नौकर भी होते हैं, परंतु उन्हें कहाँ रहना चाहिए,

तथा कितनी स्वतन्त्रता दी जानी चाहिए, यह नियमित करना पड़ता है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि यह उदाहरण वैसे ही रख दिया है। तुम्हें स्वरों के चार वर्ग समझ में आ जाएँ, बस ! काम पूरा हुआ।

प्रश्न : यह हम अच्छी तरह समझ गए। रागों के विषय में तो हमें बहुत-सी बातें विदित हो गई हैं। आपने दस ठाठों की योजना अच्छी की। इन ठाठों से उत्पन्न होनेवाले कुल कितने राग आप हमें सिखाएँगे ?

उत्तर : तुम्हें यह विदित होगा कि हमारे यहाँ प्रचार में डेढ़सौ से अधिक राग कोई नहीं गाता। इससे मैं तो यही समझता हूँ कि इतने राग यदि तुमने समझ लिए, तो बहुत हैं।

प्रश्न : पहले आपने आरोह व अवरोह की सहायता से रागों की संख्या बहुत अधिक बना दी थी, तब भी प्रचार में रागों की संख्या इतनी थोड़ी है ?'रंजयतीतिरागः'– इस नियम के अनुसरण से ही सम्भवतः यह कमी हो गई है।

उत्तर : तुमने ठीक कारण समझा। एक ठाठ में ४८४ राग ! इस दृष्टि से केवल १० ठाठों के ही चार हजार से ऊपर राग होंगे। परन्तु हमारे विद्वान् पण्डितों ने भिन्न-भिन्न प्रकार के नियम लगा दिए हैं। इससे समाज का रंजन करनेवाले रागों की संख्या बहुत ही थोड़ी हो गई है। 'लक्ष्यसंगीत' ग्रंथ भी हिन्दुस्तानी पद्धति का ही है। उसमें भी डेढ़सौ से अधिक राग नहीं हैं।

प्रश्न : मैं तो कहता हूँ कि डेढ़सौ रागों की संख्या भी बहुत बड़ी है। इतने ही राग हमें आ जाएँ, तो बहुत हैं। यदि कभी इनसे भी अधिक रागों के स्वरूपों को जानने की लालसा हुई, तो हमें राग उत्पन्न करने के तत्त्वों का पता तो चल ही गया है। परंतु विवादी स्वर के विषय में आप पहले जो कह रहे थे, उसे सुनकर मन में सहज ही एक प्रश्न उत्पन्न होता है और वह यह है कि हम गायकों के गाने तो प्रायः सुनते हैं, परन्तु उन गायकों को देखें, तो उनमें से बेचारे बहुत-से बिलकुल अशिक्षित दिखाई देते हैं। आप प्रारम्भ से ही हमें नाना प्रकार के नियम इत्यादि बता रहे हैं तथा दावे के साथ यह कह रहे हैं कि उनका भलीभाँति पालन किए बिना राग उत्तम रीति से नहीं सध सकते ? तब फिर इन बेचारे अज्ञ गायकों ने उन कठिन नियमों का अभ्यास किस तरह किया होगा, यह बड़ी विचित्र बात है। उन्हें रागों के इन तत्त्वों को किसने तथा किस प्रकार समझा दिया ? गाते-गाते, वादी-संवादी स्वरों के परिमाण को भली प्रकार सँभालना, वैसे ही योग्य अनुवादी स्वरों की योजना कर देना, विवादी स्वर का योग्य स्थान पर योग्य रीति से उपयोग करना, इत्यादि काम क्या कठिन नहीं है ? वे ये सब कैसे करते हैं ?

उत्तर : तुमने यह पूछकर बड़ा अच्छा किया। देखो ! हमारी तरफ क्या सभी लोग मराठी भाषा नहीं बोलते ? उनके बोलते समय क्या व्याकरण के बड़े-बड़े प्रयोग नहीं आ जाते ? तथापि इन लोगों ने विद्यालयों में जाकर व्याकरण कहाँ

सीखा है ! इसी प्रकार केवल अभ्यास के बल पर गायक लोग इन बातों को सीख लेते हैं। इन सभी को राग-तत्त्वों का ज्ञान हो, यह बात नहीं है। यह भी स्पष्ट है कि जिन्हें इनका ज्ञान है, वे उच्च कोटि के गायक हैं। तुम अपना ही उदाहरण लो न। स्वरमालिका गाते समय तुम्हारी दृष्टि भी उसमें कहे हुए राग-तत्त्वों पर उत्तम रीति से पड़ती ही थी, परतु तुम्हें शास्त्रीय ज्ञान कहाँ था? हमारे छोटे-छोटे बालक भी भराभर बोलते हैं, परंतु उनमें विद्या भला कहाँ है? ऐसे ही इन अशिक्षित गायकों के विषय में समझो। नित्य कसरत करके वे अपने गले तैयार करते हैं, फिर धीरे-धीरे उन्हें यह भी विदित होने लगता है कि समाज का रंजन किस प्रकार होगा। वे लोग अपने गुरु के पास जिन गीतों को सीखते हैं, वे भी नियमों को भली-भाँति सँभालकर रचे हुए होते हैं। इसी से वे गीत तुरंत लोकप्रिय हो जाते हैं। गायक उन्हें सीखकर उन्हीं के आधार पर अपने गीतों को रचते हैं। मुझे विश्वास है कि कुछ और आगे बढ़ने पर यह सब तुम्हें भी अत्यंत सरल प्रतीत होगा।

प्रश्न : यह सब अब हम अच्छी तरह समझ गए। इस विवादी स्वर को नितांत त्याज्य मानना अधिक सुविधाजनक हो गया है, परंतु उसका थोड़ा-सा उपयोग होना भी संभव है। अतः मन में यह शंका होती है कि रागों को पहचानने में बड़ी अड़चन पड़ेगी।

उत्तर : यह ठीक है ! यदि गायक कसबी न हुआ, तो उसके गाने में हमें अनेक दोष दृष्टिगोचर होंगे। कारण यही है कि उसे विवादी स्वर प्रयोग करना आने से रहा। अगर यह नहीं सधा, तो उसके राग की शुद्धता भी नहीं रहेगी। यह स्पष्ट है, तथापि यह सब हो, तो उसका इलाज ही क्या है ! ग्रंथकार इन नियमों का वर्णन कर देते हैं, परंतु उनके प्रयोग में आने के लिए योग्य शिक्षण की अपेक्षा है। गाते समय एक-आध जगह ऐसी अड़चन आ जाती है कि वहाँ विवादी स्वर का स्पर्श किए बिना गाना भली-भाँति सधता ही नहीं है। ऐसी ही जगह ऐसे स्वर का स्पर्श करना पड़ता है। परंतु यह स्पर्श गायक लोग ऐसी सफाई से तथा ऐसी शीघ्रता से कर जाते हैं कि श्रोताओं को कहीं कोई बात विसंगत दिखाई नहीं देती। ऐसी अड़चनों को देखकर ही ग्रंथकारों ने विवादी स्वर की व्याख्या बड़ी खूबी से की है। 'संगीतसमयसार' ग्रंथ में 'प्रच्छादनीयो लोप्यो वा' इस प्रकार इस स्वर की व्याख्या की है तथा प्रच्छादन शब्द का अर्थ 'मनाक्स्पर्शः किया है। 'रागविबोध' ग्रंथ में यह कहा है कि 'बर्ज्यस्वरोऽवरोहे द्रुतगीतो न रक्तिहरः'। यह भी विवादी स्वर को प्रयुक्त करने की युक्ति है। सारांश, विवादी स्वर को जान-बूझकर, योग्य रीति से प्रयोग करना आता हो, तो कुशलता का काम है; यदि ऐसा करना न आया, तो मूर्खता दिखाई देगी। इस विषय पर मैं अभी अधिक नहीं कहता।

प्रश्न : आपने पहले हमें दस ठाठ समझा दिए हैं। आपने इन-सबको याद रखने का आदेश प्रदान किया था। ग्रथों में श्लोकों में इन ठाठों के नाम बताए गए हों, तो आप वे श्लोक हमें बता दें। उनका पाठ कर लेने से सरलता हो जाएगी।

उत्तर : ऐसे श्लोक हैं। तुम्हें उनकी आवश्यकता है, तो बताता हूँ।

कल्याणीमेलकस्त्वाद्यो बिलावल्या द्वितीयकः ।
खंमाजाख्यस्तृतीयः स्याद्भैरवस्य चतुर्थकः ॥
पंचमो भैरवीनामा षष्ठस्त्वासावरीरितः ।
सप्तमस्तोडिकाव्योऽपि पूर्व्यभिधोऽष्टमःस्मृतः ॥
नवमो मारवाभिज्ञो दशमः काफिसंज्ञिवः ।
इत्येते दशमेलास्ते रागोत्पादनहेतवः ॥

ये ही तुम्हारे हिन्दुस्तानी दस ठाठ अथवा मेल हैं। इनका क्रम कुछ भिन्न है, परंतु ये दसों हैं तुम्हारे ही।

प्रश्न : इसमें कोई हर्ज नहीं है। हम इन श्लोकों को याद ही कर डालेंगे। हमारी समझ से तो अब आप जन्यरागों की ओर अग्रसर हों, तो अच्छा हो। सबसे पहले कौन-सा ठाठ तथा उसके अंतर्गत कौन-सा राग लिया जाएगा ?

उत्तर : पहले हम कल्याणी ठाठ को ही लेंगे। इस ठाठ से उत्पन्न होनेवाले कुल तेरह राग मैं तुम्हें समझाऊँगा। उनके नाम याद रखने के लिए तुम्हारे लिए ये दो श्लोक अच्छे है :—

यमनः शुद्धकल्याणो भूपाली हंमिराह्वयः ।
केदारश्छायनाटश्च कामोदः श्यामसंज्ञितः ॥
हिंदोलो गौडसारंगो मालश्रीर्यमनी तथा ।
चंद्रकांतादिका एते रागाः कल्याणमेलजाः ॥

इन श्लोकों में जो तेरह राग कहे गए हैं, वे ये हैं—१. यमन, २. शुद्धकल्याण, ३. भूपाली, ४. हंमीर, ५. केदार, ६. छायानट, ७. कामोद, ८. श्याम, ९. हिंडोल, १०. गौडसारंग, ११. मालश्री, १२. यमन, १३. चंद्रकांत। अभी इतने ही बहुत हैं। रागों के नाम हम प्रचार के अनुसार ही मानेंगे। यद्यपि ग्रंथगत नामों में से कुछ का अपभ्रंश हो गया है, तथापि हम प्रचार का ही अनुसरण करते हुए आगे बढ़ने का प्रयत्न करेंगे। रागों का नामकरण भिन्न-भिन्न धारणाओं के आधार पर हुआ है। कहीं-कहीं तो हमारे देश के भिन्न-भिन्न भागों (के नामों) के अनुसार ही ये नाम रखे गए दिखाई देते हैं। यह हमारा देशी संगीत है।

प्रश्न : देशी संगीत से हम क्या समझें ?

उत्तर : यही मैं आगे कहनेवाला था। ग्रंथों में संगीत के दो भेदों का उल्लेख मिलता है—१. मार्ग, २. देशी। वहाँ इन शब्दों की व्याख्या इस प्रकार है :—

मार्गो देशीतितद्द्वेधा तत्रमार्गः स उच्यते ।
यो मार्गितो विरिंच्याद्यैः प्रयुक्तो भरतादिभिः ॥
देवस्य पुरतः शंभोर्नियताभ्युदयप्रदः ॥
देशे-देशे जनानां यद्रुच्या हृदयरंजकम् ।
गानं च वादनं नृत्यं तद्देशीत्यभिधीयते ॥
अबलाबालगोपालैः क्षितिपालैर्निजेच्छया ।
गीयते यानुरागेण स्वदेशे देशिरुच्यते ॥

इन श्लोकों का वास्तविक सार इतना ही समझो कि जो संगीत अत्यन्त प्राचीन तथा कठोर संस्कृत-नियमों से जकड़ा हुआ है, वह मार्गी है तथा देश के विभिन्न भागों में छोटे-बड़े सभी लोग जिसे प्रेम से, नियमों की ओर बहुत अधिक ध्यान न देते हुए गाते हैं, वह देशी है। महादेव के बाद भरत ने जिसका प्रयोग करके दिखाया तथा जिसे सर्वप्रथम ब्रह्मदेव ने शोध करके उत्पन्न किया, वह मार्गी संगीत है, इत्यादि व्याख्याएँ हमारे विशेष काम की नहीं हैं। लक्ष्यसंगीतकार ने इस सम्बन्ध में कहा है :—

गीतं वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं संगीतमुच्यते ।
मार्गदेशी विभागेन संगीतं द्विविधं मतम् ॥
मार्गितं प्रथमाचार्यैर्यत्रितं नियमोत्तमैः ।
अतिशुद्धरूपमपि सांप्रतं नैवगोचरम् ॥
अधुनालक्ष्यमार्गे यत्स्वरूपं परिदृश्यते ।
तत्सर्वं देशिसंज्ञं स्यादित्याहुर्लक्ष्यवेदिनः ॥

यदि तुम यह मानकर भी चलो कि मार्ग-संगीत अब उपलब्ध नहीं है तथा आजकल हम जिस संगीत को सर्वत्र देखते हैं, वह देशी है, तब भी कोई भारी दोष नहीं है। महादेव के पश्चात् भरत के द्वारा गाया हुआ सगीत मार्गी है, ऐसा कहने से तुम्हारे-जैसे चौकस जिज्ञासु का समाधान कैसे हो सकता है? तुम तुरन्त ही पूछोगे कि यह ब्रह्मदेव कौन? उनके शिष्य भरत कौन? वह कब हुआ? तब फिर ऐसे प्रश्नों का उत्तर मैं क्या दे सकता हूँ! ऐसी बातों पर अधिक ध्यान न दिया जाए, यही अच्छा है। अब जबकि हमें मार्ग-संगीत गाना ही नहीं है तथा वह कहीं सुनाई भी देने से रहा, तो हम यह व्यर्थ का खटका क्यों करें? ग्रन्थकार ऐसे ही कहीं-कहीं लिख देते हैं, परन्तु इसका स्पष्टीकरण नहीं होता। यह भी न समझना कि इन्हें भी सदैव इन बातों का ज्ञान होता है। सर्वत्र यही समझा जाता है कि संगीत सामवेद से उत्पन्न हुआ है, परन्तु यह किस प्रकार हुआ तथा दोनों का मेल कहाँ और कैसे हुआ, इसका स्पष्टीकरण किसी ने नहीं किया है।

प्रश्न : हम सुनते हैं कि 'रत्नाकर' नामक ग्रन्थ हजारों वर्षों पहले का है। क्या उसमें भी इसका स्पष्टीकरण नहीं है ?

उत्तर : अभी यह ग्रन्थ हजारों वर्ष पुराना नहीं हुआ है, यह निश्चय किए जाने योग्य है। इस ग्रन्थ में ग्रन्थकार ने प्रारम्भ में ही कुछ राजाओं के नाम दिए हैं। ये नाम इतिहास में मिलते हैं तथा उनकी सहायता से इस ग्रंथ का काल बहुत-कुछ निश्चित होता है। 'रत्नाकर' में भिल्लम राजा का नाम आया है। अगर तुम Vincent Smith साहब की 'Early History of India' नामक पुस्तक को देखो तो पता चलेगा कि भिल्लम, यादव-घराने का एक राजा हो गया है। इस राजा का राज्य देवगिरि (दौलताबाद) तथा नासिक के बीच में था। यह राजा ई० स० ११९१ में मारा गया। यादव-घराने में सिंघण नाम का एक दूसरा राजा भी बड़ा प्रतापी हो गया है। उसका नाम भी 'रत्नाकर' में है। उसका घराना ई० स० १२९४ में नाश को प्राप्त हुआ। इस ग्रन्थ से ऐसा विदित होता है कि 'रत्नाकर' के कर्त्ता के दादा काश्मीर से आकर दक्षिण के उपयुक्त राजा के पास रहे थे। इसी से तो Dr. Wilson 'रत्नाकर' का काल तेरहवीं शताब्दी निश्चित करते हैं और यह त्रुटि-पूर्ण नहीं है। 'रत्नाकर' के कर्त्ता ने पूर्व-प्रसिद्ध कुछ राजाओं के नाम दिए हैं; इनमें भोज, सोमेश्वर, परमर्दी भी हैं। ये सभी नाम 'Early History' में दिखाई देते हैं। भोज का समय ई० स० १०५३ है। सोमेश्वर ई० स० ११८३ में हुआ। परमर्दी का राज्य-काल ई० स० ११६५ से १२०३ दिया हुआ है। ये सब प्रमाण सिद्ध करते हैं कि 'रत्नाकर' ई० स० १२०० के बाद का है। इस ग्रन्थ पर कल्लिनाथ पण्डित ने टीका की है। वह स्वतः देवराज के पास था। देवराज, तुंगभद्रा नदी के पास स्थित विजयनगर का राजा था। 'Early Hiitory' के आधार पर देवराज का समय १४०२ से १४२५ तक निश्चित होता है। हम विषयान्तर में अधिक नहीं जाते, परन्तु इन सब बातों से यही अनुमान निकलता है कि 'रत्नाकर' के कर्त्ता का मार्ग-संगीत का ज्ञान सुना-सुनाया ही था। ऐसा कैसे ! वह स्वतः भी अपने 'राग-अध्याय' में प्राचीनप्रसिद्ध तथा अधुनाप्रसिद्ध नाम से रागों के दो भेद करता है। और उसके ये आधुनाप्रसिद्ध राग अभी तक हमारे यहाँ प्रचार में हैं। 'रत्नाकर' को आजकल सभी पुराना ग्रंथ समझते हैं। इसका कारण यह है कि अवशिष्ट अनेक ग्रंथकारों ने उसके उद्धरण अपने ग्रन्थों में दिए हैं। 'नारदसंहिता', 'मतंगसंहिता', 'भरतनाट्यशास्त्र' इत्यादि इसकी अपेक्षा अधिक पुराने हैं, परन्तु वे—संगीत की पूर्वस्थिति कैसी थी—इस प्रश्न का स्पष्टीकरण क्या करते हैं, यह जानने का साधन अब नहीं है। आजकल सब जगह देशी संगीत ही है; कहने का उद्देश्य यही है। 'रत्नाकर' के कर्त्ता ने संगीत की उत्पत्ति इस प्रकार बताई है—'सामवेदादिदं गीतं संजग्राह पितामहः'। केवल इतने ही से तुम्हारा समाधान कैसे होगा ! टीकाकार कल्लिनाथ ने एक अन्य युक्ति निकाली :—

सामनित्युत्कृष्टप्रथम द्वितीयतृतीयचतुर्थमंद्रादिस्वार्थाख्याः सप्तस्वराः ।
इह तु त एव यथायोगं षड्जादिव्यपदेशभाज इति ॥

मैं समझता हूँ, इस पंडित पर टीका करने का काम हमें यहाँ नहीं करना है। कुछ ग्रंथों में यह भी मिलेगा कि सबसे पहले महादेवजी ने राग उत्पन्न किए। उनके पाँच मुखों से पाँच राग उत्पन्न हुए तथा छठा पार्वती ने उत्पन्न किया। यह लिखा हुआ है। अब यह जरूरी तो नहीं है कि इन वचनों का गूढ़ अर्थ शोधकर निकालने का काम हमें यहीं कर डालना चाहिए।

उत्तर : सो तो है ही। हमें (अपने) प्रस्तुत विषय की ओर बढ़ना चाहिए। संगीत की उत्पत्ति का विषय ऐतिहासिक है, वह यहाँ नहीं है। मार्ग तथा देशी संगीत का भेद हमारी समझ में यह आया कि संगीत अत्यंत प्राचीन है तथा जिसके नियम धार्मिक नियमों के अनुसार पालन किए जाते हैं, वह मार्गी है और जो जन-रुचि के अनुसार भिन्न-भिन्न रूप ग्रहण कर सकता है, वह देशी है। हम यह भी मानकर चल रहे हैं कि आजकल हम जो कुछ सुनते हैं, वह सब देशी (संगीत) है।

उत्तर : ठीक है। अब हम जन्यरागों के विषय में विचार करेंगे। कल्याणी ठाठ तो हमने लिया ही है। इसमें से प्रथम 'यमन' जन्यराग हाथ में लेंगे।

प्रश्न : ऐसा प्रतीत होता है कि 'यमन' संस्कृत-नाम नहीं है।

उत्तर : 'यमन' नाम के ऊपर थोड़ा-सा मतभेद है। कुछ लोग कहते हैं कि यह फारसी भाषा का 'इमन' नाम है। वे यह भी कहते हैं कि इस राग को अमीर खुसरो नाम के एक संगीत-विद्वान् ने प्रचलित किया है। यह बात ठीक है कि सुल्तान अलाउद्दीन के राज्य-काल में अमीरखुसरो नाम का एक प्रसिद्ध विद्वान् हुआ था। यह भी प्रसिद्ध है कि उसने कुछ नवीन राग-स्वरूप प्रचलित किए थे। यह विद्वान् गोपाल नायक का समकालीन था। दक्षिण के पंडित कहते हैं कि यह राग हमारे 'यमुना-कल्याण' का ही एक प्रकार है। यह भी सच है कि दक्षिण के कुछ ग्रंथों में यमुना-कल्याण नाम मिलता है। हम समझते हैं कि हमें इस विवाद में न पड़ना चाहिए। हम उस राग को समझ लें, बस बहुत है। हमारी तरफ यह राग अत्यंत साधारण तथा लोकप्रिय है। प्रचार में इस राग को यमनकल्याण नाम से भी पहचानते हैं। यमन तथा यमनकल्याण का भेद क्वचित् ही मानते हैं। कुछ लोग इसका यह समाधान निकालते हैं कि यदि केवल तीव्र स्वरों से यह राग गाया जाए, तो उसे 'यमन' कहेंगे और उसी में यदि दोनों मध्यमों का प्रयोग किया जाए. तो उसे 'यमनकल्याण' समझना चाहिए। इस मत के लिए ग्रंथाधार तो है नहीं, तथापि यह सुविधाजनक प्रतीत होता है। यदि ग्रंथों में कल्याण ठाठ का वर्णन देखा जाए, तो वहाँ केवल एक तीव्र मध्यम ही है। यह पहले की कल्याण राग की व्याख्या भी तीव्र मध्यम की ही है, तो 'यमन' नाम में 'कल्याण' शब्द जोड़ देने से उसमें शुद्ध मध्यम कहाँ से आया ? हमारी समझ में तुम इसे यों समझकर चलो कि ग्रंथों में जिसका 'कल्याण' नाम से उल्लेख हुआ है, उसी में किसी ने थोड़ा-सा शुद्ध मध्यम समन्वित करके—यह फिर चाहे अमीर खुसरो हो अथवा कोई और हो—यमनकल्याण का स्वरूप तैयार किया है। ग्रंथगत रागों को लेकर, उनमें एक-आध स्वर बदलकर अथवा बढ़ाकर नवीन राग बना लेने के

उदाहरण तुम्हें प्रचार में अनेक मिलेंगे। इस समय तो हम यमन तथा यमनकल्याण को एक ही मानकर चलेंगे। यह मैं जानता हूँ कि यमन में एक ही मध्यम तथा यमनकल्याण में दोनों मध्यम मानने से दोनों रागों को भिन्न माना जाता है, ऐसा तुम्हें प्रतीत होगा, तथापि इसपर विचारणीय एक अन्य बात भी है। यमनकल्याण में जो शुद्ध मध्यम लिया जाता है, उसकी स्थिति ही विलक्षण है। एक-आध राग में यदि विवादी स्वर को अवरोह में अल्प परिमाण में लगा दिया जाए, तो उससे विशेष राग-हानि नहीं होती। मैंने तुम्हें पहले भी एक ऐसा ही नियम बताया था, तुम्हें उसकी याद होगी। इस यमनकल्याण में लगनेवाले शुद्ध मध्यम की स्थिति एक विवादी स्वर के समान है, यह कहा जाए, तब भी काम चल सकता है। इस स्वर का उपयोग यमन में बहुत थोड़ा, केवल गांधार स्वर के साथ होता है। यदि यह शुद्ध मध्यम एक नवीन स्वर की स्थिति में, इस राग में नियमानुसार लिया गया होता, तो ऐसा न होता। जहाँ-जहाँ गायक इस स्वर को लगाते हैं, वहाँ-वहाँ सदैव पहले गांधार को गाकर, फिर उसे लगाते हैं तथा पुनः गांधार पर लौट जाते हैं। यह प्रत्यक्ष उदाहरण से स्पष्ट होगा।

प्रश्न : बीच में ही एक प्रश्न पूछता हूँ। यमन का ठाठ कल्याण है, यह तो अब हमें मालूम ही है। आपने कहा कि ग्रंथों में कल्याणी ठाठ के वर्णन में मध्यम तीव्र कहा है। क्या आप हमें यह समझा देंगे कि ग्रंथों में ठाठ का वर्णन कैसे होता है। ऐसा करने में कोई आपत्ति न हो, तो हमारी इसे जानने की इच्छा है।

उत्तर : ग्रंथों में तुम्हारे प्रचलित (बारह) स्वरों के नाम कहीं-कहीं भिन्न हैं, यह पहले कह देना पड़ेगा। दूसरी कोई अड़चन नहीं है। उन नामों को यदि तुम ध्यान में रखो, तो मेरी तरफ से बताने में कोई आपत्ति नहीं है।

प्रश्न : हम उन्हें ध्यान में रखेंगे। स्वरों के नाम समझ लें, तो फिर कदाचित् हम ग्रंथों में राग-वर्णन देखकर उनका अर्थ भी समझ सकेंगे।

उत्तर : अच्छा, तो देखो, 'चतुर्दंडिप्रकाशिका' नामक ग्रंथ में तुम्हारे हिंदुस्तानी सा, म, प शुद्ध स्वरों के शुद्ध सा, म, प, ये ही नाम हैं। तुम्हारे शुद्ध रि, ध स्वरों के नाम उस ग्रंथ में पंचश्रुति रि तथा पंचश्रुति ध हैं। तुम्हारे कोमल 'रि' तथा 'ध' स्वरों को उस ग्रंथ में कोमल न कहकर शुद्ध रि, ध कहा है। ऐसा क्यों किया ? इस प्रश्न का उत्तर देने की हमें आवश्यकता नहीं है। उस ग्रंथ की यही परिभाषा है, इसे मानकर तुम्हें आगे बढ़ना है। तुम्हारी हिंदुस्तानी पद्धति में कोमल तथा तीव्र गांधार हैं। उस ग्रंथ में इनके क्रमानुसार साधारण तथा अंतरगांधार, ये नाम हैं। तुम्हारे कोमल तथा तीव्र निषाद, उस ग्रंथ में कैशिकनिषाद तथा काकलीनिषाद, इन नामों से पहचाने जाते हैं।

प्रश्न : ये कैसे चमत्कारिक नाम हैं! क्या सभी ग्रंथों में ये ही नाम दृष्टिगोचर होते हैं ?

उत्तर : ये दक्षिण के सभी ग्रन्थों में मिलेंगे। 'रत्नाकर', 'दर्पण,, 'रागविबोध', 'स्वरमेलकलानिधि', 'सारामृत' इत्यादि सभी में स्वरों के ये ही नाम मिलेंगे। दक्षिण में आजकल ये प्रचार में भी हैं, अतः कुछ लोग यह भी मानते हैं कि उपर्युक्त ग्रन्थ दक्षिण के ही हैं।

प्रश्न : तब फिर यह तीव्र-कोमल संज्ञा कहाँ दृष्टिगोचर होती है ?

उत्तर : 'रागतरंगिणी', 'पारिजात', 'लक्ष्यसंगीत' इत्यादि ग्रन्थों में ये नाम दृष्टिगोचर होते हैं। भिन्न-भिन्न ग्रन्थों में भिन्न-भिन्न नाम हुए, तब भी क्या हुआ, स्वर तो तुम्हारे ही हैं न ! 'लक्ष्यसंगीत' के नाम तो हू-ब-हू हमारे ही हैं। कारण यह है कि यह प्रत्यक्ष हमारी ही पद्धति का ग्रन्थ है। 'पारिजात' के सा, म, प शुद्ध का अर्थ हमारे शुद्ध सा, म, प है। रि और ध को देखो, तो वे भी हमारे ही हैं। कोमल रि, ध भी हमारे ही हैं। हम जिन्हें शुद्ध ग, नि कहते हैं, उन्हें वहाँ तीव्र ग, नि कहा गया है। हमारा तीव्र म 'पारिजात' का तीव्रतर म था। अधिक अन्तर तो, हम जिन्हें कोमल ग, नि कहते हैं, उन स्वरों में है। 'पारिजात' में वे शुद्ध स्वर माने गए हैं, अर्थात् उस ग्रंथ में शुद्ध स्वरों का ठाठ काफी का माना गया है। 'पारिजात' के राग-वर्णन में कहीं-कहीं हिन्दुस्तानी शुद्ध रि, ध स्वरों को पूर्वांग तथा पूर्व नि, ये नाम भी दिए गए हैं।

प्रश्न : यह कैसे ? 'रि' तथा 'ध'—इन स्वरों के 'ग' और 'नि' ये नाम !

उत्तर : इसमें तुम्हें कुछ नवीनता प्रतीत होने का कारण नहीं है। इस बात से किन्हीं अंशों में यह सिद्ध हो सकता है कि पारिजातकार को दक्षिण की पद्धति का ज्ञान था।

प्रश्न : तब क्या दक्षिण के रि, ध के हमारे स्वरों-जैसे ही नाम हैं ?

उत्तर : हाँ, तुम्हारे शुद्ध रि, ध (हिन्दुस्तानी)—उनके शुद्ध ग, नि स्वर हैं।

प्रश्न : यदि ऐसा है, तो उनके शुद्ध रि, ध ?

उत्तर : ये तुम्हारे कोमल रि, ध हैं। यह मैं तुम्हें पहले ही बता चुका हूँ।

प्रश्न : हमारा तीव्र म दक्षिण का कौन-सा स्वर है ?

उत्तर : उसके अलग-अलग नाम हैं : जैसे चतुर्दण्डिकार उसे 'वराली म' कहेगा। 'रागविबोध' में उसके मृदु प, तीव्रतम म इत्यादि नाम आएँगे। 'रत्नाकर' व 'दर्पण' में जो कैशिक प है, उसकी जगह भी यही कहनी पड़ेगी; लेकिन अभी हम उन ग्रंथों के झगड़ों में क्यों पड़ें ? ग्रंथों में कल्याणी ठाठ का वर्णन किस प्रकार है, प्रथम यही जानने की तुम्हारी इच्छा थी, ठीक है न ?

प्रश्न : हाँ यह ठीक है। उसका वर्णन कीजिए ?

उत्तर : 'पारिजात' में यह कहा है :—

'मस्तु तीव्रतरो यस्मिन् गनीतीव्राविती‍रितौ ।'
'गांधारो मध्यमस्य श्रुतिद्वयं गृह्णाति, निषादश्च षड्जस्य ।
श्रुतिद्वयं गृह्णाति, मध्यमः पंचमस्य श्रुतिद्वयं गृह्णाति तदा ॥'

'इमनसंस्थानम्'

यह वर्णन 'रागतरंगिणी' में है। इसमें श्रुतियों के विषय में लिखा है। यहाँ तुम्हें उसे समझने की आवश्यकता नहीं है, परंतु उस वर्णन में कहा हुआ ठाठ तुम्हारे यमन का ही है।

'षड्जस्वरश्च ऋषभः पंचश्रुतिसमन्वितः ।
गांधारोंतरसंज्ञश्च वरालीमध्यमस्तथा ॥
शुद्धश्च पंचमः पंचश्रुतिको धैवतस्तथा ।
काकल्याख्यनिषादश्च कल्याणीमेलके स्वराः ॥'

प्रश्न : इसे अब हम समझ गए। आप कल्याण का उदाहरण देकर यह दिखा रहे थे कि गायक, उसमें गांधार की संगति से शुद्ध मध्यम किस प्रकार लेते हैं। उसी को लेकर अब हमें दिखाइए। ग्रंथों में स्वरों के बारे में कही हुई ये बातें हमें चलते-चलाते बता दी गईं, यह बड़ा अच्छा हुआ। इससे अब हम ग्रंथों में दिए हुए राग-वर्णन को थोड़ा-बहुत समझ सकते हैं ?

उत्तर : ठीक है, ऐसा ही करता हूँ। परंतु इस राग-वर्णन में प्रवेश करने से पहले एक संकेत बताता हूँ। जहाँ तीव्र मध्यम होगा, वहाँ 'म' अक्षर के ऊपर एक खड़ी रेखा लगाएँगे, जैसे— मं। यदि यह न हो, तो यही समझना कि शुद्ध मध्यम है। मेरे बताए हुए स्वरों को इसी रीति से तुम्हें लिखना आना चाहिए।

प्रश्न : तब फिर कोमल स्वरों के विषय में भी यदि संकेत निर्धारित कर दें, तो क्या ठीक न होगा ? यह एक प्रकार की स्वरलिपि ही होगी ?

उत्तर : हाँ, आगे चलकर ऐसा ही करना होगा। कोमल स्वर लेना हो, तो उस स्वर के नीचे आड़ी लकीर लगा दो; जैसे <u>रे</u>, <u>ग</u> इत्यादि। स्वरमालिका में 'ती' और 'को', ये दो अक्षर लिए थे; यहाँ ये नए चिह्न याद रखो। गाने में लगनेवाली तीन सप्तकों का ज्ञान तुम्हें है ही, सप्तक के चिह्न तुम्हें याद होंगे ही !

प्रश्न : स्वर के सिर पर बिंदु हुआ, तो वह तार-स्वर तथा नीचे बिंदु हो, तो वह मंद्र-स्वर होगा; यह हमने सीखा है ?

उत्तर : हम भी इसी चिह्न का प्रयोग करेंगे। चिह्न जितने थोड़े होते हैं, उतना ही अधिक अच्छा रहता है। इस प्रसंग में हम स्वरलिपि के विषय पर नहीं बोल रहे हैं।

एक बार तुम्हें इन रागों का पर्याप्त ज्ञान करा दिया जाए, तब फिर आगे संगीत की स्वरलिपि (Notation) के विषय में कहेंगे। गायक लोग इस यमनकल्याण राग में शुद्ध मध्यम कैसे लेते हैं, इस विषय पर हम बात कर रहे थे, है कि नहीं ? यह महत्त्वपूर्ण बात है। अब इस प्रयोग को देखो—ग म ग, सा रे ग, प मं ग रे ग, ग म ग, रे सा, ग मं प मं ग, रे ग म ग, रे सा। तुम्हारे शुद्ध मध्यम का प्रयोग कहाँ कैसे किया गया है; इसपर भली-भाँति ध्यान दो। यह स्वर आरोह में आता है, यह नहीं कहा जा सकता; कारण 'गमप' इस प्रकार का प्रयोग नहीं होता। अवरोह में देखो, तो 'प म ग' इस तरह का प्रयोग नहीं करते। यदि एक-आध बार शुद्ध मध्यम लगाना ही हो, तो 'प मं ग, म ग, रे सा', इस प्रकार लगाते हैं। क्या इसे देखकर यह नहीं कहा जाएगा कि यमन में कोमल मध्यम का प्रयोग विलक्षण है ? यह बात बिलकुल सही है कि इसे कभी-कभी ही लगाते हैं। 'खयाल' नामक गीतों को गानेवाले लोग इस स्वर को प्रायः लगाते हुए दिखाई देंगे।

प्रश्न : यह हमारी समझ में आ गया। हम यही मानकर चलें कि शुद्ध मध्यम इस राग के नियमित स्वरों में से नहीं है; परतु उसे लेना हो, तो विवादी स्वर के नियम से लेना चाहिए। लेकिन यहाँ एक स्वाभाविक शंका मन में उठी है, उसे पूछता हूँ। विवादी स्वर राग में मनोरंजन के लिए लिया जाता है। एक बार यदि यह बात निश्चित हो जाती है, तब फिर यमन में कोमल ग, कोमल रे इत्यादि स्वर कोई लगाने को तैयार हो, तो क्या ऐसा हो सकता है ?

उत्तर : तुम दूसरा एक नियम भूल गए ! 'रंजयतीति रागः' यह हमारे रागों की कसौटी है न ? तुम जिस स्वर को पसंद करो, वह उस राग में सुसंगत होना चाहिए न ? वादी स्वर कुशलता से पसंद किया जाना चाहिए। ऐसा करना न आया, तो गानेवाला नासमझों में गिना जाएगा। किस राग में कौन-सा स्वर चल सकता है, यह परंपरा व लोकरुचि के अनुसार निर्धारित होता है। नितांत नवीन स्वरूप उत्पन्न करके उसे लोकप्रिय बना देना सरल काम नहीं है। गायक सदैव समाज-रुचि का अनुसरण करके चलते हैं। समाज को नादशास्त्र के तत्त्व विदित होते हों, यह बात नहीं है; वह तो केवल इतना ही देखता है कि कानों को प्रिय लगता है कि नहीं। हमारे संगीत में कहीं-कहीं स्वर-समुदाय नादशास्त्र की दृष्टि से ठीक नहीं है, योरोपियन पंडित हमारे संगीत पर इस प्रकार का दोष लगाते हुए दिखाई देते हैं; परंतु अगर वह स्वर-समुदाय लोकप्रिय हुआ, तो गायकों को उसे सदैव प्रयुक्त करना पड़ता है। यह खरी बात है कि यमन में शुद्ध मध्यम के सिवाय इतर विवादी स्वर खप ही नहीं सकता। यह बात नहीं है कि यमन का ठाठ लेकर उसमें कोमल रे अथवा कोमल ध लेश-मात्र भी गाया नहीं जा सकता। ऐसा तो सहज में ही किया जा सकता है; परंतु वह यमन राग नहीं हो सकता, वह कोई दूसरा ही कल्याण का प्रकार अथवा अन्य कोई राग होगा।

प्रश्न : क्या कल्याण के और भी प्रकार माने जाते हैं ? यदि ऐसा ही है, तो उनका नामकरण कैसे करते हैं ?

उत्तर : हमारी हिंदुस्तानी पद्धति में ऐसे प्रकार भी माने जाते हैं। दो-एक राग एकत्रित करके, यदि उनका सुंदर समन्वय हो सका, तो उसे एक नवीन राग कहकर स्वीकार कर लिया जाता है।

प्रश्न : लेकिन फिर उसका नाम ?

उत्तर : जिन दो रागों का मिश्रण होता है, उन रागों के नाम कभी-कभी जोड़ दिए जाते हैं; नहीं तो उस प्रकार का बिलकुल नवीन ही नाम रख देते हैं। भावभट्ट-कृत 'संगीतानूपांकुश' ग्रंथ में कल्याण के ऐसे ही भेद बताए गए हैं; देखो—

शुद्धकल्याणरागश्च ततः कल्याणनाटकः ।
हंमीरपूर्वकः पूर्याभूपाली पूर्वकस्ततः ॥
जयश्रीपूर्वकल्याणः क्षेमकल्याणनामकः ।
ततः कामोदिकल्याणः श्यामकल्याणकस्तथा ॥
ऐमनादिककल्याणश्चाहीर्यादिस्ततः परम् ।
ततस्तिलककामोदकल्याणास्ते त्रयोदश ॥

इसमें तुम्हें बहुत-से संयुक्त नाम दृष्टिगोचर होंगे। अब ये मिश्रण कौन-से तत्त्व पर किए जाएँगे, एक-एक राग का प्रमाण कितना हो, इत्यादि प्रश्न कठिन हैं; यह बात बिलकुल सत्य है। साधारण नियम ऐसा समझो कि जिन दो रागों का मिश्रण हो, वे दोनों राग इस मिश्रण को सुनने पर, उत्तम रीति से एक-में-एक मिले हुए दिखाई दें। पहले कौन-सा तथा बाद में कौन-सा आए, इस विषय में मतभेद सुना जाता है। Capt. Willard साहब अपने ग्रंथ के पृष्ठ ५७ पर इस प्रकार लिखते हैं :—

'The rule for determining the names of the mixed *Raags*, is agreeably to some authorities, to name the principal one last and that which is introduced in it, first; as *Poorea Dhanasree*; others, more naturally say, that *Thaat* which is introduced in the first part of the song or tune should be mentioned first and the other or others subjoined to it in regular succession; e. g. suppose *Shyam* and *Ramculee* to be compounded with each other, if *Shyam* forms the commencement, and *Ramculee* is afterwards introduced into it, it should be called *Shyam Ram*; but if on the contrary, it commences with *Ramculee* and *Shyam* be afterwards introduced, the whole should be denominated *Ram Shyam*.

इस प्रमाण के अनुसार संयुक्त नामों के विषय में मतभेद है, इतना ही तुम्हारी समझ में आ जाना पर्याप्त है। मैंने जो ये कल्याण के प्रकार अभी बताए हैं, उनका

अलग वर्णन अभीष्ट नहीं है; परंतु मिश्रित होनेवाले जो राग हैं, वे सब तुम सीखोगे ही। हमारे ग्रंथों में शुद्ध, छायालग व संकीर्ण, इस प्रकार रागों के तीन वर्ग किए गए हैं। वे इस मिश्रण के ही आधार पर हैं।

प्रश्न : इन वर्गों का उल्लेख किस प्रकार हुआ ?

उत्तर : ग्रंथों में ऐसा कहा है :—

'शुद्धरागत्वं नाम शास्त्रोक्तनियमाद्रंजकत्वम्'।
'छायालगत्वं नामान्यच्छायालगत्वेनरक्तिहेतुत्वम्'।
'शुद्धच्छायालगमुख्यत्वेन रक्तिहेतुत्वम् संकीर्णत्वम् ॥'

यह विषय विवादग्रस्त है। इस कारण तुम्हें इस प्रसंग में अधिक गहराई में जाने की आवश्यकता नहीं है। अपने ग्रंथकारों को देखो, तो उन्होंने भी इसपर मौन धारण कर रखा है। शुद्ध राग कौन-से ? छायालग व संकीर्ण कौन-से ? यह ठहराना सरल नहीं है। इस वर्गीकरण का यहाँ दिग्दर्शन-मात्र किया गया है। इतना ही बहुत है। Capt. Willard साहब ने पृष्ठ ६ पर इस संबंध में कुछ चर्चा की है। हो सका, तो आगे चलकर मैं तुम्हें यह पुस्तक पढ़ने को दूँगा। रागों के औडव-षाडव इत्यादि वर्ग पहले किए ही थे और अब शुद्धादिक ये तीन नए सुन रखो, बस बहुत है।

प्रश्न : ऐसा प्रतीत होता है कि वे वर्ग तो रागों में लगनेवाली स्वर-संख्या के अनुसार थे और ये किसी निराले ही तत्त्व पर हैं ?

उत्तर : ठीक समझे ! अब हम अपने प्रस्तुत यमन की तरफ बढ़ें। यमन राग संपूर्ण है। इस 'राग' शब्द को प्रयुक्त करते ही मन में ऐसा आता है कि तुम्हें एक और बात बता दें। गायकों के मुँह से हम अनेक राग, रागिनी, पुत्र, भार्या इत्यादि के नाम सुनते रहते हैं। इससे मन में सहज ही यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि राग और रागिनी का अंतर किस प्रकार माना जाता है ? ऐसा प्रचार होने से यह प्रश्न नितांत स्वाभाविक ही है। हम यह भी मान लें कि ऐसा अन्तर प्राचीनकाल में भी था, तब भी हमारे प्रचलित संगीत में ऐसा कोई अन्तर अब माना जाता है या नहीं, इसी प्रश्न पर हमें विचार करना है। जो लोग बुद्धिमान हैं, वे भिन्न-भिन्न कारण बतलाते हैं; जैसे राग—पुरुष है, वह गंभीर प्रकृति का होगा व सावकाश तथा प्रशस्त रूप से गाया जाएगा और संपूर्ण होगा। इतर स्वरूपों में उसका अंश दिखाई देगा, लेकिन उसका निजी स्वरूप शुद्ध व स्वतंत्र होना चाहिए। रागिनी में राग की प्रकृति थोड़ी-सी दिखाई देगी, उसका चलन जरा चपल होगा। उसका उपयोग शृंगार की ओर अधिक होगा। यह धारणा युक्तिसंगत है, यही कहना पड़ेगा; परंतु क्या इसे ग्रंथाधार प्राप्त है ? यह प्रश्न है। इसका उत्तर कुछ इस प्रकार देना पड़ेगा कि ग्रंथों में राग और रागिनियों के ध्यान का जो उल्लेख किया है, उसी से यह अनुमान लगाया जाता है।

यदि तुम्हें यह भेद मानने-योग्य प्रतीत हो, तो मानो; परंतु हमारे प्रचार में तो राग और रागिनी में तात्त्विक अन्तर समझकर गाना तो अलग रहा, उसे समझानेवाले गायक भी तुम्हें नहीं मिलेंगे—यह बिलकुल सच है। यही नहीं, प्रत्युत यह माननेवाले भी मिलेंगे कि पुल्लिंगी नाम हो तो राग और स्त्रीलिंगी हो तो रागिनी। इसके सिवाय उन्हें दूसरा कारण पता नहीं है। हमारे सामने एक दूसरी महत्त्वपूर्ण अड़चन भी खड़ी रहती है कि यदि हमारा प्रचलित संगीत ग्रंथों को छोड़ गया है, अर्थात् उसका रूपांतर हो गया है, तो उसका प्राचीन वर्गीकरण यथायोग्य रीति से किस प्रकार लागू हो सकता है! जब आजकल प्राचीन राग-स्वरूप नहीं हैं, तो हमें प्रचलित रागों का उनके गुणावगुण के प्रमाणों से क्या नवीन वर्गीकरण नहीं करना चाहिए? मान लो, ऐसा ही करें, तो देश के मतभेद की ओर देखते हुए क्या वह सर्वमान्य हो सकेगा? इस कठिन समस्या को देखकर हमारे चतुर पंडितों ने अब राग और रागिनी में अन्तर मानना छोड़ दिया है। प्राचीन काल में राग-रूपों की धारणा के लिए चाहे यह वर्गीकरण उस युग में ठीक होगा, परंतु मेरा अनुमान है कि वह अब नवीन रूपों पर लागू नहीं हो सकता। Capt. Willard कहते हैं:—

'It seems probable, therefore, that the author of the *Raags* and *Raaginees* having composed a certain number of tunes resolved to form same sort of fable in which he might introduce them all in a regular series. To this purpose, he pretended, that there were six *Raags*, or a species of divinity, who presided over as many peculiar tunes or melodies & that each of them had agreeably to Hanuman five or as Kallinath says six wives, who also presided each one over her tune. Thus having arbitrarily and according to his own fancy distributed his compositions amongst them, he gave the names of thos pretended divinities to the tunes. It is also probable that the *Putras* and *Bharyas*, are not the compositions of the same but some subsequent genius who apprehending that their number would be greatly increased by the additional acquisition or dreading an innovation in the number established by usage * * * * contrived the story that the *Raags* & *Raaginees* had begotten children.

That the name of any one of the *Raags* or *Raaginees* was arbitrarily assigned by the author to any one of his compositions, is as probable as the often whimsical names given by our country-dance & reel composers to their productions. This is further probable from there being very little or no similarity between a *Raag* & his *Raaginees*. The disparity is so great that some time

the Hindoo authors disagree with regard to the *Raag* to which several of the *Raaginees, Putras* or *Bhaaryas* belong.

मैं केवल इतना ही कहता हूँ कि वह वर्गीकरण प्राचीन स्वरूपों के लिए ठीक होगा, परंतु अब उसकी आवश्यकता नहीं है। अब हमारे गायक राग व रागिनी, इन शब्दों को यों ही, अर्थात् उनमें परस्पर भेद न मानते हुए प्रयुक्त करते हैं। यह अनुभव की बात है। निदान मैं तुम्हें अब जो सिखाऊँगा, उसमें यह भेद नहीं माना जाएगा।

प्रश्न : आपका कहना हमें उचित प्रतीत होता है। इस प्रकार का भेद नवीन रूपों पर नहीं लग सकता। आगे चलिए!

उत्तर : अब चलते-चलाते तुम्हें दो अन्य शब्द 'ग्रह' और 'न्यास' बताए देता हूँ। यह सच है कि इन स्वरों का हमारे प्रचलित संगीत में अधिक महत्त्व नहीं है, परंतु प्राचीन संगीत में ये महत्त्वपूर्ण हैं। जिस स्वर से गीत का आलाप आरंभ होता है, उसे 'ग्रह' स्वर कहते हैं तथा ऐसे ही जिसपर गीत समाप्त होता है, उसे 'न्यास' स्वर कहते हैं। अंश स्वर के विषय में, मैं तुम्हें पहले ही बता चुका हूँ। अंश और वादी को हम एक ही समझेंगे। प्राचीन काल में बहुधा जो स्वर वादी होता था, वही ग्रह तथा न्यास भी होता था। ग्रह की व्याख्या इस प्रकार मिलती है:—

'गीतादिनिहितस्तत्र स्वरोग्रह इतीरितः।'

न्यास की व्याख्या यह है:—

'गीते समाप्तिकृन्यासः।'

इन स्वरों के झमेले में हमें अधिक पड़ने की आवश्यकता नहीं है। ग्रंथों के समय में ही देखें, तो इन स्वरों के नियम नहीं पाले जाते थे; तब फिर अपनी बात तो दूर ही रही। ये कठोर नियम मार्ग-संगीत के थे। देशी संगीत में नियमों का उल्लंघन होता है, ऐसा स्पष्ट कहा है; जैसे:—

येषां श्रुतिस्वरग्रामजात्यादि नियमो नहि।
नानादेशगतिच्छाया देशीरागास्तुते मताः॥

यह उद्धरण कल्लिनाथ की टीका में से तुम्हें पढ़कर सुना रहा हूँ। कल्लिनाथ का कथन है कि उसने इसे आंजनेय अर्थात् हनूमान् के ग्रंथ से लिया है। यदि यह हनूमान् 'रामायण' के समय के पंडित हैं, तब तो यदि कोई यह कहे कि प्राचीन काल में ही मार्ग-संगीत में अन्तर उपस्थित हो गया था, तो उसे अनुचित कैसे कहा जा सकता है? सारांश यह है कि हमारे आजकल के संगीत में अमुक राग, अमुक स्वर

से ही शुरू होगा, अमुक स्वर पर ही समाप्त होगा इत्यादि नियमों का उल्लेख नहीं किया जा सकता। यह तो कोई भी कहेगा कि राग के जितने नियम हों, उतना अच्छा ही है; परंतु अब वे प्राचीन नियम नष्ट हो गए हैं, अतः अब इसका इलाज ही क्या है? वादी स्वर प्राचीन काल का ग्रह-न्यास है। यह बात बहुतों ने कही है। इस नियम के उदाहरण आजकल भी हमें क्वचित् दृष्टिगोचर होंगे; परंतु नियमों के परिवर्तित किए जाने के उदाहरण सदैव दिखाई देंगे। ग्रंथों में हमारे प्रचलित रागों के नाम मिलते हैं तथा वहाँ देखें तो ग्रह, अंश, न्यास भी लिखे हुए हैं, परंतु हम जो राग-स्वरूप गाते हैं, उन्हें प्राय: ग्रंथों के रूपों से भिन्न ही गाते हैं। फिर ग्रंथों के ग्रह, अंश और न्यास भला हमारे किस काम के हैं? हमारी आजकल की पद्धति के अनुकूल एक स्वतन्त्र ग्रंथ होना चाहिए। 'लक्ष्यसंगीत' कुछ ऐसा ही ग्रन्थ है, यह तुम्हें आगे पता लगेगा। आगे चलकर मैं यह ग्रंथ तुम्हें पढ़ानेवाला भी हूँ। प्राचीन ग्रंथों की पद्धति अब बहुतांश में नष्ट हो गई है। इसके लिए हमें क्षुब्ध होने की आवश्यकता नहीं है। यह तो सृष्टि का क्रम ही है। ऐसा तो प्राय: होता ही रहा है। इसी से तो भिन्न-भिन्न समय में विभिन्न ग्रंथ-कारों ने अपने-अपने युग के संगीत का अनुसरण करके पृथक्-पृथक् ग्रन्थ लिखे हैं। ग्रन्थों में देखो, तो मतभेद अनेक हैं। हमारी हिन्दुस्तानी पद्धति के राग प्राचीन ग्रंथों से बहुत-कुछ अलग हो गए हैं। इसी से 'लक्ष्यसंगीत' ग्रंथ बना है। हाँ, तो अब 'यमन' पर आगे विचार करें। गायक लोग तुम्हारे इस यमन राग में 'ग' तथा 'नि', इन दो स्वरों को महत्त्वपूर्ण मानकर अनुवादी स्वरों की सहायता से मधुर आलाप करते हैं।

प्रश्न : 'आलाप' किसे कहते हैं? यह तो नया ही शब्द है!

उत्तर : ठीक है, इसके विषय में भी दो शब्द कहे देता हूँ। हमारे गायक कोई भी गीत गाने के पहले उस गीत में लगनेवाले राग-स्वरूप का थोड़ा-सा दिग्दर्शन कराते हैं। यदि तुम यह मानकर भी चलो कि इसी को प्रचार में आलाप कहते हैं, तब भी कोई हर्ज नहीं। आलाप में ताल तथा गीत के शब्दों की आवश्यकता नहीं, केवल राग में लगनेवाले स्वरों को लेकर श्रोताओं के सम्मुख, गायक राग-स्वरूप को स्थापित करते हैं। यह कृत्य भला प्रतीत होता है। आलाप करने में बड़ी कुशलता चाहिए। कोई-कोई गायक पहले अपने गीत को ही केवल अकार में गाकर दिखाते हैं। इसके अनन्तर उसी के शब्द ताल-सहित कहते हैं। ऐसे प्रकार को आलाप नहीं कहते। ग्रंथों में रागालाप, रूपक, आलप्ति, आक्षिप्तिका इत्यादि प्रकार कहे गए हैं, परन्तु यह सच है कि प्रचार में अब उनका यथायोग्य महत्त्व नहीं है। तथापि उनमें कहा गया है, अतः तदनुसार यहाँ कहता हूँ। 'संगीतरत्नाकर' में आलाप की व्याख्या इस प्रकार की गई है, इसे तुम्हें पाठ करने की आवश्यकता नहीं है :—

ग्रहांशतारमंद्राणां न्यासापन्यासयोस्तथा।
अल्पत्वस्य बहुत्वस्य षाडवौडुवयोरपि॥
अभिव्यक्तिर्यत्र दृष्टा स रागालाप उच्यते॥

इसका भावार्थ यह है कि राग के आलाप में निम्नलिखित बातें दृष्टिगोचर होनी चाहिए। ग्रह, अंश, न्यास, अपन्यास, तारस्थानावधि, मन्द्रस्थानावधि स्वरों का अल्पत्व तथा बहुत्व। राग का औडवत्व तथा षाडवत्व इत्यादि। यदि गायक इतनी बातें दिखा दे, तो आलाप पूरा हुआ समझो। यह बात वर्णन द्वारा नहीं समझाई जा सकती, परंतु पृथक् रूप से यह भी कहने की आवश्यकता नहीं है कि लोगों के सम्मुख गाते-गाते इन बातों का मण्डन करना ही पड़ता है। देखो, प्राचीन नियम कैसे उत्तम हैं। परंतु आजकल देखो, तो अधिकांश गायकों को यह पता ही नहीं है कि आलाप के कुछ नियम भी हैं या नहीं। यहाँ अपन्यास शब्द तुम्हारे लिए नवीन ही है, परंतु उसका अर्थ न्यास-सरीखा ही है। न्यास गीत के बिलकुल अन्त में आता है और अपन्यास गीत के एक भाग के अन्त में आता है। अब, जब न्यास का ही नियम नहीं रहा, तब फिर अपन्यास की क्या चलाई? मेरी समझ में तो मैं तुम्हें ग्रन्थों को सिखाते समय ही इन प्राचीन बातों का सविस्तार ज्ञान कराऊँगा। सुदैव से अब 'रत्नाकर', 'दर्पण', 'स्वरमेल', 'रागविबोध' और 'पारिजात' इत्यादि का भाषान्तर भी हो गया है। यह भी तुम्हारे लिए उपयोगी होगा। रागों में कुछ स्वर अल्प तथा कुछ बहुल होते हैं, यह मैं तुम्हें बता ही चुका हूँ। उपर्युक्त व्याख्या से तुम्हें यह विदित होगा कि राग के आलाप में गीत के शब्दों की, ताल की अथवा गीत के भाव, अस्ताई (स्थायी), अन्तरा इत्यादि भागों की आवश्यकता नहीं है। अमुक ठाठ, अमुक स्वर, अमुक वादी इत्यादि दिखाए नहीं कि आलाप हुआ। आलाप के और भी भिन्न-भिन्न प्रकार करने से, उनके नाम भी भिन्न-भिन्न हो जाते हैं। जिसमें अस्ताई, अन्तरा इत्यादि भाग बिना शब्द तथा बिना ताल के अलग-अलग दिखाए जाते हैं, उस प्रकार को 'रूपक' कहते हैं। इसे आलाप की अगली स्थिति कहना चाहिए। जिसमें पद, स्वर, ताल इत्याति सर्व सामग्री हो, उसे 'आक्षिप्तिका' कहते हैं। कल्लिनाथ ने अपनी टीका में आलाप व रूपक के भेद को इस प्रकार कहा है :—

पृथग्भूता विच्छिद्य विच्छिद्य प्रयुक्त विदार्यो गीतखंडानि यस्मिन्निति रूपकम् । अपन्यासेषु अविरम्यैकाकारेण प्रवृत्तः आलापः

हम इस विषय में अधिक गहराई में न जाएँगे। इस समय इतना ही याद रखना पर्याप्त होगा कि आलाप में गीत के शब्द व ताल नहीं होते। कुछ चतुर गायक यह कहते हैं कि आलाप में अ, न, ने, ता, ने, री इत्यादि जो अक्षर हैं, वे 'अनन्तहरि' इन शब्दों के भाग हैं। कल्पना ठीक है। इसे ऐसा ही समझने में तुम्हारी क्या हानि है! परंतु यह भी ठीक है कि कल्पना के अतिरिक्त इसमें कोई अन्य रहस्य नहीं है।

प्रश्न : अभी आपने अस्ताई, अन्तरा इत्यादि का नाम लिया है, हमने स्वरमालिका सीखी थी, उसमें भी इन शब्दों का प्रयोग हुआ था। क्या आप इनके विषय में भी कुछ विवेचना करेंगे?

उत्तर : इन शब्दों के विषय में अधिक कुछ नहीं कहना है। प्रत्येक गीत के कुछ नियमित भाग किए जाते हैं। ऐसा किया हुआ तुमने अपनी स्वरमालिका में देखा ही है। यह विभाजन किस तत्त्व पर किया जाता है, इसे बताता हूँ।

तुम एक साधारण नियम यह याद रखो कि 'अस्ताई' नामक जो भाग होता है, उसमें मन्द्र तथा मध्य, इन दो स्थानों के स्वर होते हैं। प्रायः इन दो स्थानों के स्वरों से ही अस्ताई का भाग पूरा होता है। 'अन्तरा' नामक भाग में तार-सप्तक के स्वर शामिल होते हैं। हम साधारण नियम यह मानेंगे कि अन्तरे में मध्य तथा तार, ये दो स्थान मिले रहते हैं। उत्तम गायक अपने राग का विस्तार बहुधा मन्द्र तथा मध्य, इन दो स्थानों से ही करके दिखलाते हैं। तार-स्थान के स्वर सदैव ऊँचे होते हैं। इससे उनका बार-बार उपयोग करना कठिन-सा होता है तथा ऐसा करने से राग-वैचित्र्य भी भलीभाँति नहीं सँभलता। आजकल हमारे समाज की यह धारणा हो गई है कि सभी रागों का उत्तम मंडन अस्ताई में ही होना चाहिए। यह ठीक है कि राग उत्तरांग के भी हैं। इनके विषय में, मैं आगे चलकर अधिक बताता जाऊँगा—जिनमें तार-स्थान के ही स्वर अधिक महत्त्व प्राप्त करते हैं, तथापि साधारण नियम वही है, जो मैंने अभी बताया है और उसी को तुम्हें याद रखना चाहिए।

प्रश्न : आपने अभी उत्तरांग राग के विषय में कहा। इन रागों को किस आधार पर ऐसा माना जाता है ?

उत्तर : मेरे मन में यह था कि जब आगे चलकर ऐसे राग आएँ तब तुम्हें उनके बारे में बताऊँ, परन्तु जिस उद्देश्य से हम भिन्न-भिन्न बातों के विषयों पर वार्तालाप कर रहे हैं, उसी उद्देश्य से पहले यही भाग हाथ में लेते हैं। यह विषय अत्यंत महत्त्व-पूर्ण है, अतः जो मैं कहता हूँ, उसे सावधानी से समझकर याद रखना। यह तो तुम जानते ही हो कि हमारे सात स्वर 'सा, रे, ग, म, प, ध, नि' हैं। इन्हीं में एक ऊपर का 'सां' जोड़ देने से आठ स्वरों का समुदाय, जिसे अँग्रेजी में Octave (ऑक्टेव) कहते हैं, तैयार होगा। इसके अगर हम दो भाग करें, तो 'सा, रे, ग, म' तथा 'प, ध, नि, सां' ये होंगे। इनमें से पहले भाग अर्थात् 'सा, रे, ग, म' को पूर्वांग कहते हैं तथा दूसरे 'प, ध, नि, सां' को उत्तरांग कहते हैं। ये स्वर चाहे तीव्र हों चाहे कोमल, अंगों के नाम यही रहेंगे। अब यह बताता हूँ कि अंगों का महत्त्व क्या है। यह प्रसिद्ध ही है कि हम आठ प्रहरों का अथवा चौबीस घंटों का पूरा एक दिन मानते हैं। संपूर्ण दिवस के 'दिन' तथा 'रात्रि' नामक दो भाग किए जाते हैं। हमारे आठ प्रहर के दिन में दो समय ऐसे आते हैं, जब प्रकाश तथा अन्धकार की संधि होती है। इस बेला से प्रातःकाल तथा सायंकाल का आशय है, यह बात तुम समझ ही गए होगे। संगीत में इस वेला को 'संधिप्रकाश' बेला कहते हैं। यह भी मैं तुम्हें पहले ही बता चुका हूँ कि प्रत्येक राग में वादी स्वर अत्यंत महत्त्वपूर्ण होता है। अब तुम एक साधारण नियम यह याद रखो कि पूर्वांग राग का अर्थ, वे राग हैं, जिनमें 'सा, रे, ग, म,

इन पूर्वांग स्वरों में से कोई एक स्वर वादी होता है। इसी प्रकार उत्तरांग राग का अर्थ वह राग है, जिसमें उत्तरांग का कोई एक स्वर वादी होता है। संधिप्रकाश के जो राग प्रचार में हैं, उनके विषय में बताते समय मैं तुम्हें इस नियम के उदाहरण भलीभाँति दिखा दूँगा तथा उनके विषय में अधिक स्पष्टीकरण भी करूँगा। तथापि इतना तो मैं तुम्हें बता ही देना चाहता हूँ कि सायंकालीन रागों में तुम्हें पूर्वांग का स्वर अनेक स्थलों पर वादी बना हुआ मिलेगा और इसी प्रकार प्रातःकालीन रागों में उत्तरांग का स्वर वादी होगा। रात्रि के रागों को देखने पर तुम्हें ऐसे राग मिलेंगे, जिनमें पूर्वांग का स्वर वादी है, तथा जैसे-जैसे रात्रि बीतती जाएगी, वैसे-वैसे वादित्व क्रमानुसार उत्तरांग में होता जाएगा। दिन के रागों में बहुधा उलटा क्रम दृष्टिगोचर होता है। मेरा अनुमान है कि इस प्रसंग में इस विषय की ओर अधिक चर्चा नहीं है। तुम्हारे सामने आगे चलकर जैसे-जैसे राग आते जाएँ, वैसे-वैसे इस तत्त्व की ओर मैं तुम्हारा ध्यान आकर्षित करता रहूँ, तो अच्छा होगा।

प्रश्न : आपका कहना बिलकुल ठीक है। वास्तविक तत्त्वों को इसी समय ध्यान में रखने की अपेक्षा उदाहरणों की सहायता से उन्हें समयानुसार समझते रहने पर ही वे अच्छी तरह समझ में आते हैं। पहले आपने आलाप के विषय में प्राचीन ग्रंथों की व्याख्या बताई थी, वह मैं समझ गया; परंतु आपके कहने से कुछ ऐसा मालूम होता है कि उस व्याख्या के नियमानुसार अब नहीं गाया जा सकता। तब फिर प्रचलित रीति के अनुसार यदि कोई राग गाना पड़े, तो हमें वह किस प्रकार गाना चाहिए ? क्या आप इस विषय में भी कुछ बताएँगे ?

उत्तर : तुम्हारे इस प्रश्न का समाधानकारक उत्तर देना कठिन है। जैसे-जैसे तुम उत्तम गाने सुनते जाओगे, वैसे-ही-वैसे तुम्हारे प्रयत्नानुसार, उसकी रूप-रेखा अपने-आप ही बनती जाएगी। नियमानुसार सीखे-सिखाए उत्तम वक्ता कम ही होते हैं। यही हाल गायक का है। शिक्षक थोड़ी-बहुत शिक्षाएँ बता सकता है, अर्थात् वह थोड़ी सूचना दे सकता है, परंतु भली-भाँति गा सकना सीखनेवाले के स्वभाव पर ही अधिक अवलंबित रहता है। बार-बार गाने सुनकर बुद्धिमान् लोग उनका अनुकरण कर सकते हैं। तुम निराश न हो; यद्यपि तुम्हारे प्रश्न का समाधानकारक उत्तर देना कठिन है, तथापि कुछ परिमाण में तुम्हारे उपयोग में आनेवाली कुछ बातें मैं बताता हूँ, उनकी ओर ध्यान दो। यदि कोई भी राग गाने के लिए कहा जाए, तो उसके दो भाग करने की योजना करनी पड़ती है। पहला भाग स्थायी का और दूसरा अंतरे का। इन भागों के विषय में, मैं बता ही चुका हूँ। 'रत्नाकर' के चौथे अध्याय में प्रबंध-विषयक विवेचना में ऐसे भागों का थोड़ा-सा वर्णन दृष्टिगोचर होता है। उसमें पहले, गीत के दो भेद बताए गए हैं, अर्थात् 'गांधर्व' और 'गान'। गांधर्व की व्याख्या इस प्रकार की गई है :—

अनादिसंप्रदायं यद्‌गंधर्वैः संप्रयुज्यते।
नियतं श्रेयसो हेतुस्तद्‌गांधर्वं जगुर्बुधाः॥

गान की व्याख्या इस प्रकार है :—

यत्तु वाग्गेयकारेण रचितं लक्षणान्वितम् ।
देशीरागादिषु प्रोक्तं तद्गानं जनरंजनम् ॥

टीका में कल्लिनाथ कहते हैं—'गांधर्वं मार्गः, गानं तु देशी'। गांधर्व गीत अनादि संप्रदाय का होने से वेदों के अनुसार अपौरुषेय है, ऐसा समझा जाता है। 'गान' वाग्गेयकारों के ऊपर अवलंबित होने से पौरुषेय ही है। जाति, ग्रामराग, उपराग, राग, भाषा, विभाषा इत्यादि सभी को गांधर्व गीत समझना चाहिए। 'रत्नाकर' में गाने के दो भेद किए गए हैं—१. निबद्ध, २. अनिबद्ध। पहले जो आलप्ति नामक प्रकार समझाया गया है, उसे 'अनिबद्ध' गान का उदाहरण समझना चाहिए। प्रबंधादिक प्रकार निबद्ध के उदाहरण हैं। प्रबंध के अवयव ये बताए गए हैं :—

प्रबंधावयवोधातुः सचतुर्धा निरूपितः ।
उद्ग्राहः प्रथमस्तत्र ततो मेलापकध्रुवी ॥
आभोगश्चेति तेषां च क्रमाल्लक्ष्माभिदध्महे ।
उद्ग्राहः प्रथमोभागस्ततो मेलापकः स्मृतः ॥
ध्रुवत्वाच्च ध्रुवः पश्चादाभोगस्त्वंतिमो मतः ।
ध्रुवाभोगांतरे जातो धातुरन्योन्तराभिधः ॥
सतुसालगसूडस्थरूपकेष्वेव दृश्यते ॥

उपर्युक्त श्लोक में प्रबंध के धातु, अर्थात् भाग अथवा अवयव समझाए गए हैं। ग्रंथों में यह भी कहा गया है कि कुछ प्रबंधों के दो ही धातु होते हैं। हमारी पद्धति में अस्ताई, अन्तरा, आभोग इत्यादि हैं, वे भी इस प्राचीन संप्रदाय के ही आधार पर हैं। ऊपर 'आभोग' शब्द आया है। टीकाकार ने उसका अर्थ 'पूर्णता' किया है—

'अंतिमो धातुः प्रबंधगस्य परिपूर्णता हेतुत्वात् आभोगः।'

इस प्रकार स्पष्टीकरण किया गया है। 'रत्नाकर' के लेखक ने अपने ग्रंथ में गीतों के अनेक प्रकारों का उल्लेख किया है। तुम्हें उनकी आवश्यकता नहीं है। वे आजकल दिखाई भी नहीं देते। हमारी पद्धति के गीत निराले ही हैं। इसके विषय में आगे कहा जाएगा। 'अंतरा' शब्द से यह विषयांतर हो गया था।

प्रश्न : निबद्ध और अनिबद्ध का भेद तो हमारे संगीत पर भी लागू होता ही है। प्रबंध में जिस प्रकार धातु हैं, वैसे ही हमारे यहाँ भी हैं। इतना ही सार

याद रखना ठीक है न ? प्राचीन पण्डितों ने इस शास्त्र पर कितना सूक्ष्म विचार किया है ?

उत्तर : यह सत्य है। उनकी प्रशंसा भी यथार्थ है। दुर्दैव से ग्रंथावलोकन पीछे छूट गया। यह भी कहना पड़ेगा कि हमारे युग में तो प्राचीन संगीत का अधिकांश नष्टप्राय हो गया है। उन पण्डितों ने अपने शास्त्र को कितना सुव्यवस्थित कर दिया था ! ऊपर मैंने गीतों के जो निबद्ध इत्यादि भेद बताए हैं, उन्हें 'रागतरंगिणी' में कैसे स्पष्ट रूप से समझाया है, यह देखो। यह ग्रंथकार कहता है :—

निबद्धमनिबद्धं च गीतंद्विविधमुच्यते ।
अनिबद्धं भवेद्गीतं वर्णादिनियमैर्विना ॥
यद्वागमकधात्वंगवर्णादिनियमैर्विना ।
निबद्धं च भवेद्गीतं तालमानरसांचितम् ।
छंदोगमकधात्वंगवर्णादिनियमैः कृतम् ॥

टीका :—

समकाः कम्पितादयः धातुर्नादः, अंगानि पदानि, तेनबिरुदादीनि, तालाश्चचच्चत्पुटचाचपुटादयः मानंतुप्रसिद्धं, रसाः शृंगारादयः ।

प्रश्न : यह 'रागतरंगिणी' ग्रंथ किसने और कब लिखा ?

उत्तर : इसे विद्यापति नामक पण्डित ने लिखा है। ग्रंथ में इस पण्डित का समय 'भुजवसुदशमितशाके' दिया हुआ है, अर्थात् शक संवत् १०८२। इस ग्रंथ में कुछ मुसलमानी रागों के नाम भी दिखाई देते हैं। यह मिथिला देश का ग्रंथकार है। (कलकत्ते के प्रसिद्ध राजा साहब टैगोर कहते हैं कि बिहार प्रान्त के राजा शिवसिंह के पास १४-वीं शताब्दी में विद्यापति पण्डित थे) अस्तु, जो कुछ भी हो, अब हम अपने प्रस्तुत 'आलाप' विषय की ओर अग्रसर होते हैं।

प्रश्न : हाँ, ऐसा ही कीजिए। आपने कहा था कि गाने में राग के—स्थायी (अस्ताई) तथा अन्तरा—ये दो भाग किए जाते हैं।

उत्तर : ठीक है। इन दोनों भागों में से पहले अस्ताई का भाग हाथ में लेंगे। जहाँ तक हो सकता है, अस्ताई में तार-सप्तक के स्वर नहीं मिलाए जाते। तार-सप्तक अन्तिम सीमा है। मैं यह पहले ही कह चुका हूँ कि वास्तविक आनन्द मुख्यतः मन्द्र तथा मध्य, इन दो स्थानों में ही है। गाते-गाते आगे चलकर मध्य-रात्रि के उत्तर में जो राग आते हैं, उनमें तार-स्वरों का प्राबल्य दृष्टिगोचर होने लगता है। यह सत्य है कि उस वेला में तार-स्थान के स्वर अतीव मधुर प्रतीत होते हैं। अस्ताई का भाग यथेच्छ गाकर फिर तार-सप्तक के स्वर लेने चाहिए। यह न समझना चाहिए कि एक बार तार-सप्तक में प्रवेश करके पुनः नीचे के स्थान के स्वर नहीं लिए जाते। केवल तार-सप्तक में, भला कितनी देर तक गाया जा

सकता है ? उस स्थान में पंचम से ऊपर के स्वर तो क्वचित् ही प्रयुक्त होते हैं। गला उतना ऊँचा नहीं जाता। यदि येनकेन-प्रकारेण गायक वैसे स्वरों का प्रयोग करता है, तब भी उसका गाना प्रायः दूषित हो जाता है। ऐसे गाने में रक्तिगुण की कमी होने का भय रहता है। यदि यह देखना हो कि हमारे प्राचीन पण्डित गीत के रंजकत्व की ओर कितना लक्ष्य रखते थे, तो 'रत्नाकर' के तीसरे अध्याय में गायकों के जो गुण-दोष बताए गए हैं, उन्हें देखने से ठीक कल्पना हो सकेगी। उसमें गायकों के २५ गुण तथा २५ दोष बताए गए हैं।

प्रश्न : क्या आप उन्हें अभी बताएँगे ? हम इस समय गायन के विषय पर ही तो विचार कर रहे हैं, अतः ऐसा प्रतीत होता है कि उनका अभी बताया जाना ठीक ही होगा।

उत्तर : मुझे तो यह भान होने लगा है कि हमारा संभाषण किसी अंश तक 'हितोपदेश' की कथाओं-जैसा रूप ग्रहण करने लगा है। बीच में ही भिन्न-भिन्न विषय निकालकर उनपर चर्चा करना विषयान्तर-सा प्रतीत होता है; है कि नहीं ? तथापि तुम्हारी इच्छा ही है, तो मुझे भी कोई आपत्ति नहीं है।

प्रश्न : नहीं-नहीं ! आपकी बताई हुई सभी बातें हमें भलीभाँति स्मरण हैं। मुझे विदित है कि आप यमन के विषय पर विवेचन कर रहे हैं। आलाप की बात निकली, तो फिर उसमें से गीत की बात निकलती ही। और जब गीत की चर्चा चली, तो गायकों के गुणावगुणों की बात भी ठीक ही है। इन गुणावगुणों को आप संक्षेप में ही बता दें, तो पर्याप्त है। हम भी तो अभी गाना सीख ही रहे हैं, अतः हमें उनका ज्ञान होना उपयोगी होगा।

उत्तर : यह ठीक है, इसका ज्ञान होना उचित ही है। अच्छा, तो देखो, वाग्गेयकार—जिसे अँग्रेजी में Music Composer कहते हैं—कैसा होना चाहिए ? रत्नाकरकार कहता है कि उसमें इतने गुण होने चाहिए :—

१. शब्दानुसासन, २. अभिधानप्रावीण्य, ३. छंदःप्रभेदज्ञान, ४. अलंकारकुशलता, ५. रसभावपरिज्ञान, ६. देशस्थिति अर्थात् कलाशास्त्र में प्रवीणता, ७. तूर्यत्रितयचातुर्य, ८. हृद्यशारीरशालिता, ९. लयतालकलाज्ञान, १०. अनेककाकुज्ञान, ११. प्रभूतप्रतिभा, १२. सुभगगेयता, १३. देशीरागाभिज्ञता, १४. समाजयवाक्पटुत्व, १५. रागद्वेष-परित्याग, १६. सार्द्रत्व, १७. उचितज्ञता, १८. अनुच्छिष्टोक्तिनिर्बन्ध, १९. नवीनधातुविनिर्मित, २०. परचित्तपरिज्ञान, २१. प्रबंधप्रगल्भता, २२. द्रुत-गीतविनिर्माण, २३. पदांतरविदग्धता, २४. त्रिस्थानगमकप्रौढ़ि, २५. आलप्ति-नैपुण्य, २६. अवधान—इतने गुण उत्तम वाग्गेयकार में होने चाहिए। इन गुणों में कमी होने पर उनके मध्यम, अधम इत्यादि वर्ग हो जाते हैं। अब गायकों के गुण सुनो :—

१. हृद्यशब्द, २. सुशारीर, ३. ग्रहन्यासनियमज्ञ, ४. रागांगादिरागज्ञ, ५. प्रबंधगानचतुर, ६. आलप्तितत्त्वविद्, ७. सर्वस्थानों में गमक ले सकने-वाला, ८. आयत्तकंठ, ९. तालज्ञ, १०. सावधान, ११. जितश्रम,

१२. शुद्धच्छायालगाभिज्ञ, १३. सर्वकाकुविशेषज्ञ, १४. अपारस्थायसंचार, १५. दोषवर्जित, १६. क्रियापर, १७. अजस्त्रलय, १८. सुघट, १९. धारणान्वित, २०. प्रसरवेगवान्, २१. श्रोतृजनमोहक, २२. सुसंप्रदाय इत्यादि। ऐसा गायक होना चाहिए।

इसके आगे गायकों के दोष बताता हूँ, उन्हें भी सुन लो! १. संदृष्ट, २. उद्‌घृष्ट, ३. सूत्कारी, ४. भीत, ५. शंकित, ६. कंपित, ७. कराली, ८. विकल, ९. काकी, १०. विताल, ११. करभ, १२. उद्धड, १३. झोंबक, १४. तुम्बकी, १५. वक्री, १६. प्रसारी, १७. विनिमीलक, १८. विरस, १९. अपस्वर, २०. अव्यक्त, २१. स्थानभ्रष्ट, २२. अव्यवस्थित, २३. मिश्रक, २४. अनवधान, २५. अनुनासिक—ये हीन गायक हैं।

स्पष्ट है कि इससे हमें अपने पण्डितों पर बड़ी श्रद्धा हो जाती है। परन्तु तुम्हें यह भी कल्पना हो सकती है कि निर्दोष गायन कितना कठिन है। इन सभी दोषों का निराकरण सम्भव नहीं है, तथापि उनका ज्ञान होना अच्छा ही है। इस दृष्टि से हमारे आज के गायक कितने हीन ठहरते हैं। तथापि है ऐसा ही। अब हम प्रस्तुत विषय की ओर अग्रसर हों। राग कैसे गाना चाहिए?

इस विषय का तुम्हें साधारण ज्ञान करना है। मैंने तुम्हें यह बताया था कि तार-सप्तक के स्वर एकदम न होने चाहिए। गाना शुरू करते ही पहले मध्य-स्थान का षड्ज स्पष्ट तथा दीर्घ गाना चाहिए। ऐसा करने से गले के दोष निकल जाते हैं और वह साफ हो जाता है। यही नहीं, प्रत्युत इससे एक अन्य बात भी स्वयमेव ही सिद्ध हो जाती है। श्रोता-समूह तुम्हारा गाना सुनने के लिए शान्त होकर बैठ जाएगा। कुशल गायक अपना गाना एकदम से शुरू नहीं कर देते। कुछ अंशों में इसका कारण यही है। यह याद रखना कि आजकल जो रीति प्रचलित है, मैं केवल उसी का उल्लेख कर रहा हूँ। कुछ गायक इतने कुशल होते हैं कि केवल मधुर तथा दीर्घ षड्ज स्वर को ही लगाकर सुननेवालों का मन अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं। स्पष्ट है कि यह कृत्य गला उत्तम सध जाने पर ही संभव हो सकता है। षड्ज स्वर उत्तम सध जाने पर जो राग गाना हो, उसके वादी स्वर का दीर्घ उच्चारण करके उससे षड्ज पर जाकर मिलना चाहिए। यदि पूर्वांग का कोई वादी हुआ, तो यह कृत्य निश्चय ही बड़ा सुशोभित होगा। इसके बाद शनैः-शनैः मन्द्र-स्थान के स्वर लेने चाहिए। जहाँ तक हो सके, वादी स्वर से आगे जल्दी न जाना चाहिए। यह सदैव स्मरण रखना चाहिए कि पुनरुक्ति उकतानेवाली न हो। हमारे अनेक नवोदित गायकों में यह दोष दृष्टिगोचर होता है। प्रत्येक बार नवीन स्वर-रचना अथवा तान उत्पन्न करनी चाहिए। अर्थात् प्रत्येक तान में कोई-न-कोई नवीन स्वर रखकर अथवा पहले प्रयुक्त किए हुए स्वरों को उलट-पलटकर गाना चाहिए। (कुछ लोग ऐसी ही तानों को कूटतान कहते हैं)। इसे समझ लेना अधिक कठिन नहीं है। यदि 'सा रे ग म', ये चार स्वर हमारे पास हों, तो गणित की दृष्टि से उन्हें उलट-पलटकर २४ प्रकार बनाए जा सकते हैं; उदाहरणार्थ—सा रे ग म, रे सा ग म, ग सा रे म इत्यादि। यह आवश्यक नहीं है कि ये सभी प्रकार गाते समय

आने ही चाहिए। प्रस्तुत राग में इनमें से जो उचित हों, केवल उन्हीं को लेना चाहिए। कूटतान का अर्थ है—ऐसी तान, जिसमें स्वरों का क्रम भंग हो गया हो। ग्रंथ इन तानों का जहाँ तक सविस्तार वर्णन करते हैं, वहाँ तक मैं भी तुम्हें समझाऊँगा। इस समय मैं तुम्हें इस खटराग में नहीं डालना चाहता। पण्डितों ने गणित की सहायता से ऐसी तानों को नियमित कर दिया है। प्रत्येक राग गाते समय यह याद रखना चाहिए कि उसका मुख्य अंग, अर्थात् उसकी पकड़ अथवा उसका स्वरूप किन स्वरों पर अवलम्बित है। एक ठाठ में से अनेक राग निकल सकते हैं; तथा इसी कारण एक-दूसरे से उनके मिल जाने का भय रहता है। ऐसा न होने पाए, इसी से श्रोताओं के सामने धीरे-धीरे राग के मुख्य भाग का मण्डन करना पड़ता है। यह कृत्य हमारे प्रसिद्ध गायक किस प्रकार करते हैं, इसे देखकर सीख लेना चाहिए। गुरु से प्रत्येक राग के अंग को समझ लेना पड़ता है। यमन में 'ग रे सा, नि़रे, गरेसा' इन स्वरों को भलीभाँति याद रखना चाहिए। इस ठाठ के कुछ ही रागों में ये स्वर इस प्रकार दिखाई देंगे, और जहाँ दिखाई भी देंगे, वहाँ यमन का स्वरूप भी स्पष्ट दिखाई देगा। यदि हम शनैः-शनैः यमन का विस्तार करें, तो वह इस तरह होगा—ग रे सा, नि़ रे सा, नि़ रे ग, रे ग, रेसा, नि़ रे, नि़ ध़, रे नि़ ध़, नि़ ध़ प़, प़ ध़, रे, नि़ रे, नि़ ग रे, सा नि़ रे ग रे सा, नि़ रे, प़ ध़ नि़, ध़ नि़, रे, नि़ रे, नि़ ग रे सा, प़ प़ ध़ ध़ प़, ध़ प़, मं़ ग़, मं़ ध़, नि़ ध़, मं़ ध़ नि़ रे, ग रे, नि़ रे ग रे सा, नि़ रे, ध़ नि़, प़ ध़ मं़ प़, ग रे, नि़ रे, नि़ ग रे, नि़ रे, सा। इसी रीति से तुम भी राग-विस्तार करने का अभ्यास करते जाओ। कहीं तीन स्वरों के प्रकार, तो कहीं चार स्वरों के, कहीं उनसे भी न्यूनाधिक स्वरों के प्रकार सुनाने की योजना करनी चाहिए। माधुर्य की ओर सदैव लक्ष्य रखना चाहिए। सुननेवालों के मन से राग का स्वरूप अदृश्य न होने पाए, यही चमत्कारिक विशेषता है। यह याद रखना चाहिए कि श्रोताओं के मन में राग-विषयक भ्रांति उत्पन्न होते ही तुम्हारे गाने का मूल्य (महत्त्व) कम होने लगेगा। तानें शनैः-शनैः बड़ी होती जानी चाहिए। यदि तुमने उन्हें औंधे-सीधे ढंग से लेना शुरू किया, तो यह दिखाई देगा कि तुमने पद्धति के अनुसार शिक्षण ग्रहण नहीं किया है। कहा जाता है कि गाना एक प्रकार की मोहनी (विद्या) है। यह कथन असत्य नहीं है। सुननेवालों को यह दिखाई देना चाहिए कि तुम अपने गाने में कतिपय नियमों का पालन कर रहे हो। गाने का अभ्यास करते समय इसपर सदैव पूर्ण ध्यान रखना चाहिए कि हमारी आवाज का स्वाभाविक माधुर्य नष्ट न होने पाए। आजकल आवाज का माधुर्य बिगाड़ लेनेवाले कितने ही गायक दिखाई देते हैं। छोटी आयु में मन्द्र-सप्तक के स्वरों का उत्तम साधन नहीं हो पाता, फिर भी किसी-न-किसी तरह उन्हें लगाने का हठ करने से गला बिगड़ जाता है। गाते समय अपनी मुद्रा पर बड़ा ही ध्यान रखना चाहिए तथा इसी प्रकार गाने के अनुकूल हाव-भाव भी (जितने उचित हों उतने) रखने चाहिए। ऐसा न होने पर लोग तुम्हारे ऊपर हंसेंगे। इस सम्बन्ध में 'लक्ष्यसंगीत' में कहा है :—

संगीतं मोहिनीरूपमित्याहुः सत्यमेवतत् ।
योग्यरसभावभाषारागप्रभृतिसाधनैः ॥

गायकः श्रोतृमनसि नियतं जनयेत्फलम् ॥
अस्मदीयेष्वाधुनिकगायकेषु समंततः ।
यथोक्तनियमान् ज्ञात्वा गायंतो विरला जनाः ॥
भाषाऽव्यक्ता हावभावाः प्रतीयंते विसंगताः ।
व्यस्ताश्चेष्टास्तथाऽऽक्रोशाः केवलंकर्कशामतः ॥
एतादृग्गायनान्नस्यात्परिणामोह्यभीप्सितः ।
ततो हास्यरसस्यैव केवलं स्यात्समुद्भवः ॥
अर्थंविना हावभावा वीररस्य ये सदा ।
दृश्यन्ते गायके तेभ्यः कथंस्यादुत्तमंफलम् ॥
अनुसृत्यैव शब्दार्थं ध्वनेः संक्रमणं भवेत् ।
गायकास्तादृशादृष्टाः स्वपद्यार्थं न ये विदुः ॥

यदि हम अपने गायकों की ओर दृष्टिपात करें, तो यही प्रतीत होगा कि उपर्युक्त कथन में बहुत-कुछ तथ्य है। बीच-बीच में जो ग्रंथ-वाक्य मैं कहता जा रहा हूँ, तुम्हें उन्हें पाठ कर लेने की आवश्यकता नहीं है। उनका तत्त्व ध्यान में आ जाना ही पर्याप्त है। मैंने बार-बार जिस 'तान' शब्द का प्रयोग किया है, उसका कोई गूढ़ अर्थ नहीं है। यह शब्द 'तन'=तानना धातु से निकला है। निराले-निराले स्वर-समुदायों से राग का विस्तार करने का अर्थ उस राग में तानें लेना माना जाता है। अन्य एक बात यह याद रखो कि पहले गाना सावकाश शुरू करना चाहिए। ऐसे गाने का परिणाम उत्तम होता है। सावकाश गा चुकने पर अपनी गति बढ़ानी चाहिए। अत्यन्त द्रुत गति से गाना तीसरी स्थिति है। गाने की गति को 'लय' कहते हैं। लय के तीन प्रकार माने गए हैं—(१) विलम्बित, (२) मध्य, (३) द्रुत। तेज लय (चाल) को द्रुत कहते हैं। विलम्बित लय का गायन उच्च श्रेणी का तथा कठिन भी है। ऊपर कही हुई सभी बातों पर ध्यान देते हुए तुम गाने लगो, तो मेरा तो यही विश्वास है कि तुम्हारा राग उत्तम प्रतीत होगा। इस समय, राग के आलाप के सम्बन्ध में तुम्हारे लिए इतनी ही बातें पर्याप्त होंगी। प्रत्यक्ष गाते समय ताल की अतीव आवश्यकता है। इस विषय को स्वतन्त्र तथा विस्तृत रीति से मैं तुम्हें अन्य प्रसंग में समझाने-वाला हूँ। गाने के आलाप-क्रम के विषय में भिन्न-भिन्न ग्रथों में उल्लेख है। एक स्थान पर यह कहा गया है :—

मध्यषड्जं समारभ्य मंद्रषड्जावधि क्रमात् ।
सम्यगालापनं कृत्वा मध्यषड्जे समापयेत् ॥
मंद्रमध्यषड्जमध्ये रागवर्धनमारभेत् ।
गत्वातानं तारकान्तं मध्यषड्जे समापयेत् ॥

प्राचीन नियमों का महत्त्व अब प्रचार में नहीं है, अतः हम भी इस विषय की अधिक ऊहापोह क्यों करें ? ग्रंथों को पढ़कर फिर जो-जो भाग तुम्हें उपयोगी प्रतीत हों, उन्हें प्रचार में लाना ।

प्रश्न : अभी तो इस विषय में हमारे लिए इतना ही ज्ञान पर्याप्त है । अब यमन की ओर पुनः अग्रसर होइए ।

उत्तर : यमन का वादी स्वर गांधार है तथा संवादी निषाद है, अतः ये दोनों स्वर तुम्हें बार-बार दिखाई देंगे । अपने राग का विस्तार करते समय गायक इन दोनों स्वरों की कैसे बढ़त करते हैं, यह ध्यान-पूर्वक देखते रहना चाहिए । वे कभी-कभी प्रत्येक तान के अन्त में गांधार स्वर को बड़ी खूबी से ला दिखाते हैं । वह कृत्य मनोरम दिखाई देता है । अभ्यास से यह सब तुम्हें साध्य होगा । इसमें असाधारण बुद्धि की आवश्यकता नहीं है । यमन राग को दीपक जलने के समय, अर्थात् रात्रि के प्रथम प्रहर में गाते हैं ।

प्रश्न : रागों के समय निर्दिष्ट करने के कौन-कौनसे साधन बताए गए हैं ?

उत्तर : ग्रंथों में ऐसे साधन तो नहीं बताए गए हैं, परंतु यह सत्य है कि उनके समय अवश्य निश्चित हैं । कुछ लोगों का कहना है कि इस प्रकार समय निर्दिष्ट करना सर्वथा अर्थहीन है । इन लोगों का कहना है कि स्वरों के कार्य नियमित हैं, अतः उनका चाहे-जैसा प्रयोग हो, बात एक ही है । परंतु मैं तो यह समझता हूँ कि रागों का समय निर्धारित करने में अपूर्व चातुर्य अन्तर्हित है । तथापि हमें यह मानना पड़ेगा कि यह विषय विवादग्रस्त है । यह भी ठीक है कि ग्रंथों में बताए हुए रागों के समय को आज ज्यों-का-त्यों स्वीकार नहीं किया जा सकता, क्योंकि रागों के स्वरूप अब परिवर्तित हो गए हैं । मैं भी उन्हीं लोगों में से एक हूँ, जो यह कहते हैं कि अमुक राग अमुक समय पर अधिक शोभन होगा । मैं यह भी कह देना चाहता हूँ कि मैं जिस पद्धति का विवेचन कर रहा हूँ, उसमें समय का महत्त्व स्वीकार किया गया है । पूर्वांग रागों तथा उत्तरांग रागों के विषय में कहते समय मैंने इस ओर पहले भी संकेत किया था । मैंने यह भी कहा था कि रात्रि के पूर्व-भाग में प्रायः ऐसे राग गाए जाते हैं, जिनमें पूर्वांग का कोई स्वर वादी होता है । अभी तो तुम यही नियम स्वीकार कर लो, जिसे मैं बता रहा हूँ । यह मैं कह ही चुका हूँ कि मध्य-रात्रि के पश्चात् उत्तरांग का प्राबल्य है । इसमें शास्त्र का कोई रहस्य हो या न हो, परन्तु मुझे विश्वास है कि इस पद्धति को सीखने के लिए समय का नियम एक उत्तम साधन होगा । दूसरा, एक साधारण नियम यह याद रखो कि सा, म, प, स्वर चाहे जिस समय वादी हो सकते हैं । मैं यह नहीं कहता कि इस नियम का अपवाद कदापि दृष्टिगोचर न होगा । अपवाद तो मिलेंगे, परंतु इन अपवादों से तुम्हारे नियम और भी दृढ़ होंगे । मुझे विश्वास है कि इस नियम के आधार पर जैसे-जैसे तुम गायकों के गाने सुनते जाओगे, वैसे-वैसे तुम्हें नियम की सार्थकता सिद्ध करने को प्रमाण मिलते जाएँगे । वादी स्वर के विषय में जैसे तुम्हें एक नियम बताया है, वैसे ही तुम्हें तीव्र मध्यम की उपादेयता के विषय में भी बताना है ।

प्रश्न : वह कौन-सा नियम है ?

उत्तर : बताता हूँ, सुनो। यदि हम सूर्यास्त से लेकर सूर्योदय तक पहला तथा सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक दूसरा, इस प्रकार पूरे दिन के दो भाग मान लें, तो तुम्हें यह पता चलेगा कि तीव्र मध्यम रात्रिगेय रागों में बहुलता से आता है। यह दिन के रागों में उतना दृष्टिगोचर नहीं होता। यह मैं मानता हूँ कि आजकल हमारी पद्धति में हिंडोल, गौड़सारंग, तोड़ी, मुलतानी इत्यादि राग दिनगेय माने गए हैं तथा इन सभी में तीव्र मध्यम प्रयुक्त होता है; परन्तु फिलहाल हम इन्हें नियम का अपवाद मानकर अग्रसर होंगे। तथापि चलते-चलते मैं तुम्हें इतना बताए देता हूँ कि यदि तुम इन रागों को ग्रंथों में खोजो, तो उनका स्वरूप तीव्रमध्यमयुक्त दिखाई न देगा। तथापि 'रूढिर्बलीयसी' इस न्याय को स्वीकार करके इन्हें अपवाद ही मान लेना अच्छा होगा।

प्रश्न : यह नियम हमें बड़ा मनोरंजक प्रतीत होता है। यह अधिकांश रागों में लगेगा न ?

उत्तर : जिन रागों में गांधार तथा निषाद कोमल लगते हैं, केवल उन्हीं में बहुधा तीव्र मध्यम नहीं लगता। तथापि यह कहा जा सकता है कि अवशिष्ट अधिकांश रागों में यह नियम नहीं टूटता।

प्रश्न : तब तो फिर यह भी एक स्वतंत्र नियम बन गया कि 'ग' तथा 'नि' कोमल लगनेवाले रागों में तीव्र मध्यम नहीं लिया जाता ?

उत्तर : ऐसा मानने में कोई आपत्ति नहीं है। इस नियम का अपवाद क्वचित् ही दृष्टिगोचर होगा। हाँ, तो इस यमन को एक आलाप-योग्य राग समझा जाता है; क्योंकि इसमें गायक उत्तम आलाप कर सकते हैं।

प्रश्न : तब तो फिर ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ राग ऐसे भी हैं, जो आलाप-योग्य नहीं हैं।

उत्तर : किसी अंश तक ऐसा समझना ठीक ही है। जिस राग में राग का विस्तार गीत की सहायता के बिना भी उत्तमता से हो सकता है, उसे आलाप-योग्य राग कहते हैं; जैसे—यमन, केदार, कान्हड़ा, भैरव इत्यादि। जो राग आलाप-योग्य नहीं होते, उन्हें क्षुद्रगीतोपयोगी कहते हैं। ऐसे रागों को शब्द-रहित गाते समय बहुधा किसी गीत की कल्पना से गाते हैं। इस भेद को विशेष महत्त्व का मानने की आवश्यकता नहीं है। ग्रंथों में तो यह अवश्य ऐसा ही है, इसमें कोई संदेह नहीं। यमन अत्यन्त सरल राग है, अतः यह साधारण भी है। तुम जो अनेक कथा-पुराण सुनते रहते हो, उनमें शायद ही कभी यह प्रयुक्त नहीं होता। इस राग को कहीं-कहीं कल्याण ठाठ का आश्रय राग माना जाता है।

प्रश्न : आश्रय राग क्या ?

उत्तर : यह तो तुम जानते ही हो कि कल्याण ठाठ के सभी स्वर तीव्र हैं। यमन के आरोह तथा अवरोह अत्यंत सरल हैं, अतः इस ठाठ के स्वर-समुदायों को चाहे-जैसे गाया जाए, फिर भी वे यमन के ही दिखाई देंगे। इसे समझ लेना कठिन नहीं है। इस ठाठ से जो और दूसरे राग निकलते हैं, उनके नियम स्वतंत्र हैं, इसलिए उनका गाना कुशलता का काम है। उन रागों के विशिष्ट नियमों की जरा भी अवहेलना हुई कि उनके स्वर इस यमन राग-जैसे ही दिखाई देन लगेंगे। इसका कारण यह है कि यमन में नियमों का खटराग नहीं है। तब फिर यमन—कल्याण ठाठ के नियमभ्रष्ट रागों का आश्रय राग हुआ कि नहीं! तुम्हारे प्रत्येक ठाठ में इसी प्रकार एक-एक आश्रय राग हो सकता है। मौज में आकर कभी-कभी लोग मुख्य ठाठों को शहर की बड़ी-बड़ी सड़कों की उपमा देते हैं। प्रत्येक शहर में कुछ निश्चित राजमार्ग अर्थात् प्रधान सड़कें होती हैं तथा बाकी के छोटे-छोटे रास्ते अथवा गलियाँ इन मुख्य राजमार्गों से ही आ मिलते हैं। बहुत-कुछ यही बात हमारे इस संगीत-रूपी नगर की भी समझनी चाहिए। इसमें जो मुख्य दस जनक ठाठ माने गए हैं, उन्हें राजमार्ग के रूप में तथा जन्यरागों को छोटे - छोटे रास्ते समझना चाहिए। अत्यंत संकीर्ण अथवा मिश्र राग - रूपों को सूक्ष्म गलियाँ समझना चाहिए। 'लक्ष्यसंगीत' में यही उदाहरण दिया गया है :—

यथाजनपदे प्रायो राजमार्गा व्यवस्थिताः।
तथैवस्युर्मेलरागाः संगीतनगरे ह्यमी॥
क्षुद्रमार्गपरिभ्रष्टाः प्रमुखेषु पतंतिते।
जन्यरागपरिभ्रांता मेलरागेषु केवलम्॥

यमन को मैंने आश्रय राग कहा है। इसके विषय में उपर्युक्त ग्रन्थ में यह उल्लेख है :—

कल्याणीमेलकन्यस्तरागभ्रष्टास्तु गायकाः।
निश्चयेन पतंत्यत्र यतोऽसौस्यात्तदाश्रयः॥

मैं यह बता चुका हूँ कि कुछ लोग यमन में शुद्ध मध्यम का समावेश करके यमनकल्याण को स्वतंत्र राग मानने का प्रयत्न करते हैं। यह तो तुम्हें विदित ही है कि मेरी सम्मति में यमन तथा कल्याण, दोनों भिन्न नहीं हैं। जो गायक ध्रुवपद गानेवाले हैं, वे यमन में केवल तीव्र मध्यम ही लगाते हैं। तथापि यह बात भी नहीं है कि ऐसा कोई ध्रुवपद न हो, जिसमें दोनों मध्यमों का प्रयोग न दिखाई दे। खयाल नामक जो गीत हैं, उन्हें गानेवाले दोनों मध्यम लगाते हैं।

प्रश्न : क्या ध्रुवपद गानेवाले लोगों का एक स्वतन्त्र वर्ग माना जाता है ? यदि ऐसा ही है, तो हमारी पद्धति में मुख्यत: जो-जो गीत गाए जाते हैं, उन्हें बता दें तो अच्छा हो।

उत्तर : हाँ, गायकों के ऐसे ही वर्ग हैं। गीतों के सम्बन्ध में तुम जो-कुछ जानना चाहते हो, वह Capt. Willard, Mr. Bannarjee, Raja S.M. Tagore इत्यादि ने अपनी-अपनी पुस्तकों में भलीभाँति लिखा है। उनकी पुस्तकें बड़ी अच्छी है; उन्हें तुम अवश्य पढ़ना। तथापि Capt. Willard साहब की पुस्तक अब अप्राप्य है और अन्य दोनों पण्डितों की पुस्तकें बँगला भाषा में हैं, अत: मैं समझता हूँ कि उनके ग्रन्थों में कही हुई बातों का सार तुम्हें समझा दिया जाए, तो अच्छा हो।

मि० बनर्जी कहते हैं--"हमारे समाज में उच्च कोटि के गीतों का आशय ध्रुपद, खयाल तथा टप्पे से है। प्रबन्ध तथा होली का गायन ध्रुपद के अन्तर्गत माना जाता है। त्रिवट, चतुरंग, कौल-कलबाना को खयाल के अन्तर्गत मानते हैं। तराना, जुगलबन्द, रागमाला इत्यादि गीत उपर्युक्त दोनों प्रकारों के अन्तर्भूत हैं। ठुमरी, गजल, खेमटा इत्यादि टप्पे के अन्तर्गत माने जाते हैं। उपर्युक्त सभी गीतों में ध्रुपद सबसे प्राचीन माना गया है। ऐसा माना जाता है कि हमारे देश में मुसलमान बादशाहों से पहले, हमारे पण्डित ध्रुपद गाते थे। ध्रुपद के बहुधा चार भाग होते हैं, जिन्हें गायक 'तुक' कहते हैं। इन भागों के नाम अस्थाई, अन्तरा, संचारी तथा आभोग हैं। राग में विशेष महत्त्व के भाग अस्थाई व अन्तरा हैं। अन्तिम भाग को आभोग कहते हैं। अस्थाई तथा आभोग के बीच में अन्तरा आता है। संचारी में, इन तीनों भागों में आए हुए स्वरों का मिश्रण होता है। इन चारों भागों में से प्रत्येक भाग में कितने चरण रखे जाएँ, यह गायक की इच्छा पर निर्भर है। वैसे तो प्रत्येक भाग में नियमानुसार चार चरण होते हैं, परन्तु आगे चलकर यह नियम उपेक्षित होता गया। प्राचीन ध्रुपदों में शब्द अत्यधिक होते थे। उन्हें याद रखने में गायकों को असुविधा होने लगी, फलत: ध्रुपद संक्षिप्त किए जाने लगे। अनेक बार तुम्हें ध्रुपद में अस्थाई तथा अन्तरा, ये दो ही भाग दृष्टिगोचर होंगे। ध्रुपद के साथ जो वाद्य बजाया जाता है, उसे पखावज कहते हैं। ध्रुपद अधिकतर चौताल, सूलफाक, झंपा, आदि, तीव्रा इत्यादि तालों में गाए जाते हैं। प्राचीन काल में ध्रुपद गाने की चार शैलियाँ मानी जाती थीं तथा उन्हें 'वाणी' कहते थे। उनके नाम १. गौरहारी, (इसे गायक गोबरहरी कहते हैं) २. नौहारी, ३. डागरी, ४. खंडारी हैं। ये नाम हमें आजकल भी सुनाई देंगे। परन्तु गायक इनका पारस्परिक शास्त्रीय भेद नहीं समझा सकते, अत: अब 'वाणी' का विशेष महत्त्व नहीं रहा है। कुछ लोग कहते हैं कि भिन्न-भिन्न भागों के गाने की रीतियाँ हैं। परन्तु यही कहना पड़ेगा कि आजकल इन चारों वाणियों के स्वतन्त्र ध्रुपद सुनाई नहीं देते। कुछ लोगों का विचार है कि प्राचीन शास्त्र में 'गौडी' नामक जिस गीत का उल्लेख है, गौरहरी उसी का प्रकार है। आजकल बहुमत यही है कि प्रचार में जो ध्रुपद सुनाई देते हैं, वे सभी 'गौरहारी' वाणी के हैं।"

'संगीतरत्नाकर' में जो तीस प्राचीन ग्राम-राग बताए गए हैं, वे पाँच गीतों में विभाजित किए गए हैं। उन गीतों के नाम हैं—१. शुद्धा, २. भिन्ना, ३. गौडी, ४. वेसरा तथा ५. साधारणी। इनकी व्याख्या से यही विदित होता है कि इन गीतों का आशय राग के गाने की विभिन्न शैलियाँ हैं। इस ग्रंथ में उनकी व्याख्या यह है :—

पंचधा ग्रामरागाः स्युः पंचगीतिसमाश्रयात् ।
गीतयः पंच शुद्धाद्या भिन्ना गौडी च वेसरा ॥
साधारणीति शुद्धास्या दवक्रललितैः स्वरैः ।
भिन्ना सूक्ष्मैः स्वरैर्वक्रैर्मधुरैर्गमकैर्युता ॥
गाढैस्त्रिस्थानगमकै रुहाटीललितैः स्वरैः ।
अखंडितस्थितिः स्थानत्रये गौडी मता सताम् ॥
उहाटी कंपितैर्मंद्रैर्द्रुतद्रुततरैः स्वरैः ।
हकारौकारयोगेण ह्यन्यस्तेचिबुके भवेत् ॥
वेगवद्भिः स्वरैर्वर्णचतुष्केऽप्यतिरक्तितः ।
वेगस्वरा रागगीतिर्वेसरा चोच्यते बुधैः ॥

अब तुम्हीं सोच लो कि इन प्राचीन गीतों का वाणी से सम्बन्ध है या नहीं ? मि० बनर्जी कहते हैं कि उन्होंने ऐसा मत सुना है। वाणी के विषय में एक अन्य कठिन प्रश्न यह है कि एक ही ध्रुपद भिन्न-भिन्न वाणियों में गाया जा सकता है या नहीं ? ऐसे प्रश्नों के आधार-योग्य ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि इन्हें तर्क से ही सिद्ध करना पड़ेगा। जिन गायकों के घराने में परम्परा से ध्रुपद-गायन चला आ रहा है, उन्हें सुनकर इस विषय का ज्ञान प्राप्त करना अधिक उपयोगी होगा। कहीं-कहीं उर्दू-ग्रंथों में इस वाणी का उल्लेख है, परंतु उनमें भी मैंने कहीं इस वाणी का स्पष्टीकरण नहीं देखा। अमुक खाँ साहब के घराने में अमुक वाणी है—बस, इतना ही लिखा हुआ दृष्टिगोचर होता है। यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि इन चार वाणियों का रहस्य आजकल यथायोग्य रीति से प्रचार में भी दृष्टिगोचर होगा। अस्तु, हम बनर्जी के मत के विषय में पुनः अग्रसर होते हैं :—

"जो ध्रुपद के गानेवाले हैं, उन्हें कलावन्त की पदवी दी जाती है। अकबर बादशाह के पास तानसेन नामक प्रसिद्ध गायक था। वह उत्तम गायक था, अतः उसकी रचना-शक्ति भी अद्भुत थी। उसने अनेक चमत्कारपूर्ण ध्रुपद बनाए हैं। परंतु हमारे यहाँ स्वरलिपि न होने से उसके गीतों का अधिकांश भाग नष्ट हो गया। इसी प्रकार, उसके रचे हुए जो गीत आजकल प्राप्य हैं, उनमें भी स्वरों और शब्दों का रूपान्तर हो गया है। यह कहना भी अनुचित न होगा कि उसके रचे हुए असली गीत अब प्राप्त हो ही नहीं सकते। कहानी कुछ ऐसी है कि तानसेन पहले हिन्दू था,

फिर बाद में मुसलमान हो गया। यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि तानसेन के समय में खयाल-गायन प्रचलित था या नहीं। गोपाल नायक **तथा** बैजूबावरा ने तानसेन से पहले ख्याति प्राप्त की थी। गोपाल नायक, ईसवी सन् की चौदहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में पठान बादशाह अलाउद्दीन के शासन-काल में विद्यमान था। इसी अलाउद्दीन बादशाह के पास अमीर खुसरो नामक प्रसिद्ध विद्वान् था। ('रत्नाकर' पर कल्लिनाथ ने जो टीका की है, उसके तालाध्याय में गोपाल नायक का नाम आया है; उससे दो बातें सिद्ध होती हैं—पहली यह कि कल्लिनाथ की टीका पद्रहवीं शताब्दी की है और दूसरी यह कि गोपाल नायक निश्चित रूप से दक्षिण का विद्वान् था। इतिहास में उसे दक्षिण का पंडित कहा गया है। इतिहास से यह भी सिद्ध होता है कि कल्लिनाथ तुंगभद्रा नदी के किनारे के पास विजयनगर का रहनेवाला था।) तानसेन के पश्चात् धूँडी, बकसू, सूरदास इत्यादि ने ख्याति प्राप्त की। इन्होंने भी उत्तमोत्तम गीतों की रचना की है। इनमें से थोड़े-बहुत गीत आज भी दृष्टिगोचर होते हैं। कहते हैं कि ध्रुपद गाने का प्रचार पंजाब की ओर अधिक है। उधर मौलादाद, अल्लिआस इत्यादि प्रसिद्ध गायक हुए हैं।" इस प्रकार अपने ग्रंथ में मि० बनर्जी ने ध्रुपद के विषय में जो-कुछ कहा है, उसका सार मैंने तुम्हें बता दिया। Capt. Willard साहब अपने ग्रंथ में ध्रुपद के विषय में लिखते हैं :—

'This may properly be considered as the heroic song of Hindustan. The subject is frequently the recital of some of the memorable actions of their heroes or other didactic theme. It also engrosses love matters, as well as trifling and frivolous subjects. The style is very masculine and almost entirely devoid of studied ornamental flourishes. Manly negligence and ease seem to pervade the whole and the few turns that are allowed always short and peculiar. This sort of composition has its origin from the time of Raja Man of Gwalior, who is considered as the father of **Dhurpad**-singers. The **Dhurpad** has four **Tooks** or strains, the first is called **Sthul, Sthaee** or **Dedha,** the 2and **Untara**; the 3rd **Ubhog** and the last **Bhog**. Others, term the last two **Abhog**. × × ×" इन महोदय ने ये बातें अपनी पुस्तक के पृष्ठ ८८ पर लिखी हैं।

'खयाल' नामक गीतों के विषय में मि० बनर्जी ने जो-कुछ कहा है, उसका सार यह है—"खयाल फारसी शब्द है। इसका अर्थ 'यथेच्छाचार' भी हो सकता है। सगीत में खयाल का यही अर्थ युक्तियुक्त होगा। प्राचीन काल में सभ्य समाज में खयाल नहीं गाया जाता था। उस समय ध्रुपद का ही गायन होता था। ध्रुपद की अपेक्षा खयाल की रचना संक्षिप्त है। इसमें बहुधा स्थायी तथा अन्तरा, ये दो ही भाग होते हैं। कुछ थोड़े-से लोग इसमें एक तीसरा भाग भी मानते हैं, परंतु उसके स्वर अन्तरे के समान ही गाते हैं। खयाल के योग्य ताल

आड़ाचौताला, तिलवाड़ा, एकताल, त्रिवट, झूमरा, इत्यादि हैं। जिन खयालों में शब्द पर्याप्त होते हैं तथा जिनके प्रत्येक भाग में चार-चार चरण होते हैं, वे सावकाश गाए जाते हैं तथा वे बहुत-कुछ ध्रुपद के समान ही प्रतीत होते हैं। इसका कारण यह है कि खयालोपयोगी जो तालें हैं, वे बहुत-कुछ ध्रुपदोपयोगी तालों के समान ही हैं। तथापि ध्रुपद की अपेक्षा वे कुछ अधिक चपल हैं। एकताल तो ध्रुपद के चौताल-जैसा ही है। यतिताल को यदि सावकाश बजाया जाए, तो ध्रुपदों के धमार अथवा तीव्रा-जैसा होगा।" (क्योंकि मैंने तुम्हें अभी ताल के विषय में कुछ नहीं बताया है, इसी से उसकी तुलना उचित न समझकर मैं यहाँ ऐसा नहीं कर रहा हूँ।) "खयालों में जिस प्रकार क्षुद्रतान, गिटकिरी इत्यादि का प्रयोग होता है, वैसा ध्रुपद में नहीं होता। इसी प्रकार ध्रुपद में 'गमक' नामक जो प्रकार गाया जाता है, वह खयाल में नहीं गाया जाता। गायन-शैली को देखने से खयाल तथा ध्रुपद में यही विभिन्नता दृष्टिगोचर होती है। राग-रागिनी के विषय में इन दोनों प्रकार के गीतों में कोई भेद नहीं है। तथापि कुछ रागिनी ऐसी हैं, जिनमें खयाल अच्छे नहीं लगते; उदाहरणार्थ भैरवी, खमाज, सिन्धु इत्यादि। (इन रागों में किसी-किसी को क्वचित् खयाल गाते हुए मैंने सुना है।) सदारंग तथा अदारंग नामक गायकों के रचे हुए खयाल समाज में उच्च श्रेणी के माने जाते हैं। खयाल तथा ध्रुपद, इन दोनों ही में अनेक बार ईश्वर-सम्बन्धी उद्गार होते हैं, परन्तु ध्रुपद की गति धीर तथा प्रकृति गंभीर होने से ईश्वरोपासना में उसका उपयोग अधिक होता है। Capt. Willard साहब अपनी पुस्तक में लिखते हैं कि जौनपुर नामक शहर के राजा सुलतान हुसैन शर्की ने १५-वीं शताब्दी में खयाल उत्पन्न किया। हमारी सम्मति में यह मानना युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता कि अमुक व्यक्ति ने खयाल उत्पन्न करके उसका प्रचार किया। खयाल की तरह का गाना पहले से ही समाज में प्रचलित चला आ रहा होगा, परन्तु वह समाज में सम्मान्य न था। आगे चलकर सुलतान हुसैन ने इस गाने को पसन्द किया। उसने गायकों को प्रोत्साहित किया तथा इसी लिए उसका प्रचार अधिक हो गया; यही सर्वमान्य होना चाहिए।

Capt. Willard साहब अपनी पुस्तक के पृष्ठ ८८ पर कहते हैं :—"In the **Khyal** the subject generally is a love tale and the person supposed to utter it is a female. The style is extremely graceful, and replete with studied elegance and embellishments. It is chiefly in the language spoken in the district of Khyrabad and consists of two **Tooks.** Sooltan Hoosain Shurquee of Jounpore is the inventor of this class of song.

Although the pathetic is found in almost all species of Hindustani musical, as well as poetical compositions yet the **Khyal** is perhaps its more immediate sphere. The style of the **Dhrupad** is too masculine to suit the tender delicacy of female expression, and the **Tappa** is more conformable to the character

of a maid who inhabits the shores of the **Ravi** river) and has its connection with a particular tale) than with the beauties of Hindustan; while the **Ghuzuls** and **Rekhtas** are quite exotic, transplanted and reared on the Indian soil since the Mahomedan conquest. To a person who understands the language sufficiently it is enough to hear a few good **Khyals** to be convinced of the beauties of Hindustani songs, both, with regard to the pathos of the poetry and delicacy of the melody."

टप्पा : इस गीत के सम्बन्ध में बनर्जी के कहने का सारांश यह है—"टप्पे का गाना खयाल तथा ध्रुपद की अपेक्षा अधिक संक्षिप्त है। टप्पे सब रागों में नहीं होते। खयाल की ही कतिपय तालों में बहुधा टप्पे गाए जाते हैं। प्राचीन रागिनियों में से भैरवी, खमाज, चेतागौरी, कालिंगड़ा, देश तथा सिंधु इत्यादि रागिनियों में टप्पे होते हैं। टप्पों की रचना आधुनिक ही कही जाएगी। काफी, झिंझोटी, पीलू, बरवा, मारू, यमनी, लूम इत्यादि आधुनिक रागों में अनेक टप्पे हैं। यह प्रसिद्ध ही है कि इन रागों का विस्तार संक्षिप्त ही होता है। हमारे यहाँ यह धारणा दृढ़ हो गई है कि टप्पे सदैव शृंगार-रस में ही होने चाहिए; परंतु ऐसी कोई बात नहीं है। चाहे जिस रस में टप्पों की रचना करने में कोई हानि नहीं है। यह अवश्य सत्य है कि इन गीतों की गति द्रुत तथा प्रकृति क्षुद्र होने से इन्हीं के अवलम्ब से पद्य-रचना करनी पड़ती है। यह तो स्पष्ट ही है कि ईश्वरोपासना इत्यादि विषयक गीत, जिनमें अधिक गम्भीर रचना होती, टप्पों की शैली में शोभित नहीं होते। संगीत का प्रधान कार्य स्मृति-उद्दीपन है, अतः जिन स्वरों के कानों में पड़ते ही अन्तःकरण में महान्, उन्नत, प्रशान्त और विराट् भावना का उदय हो, वे ही भक्ति और उपासना के योग्य स्वर होते हैं। टप्पों की प्रकृति की ओर देखने से यही दिखाई देता है कि ये गीत हास्य, आनन्द, प्रणय इत्यादि लघुभावोपयोगी अधिक होते हैं। Capt. Willard अपनी पुस्तक में लिखते हैं कि टप्पे का गायन, पंजाब में ऊँट हाँकनेवाले लोगों से सर्वप्रथम आरम्भ हुआ। आगे चलकर 'शोरी' नामक प्रसिद्ध गायक ने उनका शृंगार करके उन्हें उच्च श्रेणी का बना दिया। सम्भव है कि यह कहानी सत्य हो क्योंकि पंजाब में यह कहानी सर्वत्र ही भलीभाँति प्रसिद्ध है। एक अन्य ग्रंथकार का कहना है कि 'शोरी' का वास्तविक नाम गुलामनबी था तथा वह अयोध्या का रहनेवाला था। यह निर्विवाद है कि टप्पा आजकल अतिशय लोकमान्य गीत-शैली है। शोरी द्वारा रचे हुए गीतों को टप्पे कहते हैं। टप्पों के अतिरिक्त जो इधर क्षुद्र गीत प्रचलित हैं, उन्हें ठुमरी कहते हैं। शोरी मियाँ के टप्पे का ढंग (गाने की रीति) निराला ही था, यह सत्य है। उसमें प्रयुक्त होनेवाले तान कंप, गिटकिरी इत्यादि प्रकार कुछ निराले ही हैं। शोरी के टप्पे प्रायः खमाज, लूम, झिंझोटी, भैरवी, सिंधु-जैसे रागों में हैं। कुछ लोग यहाँ यह शंका करेंगे कि क्या यमन, केदार, कान्हड़ा इत्यादि रागों में टप्पे नहीं होते? इसका उत्तर एक तो यही है कि टप्पे में प्रयुक्त होनेवाले गायन-प्रकार इन गम्भीर

प्रकृति के रागों में सुशोभित नहीं होते तथा दूसरा यह है कि शोरी ने भी ऐसे रागों में टप्पे नहीं बनाए हैं। यदि हम अपने गायकों पर ध्यान दें, तो वे लोग ऐसे रागों में टप्पे नहीं गाते, यह हम देखते ही हैं :—

कुछ बातें देश-व्यवहार पर भी अवलंबित होती हैं, यह भी मानना पड़ेगा। यों समझो कि खमाज, भैरवी, सिंधु इत्यादि राग कितने अच्छे, मधुर तथा लोकप्रिय हैं, तथापि उन्हें खयालियों ने पसंद नहीं किया। इसी से उनमें खयाल हैं ही नहीं, यही कहा जा सकता है। इसके अतिरिक्त दूसरा कोई और कारण भला क्या बताया जा सकता है? हमारे देश में प्राचीन काल से एक और प्रथा चली आ रही है और वह यह है कि जिनके कुटुम्ब में ध्रुवपद गाने की चाल है, वे इतर गीत गाते ही नहीं। ऐसे घराने के गायक सदैव अपने-आपको ध्रुपदिए कहते हैं। यह भी स्मरण रखना चाहिए कि यह प्रथा अन्यथा नहीं है। बाल्यावस्था से ही जिन्होंने ध्रुवपद गाने के लिए विशेष रूप से अपना गला तैयार किया है, उसमें खयाल, टप्पे जैसे गीतों के नाज़ुक अलंकार न सध सकें, तो कोई आश्चर्य नहीं है। ऐसे गायक यदि इन गीतों को कदाचित् गाने भी लगें, तब भी अनेक बार उनमें ध्रुवपद का ढंग प्रस्फुटित होता हुआ दृष्टिगोचर होता है। जिनका खयाल गाने का ही पेशा है, वे गायक जिन गीतों को गाते हैं, वे सभी थोड़े-बहुत परिमाण में खयाल के ढंग पर ही चले जाते हैं। यह सब पृथक् रूप से कहने की आवश्यकता नहीं है। इसी आधार पर गायकों के—ध्रुवपदिए, खयालिए इत्यादि वर्ग माने जाते हैं। आज़कल यदि हम प्रचलित व्यवहार को देखें, तो एक ही गायक सभी तरह के गीत गाने के लिए तैयार हो जाता है। परंतु वह उत्तम रीति से सभी को निभा नहीं सकता, यह सहज में समझा जा सकता है। यह भी कह देना आवश्यक है कि जो उच्च श्रेणी के गायक हैं, वे ऐसे प्रसन्नता का अनुभव नहीं करते। टप्पे के विषय में Willard साहब अपनी पुस्तक में कहते हैं :—

"Songs of this species are the Admiration of Hindustan. It has been brought to its present degree of perfection by the famous Shoree, who in some measure may be considered its founder. Tuppas were formerly sung in very rude style by the camel drivers of the Panjab & it was he who modelled it into the elegance it is now sung with. Tuppas have two Tooks and are generally sung in the language spoken at Panjab or a mixed jargon of that and Hindi. They recite the loves of Heer and Ranjah equally renowned for their attachments and misforunes and allude to some circumstance in the history of their lives".

भावभट्ट पंडित ने अपने 'अनूपसंगीतरत्नाकर' नामक ग्रंथ में ध्रुवपद की जो व्याख्या दी है, वह इस समय मुझे याद आ गई है, अतः तुम्हें बताता हूँ। 'ध्रुवपद' शब्द का अपभ्रंश भाषा में 'ध्रुपद' समझना चाहिए।

गीर्वाणमध्यमदेशीयभाषासाहित्यराजितम् ।
द्विचतुर्वाक्यसंपन्नं नरनारीकथाश्रयम् ॥
शृङ्गाररसभावाढ्यं रागालापपदात्मकम् ।
पादांतानुप्रासयुक्तं पादांतयमकंचवा ॥
प्रतिपादं यत्रबद्धमेवंपादचतुष्टयम् ।
उद्ग्राहध्रुवकाभोगोत्तमं ध्रुपदंस्मृतम् ॥

प्रश्न : हमारे यहाँ संस्कृत के ध्रुपद गाने का प्रचार है क्या ?

उत्तर : नहीं ! फिर भी यदि कोई इस प्रकार से नवीन ध्रुपद रचकर गाए, तो ऐसा करना अशक्य नहीं है। तथापि यह सत्य है कि व्यवहार में ऐसे ध्रुपद तुम्हें दिखाई न देंगे। देखो ! Sir William Jones साहब जयदेव की संस्कृत-अष्टपदियों अथवा प्रबन्धों—जिनके राग तथा ताल स्पष्ट लिखे हैं—के गाने के विषय में क्या कहते हैं :—(Vol. I. P. 440)

"When I first read the songs of Jayadeva, who has prefixed to each of them the name of the mode in which it was anciently sung, I had hopes of procuring the original music, but the pandits of the south referred me to those of the west and the Brahmins of the west would have sent me to those of the north, while they, I mean those of Kashmir and Nepal, declared that they had no ancient music, but imagined that the notes of the Gitagovind must exist, if anywhere, in one of the southern provinces where the poet was born, from all this I collect, that the art which flourished in India many centuries ago, has faded for want of culture, though some scanty remnants of it may perhaps, be preserved in the pastoral roundelays of Mathura on the loves and sports of the Indian Apollo."

प्रश्न : तब तो इन सब बातों से हमें कुछ ऐसा लगता है कि हमारा वास्तविक प्राचीन संगीत—जिसका ग्रंथों में उल्लेख हुआ है—हमारे देश के इस उत्तर-भाग में मिलना कठिन है। आपके कथनानुसार ध्रुपद, खयाल, टप्पा, ठुमरी इत्यादि जो गीत आजकल दृष्टिगत होते हैं, उनपर मुसलमानी छाप होना सम्भव है।

उत्तर : तुम बहुत ठीक समझे ! आजकल हमारे संगीत की ऐसी ही स्थिति हो गई है। यह मानना पड़ेगा कि दाक्षिणात्य संगीत के विषय में यह बात सत्य नहीं है। मैंने स्वत: देश में पर्याप्त भ्रमण किया है। विभिन्न संगीत-व्यवसायी विद्वानों से भेंट भी की है, परंतु बड़े खेद से कहना पड़ता है कि ग्रंथों को समझनेवाले लोग मुझे बहुत कम दिखाई दिए। तथापि इतना गनीमत है कि यदि ग्रंथों का अध्ययन करने वाले पण्डित नहीं मिलते, तो उन ग्रंथों का संगीत भी तो आजकल उपलब्ध नहीं है।

मैंने तुम्हें स्पष्ट बता दिया है कि आजकल जिस संगीत का प्रचार है, वह ग्रंथों से अलग हो गया है। यह कोई भी कह सकता है कि ऐसे संगीत के योग्य ग्रंथ भी नवीन ही होने चाहिए। 'लक्ष्यसंगीत' नामक ग्रंथ की उत्पत्ति इसी कारण से हुई है। प्राचीन ग्रंथों में कहे हुए श्रुति, स्वर, मूर्च्छना, ग्राम, शुद्धतान, कूटतान, अलंकार, जाति, गीति इत्यादि प्रकारों का वर्णन करके केवल मुसलमानी ढंग से रागों को गाने लगने से क्या लाभ है ? यही नहीं, प्रत्युत ऐसे-ऐसे गानों को सर्वथा शास्त्रोक्त समझनेवाले भी तुम्हें कहीं-कहीं दिखाई देंगे। इस दृष्टि से देखा जाए, तो 'लक्ष्यसंगीत' नामक ग्रंथ ठीक है। उसमें यह स्पष्ट लिखा है कि यह ग्रंथ नवीन संगीत के आधार पर लिखा गया है। उसे इस प्रकार क्यों लिखा गया, इसका कारण भी उस ग्रंथकार ने उसमें प्रथम ही बता दिया है। प्रसिद्ध राजा सुरेन्द्रमोहन टैगोर ने संगीत-विषय पर अनेक ग्रंथ लिखे हैं। वे सभी अत्यंत मनोरंजक तथा उपयोगी हैं। उन्हें पढ़ने की मैं तुम्हें अवश्य सम्मति देता हूँ। ईश्वर ने उन्हें सर्वसम्पन्न बनाया था, अतः स्पष्ट है कि उन्होंने जो कुछ किया, वह और किसी के द्वारा किया जाना शक्य न था। उनके समय में बड़े-बड़े पंडित विद्यमान थे, अत: उनकी सहायता से उन्होंने इस विषय पर महत्त्वपूर्ण खोज की थी तथा उन बातों को प्रकाशित भी किया। अपने 'Universal History of Music' नामक ग्रंथ में उन्होंने मुसलमानी राज्य में अपने संगीत का थोड़ा-सा इतिहास इस प्रकार लिखा है :—

'The Mahomedans as a ruling nation came in contact with the people of India for the first time in the 11th. century, and since then a change has been worked into the music system of the country. The Mahomedans did not encourage the theory of the art, but they patronized practical musicians and were themselves instrumental in composing and introducing several styles of songs or devising new forms of musical instruments. It is related by Mahomedan Historians of the period that when Dacca was invaded by Alla Udin in 1294 and the conquest of the South of India was completed (1310) by his Mogul general Malik Kafer. Music was in such a flourishing condition, that all the musicians and their Hindu preceptors were taken with the armies, and settled in the North. It is said that the celebrated Persian poet and musician Amir Khusroo came to India during the rule of Alla Udin and defeated in a contest the musician of the south Nayak Gopal, who had come to Delhi with a view to challenge the musicians of the court. Amir Khusroo is reported to have given the name of Satar to the Tritantri Vina of the classic days and to have divided the Rags into twelve **Mokams** which were subsequently subdivided by other Mahomedan musicians into 24 **Sobhas** and 48 **Guswas**. Rajah Man who ruled in

Gwalior (1486–1516) was a great lover of music. It is said that he brought the **Dhrupad** style of song to its present state and that he composed several songs in this style. Sooltan Hoosain Shurqee (of the Shirki family which flourished in Jounpoor in the 15th. century) introduced the style of song known as **Kheyal**. During the reign of the Mogul Emperor Akber (1550-1605) music made considerable progress and received substantial encouragement. It was in his court that the famous musician Tansen (pupil of the venerable Haridass Swami) flourished. Tansen who was formerly in the service of Rajah Ram, is said to have received from him one crore of Tankas as present. The Emperor is mentioned in the Ain-i-Akbari as being excessively fond of music and having a perfect knowledge of its principles.

His court teemed with musicians of various nationalities, Hindus, Iranis, Turanis, Kashmiris both men and women. The musicians were divided into three classes, Gayandas singers; Khvanandas; chanters; and Sajandas, players. The principal singers came from Gwalior, Mashad Tabriz and Kashmir. The schools in Kashmir had been founded by Irani and Turani musicians under the patronage of Zainul Adin, king of Kashmir. The Gwalior school dated from the times of Rajah Man Tunwar in whose court as well as in that of his son Vikramajit, the famous Nayak Baksu lived. When Vikramajit lost his throne, Baksu went to Rajah of Kalinjar Shortly afterwards he accepted a situation in the court of Sultan Bahadur (1526–1536) at Guzrat. Ramdas and Mahapatar, both of whom had been with Islem Shah at Lucknow, were among the court musicians of Akbar. The number of the Principal court musicians named in Ain-i-Akbari is 36 and included Tansen, Tantaring (his son) Baz Bahadur (Ruler of Malwa and inventor of the style of singing known as Baz-Khai), Birmandal Khan (player on the Sarmandal) and Quasim. × ×

The songs of Vidyapati who adorned the court of Shiwa Sinha of Tirhut, Behar, in the 14th. century) were in vogue in the time of Akbar. It was also in this reign that Mira Bai the wife of a Rana of Udaipur and a celebrated songstress and composer of Hymns flourished. The Emperor had opportunities of listening to her excellent vocol performances. The blind poet and musicion Surdass who is said to have composed 125000

Vishnupadas lived also in this reign. Surdass was the son of Ramdass who has already been mentioned as one of the musicians of Akbar's court. The following singers are named as belonging to the reign of Jehangir (1605-27) Jehangirdad, Chatr Khan, Parwizdad, Khurramdad, Makhu, Hamzan. It was in the reign of this emperor that Tulsidass died. Tulsidass was a popular composer of hymns regarding Ram and Sita. During Shah Jehan's reign (1628-58) the following musicians lived; Jagannath, Dirang Khan and Lalkhan (Gansamudra). Lalkhan was son-in-law to Bilas son of Tansen. Jagannath and Dirang Khan were weighed in Silver and received each, Rs. 4500. Aurangzeb who suceeded Shahjahan to the throne of Delhi and occupied it from (1658-1707) abolished the court singers and musicians. × × × × During the years the ten successors of Aurangzeb ruled in Delhi (1707-1857) music continued to be cultivated but not with the vigour it had attained in the preceding reigns. Mahomed sha was the last of the Emperors who had renowned musicians flourishing in his time. There are several vocal compositions extant which are associated with his name. The famous songstress Shori brought the **Tuppa** song to its present degree of perfection in this reign. It is said that her husband Gulam Nabi composed songs and coupled them with her name. The chief feature of music of the mahomedan period was the combination of the Hindu style with the Persian one. Some types of classical music were brought under Persian names, while some entirely new ones were introduced such as the **Trivat, Terana, Guzal, Rekta, Quol, Culbana** etc. The style of music the mahomedans cultivated is now the standard high class music of India, leaving out, of course, the provincial airs. × × × ×

इस ग्रंथ में से अब और अधिक उद्धरण देकर मैं तुम्हारा समय नष्ट नहीं करना चाहता। अब भी हम मूल विषय को छोड़कर पर्याप्त अलग हो गए हैं।

प्रश्न : ये सब बातें हमें बड़ी ही मनोरंजक प्रतीत हुईं। यदि आप ऐसे ही बहुत-सी बातें बताते चलें, तो हमारा लाभ ही होगा, क्योंकि ये बातें ग्रंथावलोकन के बिना कैसे जानी जा सकती हैं ?

उत्तर : यह भी किसी अंश तक ठीक ही है। Tagore साहब अपने ग्रंथ बेचते नहीं, अतः उनका बाजार में प्राप्त होना तो संभव ही नहीं है। इसी कारण से

मैंने तुम्हें इन उद्धरणों को सुना देना उचित समझा। खयाल और ध्रुपद के विषय में तो मैं कह ही चुका हूँ। अब दो शब्द ठुमरी नामक गीत के विषय में भी कह देना उचित प्रतीत होता है। 'ठुमरी' के विषय में श्री बनर्जी का मत मैं तुम्हें अभी बताता हूँ, परंतु यह न समझना कि मैं पूर्णरूपेण उनके मत का पोषक हूँ। श्री बनर्जी के कतिपय विचार मुझे मान्य हैं तथा इसी प्रकार टैगोर एवं Willard साहब के लिए भी मेरे मन में बड़ा आदर है। तथापि उनके और मेरे मत में कहीं-कहीं भेद भी है। टैगोर साहब बड़े ही सुशील तथा दयालु गृहस्थ हैं। मेरा उनसे परिचय हो चुका है। वे मुझे बड़े ही साफ दिल के व्यक्ति दिखाई दिए। उनके कौन-से सिद्धान्त मुझे ग्राह्य नहीं हैं, यह मैं फिर कभी बताऊँगा। श्री बनर्जी के साथ मेरा पत्र-व्यवहार था। अब उनका स्वर्गवास हो चुका है। वे स्पष्ट-वक्ता थे। संगीत पर उन्होंने बँगला भाषा में दो-एक अच्छे ग्रंथ लिखे हैं। क्योंकि वे ग्रंथ एक विद्वान् के द्वारा लिखे हुए हैं, अतः सुशिक्षित लोगों को वे तुरन्त ग्राह्य होते हैं। मैंने उनका भाषान्तर किया है; उसे तुम पढ़ना। अब ठुमरी के विषय में बनर्जी का मत कहता हूँ :—

"जिन रागों में टप्पे होते हैं, प्रायः उन्हीं रागों में ठुमरियाँ भी अधिक होती हैं। ठुमरी में पंजाबी, अद्धा, कव्वाली इत्यादि तालें होती हैं। Willard साहब ने अपने ग्रंथ में 'ठुमरी' नामक राग का भी उल्लेख किया है। उसे देखने से यही अनुमान होता है कि वह शंकराभरण तथा मारू, इन दो रागों के मिश्रण से बना है। 'संगीतसार' नामक ग्रंथ में यह कहा गया है कि ठुमरी की उत्पत्ति शोरी मियाँ से हुई। यह नहीं कहा जा सकता कि यह बात किस सीमा तक विश्वसनीय है। तथापि यह बात निश्चित है कि हिन्दुस्तान में ठुमरी नामक एक प्रकार का गाना प्रचलित है तथा वह भिन्न-भिन्न रागों में गाया जाता है। लखनऊ की ओर ठुमरी का व्यवहार अत्यन्त लोकप्रिय है। प्रसिद्ध शोरी भी उधर ही की तरफ का व्यक्ति था और संभवतः इसी से उसका नाम इस प्रकार के गाने से जुड़ गया है। मुझे तो यह प्रतीत होता है कि शोरी ने ठुमरी गाने का प्रचार नहीं किया। इसका कारण यह है कि टप्पा तथा ठुमरी सर्वथा भिन्न प्रकार हैं। कदाचित् ऐसा हुआ हो कि टप्पे के संक्षिप्तीकरण से ठुमरी का गाना निकला हो। हिन्दुस्तान में गानेवाली वेश्याएँ ठुमरी बहुत गाती हैं; तथा इस प्रकार गाए जाने के कारण बड़े-बड़े गायक ठुमरी का गाना निम्न कोटि का समझते हैं। सच पूछो तो यह अनुभूत बात है कि समाज को खयाल तथा ध्रुपद की अपेक्षा ठुमरी का गाना अधिक मिष्ट प्रतीत होता है। ठुमरी में दो प्रकार का आनन्द है। एक तो यह कि गाने की शैली ही सुन्दर है और फिर उसमें स्वर-वैचित्र्य भी विलक्षण ही है। ठुमरी गानेवाले का कण्ठ—फिर गायक चाहे स्त्री हो अथवा पुरुष—खयाल, ध्रुपद गानेवालों के कण्ठ की अपेक्षा बिलकुल ही निराले ढंग से तैयार किया हुआ होता है। उसमें अत्यन्त ही सारल्य और कोमलता होती है। खयाल, ध्रुपद गानेवाले गायकों से ठुमरी का गायन उत्तम नहीं सधता। ठुमरी के गीत बहुत ही छोटे होते हैं, अतः वे वैचित्र्य से ओत-प्रोत रहते हैं। उसकी विशेषता यही है कि यद्यपि उसमें भिन्न-भिन्न स्वरों को एकत्र किया जाता है, तथापि कानों पर उसका परिणाम

बड़ा ही संतोषप्रद होता है। खमाज की ठुमरी हो, तब भी उसमें गायक भैरवी, सिंधु, पीलू, बिहाग इत्यादि रागों के भी स्वर शनैः-शनैः युक्तिपूर्वक लगाकर लोगों का मनोरंजन करते हैं ! ऐसे स्वर अच्छे क्यों लगते हैं, इसका कुछ निराला ही कारण है। चाहे जो हो, बड़े-बड़े गायक भले ही ठुमरी पर हँसें, परंतु इसमें संशय नहीं है कि ये गीत भी अति लोकप्रिय गीतों में से हैं।

Capt. Willard ठुमरी के विषय में कहते हैं :—

"**Thoomree**—This is in an impure dialect of the **Vrijbhasha**. The measure is lively and so peculiar that it is not mistaken by one who has heard a few songs of this class. It is useless to waste words in description, which must after all prove inadequate of a subject which will impress the mind more sensibly when attention is bestowed on a few songs."

'गजल' के विषय में श्री बनर्जी कहते हैं कि यह शब्द अरबी भाषा का है। 'गजल' प्रणय-विषयक कविता है। जिन रागों में टप्पे होते हैं, बहुधा उन्हीं रागों में ये गीत भी होते हैं। हमारे देश में फारसी तथा उर्दू—इन भाषाओं में गजलें होती हैं। मुसलमान लोगों के ये खास स्वदेशी गीत माने जाते हैं तथा यह समझा जाता है कि इन्हें वे अपने देश से हिन्दुस्तान में लाए हैं। गजल गीतों में अनेक चरण होते हैं। रेखता, रुबाई इत्यादि अन्य गीत फारसी तथा उर्दू भाषा में होते हैं, उन्हें भी बहुत-कुछ इसी के समान समझना चाहिए। परंतु उनमें शब्दार्थ भिन्न होता है। ये जो मुख्य गीत कहे गए हैं, इनके अतिरिक्त सोहला, कजरी, लावनी, चैती, जिगर इत्यादि हिन्दुस्तान के क्षुद्र गीत हैं, परंतु इनका वर्णन नहीं मिलता। गजल तथा रेखता के विषय में Willard साहब कहते हैं :—

"These are in the Urdu and Persian languages and differ from each other, according to some, merely in the subject they treat of. The Gazal has for its theme a description of the beauties of the beloved object, minutely enumerated, such as the green beard, moles, ringlets, size, shape & c. as well as his cruelties and indifference and the pain endured by the lover, whilst in the **Rekta** he eulogizes the beauty of the beloved in general terms and evinces his own intention of persevering in his love, and bearing with all the difficulties to which he might be exposed in the accomplishment of his desires. They consist mostly of from five to ten or a dozen couplets.

तुम्हारे ध्यान में यह बात आ गई होगी कि श्री बनर्जी ने Willard साहब का ही मत माना है। हमारे हिन्दुस्तानी संगीत के गीत-शब्दों के विषय में Willard साहब ने यह कहा है :—

"The tenor of Hindustanee love ditties, therefore, generally, is one or more of the following themes :—

1. Beseeching the lover to be propitious.
2. Lamentations for the absence of the object beloved.
3. Imprecating of rivals.
4. Complaints of inability to meet the lover from the watchfulness of the mother and sisters-in-law and the tinkling of little bells worn as ornaments round the waist and ancles, called **payel** &c.
5. Fretting and making use of invectives against the mother and sisters-in-law as being obstacles in the way of her love.
6. Exclamations to female friends termed sukhees and supplicating their assistance. and—
7. Sukhees reminding their friends of the appointment made and exhorting them to persevere in their love.

प्रश्न : ध्रुवपद के विषय में बताते हुए आपने पहले यह कहा था कि ध्रुवपद में 'गमक' ली जाती है; 'गमक' किसे कहते हैं ?

उत्तर : 'गमक' एक दृष्टि से गीत का आभूषण है। 'रत्नाकर' में गमक की व्याख्या इस प्रकार की गई है—'स्वरस्य कंपो गमकः श्रोतृचित्तसुखावहः।' इस वाक्य का अर्थ यह होगा—'स्वरों का ऐसा कंपन, जो सुननेवालों के चित्त का हरण करे, गमक कहलाता है।' केवल वर्णन द्वारा तुम गमकादि प्रकारों को नहीं समझ सकते। 'इक्षुक्षीरगतं यद्वन्माधुर्यं नोच्यते बुधैः'—बहुत-कुछ यही बात गमक के विषय में भी कहनी पड़ेगी। तथापि ग्रंथों में इसका भी वर्णन किया गया है तथा इसके भिन्न-भिन्न नाम भी बताए गए हैं। 'रत्नाकर' में कुल १५ गमक बताए गए हैं, जो इस प्रकार हैं :—

स्वरस्य कंपो गमकः श्रोतृचित्तसुखावहः।
तस्य भेदास्तुतिरिपः स्फुरितः कंपितस्तथा ॥
लीन आंदोलितवलितत्रिभिन्नकुरुलाहताः।
उल्लासितः प्लावितश्च गुंफितो मुद्रितस्तथा।
नामितो मिश्रितः पंचदशेति परिकीर्तिताः ॥

दक्षिण की एक पुस्तक में उधर के गमकों के मुझे ये नाम दिखाई दिए :— १. आरोह, २. अवरोह, ३. डालु, ४. स्फुरित, ५. कंपित, ६. आहत, ७. प्रत्याहत, ८. त्रिपुच्छ, ९. आंदोलित, १०. मूर्च्छन। संस्कृत-ग्रंथों में गमकों

का वर्णन दिया हुआ है। उन ग्रंथों के अध्ययन के समय मैं उन्हें समझा दूँगा, अभी वे भली भाँति तुम्हारी समझ में न आएँगे।

प्रश्न : ठीक है, तब इस समय हम उनका विचार छोड़े दे रहे हैं। अब आप हमें क्या बताएँगे ?

उत्तर : जिस दृष्टि से हमने पहले गायकों के ध्रुवपदिए, खयालिए इत्यादि भेद किए थे, उसी प्रकार कतिपय सगीत-व्यवसायी लोगों के भी कुछ वर्ग प्रचार में माने जाते हैं। Capt. Willard के शब्दों में उन्हें भी बताता हूँ। मैं उनके ग्रंथ से उद्धरण ले रहा हूँ, इसका कारण यह है कि उन्होंने इस विषय पर खोज—अर्थात् ऐतिहासिक खोज पर्याप्त की है। बंगाल के ग्रंथकारों ने भी अपनी-अपनी पुस्तकों में उनके मत को स्वीकार किया है। वे कहते हैं :—

"Musicians:—These are devided into classes by the Hindu authors agreeably to merit and extent of knowledge.

Nayuk—He only has a right to claim this denomination who has a thorough knowledge of ancient music both theoretical and practical—He should be intimately acquainted with all the rules for vocal and instrumental compositions and for dancing. Should be qualified to sing **Geet, Chand, Prabandha** &c. to perfection and able to give ihstruction.

II—To this class belong those who understand merely the practice of music and is subdevided into—

1—**Gundharb**-One who is acquainted with the ancient **(Marg) Raags** as well as modern **(Desee)** and,

2—**Goonee** or **Gooncar**-He who has a knowledge of only the modern ones.

III—**Calavant, Gundharbs** and **gooncars** who sing **Dhrupads, Trivats** &c, to perfection, go by this appellation.

IV—**Quvall,** excels in singing **Quol, Turana, Khyals** &c.

V—**Dharee,** sings **Curca** &c.

VI—**Pandit**—this term literally signifies a Doctor of music and is applied to those who profess to teach the theory af music and do not engage in its practice."

प्रश्न : आपने पहले हमसे यह कहा था कि अब हमारे यहाँ ग्रंथ-संगीत—अर्थात् प्राचीन ग्रंथ-संगीत तो प्रचलित है ही नहीं तथा जो कुछ है, वह मुसलमान गायकों द्वारा बहुत-कुछ रूपांतरित किया हुआ है। तब तो फिर इस दृष्टि से संगीत के विषय में हमारी स्थिति शोचनीय ही है, क्या आप यह नहीं मानते ?

उत्तर : मैं समझता हूँ कि आजकल ऐसी स्थिति अवश्य है। यह ठीक है कि उन बेचारे मुसलमान गायकों को हमारी स्थिति विदित नहीं है। हमारे पास

संस्कृत-ग्रंथ हैं तथा संस्कृत भाषा भी हम जानते हैं। इसी से तो वे हमसे घबराते हैं। रागों के नाम भी हिंदुओं के ही प्रचलित हैं, तथा वे राग भी हिंदू-ग्रंथों में हैं, अतः गायक यह समझते हैं कि हिंदू लोग रागों का जो वर्णन करते है, वही ठीक है; परंतु यदि हम प्रामाणिक रूप से इस तथ्य पर विचार करें कि वस्तुस्थिति क्या है, तो तुम्हारे-जैसे सुज्ञ तथा सुशिक्षित व्यक्तियों को यह स्पष्ट विदित हो जाएगा कि मुसलमान गायकों को निम्न कोटि का समझने का हमें कोई अधिकार नहीं है। हम सशास्त्रता का अभिमान करते हैं, परंतु यदि कोई हमसे यह पूछे कि तुम्हारा शास्त्र कौन-सा है, तो हम किस पुस्तक का नाम लेंगे ? यह हमें स्वीकार है कि 'लक्ष्यसंगीत' ग्रंथ में जो संगीत है, वह केवल आजकल का है, परंतु उस ग्रंथ के अतिरिक्त तुम्हारे इतर ग्रंथों की क्या स्थिति है ?

प्रश्न : आपकी ये बातें सुनकर तो हमें आश्चर्य होता है। रत्नाकर, दर्पण, रागविबोध, चतुर्दंडि, सारामृत, पारिजात इत्यादि ग्रंथों के नाम आपने ही बताए थे न ?

उत्तर : हाँ, परन्तु प्रश्न यह है कि उन ग्रंथों में वर्णित संगीत को क्या हम-सब आजकल गाते हैं ? तुम चाहे जिस गायक से यह प्रश्न पूछो कि तुम अपना गाना किस ग्रंथ के प्रमाणानुसार गाते हो ? और फिर देखो कि वह क्या कहता है। वह कभी उत्तर न दे सकेगा। मैंने बहुत पर्यटन किया है, परन्तु तुमसे सत्य कहता हूँ कि मुझे एक भी पंडित अथवा गायक ऐसा नहीं मिला, जिसने 'रत्नाकर' के मूल ३० ग्राम-रागों को भलीभाँति समझा हो। 'दर्पण' में बताए हुए रागों के मेल, प्रचलित रागों से संबंधित कर सकनेवाला भी मुझे अभी तक कोई नहीं मिला। यह ठीक है कि तुमने जिन ग्रंथों का नाम लिया है, वे आज भी विद्यमान हैं, परंतु तुम्हारी आजकल की पद्धति से उनके राग-नियम अनेक स्थलों पर भिन्न हो गए हैं। जब यह बात है, तो फिर क्या यही कहना न पड़ेगा कि अब हम ग्रंथोक्त संगीत नहीं गाते तथा हमें शास्त्र-परिपुष्टता का अभिमान करने का कोई अधिकार नहीं है। मैं यह जानता हूँ कि मेरा यह मत किसी को भी अच्छा न लगेगा, परंतु वस्तुस्थिति क्या है, यह मैंने तुम्हें शुद्ध हृदय से बता दी है। यों सोचो कि प्रचार में हम मियाँ की मल्लार, मियाँ की सारंग, मियाँ की तोड़ी, हुसैनीतोड़ी, दरबारी तोड़ी, बिलासखानी तोड़ी, जौनपुरी, सरपर्दा, साजगिरी, शहाणा, यमनी, नवरोज, चाँदनीकेदार, सूरमल्लार, पीलू, बरवा इत्यादि राग गाए जाते हुए सुनते हैं; अब यदि हम यह कहने लगें कि इन्हें प्राचीन ग्रंथाधार प्राप्त है, तो ठीक होगा क्या ? कुछ लोग कहेंगे कि इन मुसलमानी रागों को छोड़कर शेष राग तो हमारे ग्रंथों के ही हैं न ? हाँ, परंतु उन्हें भी हम उस तरह कहाँ गाते हैं ? उनमें कहे हुए नियमों को हम बिलकुल ही परिवर्तित करके, मुसलमान गायक उन्हें जैसे गाते हैं, उसी तरह से गाते हैं। अनेक स्थलों पर ग्रंथों का ठाठ भी हमें मान्य नहीं होता। भैरव, भैरवी, तोडी-जैसे साधारण रागों में भी हम ग्रंथों के नियमों का पालन करने को तैयार नहीं; तब फिर हमारा शास्त्र कौन-सा है ? क्या यह प्रश्न सहज ही उत्पन्न नहीं होता ? मेरे कहने का उद्देश्य भली-भाँति समझना।

आजकल के संगीत अथवा गायकों की निंदा करना मेरा हेतु नहीं है। मैं तो यह कहता हूँ कि हमारे आज के हिंदुस्तानी संगीत की, शास्त्र-दृष्टि से नवीन ही स्थापना करनी पड़ेगी। यदि यह कहा जाए कि इस विषय पर आजकल जो ग्रंथ लिखे जा रहे हैं, वे सभी नवीन शास्त्र की रचना कर रहे हैं, तो अनुचित न होगा। यद्यपि मैं भी तुम्हें आगे चलकर संस्कृत-ग्रंथ पढ़ानेवाला हूँ, तथापि उनका संगीत अब भी यथायोग्य रीति से प्रचलित है, यह कहने का साहस मुझमें कदापि नहीं है। अपनी प्राचीन धर्म-पुस्तकों तथा नियमों की पुस्तकों को यद्यपि हम अब भी पढ़ते-पढ़ाते हैं, तथापि क्या उनकी सभी बातें आज प्रचलित दिखाई देती हैं? यही बात हमारे संगीत की भी है। अस्तु, यह विषयान्तर है, अतः इसे छोड़कर हम यमन पर विचार करेंगे।

प्रश्न : यमन के विषय में क्या हमें और भी कुछ बताया जाने को रह गया है? इसके विषय में हमने इतनी बातें याद कर ली हैं, देखिए :—

१. यह राग संपूर्ण है तथा कल्याण ठाठ से उत्पन्न होता है।

२. इसके आरोह तथा अवरोह बिलकुल सरल हैं तथा इस कारण इसमें चाहे-जैसे स्वर-समुदाय अर्थात् तीव्र स्वरों के समुदाय लगा दिए जाएँ, तब भी विशेष विसंगत प्रतीत नहीं होते। हमारे यहाँ कुछ लोग इसे आश्रय राग भी कहते हैं।

३. यमन में गांधार स्वर प्रधान है, अर्थात् यह हमें राग में यत्र-तत्र दृष्टिगोचर होगा। इस गांधार का नियमित संवादी स्वर निषाद है। यह भी हमें यमन में पर्याप्त दिखाई देगा, परंतु इसका महत्त्व गांधार की अपेक्षा कम परिलक्षित होगा।

४. यह राग पूर्वांगवादी गिना जाता है, क्योंकि इसमें वादी स्वर गांधार है।

५. इस राग में हमारे गायक कभी-कभी अवरोह में शुद्ध मध्यम का किंचित् स्पर्श कर दिखाते हैं। इस शुद्ध मध्यम को गांधार से संबंधित करके गाते हैं। इस शुद्ध मध्यम के विषय में एक विशेष बात यह याद रखनी चाहिए कि यद्यपि इसका अल्प प्रयोग अवरोह में क्षम्य है, तथापि 'पमग' इस प्रकार इस स्वर को लेकर सरल अवरोह नहीं किया जाता; यहाँ तीव्र मध्यम ही लेना पड़ता है। इस स्वर की स्थिति बहुत-कुछ विवादी स्वर के समान ही है।

६. यह राग रात्रि के प्रथम प्रहर में, अर्थात् संधिप्रकाश रागों के पश्चात् गाया जाता है।

७. यह आलाप-योग्य रागों में से एक राग माना जाता है। अत्यंत साधारण होने से यह प्रायः सभी गायकों को आता है।

८. कुछ लोग कहते हैं कि यह मुसलमान गायकों के द्वारा प्रचलित किया गया है, परंतु कुछ लोग कहते हैं कि हमारे ही देश के यमुनाकल्याण का यह एक प्रकार है।

९. यमन, वस्तुतः कल्याण का ही एक प्रकार है, अतः इसे कुछ लोग यमन-कल्याण भी कहते हैं।

१०. कल्याण के प्रकार लगभग १२ माने जाते हैं, कल्याण में भिन्न-भिन्न राग मिलाकर इनका सृजन होता है।

प्रश्न : इतनी बातें तो हमें याद हैं। और भी कोई महत्त्व की बात रह गई हो, तो वह भी बता दीजिए?

उत्तर : नहीं, अब इससे अधिक कुछ नहीं है। इन सभी बातों को भिन्न-भिन्न गीतों में रखकर मैंने तुम्हारे लिए 'लक्षणगीत' बना रखे हैं। वे तुम्हें शनैः-शनैः सिखाए ही जा रहे हैं। इन गीतों में केवल लक्षण अर्थात् रागों के ठाठ, समय, वर्ज्यावर्ज्य स्वर इत्यादि दिए हुए हैं। यह स्पष्ट है कि इन बातों के अतिरिक्त उनमें और कोई वैचित्र्य नहीं है, तथापि मेरा अनुमान है कि गीतों के योग से भिन्न-भिन्न लक्षण तुम्हें भलीभाँति याद हो जाएँगे।

प्रश्न : बिलकुल ठीक है। ऐसे अर्थप्रधान गीतों को कवित्व की अपेक्षा नहीं रहती। हमारे शास्त्रों में जिस प्रकार विद्वानों ने छोटे-छोटे सूत्र रख दिए हैं तथा उनकी सहायता से वे शास्त्र जिस प्रकार जल्दी से याद हो जाते हैं, मेरे अनुमान से वही बात यहाँ भी है। ऐसे सब गीतों को हम याद कर लेंगे। अब आप हमें यमन ठाठ के जन्य-राग बताएँगे न? आपने पहले कहा था कि बारह जन्यराग सिखाए जाएँगे। इतना ही डर लगता है कि इतने रागों का सविस्तार वर्णन कैसे याद रहेगा?

उत्तर : ऐसा प्रतीत होना स्वाभाविक है। परंतु हमारे विद्वान् पंडितों ने इस अड़चन पर ध्यान रखकर एक सरल युक्ति निकाली है। उन्होंने इन जन्यरागों का एक सुगम वर्गीकरण कर दिया है तथा विभिन्न वर्गों में लगनेवाले साधारण लक्षण भी बता दिए हैं। उनकी सहायता से तुम्हारा काम बड़ा सरल हो जाएगा। यह बात नहीं है कि युक्तियाँ किसी बड़े शास्त्रीय तत्त्व पर अवलंबित हों, परंतु प्रचलित संगीत को शीघ्र समझ लेने की दृष्टि से ये बड़ी उपयोगी होंगी। मैं तुम्हें पहले ही बता चुका हूँ कि कल्याण ठाठ में हमें कुल तेरह जन्यरागों पर विचार करना है। अब, इन्हीं में से कुछ राग ऐसे हैं, जिनमें मध्यम बिलकुल नहीं लगता; कुछ ऐसे हैं, जिनमें मध्यम केवल अवरोह में लगता है, और कुछ ऐसे भी हैं जिनमें तीव्र मध्यम आरोह तथा अवरोह, दोनों में ही लगता है। कतिपय अन्य ऐसे हैं, जिनमें तीव्र तथा कोमल, दोनों मध्यम गृहीत होंगे। मध्यम की इसी स्थिति के आधार पर हमारे पंडितों ने कल्याण ठाठ के तेरह जन्यरागों की सुविधा के लिए तीन वर्ग किए हैं। पहले वर्ग में मध्यम बिलकुल न लगनेवाले अथवा केवल अवरोह में मध्यम लगनेवाले रागों को रखा है, दूसरे वर्ग में आरोह तथा अवरोह, दोनों ही में तीव्र मध्यम लगनेवाले रागों को रखा है और तीसरे वर्ग में उन्होंने दोनों मध्यम लगनेवाले रागों को माना है। अवरोह में तीव्र मध्यम लगनेवाले रागों को एक मध्यम लगनेवाले दूसरे वर्ग में रखना चाहिए था, परंतु अवरोह में यह स्वर विशेष महत्त्व का नहीं होता, इसी से उन्होंने ऐसा किया है। ये तीनों वर्ग केवल सुविधा की दृष्टि से किए गए हैं, अतः उनका ऐसा करना आपत्तिजनक नहीं है। ग्रंथों में इन तीनों वर्गों का उल्लेख इस प्रकार किया हुआ मिलता है :—

कल्याणीमेलजा रागा विभज्यंते त्रिधा पुनः।
अमैकमद्विमा इति सौकर्यार्थं विचक्षणैः॥

प्रश्न : यह वर्गीकरण तो सचमुच बड़ा सुन्दर हुआ। उन्होंने इसमें रागों का विभाजन किस प्रकार किया है ?

उत्तर : भूपाली राग प्रचार में औडव माना गया है तथा उसमें 'म नि' वर्जित स्वर माने गए हैं, इसलिए यह तो पहले वर्ग में ही जाएगा। चन्द्रकान्त तथा शुद्धकल्याण, इन दोनों रागों में तीव्र 'म' है; परंतु है केवल अवरोह में, अतः इन्हें भी इसी वर्ग में रखा जा सकता है। आरोहावरोह में तीव्र 'म' ग्रहण करनेवाले राग यमन, हिंदोल, मालश्री हैं, ये दूसरे वर्ग में रखे जाएँगे। तीसरे वर्ग में दोनों मध्यम लगनेवाले राग हैं, अतः इसमें केदार, छायानट, कामोद, श्याम, गौड़सारंग, यमनी-बिलावल इत्यादि राग आएँगे। कहीं-कहीं ये दो मध्यम के राग तुम्हें बिलावल ठाठ में, अर्थात् शुद्ध स्वरों के ठाठ के अन्तर्गत भी माने हुए दिखाई देंगे; परंतु प्रचार में क्योंकि इन रागों में तीव्र मध्यम भी लगाया जाता है, अतः इन्हें कल्याण ठाठ के अन्तर्गत मानने में विशेष हानि दिखाई नहीं देती, इसलिए तुम्हारे कल्याण ठाठ के रागों के वर्ग निम्नलिखित होंगे :—

१ ला—	१. भूपाली	२. शुद्धकल्याण	३. चन्द्रकांत
२ रा—	१. यमन	२. मालश्री	३. हिंदोल
३ रा—	१. हमीर	२. केदार	३. छायानट
	४. कामोद	५. श्याम	६. गौड़सारंग
	७. यमनीबिलावल		

प्रश्न : आपने पहले हमें कल्याण के जो भिन्न-भिन्न भेद बताए थे, उनके ठाठ के विषय में क्या करना चाहिए ?

उत्तर : उनमें से कुछ तो इन तीन वर्गों में हैं ही। जो भिन्न प्रकार हैं, उनका ठाठ भी भिन्न होना उचित ही है। दोनों मध्यम लगनेवाले जिन रागों को हमने देखा है, उनके विषय में भी क्या हम यह नहीं कह सकते कि वे यमन तथा बिलावल, इन दो ठाठों के मिश्रण से उत्पन्न हुए हैं ? आगे चलकर तुम्हें यह दिखाई देगा कि शुद्ध स्वरों का ठाठ ऐसे मिश्रणों के लिए बड़ा ही उपयोगी होता है। शुद्ध ठाठ होने के कारण उसमें इतर ठाठों का यथायोग्य रीति से सम्मिश्रण अप्रिय नहीं होता, परंतु उसे किस ठाठ से कितना तथा किस प्रकार मिलाना चाहिए, यही जानना कुशलता का काम है। अभी तुम इस विषय में प्रवेश मत करो।

प्रश्न : तब ठीक है ! शुद्धकल्याण के विषय में कुछ और बताइए ?

उत्तर : यह तो मैं बता ही चुका हूँ कि शुद्धकल्याण में 'म' तथा 'नि' स्वरों को नहीं लगाया जाता। मैंने यह भी कहा था कि इस राग की प्रकृति कुछ अंशों में भूपाली के ही समान है, क्योंकि उस राग में भी 'म' और 'नि' वर्जित किए जाते हैं।

इन दोनों रागों में अन्तर भी अवश्य है, क्योंकि भूपाली में 'म' और 'नि' ये स्वर आरोह तथा अवरोह, दोनों ही में वर्जित हैं। यमन संपूर्ण राग है, अतः स्पष्ट ही है कि यह इन दोनों रागों से निराला ही रहेगा। तब क्या फिर ये तीनों राग स्पष्ट रूप से स्वतन्त्र नहीं हो गए ?

प्रश्न : हाँ, ये बिलकुल स्पष्ट अलग हो गए। तथापि, क्योंकि आरोह में 'म नि' नहीं हैं, इससे यह भूपाली-जैसा; और क्योंकि अवरोह में ये स्वर हैं, इससे क्या शुद्ध-कल्याण यमन-जैसा दिखाई न देगा ?

उत्तर : हाँ, अवश्य ऐसा तो दिखाई देगा ही। यह तो हमारे संगीत की विशेषता है। एक ही राग में, यदि उसी के समान कतिपय अन्य रागों के स्वरूप कहीं थोड़े-बहुत दिखाई दें, तब भी वह अपने स्वतन्त्र लक्षणों से जगह-जगह पहचाना जा सकता है। ये इतर स्वरूप भी ऐसे कौशल से दिखाए जाते हैं कि मूल राग की बिलकुल हानि नहीं होती। एक राग में इतर रागों की थोड़ी-बहुत छाया क्यों दिखाई देती है, यह समझ में आ जाना चाहिए। यह तो हम जानते ही हैं कि मनुष्य अपने चेहरे से ही एक-दूसरे से अलग-अलग पहचाने जाते हैं। चेहरे यदि छिपा दिए जाएँ, तो क्या नीचे के भाग प्रायः भ्रम में नहीं डाल देते ? क्षण-भर के लिए रागों के विषय में भी ठाठ को शरीर के नीचे के जैसा समझा जा सकता है। रागों के जो मुख्य अंग—कतिपय नियमित स्वर-समुदाय अथवा वादी स्वर इत्यादि हैं—उन्हीं से राग स्वतन्त्र ठहराया जाता है। राग का विस्तार करते समय यदि मूल राग किंचित् आवृत हो जाए, तो कुशल गायक राग को, उस विस्तार में ठीक जगह पर ऐसी खूबी से दिखाते हैं कि श्रोताओं को संपूर्ण गायन सुसंगत तथा मधुर प्रतीत होता है। गायकों का यही सच्चा कसब (अर्जन) है। राग का विस्तार प्रारम्भ हुआ नहीं कि उस राग के जनक ठाठ से उत्पन्न होनेवाले अनेक राग उसके आस-पास आ खड़े होते हैं। जरा दुर्लक्ष्य हुआ कि मूल राग भ्रष्ट हुआ। इस बात पर गायक को सदैव ध्यान रखना पड़ता है। इसी से प्रत्येक राग सीखते समय उस राग का रंग अर्थात् उसे पहचानने के स्वर-समुदाय ध्यानपूर्वक घोटकर याद रखे जाते हैं तथा उस राग को गाते समय योग्य स्थल पर उन स्वर-समुदायों का प्रयोग करके रक्ति-गुण में कमी नहीं आने दी जाती। 'रत्नाकर' में शार्ङ्गदेव पण्डित ने राग-स्थापन-प्रकार के विषय में बताते हुए कहा है :—

स्तोकस्तोकैस्ततः स्थायैः प्रसन्नैर्बहुभंगिभिः।
जीवस्वरव्याप्तिमुख्यैः रागस्य स्थापना भवेत्॥

और उसपर टीका करनेवाले अर्थात् कल्लिनाथ पंडित ने दो-एक मनोरंजक उदाहरण देकर इस प्रकार स्पष्टीकरण दिया है :—

जीवस्वरोंऽशस्वरः। उक्तस्वरस्थानचतुष्टयप्रयुक्ताया मालप्तावुक्तलक्षणैः स्वल्पै रागावयवैर्विस्तार्यमाणायामापाततोऽभिव्यक्तस्य रागस्य रागांतर-साधारणस्थायादिप्रयोगात्स्वरूपतिरोभावे सति किंचित्प्रतीयमानता भवेदित्य-

भिप्रायः। यथा लोके सभांप्रत्यागच्छतो देवदत्तस्य स्वरूपेणाभिव्यक्तस्य ततः सभां प्रविश्योपविष्टस्य तस्य स्वसदृशरूपवेषभाषादिसांकर्यात्स्वरूप-तिरोभावेसति यथा तस्यकिंचित्प्रतीयमानत्वम्। यथा वा पृथगानीय भिन्नवर्णेषु मणिषु प्रोतस्य मुक्तामणेर्मण्यंतरच्छायोपरागात्स्वरूपतिरोभावे सति यथा तस्य किंचित्प्रतीयमानत्वं तद्वदिति।

प्रश्न : ये उदाहरण तो बड़े मजे के रहे। आप जो-कुछ बता रहे हैं, उसकी अब हमें अच्छी कल्पना हो गई। यहाँ आलप्ति के चार स्वस्थान कहे गए हैं। वे क्या हैं? यदि आप इस विषय में हमें कुछ बताना उचित समझें, तो कहिए।

उत्तर : प्राचीन संगीत में, आलाप करने के ये चार प्रकार हैं। प्रचार में आलाप किस प्रकार किया जाता है तथा तुम्हें कैसे करना चाहिए, यह मैं तुम्हें बता ही चुका हूँ। ये स्वस्थान प्राचीन संगीत के हैं। यह अलग से कहने की आवश्यकता नहीं है कि उस संगीत में इनका महत्त्व अत्यधिक था। अब तो 'कामचार प्रवर्तित्वम्' देशी संगीत का लक्षण ही हो गया है, अतः इन प्रस्थानों का विशेष महत्त्व नहीं है। गायक को प्रथम अमुक स्वर से प्रारम्भ करना चाहिए, इसके बाद अमुक स्वर पर जाना चाहिए इत्यादि बातें प्रस्थानों के प्रकरण में बताई गई हैं। यह ऐतिहासिक विवेचन है, इसी से तुम्हें बता रहा हूँ।

प्रश्न : यह हमारी समझ में आ गया। प्रचार में ये प्रकार नहीं हैं। परंतु हमारे प्राचीन विद्वान् आलाप किन नियमों से करते थे, यह तो हमारी समझ में आ जाएगा। हमें अत्यन्त सूक्ष्म विवेचन की आवश्यकता नहीं है, तथापि इस विषय में कुछ खास-खास बातें बता दीजिए।

उत्तर : अच्छी बात है। प्रत्येक राग में कोई-न-कोई एक ठाठ (अथवा स्वर-सप्तक) लगता है। यह तो तुम्हें भी मालूम है। यह भी तुम जानते हो कि प्रत्येक राग में एक वादी स्वर होता है। इन स्थानों के विषय में तुम्हें चार स्वरों के नाम याद रखने चाहिए।

प्रश्न : आपने हमें वादी, संवादी, अनुवादी इत्यादि बताए थे। उन्हें तो हमने भलीभाँति समझकर याद कर लिया है।

उत्तर : उनका दृष्टिकोण तो दूसरा ही था। अब जो मैं कह रहा हूँ, वह नई बात है। उनके नाम ये हैं—१. स्थायी स्वर, २. द्व्यर्ध स्वर, ३. द्विगुण स्वर और ४. अर्धस्थित स्वर। इनका आशय समझाता हूँ, इसे याद रखना। स्थायी स्वर का अर्थ है, वह स्वर—जिसे तुम 'वादी' स्वर कहते हो। वादी स्वर से आठवाँ 'द्विगुण' स्वर है। वादी से चौथा स्वर द्व्यर्ध है तथा द्व्यर्ध और द्विगुण के बीच में जो स्वर है, वह 'अर्धस्थित' स्वर है। स्वरों की ये जगहें तथा उनके नाम याद कर लेने पर यह तुरन्त समझ में आ जाता है कि आलाप में स्वस्थान किस काम आते हैं। 'रत्नाकर' में कहा है :—

यत्रोपवेश्यते रागः स्वरे स्थायी सकथ्यते ।
ततश्चतुर्थो द्व्यर्धः स्यात्स्वरे तस्मादधस्तने ।।
चालनं मुखचालः स्यात् स्वरस्थानं प्रथमं च तत् ।
द्व्यर्धस्वरे चालयित्वा न्यसनं तद्द्वितीयकम् ।।
स्थायिस्वरादष्टमस्तु द्विगुणः परिकीर्तितः ।
द्व्यर्धद्विगुणयोर्मध्ये स्थिता अर्धस्थिताः स्वराः ।।

प्रश्न : इसमें कुछ शब्द नए हैं, जैसे उपवेशन, चालन, मुखचाल, न्यसन इत्यादि। उन्हें समझाइए ?

उत्तर : कल्लिनाथ ने इनका स्पष्टीकरण इस प्रकार किया है :—

यत्र यस्मिंस्तत्तद्रागांशभूते षड्जादिष्वन्यतमे स्वरे राग उपवेश्यते स्थाप्यते स स्वरो रागस्थितिहेतुत्वात्स्थायीति कथ्यते । चालनं-तत्तद्रागोचित स्फुरितकंपितादिगमकयुक्तत्वेनोच्चारणं वादनं वा मुखचालः।।

'न्यसनं न्यासः' यह समझ में आ ही जाता है। अब तीसरे तथा चौथे स्वर-स्थानों के विषय में कहता हूँ। उनकी व्याख्या यह है :—

अर्धस्थिते चालयित्वा न्यसनं तु तृतीयकम् ।
द्विगुणे तु चालयित्वा स्थायिन्यासाच्चतुर्थकम् ।।
एभिश्चतुर्भिः स्वस्थानै रागालप्तिर्मता सताम् ।

प्रश्न : ये नियम कैसे सुस्पष्ट हैं। ऐसे ही यदि आज भी प्रचलित होते, तो बड़ा अच्छा था। ऐसे नियमों से यह भलीभाँति समझ में आ जाता है कि राग-विस्तार क्रम से किस प्रकार करते जाना चाहिए। आजकल प्रचार में तो ये कहीं दिखाई नहीं देंगे न ?

उत्तर : प्रचार में आलाप करते समय उसमें अस्ताई, अन्तरा इत्यादि विदारी अर्थात् भिन्न-भिन्न भाग दृष्टिगोचर होते हैं। परंतु यह नहीं कहा जा सकता कि स्वस्थानों के ये नियम अब भी तुम्हें दृष्टिगोचर होंगे ! जहाँ तक शक्य है, वहाँ तक यदि इनका कोई थोड़ा-बहुत उपयोग करे, तो अनुचित प्रतीत न होगा। अस्तु, पर हाँ ! मैं पहले क्या कह रहा था ?

प्रश्न : शुद्धकल्याण का विवेचन चल रहा था तथा उसी में वह बात आ गई थी कि इस राग में भूपाली तथा यमन की थोड़ी-बहुत छाया दिखाई दे सकती है। ऐसा क्यों होता है, इस विषय का कारण बताते हुए आपने 'रत्नाकर' के उद्धरण उपस्थित किए थे।

प्रश्न : अच्छी बात है ! तब फिर हम अपने प्रस्तुत विषय की ओर अग्रसर हों। जिन गायकों को शुद्धकल्याण भलीभाँति नहीं आता है, उनके गाने में भूपाली अधिक दिखाई देता है। परंतु जब वे अवरोह में कहीं-कहीं 'म नि' लगा देते हैं, तो लोगों को ऐसा प्रतीत होता है कि वे अशुद्ध भूपाली गा रहे हैं; क्योंकि शुद्धकल्याण वस्तुतः कल्याण का ही एक प्रकार माना जाता है, अतः इसमें यमन का भाग अवश्य दिखाई देगा। प्रायः गायक यमन के अंग को युक्ति से प्रयुक्त करते हैं। यमन तो श्रोताओं द्वारा तुरंत ही पहचान लिया जानेवाला राग है। बहुत-कुछ यमन का ही स्वरूप लेकर गायक उसके आरोह में म, नि वर्जित कर देते हैं। यह देखकर श्रोताओं को बड़ा आनंद आता है। इसे भूपाली कहें तो यमन का अंग स्पष्ट विद्यमान है और यदि यमन कहें तो म, नि अतिशय गौण दृष्टिगोचर होते हैं। यह देखकर सुननेवाले बड़े ही प्रसन्न होते हैं। इस राग को रात्रि के प्रथम प्रहर में गाते हैं। इसे प्रथम प्रहर का कहना तुम्हारे लिए कोई नवीन बात नहीं है। एक-एक प्रहर के यद्यपि अनेक राग हैं, तथापि प्रत्येक गायक उन सभी को एक ही समय में तो नहीं गा सकता। कोई यमन गाता है, कोई भूपाली गाता है, तो कोई शुद्धकल्याण से ही अपना गाना प्रारंभ करता है। ये सब बातें प्रचार में दिखाई देंगी। यह तो तुम जानते ही हो कि पहले प्रहर का अर्थ संधिप्रकाश के बाद का प्रहर है। संधिप्रकाश के रागों में प्रायः रे, ध कोमल, ग, नि तीव्र तथा मध्यम तीव्र—ये स्वर होते हैं। ऐसे राग सुनते-सुनते जैसे-जैसे रात्रि आने लगती है, वैसे-वैसे गायक तथा श्रोता-समूह को भिन्न ठाठों के रागों में प्रवेश करने की उत्सुकता होने लगती है। यह वस्तुतः अनुभूत बात है। अतः ऐसे प्रसंग पर तीव्र 'रे, ध' लगनेवाले रागों के गाने से जो आनंद प्राप्त होता है, उसका यथायोग्य रीति से वर्णन करना कठिन है। संधिप्रकाश के राग, करुण तथा शांत, इन रसों के लिए योग्य हैं तथा इसी से उनमें गांभीर्य भी अधिक माना जाता है। इस समय पर मन में गंभीर विचारों का आना उचित ही है, इसे कोई भी स्वीकार करेगा। इस समय लोग अपने दिन-भर के काम से छुटकारा पा जाते हैं तथा स्वमेव अपने-अपने सुख-दुःख के विचार ईश्वर के सम्मुख उपस्थित करने में प्रवृत्त होते हैं। कुछ अंशों में यह बात सर्वथा सत्य है कि संधिप्रकाश रागों की प्रकृति क्षुद्र नहीं होती। इन रागों को प्रत्यक्ष सुनकर ही हृदय उनका समुचित रसास्वादन कर सकता है। मन पर इन रागों का प्रभाव कुछ विलक्षण ही पड़ता है। तुम्हारी स्वर-मालिका जो 'पूर्वी' ठाठ में है, वह कुछ ऐसे ही प्रकार की है। ग्रन्थों में इस विषय के संबंध में यह कहा गया है :—

संधिप्रकाशरागाणां मृदुता रिधयोस्ततः।
मेलमेनं समारभ्य तीव्रत्वे परिवर्तिता ॥
परिवर्तनमप्येतन्नूनं संतोषकारणम्।
भिन्नरससमास्वादान्मनोहर्षं प्रपद्यते ॥

प्रश्न : रागों के गाने के समय निर्धारित करने में कुछ रहस्य है, यह आपने हमें बताया ही है। हमें भी ऐसा ही प्रतीत होता है, लेकिन प्रचार में गायक समय के इन नियमों का पालन करते भी हैं ?

उत्तर : मैं समझता हूँ कि यह नहीं कहा जा सकता कि प्रचार में सभी राग समय के नियमित प्रमाण से ही गाए जाते हैं। कुछ खास-खास तथा लोकप्रिय रागों के विषय में समय-संबंधी भेद बिलकुल नहीं है; परंतु समय के संबन्ध में कुछ मतभेद है। हमें लक्ष्यसंगीतकार का मत स्वीकार कर लेना चाहिए, बस यही काफी होगा। वह मत मुझे भी पसंद है। मैंने यह कहा है कि प्रचार में समय के नियम के अनुसार गायक अपने राग नहीं गाते। इसका एक कारण सहज में यही समझा जा सकता है कि हमारे यहाँ के लोग, बेचारे अपने-अपने धंधे-रोजगार में उलझे पड़े हैं। (कारण यह है कि ऐसा किए बिना उपजीविका कैसे चले ?) इससे नियमित समय पर नियमित रागों को सुनने और गाने का नियम भला कैसे प्रचलित होता ! ऐसे लोगों को सारंग, भीमपलासी, धनाश्री इत्यादि दिनगेय राग दिन के अतिरिक्त कहीं सुनने का प्रसंग आने से रहा। तात्पर्य यह है कि इस शास्त्र-नियम का आशय इतना ही समझना चाहिए कि नियमित राग नियमित समय पर अपना-अपना प्रभाव अधिक संतोषप्रद रीति से व्यक्त करते हैं। तुम कहीं गाना सुनने जाओ, तो तुम्हें उलटा यह दिखाई देगा कि गायक दो-तीन घंटे में पाँच-पच्चीस रागों की झड़ी लगा देगा। फिर एक लाभ यह भी है कि रागों के समय निर्धारित कर देने से उन्हें पद्धति के अनुसार सीखने के लिए उत्तम साधन उपलब्ध होगा। समय के नियम को परिस्थितियों के अनुसार शिथिल कर देने की प्रथा पूर्व-काल से प्रचलित दिखाई देती है। 'दर्पण' में एक जगह यह कहा है :—

यथोक्तकाल एवैते गेया पूर्वविधानतः ।
राजाज्ञया सदागेया नतु कालं विचारयेत् ।।

तरंगिणीकार का भी यही संकेत है :—

दशदंडात्परं रात्रौ सर्वेषां गानमीरितम् ।
रंगभूमौ नृपाज्ञायां कालदोषो न विद्यते ।।

यह मैं तुम्हें पहले ही बता चुका हूँ कि योरोप के कतिपय पंडितों का यह कहना है कि समय के नियम को स्थापित करने में कोई अर्थ नहीं है। हमारे देश के कुछ विद्वानों का भी यही मत है। मि० बनर्जी अपने 'गीतसूत्रसार' (Grammer of vocal music) नामक ग्रंथ में पृष्ठ ५८ पर कहते हैं—'हमारे यहाँ राग-रागिनियों को दिन तथा रात्रि के नियमित समयों पर गाने की जो प्रथा चली आ रही है, वह केवल काल्पनिक है। विवेचकों की समझ में यह बात तुरंत आ जाएगी, स्वर-समुदायों में ऐसी कोई विशेषता नहीं है, जिससे उन्हें किसी खास समय पर न गाने से, इच्छित फल प्राप्त न हो। संगीत का सब उद्देश्य स्वरों द्वारा मन के भाव व्यक्त करके श्रोताओं के मन पर उनका स्वरूप उत्पन्न करना भर है। अतः इन भावों को यथोचित रूप में व्यक्त करने के लिए समय की अपेक्षा नहीं है। जिन भावों को हम प्रातःकाल में व्यक्त करते हैं, उन्हीं भावों को क्या रात्रि में व्यक्त नहीं कर सकते ? अवश्य ही ऐसा किया जा सकता है। यह बात स्वीकार है कि संगीत के फल का सम्बन्ध गायक तथा श्रोता के मन से है, परन्तु यह कहना ठीक प्रतीत

नहीं होता कि किसी एक निश्चित समय पर ही सुनने पर सभी लोगों के मन की स्थिति समान रहती है। यदि ऐसा होता, तो राग-समय-विषयक यह विधान ठीक होता। हम यह देखते हैं कि हमारे अनेक लोगों को स्नान तथा आहार, इन दो प्रसंगों पर संगीत की आवश्यकता नहीं होती। योरोपियन लोगों को भोजन करते समय बैंड की आवश्यकता प्रतीत होती है। हमारे गायक लोग और भी विचित्र बातें कहने लगते हैं। वे कहते हैं कि राग तथा रागिनी—सभी देवता हैं। चाहे जिस समय उनका आह्वान करने से वे प्रार्थना नहीं सुनते, परंतु नियमित समय पर नियमित रीति से प्रार्थना करने से वे प्रसन्न होकर गायक तथा वादकों को अद्भुत रंजन-शक्ति प्रदान करते हैं। सम्पूर्ण पृथ्वी-मंडल पर सभ्य समाज में संध्याकालान्तर बहुधा संगीतालोचन करने की प्रथा है। तब जो बेचारे नौकरी-पेशा लोग हैं, क्या वे प्रातःकालीन रागों की कभी चर्चा ही न करें? क्या यह अन्याय न होगा? अस्तु, बात यही है। प्राचीन ग्रंथकार ही इस विषय पर एकमत कहाँ हैं? 'पारिजात' में भूपाली को प्रातःकाल में गाना तथा भैरवी को सब समय गाना लिखा है। सुना जाता है कि दक्षिण में यमन प्रातःकाल तथा भैरवी रात्रि में गाई जाती है। किसी के मत से ललित, रामकली, तोड़ी आदि रागों को सन्ध्या-समय गाने से उत्तम कार्य होता है; जैसे : —

छायागौडी तथाचान्या ललितां च तथा मता।
मल्लारिका तथा छायागौरी तु तोडिकाह्वया॥
गौडी मालवगौडश्च रामकिरी तथैव च।
एता रागा विशेषेण प्रातः काले च निर्मिताः॥
सायमेषांतु गानेन महतीं श्रियमाप्नुयात्॥

—संगीतसारसंग्रह

हमारे यहाँ के गायक इस मत को नहीं मानेंगे, परंतु हमारे कुशल पण्डितों ने इसका एक उत्तम समाधान किया है और वह यह है :—

एवं बहुविधाचार्यैर्गानकालः समीरितः।
यस्मिंदेशे यथा शिष्टैर्गीतं विज्ञस्तथाचरेत्॥

—संगीतनिर्णय

कोई कहेगा कि तब फिर इस प्रथा का उद्‌गम-स्थान क्या है? नाटकों में हम प्रायः पढ़ते हैं कि बड़े-बड़े राजाओं के प्रासादों में प्रहर-प्रहर पर वाद्य-वादन का प्रचार रहा है। आजकल हमारे देवालयों में भी क्या बहुत-कुछ ऐसी ही प्रथा नहीं है। प्रत्येक प्रहर के लिए रोज-रोज, नए-नए राग कहाँ से लाए जाएँ? अतः हमारे धूर्त संगीत-व्यवसायी लोगों ने एक-एक समय के लिए, एक-एक राग नियमित कर दिया। × × × इस प्रकार इन रागों के समय निश्चित करने की प्रथा चल पड़ी। अभ्यास बड़ा ही प्रभावशाली होता है। अभ्यास से नवीन स्वभाव बनता है। भैरव का सम्बन्ध प्रातःकाल से कैसे है? उसे सुनने पर प्रातःकाल का

स्मरण क्यों होता है ? ऐसे प्रश्न किए जा सकते हैं। परंतु इनका उत्तर केवल यही है कि यह Association (स्मृति-उद्दीपन) का फल है। यदि दो बातों को हम सदैव साथ-साथ देखते रहें, तो फिर कभी उनमें से केवल एक ही दिखाई देने पर भी तुरन्त दूसरी का स्मरण हो जाता है।" मैंने तुम्हें मि० बनर्जी के मत का यह सार बता दिया है। परंतु Sir William Jones ने एक स्थल पर यह कहा है :—

"Whether it had occurred to the Hindoo Musicians that the velocity or slowness of sounds must depend, in a certain ratio, upon the rarefaction & condensation of the air,so that their motion must be quicker in summer than in spring or autumn & much quicker than in winter, I cannot assure myself, but am persuaded that their primary modes in the system of Pavava were first arranged according to the number of Indian Seasons."

मैं तुम्हें अभी यह बता चुका हूँ कि मैं समय के महत्त्व को माननेवालों में से एक हूँ। किस राग का क्या परिणाम होता है, यह रागों को भलीभाँति समझे बिना तुम्हारी समझ में कैसे आएगा ? अतः फिलहाल इस विवादग्रस्त विषय को एक ओर हटाकर हम प्रस्तुत विषय की ओर अग्रसर हों। अभी तुम 'यथाकाले समारब्धं गीतं भवति रंजकम्' इतना ही स्वीकार करके आगे बढ़ो। एक अन्य बात भी याद रखनी चाहिए और वह यह है कि यह न समझना चाहिए कि आजकल जो रागों के समय प्रचलित हैं, वे सर्वथा ग्रंथों में कहे हुए समयों के अनुसार हैं। इसका कारण यही है कि ग्रंथोक्त राग-स्वरूप अब अनेक स्थलों पर परिवर्तित हो गए हैं। हमारा संगीत कुछ अंशों में नवीन ही है तथा इसी से समय का नियम भी प्राचीन नियम से कहीं-कहीं पृथक् हो गया है।

प्रश्न : यह हमारी समझ में आ गया। अब शुद्धकल्याण के विषय में आगे चलिए ?

उत्तर : हाँ, जब तक गायक इस राग को सावकाश रीति से गाता है, तब तक तो वह म, नि स्वर अवरोह में बड़ी खूबी से दिखाकर यमन तथा भूपाली, इन दोनों से तथा चन्द्रकांत नामक जो राग है, उससे भी इस राग को पृथक् करके दिखा देता है, परंतु इसमें द्रुत तानों का आरम्भ करते ही यह कृत्य उसके लिए कठिन हो जाता है। क्योंकि इस प्रकार की अड़चन पड़ना सम्भव है, इसी से कुछ चतुर लोग इस शुद्धकल्याण में 'रि' तथा 'प' इन दो स्वरों का संवाद मानते हैं। मेरा यह कथन तुम्हें कुछ विचित्र-सा प्रतीत होगा। इस राग में 'रि' तथा 'ध' ये दोनों स्वर लगते हैं, फिर 'रि' स्वर का संवादी 'प' क्यों माना जाए ? यह प्रश्न तुम्हारे मन में उठेगा।

प्रश्न : आपने ठीक पहचाना। यही प्रश्न हम अभी पूछनेवाले थे। ऋषभ वादी हो, तो उसका पाँचवाँ स्वर अर्थात् धैवत संवादी होगा। ऐसा एक नियम आपने हमें पहले बताया था। यह उस नियम का एक अपवाद प्रतीत होता है।

उत्तर : हाँ, अपवाद मान लेने में भी कोई हर्ज नहीं। ग्रंथों में वादी-संवादी स्वरों में ८ या १२ श्रुतियों का अंतर बताया है। ऐसा नियम बताकर ग्रंथकारों ने इसके उदाहरण भी दिए हैं :—

समौ, सपौ, रिधौ, चैव निगौ संवादिनौ मिथः।
एवं शुद्धस्वरेषूक्तः संवादी स्वरनिर्णयः॥
साधारणाख्यगांधारकैशिक्याख्यनिषादयोः।
तथैवांतरकाकल्योः संवादो विकृतेष्वपि॥
शुद्धऋषभसंवादी वराळीमध्यमस्तथा।

प्रश्न : आपने अभी तक हमें श्रुतियों के विषय में नहीं समझाया। यह शब्द बार-बार लोगों के मुँह से सुनाई पड़ता है।

उत्तर : श्रुतियों के विषय में तुम्हें दो शब्द आगे बतानेवाला था। खैर, थोड़ा-सा अंश यहाँ भी समझ लो। तुम्हारे-जैसों के लिए श्रुति की कल्पना कराना कठिन नहीं है। यह तुम जानते ही हो कि अपने स्वर-सप्तक में हमने मुख्य ७ स्वर ही माने हैं। यदि हम इन सातों स्वरों के बजाय सप्तक में २२ स्वर मानें, तो क्या दशा होगी ?

प्रश्न : ऐसी दशा में स्वरों का अंग बहुत ही स्वल्प हो जाएगा और विकृत स्वरों की संख्या बहुत बढ़ जाएगी। परंतु इसमें हम अपने ७ शुद्ध स्वर और ५ विकृत स्वरों को भी सम्मिलित मान रहे हैं और उसी दृष्टिकोण से यह उत्तर दिया है।

उत्तर : तुम्हारी कल्पना ठीक है। इन २२ स्वरों में तुम्हारे १२ स्वर अवश्य दिखाई देंगे। इन २२ छोटे-छोटे स्वरों को ही श्रुति कहते हैं। श्रुति शब्द का अर्थ 'नाद' है। 'श्रूयते इति श्रुतिः' इसमें कोई गूढ़ तत्त्व नहीं है।

प्रश्न : परंतु इस व्याख्या के अनुसार तो परस्पर वस्तुओं के रखने, टकराने आदि की ध्वनि भी श्रुति कहलाएगी; क्योंकि आपकी परिभाषा है कि जो सुनाई दे सके, उसे श्रुति कहते हैं।

उत्तर : एक दृष्टि से ऐसा तर्क ठीक है, परंतु संगीत में उपयोगी श्रुति, पंडितों ने भिन्न प्रकार से बताई है। 'श्रुति' की व्याख्या इस प्रकार है—'नित्यं गीतोपयोगित्वमभिज्ञेयत्वमुत्तमम्'।

इस व्याख्या के कारण तुम्हारी उपर्युक्त ध्वनियाँ गीतोपयोगी न हो सकने के कारण श्रुति नहीं हो सकतीं।

प्रश्न : खैर, यह हम मान गए, परंतु फिर गीतोपयोगी नाद २२ ही क्यों हैं ? एक सप्तक में तो इससे भी अधिक नाद निकल सकते हैं।

उत्तर : इसका कारण है—'अभिगेयत्वम्'। केवल गीतोपयोगी नाद ही नहीं, परंतु स्पष्ट रूप से पहचाने जा सकनेवाला नाद ही श्रुति कहलाएगा। ऐसे २२ नाद विद्वानों ने एक सप्तक में ठहराए हैं। मेरे खयाल से तो यह २२ संख्या भी कम नहीं है। श्रुतियाँ इससे अधिक भी हो सकती हैं। इस बात को जानते हुए ग्रंथकारों ने स्पष्ट लिखा है–'केशाग्रव्यवधानेन बह्वयोऽपि श्रुतयोमता:, वीणायांच तथा गात्रे संगीतज्ञानिनां मते'—यह कथन पंडित अहोबल ने अपने ग्रन्थ 'संगीत-पारिजात' में बताया है।

प्रश्न : आपने कहा है कि हमारे १२ स्वर भी २२ श्रुतियों के अन्तर्गत ही हैं। फिर श्रुति और स्वर का भेद क्या किया गया है ?

उत्तर : मैं संक्षेप में बता देता हूँ। प्रत्येक राग को तुम किन्हीं नियमित स्वरों में ही गाते हो। वे स्वर ५, ६, ७ (कभी-कभी इनसे अधिक भी) होते हैं। अब यह ध्यान में रखने की बात है कि उस राग में जितने नाद (श्रुति) उपयोगी मानकर काम में लिए जाते हैं, वे सब उस राग के लिए स्वर माने जाते हैं। जिन शेष नादों का उपयोग नहीं होता, वे केवल श्रुति ही रह जाते हैं। स्वर और श्रुति एक-दूसरे से भिन्न-भिन्न हैं। पारिजातकार ने इसे स्पष्ट समझाया है :—

श्रुतयः स्युः स्वराभिन्ना श्रावणत्वेन हेतुना ।
अहिकुण्डलवत् तत्र भेदोक्तिः शास्त्रसम्मता ॥
सर्वाश्च श्रुतयस्तत्तद्रागेषु स्वरतां गताः ।
रागाहेतुत्व एतासां श्रुतिसंज्ञैव संमता ॥

श्रुति-संबंधी इतनी जानकारी ही इस समय तुम्हारे लिए पर्याप्त है। 'रत्नाकर' की टीका में पंडित कल्लिनाथ ने श्रुति और स्वर के भेदों का स्पष्टीकरण किया है। इसे आगे देखेंगे। अब हम पुनः वादी और संवादी स्वरों के मध्य के अन्तर पर ध्यान दें। ग्रन्थों में स्वरों की श्रुतियों का विभाजन इस प्रकार किया है। 'चतुश्चतुश्चतुश्चैव षड्जमध्यमपंचमाः द्वेद्वेनिषादगांधारौ त्रिस्त्रीऋषभ-धैवतौ'। प्रत्येक स्वर अपनी अन्तिम श्रुति पर शुद्ध अवस्था में आता है, ऐसा मत ग्रन्थकारों का है। इस परिमाण से षड्ज चौथी श्रुति पर, ऋषभ ७-वीं पर, गांधार ९-वीं पर, मध्यम १३-वीं पर, पंचम १७-वीं पर, धैवत २०-वीं पर और निषाद २२-वीं श्रुति पर शुद्ध रूप में आता है। अब वादी-संवादी के नियम से 'सा' स्वर का संवादी 'प' स्वर षड्ज से ठीक १२ श्रुति के अन्तर पर है, क्योंकि मध्य में रे, ग, म स्वरों की ९ श्रुतियाँ आ जाती हैं और पंचम की ३ श्रुतियाँ और लगती हैं, तब कहीं शुद्ध पंचम आता है। इस तरह 'सा' और 'प' के मध्य में १२ श्रुतियों का अन्तर हो जाता है, तब 'सा' का संवादी 'प' हो जाता है। इस नियम से 'रे' का संवादी 'ध' और 'ग' का संवादी 'नि' हो जाता है। परंतु यह नियम अन्य स्वरों में बिलकुल ठीक-ठीक लगने के विषय में नहीं कहा जा सकता।

इसके विपरीत चतुर्दण्डिकार ने इस प्रकार कहा है—'शुद्धश्चमध्यमः शुद्धनिषादश्चेत्युभौस्वरौ । श्रुत्यष्टकेनांतरितावपि संवादिनौ नहि ।'

सारांश यह है कि प्रत्येक स्वर का ५-वाँ स्वर उसका संवादी निर्विवाद हो सकता है। अन्य स्वरों के संवादी-प्रकार लोक-व्यवहार पर अवलम्बित रहते हैं; तो भी ऐसा माना जाता है कि उपर्युक्त प्रकार के अलावा संवादी स्वरों का अन्तर यथासंभव ८ श्रुति का होता है। यह विधान भी आंशिक रूप से ठीक है, क्योंकि संवादी स्वर भी राग में एक महत्त्व का स्वर होता है। यदि वादी के अत्यन्त निकट हो जाए, तो वादी का महत्त्व कम हो जाता है।

विवादी स्वरों का अन्तर १ श्रुति-मात्र होता है—यह कथन भी प्रचलित विवादी शब्द की संगति में ठीक नहीं कहा जा सकता। मि० बनर्जी का कथन है कि प्राचीन काल में वादी-विवादी स्वरों का रहस्य अवश्य ही कुछ भिन्न रहा होगा। उनके इस कथन का कारण मैं तुम्हें कुछ बता ही चुका हूँ, परंतु पुनः और बता देता हूँ। मि० बनर्जी एक विद्वान् और स्वतंत्र विचारक संगीतज्ञ थे। उनके कथन को सम्पूर्ण रूप से नहीं मानते हुए भी हमें अपने विचार करने के हेतु उनके कथन को समझना आवश्यक है। वे कहते हैं—'हमारे यहाँ प्रायः यह भी माने हुए हैं कि प्रत्येक राग में वादी, संवादी, विवादी और अनुवादी स्वर होना ही चाहिए और इन्हीं की सहायता से राग-रूप का निर्माण किया जाना संभव है।' मेरे विचार से इस धारणा में भ्रम का अंश ही अधिक है, और यह संस्कृत-ग्रंथों के कारण ही प्रविष्ट हुआ है। राग में अधिक प्रयुक्त स्वर 'वादी' और 'वादी' स्वर से अल्प प्रयुक्त स्वर 'संवादी' कहलाता है। इन दोनों से अल्प महत्त्व के स्वर 'अनुवादी' और अत्यन्त अल्प अथवा अव्यवहृत स्वरों को 'विवादी' कहते हैं। संस्कृत-ग्रंथों में इन स्वर-नामों का प्रयोग भिन्न धारणा से किया गया है।

'सोमेश्वर' का कथन है कि 'राग' में जो स्वर अधिक आता है, वह स्वर अंश स्वर या वादी स्वर कहलाता है; जैसे मालकोंस, केदार आदि में मध्यम, झिझोटी में गांधार, कालिंगड़ा में पंचम, विभास में धैवत स्वर वादी है। प्रचार में यह नियम इतना अधिक कठोर नहीं है। जिसे केदार राग का उत्तम ज्ञान है, वह बिना मध्यम को प्रधानता दिए भी राग-रूप दिखा सकता है। अन्य रागों में भी ऐसा ही समझना चाहिए। स्वरों का अल्प या बहुत प्रयोग गायक की इच्छा पर निर्भर होता है। यदि हम केदार, मालकोंस आदि रागों को भी एक ओर रहने दें, तो ऐसे कितने राग निकलेंगे, जिनमें वादी की प्रबलता इसी प्रकार रहती है। मेरे खयाल से यह संख्या अधिक नहीं हो सकती।

यह एक बहुमत-सा ही हो गया है कि सब प्रकार के मल्लार, भैरव, भीमपलासी, मेघ, ललित—इन रागों में वादी स्वर 'म' ही होता है। बिहाग, पूरिया, जयन्त, गौड़सारंग रागों में वादी 'ग' होगा। यमन, यमनकल्याण, शुद्धकल्याण, कामोद, जोगिया, श्री, रामकली, मुलतानी, तोड़ी के प्रकार, शहाना, अड़ाना—इनमें प वादी; हमीर, अल्हैया में ध वादी; छायानट, वृन्दावनी, कान्हड़ा में रे वादी स्वर व्यवहृत

होते हैं, परन्तु प्रायः उपर्युक्त विचार भी निश्चित नहीं है। यदि यमन में वादी 'प' को कहा जाए, तो कोई कह सकता है कि इसका वादी 'ग' क्यों नहीं हो सकता। यमन में 'प' के समान 'ग' का प्रयोग भी अत्यधिक किया जाता है। इसी प्रकार 'रे' और 'नि' स्वरों के विषय में कहा जा सकता है। तीव्र 'म' को भी कोई इसी प्रकार बता सकता है। कुशल गायक इन समस्त स्वरों को बढ़ाकर गाते दिखाई देते हैं, और ऐसा करने से भी उनका राग भ्रष्ट नहीं होता। जो कुशल गायक नहीं हैं, उनके द्वारा ऐसा प्रयोग सफल नहीं हो सकता। उपर्युक्त कथन का सार इतना ही है कि वादी स्वर का नियम अटल नियम नहीं कहा जा सकता। यह विषय भी प्राय: भाषाशास्त्र-जैसा है। यह कथन ठीक है कि प्रचार में वादी-संवादी की धारणा पर ही कोई राग नहीं सिखाए जा सकते। ऐसा करने पर इसके विपरीत शिक्षण-कार्य कठिन ही हो जाएगा।

विवादी स्वरों के विषय में इस प्रकार का बहुमत है कि जिस राग में जो स्वर वर्ज्य किए जाते हैं, वे ही उसमें विवादी माने जाते हैं; जैसे—वृन्दावनीसारंग में 'ग', बिहाग में 'रे', हिण्डोल व मालकोंस में 'रे' तथा 'प' आदि। ग्रथों में वादी, संवादी, अनुवादी और विवादी स्वर राग में लगनेवाले माने हैं। × × × ×

इस समय यह भी कहा जा सकता है कि हमें ग्रंथों के आधार पर चलना आवश्यक नहीं है। वादी, विवादी स्वरों का प्रचलित अर्थ सझमकर ही राग सीखने में सरलता होती है, इस कथन को ठीक माना जा सकता है। ऐसा मानने पर मैं वादी-विवादी निश्चित करने का एक उपाय बताता हूँ। जिन प्रसिद्ध रागों की पहले चर्चा की जा चुकी है, उनके वादी-संवादी स्वरों के विषय में कोई उलझन नहीं है, क्योंकि वे प्रसिद्ध राग-रूप हैं; परंतु जो राग इतने प्रसिद्ध नहीं हैं, उनके लिए कुछ स्थूल नियम इस प्रकार बनाए जा सकते हैं। जो शुद्ध ठाठ का सम्पूर्ण राग हो, अथवा जिस राग में 'ग' के सिवाय अन्य स्वर कोमल लगाए जाते हैं, उन रागों में वादी स्वर 'ग' या 'प' ही शोभा देगा। यदि 'ग' वादी हो, तो 'प' संवादी कहलाएगा। ऐसे ही यदि 'प' वादी हो, तो 'ग' संवादी रखा जाए। (यह एक साधारण नियम बताया गया है) अन्य स्वर अनुवादी कहे जाएँगे। सम्पूर्ण रागों में विवादी स्वर नहीं होते। शुद्ध ठाठ में जो गाया जाए अथवा जिसमें 'ग' व 'म' के सिवाय अन्य कोई स्वर विकृत हों, इसी प्रकार वे औडव-षाडव राग जिनमें पंचम वर्ज्य किया जाता है, इनमें 'ग' अथवा 'प' स्वर वादी होगा और 'ध' अथवा कोमल 'नि' संवादी होगा। जिन रागों में 'रे, म, ध, नि' इनमें से कोई एक स्वर वर्ज्य हो, उनमें 'ग' या 'प' स्वर वादी होगा। 'म' वादी स्वर लेने पर 'ध' संवादी, और 'प' वादी लेने पर 'रे' संवादी होगा। जिन रागों में 'ग' स्वर वर्ज्य हो, उनमें तीव्र मध्यम भी प्राय: नहीं लिया जाता। यथासंभव विकृत स्वरों को वादी-संवादी नहीं बनाया जाता। जहाँ 'ग' कोमल आता हो, वहाँ 'म' अथवा 'प' स्वर वादी होंगे। 'म' वादी होने पर शुद्ध 'ध' संवादी होगा। 'प' वादी होने पर शुद्ध 'रे' संवादी होगा। यदि ऐसे रागों में 'रे' स्वर कोमल हो, तो वह संवादी-रूप में नहीं लिया जाएगा। ऐसी दशा में 'ग' या 'प' के सिवाय किसी अन्य स्वर को प्रधानता दी जाती है और ऐसा किया जाने पर वही स्वर वादी हो जाता है।

वादी-संवादी स्वर के विषय में ग्रंथों के कथन की समीक्षा करते हुए मि० बनर्जी आगे कहते हैं—'शार्ङ्गदेव, मतंग, दत्तिल आदि ग्रंथकारों के मत से इन दो स्वर वादी-संवादी के मध्य में १२ या ८ श्रुति का अन्तर होना चाहिए। ये परस्पर संवादी हो जाते हैं; जैसे 'सा' का संवादी 'प' अथवा 'म' और 'म' या 'प' का संवादी 'सा'। इसी नियम के अनुसार 'रे' और 'ध' व 'ग' और 'नि' स्वर परस्पर संवादी हैं। यदि हमने चार ऐसे रागों की कल्पना की है, जिनमें 'रे' स्वर वादी होता है तो संवादी 'ध', अनुवादी 'प' और विवादी 'ग' होगा। किंतु इन चार रागों का अन्तर कैसे स्पष्ट रूप से बताया जा सकेगा? मेरी समझ में उपर्युक्त रागों में पार्थक्य बताना असंभव हो जाएगा! मेरी राय से उपर्युक्त रागों में प्राचीन काल में इन शब्दों का रहस्य कुछ दूसरा ही होना चाहिए।"

यह तर्क का विषय है कि इन वादी-संवादी स्वरों में 'हारमनी' का संबंध है। यह स्पष्ट है कि प्रत्येक स्वर का उसके पाँचवें स्वर से निकट सम्बन्ध है और इस सम्बन्ध के कारण उसका संवादी नाम बिलकुल योग्य ही है। 'सा' से 'प' आरोह में १२ श्रुति के अन्तर पर है, परन्तु अवरोह में 'सा' से 'प' केवल ८ ही श्रुति के अन्तर पर है! इसी प्रकार 'म' से 'सा' का अन्तर आरोह में १२ श्रुति व अवरोह में ८ श्रुति होता है।

यह देखते हुए, यह स्पष्ट नियम हो जाता है कि नियत वादी स्वर का पाँचवाँ स्वर ही संवादी होता है। मध्य-काल के ग्रंथकारों ने इस प्राचीन रहस्य को न समझते हुए लिख दिया है कि वादी-संवादी स्वरों में ८ या १२ श्रुति का अंतर होता है; इस प्रकार उन्होंने 'सा' बादी के दो संवादी 'म' और 'प' लिख दिए हैं। परंतु वे ही ग्रंथकार 'म' से ८ श्रुति के अन्तर पर के स्वर 'नि' को संवादी कबूल नहीं करते। क्या यह शंकास्पद नियम नहीं है? हमारे मत से तो स्पष्ट रूप से वादी स्वर का पाँचवाँ स्वर संवादी बताया है, यह बिलकुल युक्तिसंगत है और इस नियम से 'म' का संवादी स्वर 'सा' होगा। जिस राग में वादी स्वर 'सा' होगा, उसमें 'प' वर्जित नहीं होगा, क्योंकि वह संवादी होता है और जिस राग में 'प' वर्जित किया जाता है, उसमें वादी स्वर 'सा' नहीं होता। मालकोंस राग में पंचम वर्ज्य लेने के कारण 'सा' को बादी न बनाकर 'मध्यम' को वादी बनाया गया है।

'संगीतरत्नाकर' की टीका करते हुए सिंहभूपाल इस प्रकार लिखते हैं कि वादी स्वर के स्थान पर संवादी स्वर का प्रयोग करने पर राग-हानि होती है; जैसे—'यस्मिन्गीते अंशत्वेन परिकल्पितः षड्जः तत्स्थाने मध्यमः क्रियमाणो रागो न भवेत्'। मेरा खयाल है कि इस टीकाकार ने मूल ग्रंथ का अर्थ करते हुए बहुत ही गड़बड़ी कर दी है।

'मतंग' के मत से दो श्रुति के अन्तर का स्वर विवादी कहा है; जैसे—'रे' का विवादी 'ग', 'ध' का विवादी 'नि'। किंतु इसका क्या अर्थ है, विवादी को श्रुति

कटु समझा है या और कुछ ? एक मत से नि और ग स्वरों को अन्य सभी स्वरों का विवादी कहा है। 'निगावन्यविवादिनौ'— इस कथन का क्या तात्पर्य है, यह स्पष्ट रूप से कहीं भी नहीं बताया गया है।

अनुवादी स्वर की व्याख्या में कहा गया है कि जो स्वर संवादी और विवादी नहीं होते, उन्हें अनुवादी कहते हैं; जैसे सा के अनुवादी 'रे' और 'ध', प के अनुवादी भी 'रे', 'ध' एवं रे के अनुवादी 'म' और 'सा'। इन अनुवादी स्वरों के विषय में सिंहभूपाल का कथन इस प्रकार है :—

यद्वादिना रागस्य रागत्वं समुदितं तत्प्रतिपादकत्वं नाम अनुवादित्वम्। ततश्च षड्जस्थाने ऋषभः प्रयुज्यमानः ऋषभस्थाने षड्जः प्रयुज्यमानः जातिरागविनाशकरो न भवति ॥

इस कथन का क्या अर्थ किया जा सकता है ? मध्यम-ग्राम में संवादी व अनुवादी स्वरों के विषय में थोड़ा भेद है; वहाँ पर स का संवादी 'प' न होकर 'म' माना गया है। रे के संवादी 'प' और 'ध' होंगे। विवादी आदि स्वर षड्ज-ग्राम के अनुसार ही हैं। स के अनुवादी 'प', 'ध', 'रे' और रे के अनुवादी 'म' और 'प' माने गए हैं।

विवादी स्वर का अर्थ तो यह है कि जो स्वर, वादी-संवादी और अनुवादी स्वरों के कार्य में बाधक हों, वे स्वर विवादी कहलाते हैं। परंतु ऐसे स्वर रागों में बिलकुल नहीं होते हैं। शास्त्रकार कहते हैं कि दो श्रुति के अन्तर का स्वर विवादी होता है। यह कथन भी ठीक प्रतीत नहीं होता। जैसे झिझोटी राग में 'ग' स्वर वादी होता है, इस 'ग' से दो श्रुति के अन्तर पर 'म' स्थित है, तो क्या 'ग' का विवादी स्वर 'म' होगा ? 'म' स्वर न लेने पर झिझोटी बिगड़ता ही नहीं, वरन् उसका रूप ही नहीं दिखाया जाता। ऐसी दशा में झिझोटी में कौन-सा स्वर विवादी माना जाता है ? पूरिया राग में 'ग' स्वर वादी है। इसके ऊपर की दो श्रुति और नीचे की दो श्रुति के स्वर इस राग में प्रयुक्त ही नहीं हैं, तब फिर यहाँ किन स्वरों को विवादी कहा जाएगा ?

उपर्युक्त समस्त शास्त्रीय बातों को देखते हुए हमें ऐसा समझ में आता है कि प्राचीन संगीत में भी Harmony जैसी कोई स्वर-संगति इस समय भी प्रचलित थी। वादी, विवादी आदि नाम रागों में प्रयुक्त अवस्थादर्शक नहीं हो सकते। मध्यकालीन ग्रंथकारों को इसके संबंध में ठीक-ठीक बोध नहीं था। चाहे जो हो, इन स्वरों का स्पष्ट विवरण युक्तिसंगत रूप से किसी ग्रंथकार द्वारा प्राप्त नहीं होता, यह निर्विवाद है।

ऊपर मैंने मि० बनर्जी का कथन तुम्हें बताया है। इस समय वादी-संवादी स्वरों का जो अर्थ है, वह तुम्हें बताया जा चुका है। मि० बनर्जी के कथन पर आगे गंभीरता से विचार करेंगे। इस समय प्रचलित दृष्टि से उनके मतभेद से भी कोई बाधा उपस्थित नहीं होती। तुम्हारी जिज्ञासा की तृप्ति के लिए ही मैंने तुम्हें इतनी बातें सुनाई हैं। अब हम पुनः कल्याण की ओर चलें।

प्रश्न : हमें उपर्युक्त जानकारी बहुत ही मनोरंजक समझ पड़ी है। हम आपके कथनानुसार उन बँगला-ग्रथों को अवश्य पढ़ेंगे। मतभेद होते हुए भी शिक्षित लोगों के विचार हमें रुचिकर और ग्रहण करने योग्य ज्ञात होते हैं और उन विचारों की सहायता से हम स्वतन्त्र कल्पना करने में समर्थ होते हैं। चाहे विषयान्तर हो जाता हो, परंतु आप हमें इस प्रकार की योग्य बातें अवश्य ही सुनाते जाइएगा। आपने बताया था कि शुद्धकल्याण राग में कोई-कोई वादी ऋषभ और संवादी पंचम को मानते हैं। इसी प्रसंग में श्री बनर्जी के विचार बताए थे। सारांश रूप में हमने यही समझा है कि प्रत्येक राग में एक प्रधान स्वर वादी, एक स्वर संवादी, शेष प्रयुक्त स्वर अनुवादी और वर्ज्य स्वरों को विवादी माना जाता है। ग्रंथों में बताई हुई व्याख्या इस समय में कई स्थानों पर असंबद्ध-सी हो गई है और ऐसा होना आश्चर्य का विषय नहीं है।

अब कल्याण के विषय की ओर चलिए।

उत्तर : सुनो, शुद्धकल्याण राग का विस्तार मन्द्र और मध्य, दोनों स्थानों में किया जाना चाहिए। गायकगण जब मन्द्र-स्थान के पंचम तक जाते हैं, तब सा, नि, ध, प, इस प्रकार स्वर-प्रयोग अत्यन्त मधुर होता है। अवरोह सम्पूर्ण होने के कारण निषाद स्वर का प्रयोग गायक सा, नि, ध, प, इस स्वर-समुदाय में स्पष्ट रूप से दिखाते हैं। इस प्रयोग से श्रोताओं को यमन का आभास हो जाता है, परंतु आगे प, ध, सा रे सा ग रे सा, इस प्रकार भूपाली की तरह विस्तार करते हुए यमन की छाया दूर करते हैं। मन्द्र-सप्तक में भूपाली अधिक गाने से भी श्रोताओं को शुद्धकल्याण का भ्रम हो जाता है। इस राग के अवरोह में म, नि स्वरों को स्पष्ट दिखाते आना चाहिए और गायक लोग इन स्वरों को किन-किन प्रकारों से दिखाते हैं, इसका अनुकरण भी करना चाहिए। भूपाली में धैवत अधिक लिया जाता है और इससे देशकार राग की छाया दिखाई देती है। शुद्धकल्याण में ऐसा नहीं हो सकता, क्योंकि इसमें रे और प को महत्त्व दिया जाता है। इस राग को विलम्बित लय से गाना अधिक उत्तम होता है। इस प्रकार धीमी लय से गाकर ही मीड़, गमक आदि अलंकार उत्तम दिखाए जा सकते हैं। यह 'अलंकार' शब्द भी मैंने साधराण अर्थ में ही कहा है।

प्रश्न : तो क्या शास्त्रीय ग्रथों में अलंकार का अर्थ भिन्न बताया है ?

उत्तर : हाँ, ग्रथों में अलंकार की व्याख्या में कहा गया है—'विशिष्टवर्ण-सन्दर्भमलंकारं प्रचक्षते'। अलंकारों के कई भेद बताए हैं। नवीन शिक्षार्थी को अपने गायक जो पलटे बताते हैं, वे भी एक प्रकार के अलंकार ही हैं। ग्रंथों में अलंकारों के स्वर-समुदायों का निश्चय कर उनका स्वतन्त्र नामकरण भी किया गया है। यह अत्यन्त उत्तम योजना है। इन अलंकारों को उत्तम रूप से तैयार करने पर गले की तैयारी बहुत अच्छी हो जाती है, साथ में स्वर-ज्ञान भी उत्तम हो जाता है। फिर भिन्न-भिन्न रागों में इनका प्रयोग गाते समय करने से राग-वैचित्र्य बढ़ता है। प्राचीन संगीत के नियत रागों में अलंकार भी नियत होते थे, परंतु इस समय उन नियमों का कोई पालन नहीं करता। यह बात नहीं है कि इस समय प्राचीन अलंकार गाए ही नहीं जाते, इस समय भी उनका प्रयोग गायन में कई जगह होता है, परंतु वे विशिष्ट नामों द्वारा विशेष रूप से सिखाए हुए नहीं होते। यदि उन अलंकारों

का प्रयोग प्रचार में गायक लोग करने लगें, तो वे बहुत उपयोगी सिद्ध होंगे। 'पारिजात' में ये सब विस्तार-पूर्वक दिए गए हैं। इनके उपयोग के विषय में 'पारिजात' में ऐसा लिखा है :—

शशिना रहितेवनिशा विजलेव नदी लता विपुष्पेव ।
अविभूषितेव कांता गीतिरलंकारहीना स्यात् ॥
अलमेतेऽलंकारा रंजनलब्ध्यै स्वरावबोधाय ।
वर्णांगव्यासाय च तदवश्यं पूर्वमभ्यस्याः ॥

प्रश्न : इस समय प्रचार में मीड़-गमक आदि कौन-से अलंकार हैं ?

उत्तर : 'गमक' के विषय में बता ही चुका हूँ। दूसरे अलंकार, मीड़, आँस, कंप, गिटकिरी, लाग, डाँट, भूषिका (Grace-notes) आदि माने जाते हैं। श्री बनर्जी ने उन्हें अपनी रचना में बहुत अच्छी तरह समझाया है। मैं वह सब तुम्हें आगे समझाऊँगा। संस्कृत-ग्रंथों में 'गमक' नाम से जो अलंकार बताए हैं, ये सब उन्हीं के अंतर्गत आ जाते हैं। परंतु ग्रंथों में जो अलंकार बताए हैं, वे गमक में मिले हुए नहीं समझने चाहिए।

प्रश्न : नहीं-नहीं, वे निराले प्रकार के हैं, यह हम समझ गए हैं। अब आप प्रस्तुत विषय (कल्याण) की ओर बढ़िए ?

उत्तर : जो लोग ऋषभ को वादी स्वर मानते हैं, उनका कथन है कि शुद्धकल्याण राग यमन से पहले गाना चाहिए। 'ऋ्यंशोगेयः सदापूर्वं यमनादितिसम्मतम्; गांधारांशस्ततपरं स्यान्नियमोहि मनीषिणाम्।'मेरे विचार से इस राग की इतनी जानकारी तुम्हारे लिए पर्याप्त है। इस राग की सामान्य रूप-रेखा का स्मरण करा देनेवाले दो-तीन श्लोक तुम्हें बता देता हूँ। इन्हें कंठस्थ कर लेने में तुम्हें सुगमता होगी :—

कल्याणीमेलकोत्पन्नो रागोसौ मन्यते बुधैः।
शुचिकल्याण इत्याह्व आरोहे मनिवर्जितः ॥
गांधारः सुमतो वादी कैश्चिदृषभईरितः ।
मंद्रमध्यस्वरैर्गीतो नियतं स्यात्सुखावहः ।
गवादित्वे सनियमं धैवतो मंत्रिसन्निभः ।
सत्यशेऋषभे नूनं संवादी पंचमो भवेत् ॥

उपर्युक्त जानकारी याद रखने से तुम इस राग को, अन्य इसके सम-स्वरूपी राग भूपाली, चंद्रकांत, देशकार, विभास आदि से बचा सकोगे। यद्यपि सर्वप्रथम सुनने में इन रागों की पहचान में भ्रांति हो सकती है, परंत इन-सबके भिन्न-भिन्न पहचान के चिह्न स्वतन्त्र हैं।

प्रश्न : परंतु देशकार, विभास आदि राग तो कल्याण ठाठ के नहीं हैं ?

उत्तर : फिर भी भ्रांति हो जाना संभव है। देशकार राग बिलावल ठाठ का है, परंतु उसमें म, नि स्वर वर्ज्य हैं। इन स्वरों के वर्ज्य होने से इसमें सा, रे, ग, प, ध स्वर रह जाते हैं। यह राग भूपाली के स्वरूप-जैसा दिखाई देता है। शुद्ध-कल्याण और भूपाली बिलकुल निकट के राग हैं; यह मैं तुम्हें कह रहा हूँ।

विभास में रे-ध कोमल लगने से उसका स्वरूप बिलकुल भिन्न हो जाता है। विभास राग की उत्पत्ति भैरव ठाठ से है। इसमें भी म, नि स्वर वर्ज्य हैं। कोई-कोई इस राग को शुद्ध सा, रे, ग, प, ध स्वरों का मानते हैं, यह ठीक नहीं है। शुद्ध स्वरों के विचार से केवल देशकार और भूपाली, ये दोनों राग ही ऐसे हैं, जिनमें सम्पूर्ण रूप से एकता है। भूपाली इस समय रात्रिकाल में गाया जानेवाला माना गया है और देशकार राग प्रातःकाल में गाया जानेवाला माना गया है।

प्रश्न : तो फिर देशकार उत्तरांगवादी ही होना चाहिए ?

प्रश्न : हाँ, देशकार उत्तरांगवादी ही है। भूपाली रात्रिकालीन राग है और अवरोह में भी म-नि होने से शुद्धकल्याण से अलग हो जाता है। चन्द्रकान्त राग के आरोह में निषाद लिया जाता है, इस कारण यह राग 'भूपाली' और 'शुद्धकल्याण', इन दोनों से भिन्न हो जाता है। आरोह में निषाद के प्रयोग से यमन का स्वरूप भाग दिखाई दे जाता है, परंतु मध्यम के वर्ज्य होने से आगे चलकर इसका स्वरूप चन्द्रकांत से अलग हो जाता है। हमारे संगीत में मध्यम स्वर एक विलक्षण महत्त्व का स्वर माना गया है। मध्यम वर्ज्य होने पर ग, प स्वरों का उच्चारण एक के बाद एक होता है। इस ग-प स्वर-संगति को अत्यन्त मनन से सीखना आवश्यक है, क्योंकि इसका प्रयोग आगे अनेक स्थलों पर होता है। प्रभात व संध्या के रागों में इस स्वर-संगति का परिणाम बहुत चमत्कारपूर्ण हो जाता है। एक बार 'पग, ध, पग' ऐसे स्वरों को बार-बार गाकर उसके परिणाम को देखो, तुम्हें तत्काल ही मेरे कथन का तात्पर्य समझ में आ जाएगा। मैंने तुम्हें यह बताया ही है कि अपने संगीत में कुछ स्वर-ससुदाय या स्वर-संगति (जिन्हें अंग कहते हैं) को ध्यान में रखना आवश्यक है। विभास में कोमल रे, ध का प्रयोग होता है, यह तुम्हें स्वर-मालिका सीखते समय ही आ गया होगा। विभास के अन्य प्रकार भी हैं, उनके विषय में मैं समय पर कहूँगा। शुद्धकल्याण के विषय में तुम्हारी जानकारी अधिक नहीं है, मैं अब तुम्हें उसे गाकर सुनाता हूँ और इस राग के अवरोह में गायक 'म' और 'नि' स्वरों को जिस प्रकार घर्षण, मीड़न करते हैं, अर्थात् गमक, मीड़ आदि लेते हैं, वह भी बताता हूँ, जिससे तुम पूर्ण रूप से पहचान कर सकोगे। तुम स्वर-मालिका तो गाते ही हो, अब शीघ्र ही तुम लक्षण-गीत सीखोगे, जिससे इस राग की ठीक-ठीक पहचान करना तुम जान सकोगे। एक बार तुम्हें ये निकट के दो ही राग समझा देने और उनके स्वरों का थोड़ा-थोड़ा विस्तार समझा देने से तुम ठीक समझ जाओगे। लक्षण-गीत प्रसिद्ध गायकों के गीतों के आधार पर ही तैयार किए गए हैं और उनके सीख जाने पर तुम्हें वे गीत भी ठीक-ठीक गाना सरल हो जाएगा; यह भी एक आसान बात हो जाती है।

प्रश्न : हम समझ गए, आपकी सम्पूर्ण योजना बहुत ही श्रेष्ठ है। अब आप कौन-सा राग बताएँगे ? हमारा आग्रह है कि आप अब हमें शुद्धकल्याण के निकट का राग भूपाली ही समझाइए ?

उत्तर : ठीक है। भूपाली राग कल्याण ठाठ में माना जाता है। 'रागविबोध' में इसे शंकराभरण ठाठ में माना गया है, तो भी उसे कल्याण ठाठ में मानना

अनुपयुक्त नहीं है। इस राग में मध्यम आरोह और अवरोह में वर्ज्य माना गया है। एक कारण यह भी है कि प्रचार में भूपाली का नाम 'भूपकल्याण' भी सुनाई पड़ता है। हिन्दी और उर्दू भाषाभाषी उसे 'भूपाली' कहते हैं। हमने ठाठों को सुविधा की दृष्टि से ही स्वीकार किया है। जिस रीति से हम अपने संगीत को उत्तम रूप से समझ सकें, वही रीति हमारी पसंद की जाने योग्य है। 'भूपाली' राग बहुमत से रात्रि के पहले प्रहर का राग माना जाता है। यह औडव जाति का है और इसमें म नि स्वर बिलकुल नहीं लिए जाते। औडव नाम का प्रयोग मैंने बार-बार किया है। उस नाम से ५ स्वरों के राग का बोध होता है। औडव नाम से पाँच संख्या का बोध खींच-तानकर ही किया जा सकता है। इस विषय में 'रत्नाकर' में स्पष्ट कथन मिलता है :—

वान्ति यान्त्युडवोऽत्रेति व्योमोक्तमुडुवं बुधैः।
पंचमं तच्च भूतेषु पंचसंख्या तदुद्भवा॥
औडुवी साऽस्ति येषां च स्वरास्ते त्वौडुवा मताः।
तेषुजात तु यद्गीतं तदौडुवितमुच्यते॥

'औडव' का अर्थ नक्षत्र है। इनका संचालन आकाश में होता है। आकाश का क्रम पंच महाभूतों में पाँचवां माना गया है। (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश का क्रम प्रसिद्ध है) इस प्रकार औडव का अर्थ पाँच संख्या का दर्शक बताया गया है, इसी प्रकार षाडव शब्द की व्याख्या भी ध्यान में रखने योग्य है।

षडवन्ति प्रयोग ये स्वरास्ते षाडवा मताः।
षट्स्वरं तेषुजातत्वाद्गीतं षाडवमुच्यते॥

भूपाली राग में वादी स्वर गांधार लिया जाता है और निषाद स्वर के वर्ज्य होने के कारण संवादी स्वर धैवत माना गया है। धैवत संवादी होने के साथ-साथ इस राग का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्वर भी है। इस धैवत का प्रयोग गांधार की अपेक्षा कम ही करना बड़ी विशेषता है और यह जिस गायक को अच्छी तरह नहीं सध गया हो, उसका राग बिगड़ जाता है। अभी तुम्हें पर्याप्त रूप से गाने का अभ्यास नहीं हुआ है, अतः कुशल गायक गांधार स्वर का उच्चारण किस विशेषता से करते हैं, यह बताने पर भी तुम उत्तम रूप से नहीं समझ सकोगे।

प्रश्न : परंतु आप कहिए, हम उसे समझने का प्रयत्न करेंगे ?

उत्तर : ठीक है, सुनो ! स्वर का उच्चारण करते समय अपनी इच्छानुसार उस स्वर के प्रारम्भ में अत्यन्त सूक्ष्म दूसरे किसी स्वर का अंश या कण जोड़ दिया जाता है। वह किस स्वर का कण लगाया जाता है, जिसकी पहचान करना सरल नहीं होता। किसी समय ऐसे बारीक कण राग का वास्तविक स्वरूप उत्पन्न करने में सहायक सिद्ध होते हैं। स्वर-मात्र से ही एक राग दूसरे राग से भिन्न नहीं कहा जा सकता है। यह सूक्ष्म स्वर-प्रयोग राग का अलंकार होता है, इसके प्रयोग से गायक

की कुशलता ज्ञात होती है। मनुष्य का शरीर, शृंगार करने पर अधिक सुंदर दिखाई देगा, परंतु शृंगार के अभाव में ऐसा नहीं है कि मनुष्य पहचाना ही नहीं जाए। मनुष्य की पहचान के लिए शृंगार की आवश्यकता नहीं होती; यही सिद्धांत रागों में कायम रहता है।

गायक लोग ऐसे सूक्ष्म स्वर का प्रयोग अत्यंत कुशलतापूर्वक करते हैं। भूपाली में वादी गांधार को प्रमुख रूप से दिखाते हुए उसमें मध्यम या पंचम का सूक्ष्म कण संगति-रूप से जोड़ देते हैं, यह प्रयोग बहुत सुंदर लगता है। यद्यपि यमन में भी वादी स्वर वही गांधार है, परंतु वहाँ ऋषभ का कण ग्रहण किया जाता है। मार्मिक श्रोताओं को ये दोनों प्रकार स्पष्ट रूप से अलग-अलग दिखाई दे जाते हैं। यह बात केवल वर्णन से नहीं समझाई जा सकती, इसलिए मैं तुम्हें प्रत्यक्ष करके दिखाए देता हूँ। प्रत्येक स्वर के नीचे व ऊपर बारीक कण लगाने का अभ्यास करने पर तुम्हें मेरे कथन का मर्म समझ में आ जाएगा। यूरोपियन संगीत में Grace-Notes नामक सूक्ष्म स्वरों का प्रयोग कहीं-कहीं किया जाता है। इसी प्रकार का यह प्रयोग भी है। गाने में भिन्न-भिन्न स्वरों को अनेक प्रकार से परस्पर जोड़ने का कार्य होता है और जिस-जिस प्रकार से यह जोड़ किया जाता है, उसी प्रकार से उसे नाम दिए जाते हैं। श्री बनर्जी ने अपने ग्रंथ में यमल, श्लिष्ट, पूर्वाश्रित, पराश्रित आदि नाम बताए हैं। वे प्राचीन नाम हैं। इनका अर्थ भी स्पष्ट है। भूपाली में धैवत स्वर संवादी है। इस धैवत का प्रयोग अधिक परिमाण से होता है, परंतु अवरोह करते समय गांधार अथवा ऋषभ पर थोड़ा रुक जाना पड़ता है; जैसे 'ध, पग ध ध पग रे, ग प ध सा'। धैवत की प्रधानता के साथ यदि ठहरने का स्थान पंचम बताया जाए, तो देशकार की छाया उत्पन्न हो जाएगी; जैसे 'धप, गप, धप, धप, गरेसा, गप, ध, प'। देशकार का चलन उत्तरांग में है और इसका विश्रांति-स्वर (आरोह-अवरोह व स्वर-विस्तार में रुकने का स्वर) पंचम माना गया है। वास्तव में वह पंडित धन्य है, जिसने पूर्वांग और उत्तरांग रागों का वर्ग-भेद किया है। इस वर्ग-भेद के कारण कितनी विशेषता उत्पन्न हो जाती है। भूपाली और देशकार, दोनों रागों में सा, रे, ग, प, ध, इन पाँच स्वरों का ही प्रयोग होता है, परंतु एक का पूर्वांगप्राधान्य और दूसरे का उत्तरांगप्राधान्य होने से ही इन दोनों रागों में परस्पर कितना अंतर हो जाता है। देशकार में लगनेवाले दीर्घ ध, प कान में पड़ते ही प्रातःकाल का आभास होने लगता है। किसी-किसी ग्रंथ में भूपाली में रे-ध स्वर कोमल माने गए हैं, परंतु हमारे प्रचलित भूपाली राग का वह स्वरूप नहीं है। 'पारिजात' में ऐसा लिखा है, 'मनिवर्जा तु भूपाली रिधौ यत्र च कोमलौ'। 'स्वरमेलकलानिधि' ग्रंथ के रचयिता का भी ऐसा ही कथन है, 'भूपाली रागः सन्यासः सांशः सग्रह एव च। मनिलोपादौडवः स्यात्प्रातःकाले च गीयते। धैवतः शुद्ध एवात्र' इत्यादि। परंतु इस ग्रंथ में रे तीव्र माना गया है, अर्थात् यहाँ भूपाली का ठाठ आसावरी हो जाता है। शुद्ध स्वरों की प्रचलित भूपाली का वर्णन 'रागविबोध' में पाया जाता है। यह हमारे ग्रंथों के मतभेदों का स्वल्प दिग्दर्शन है। जब भूपाली-जैसे सामान्य राग के विषय में इतने मतभेद हैं, फिर तो अप्रसिद्ध रागों के विषय में मतभेद होना आश्चर्य

की बात नहीं कही जा सकती। भूपाली और देशकार के भेद को स्पष्ट रूप से समझाने के लिए मैं तुम्हें इन दोनों रागों का थोड़ा-थोड़ा स्वर-विस्तार सुना देता हूँ।

भूपाली : ग, रे सा; रे ग, ग रे ग, रे सा ध़ प़, ध़ सा, रे सा, ग, ध प ग; प ग, रे ग, ग रे सा।

ग प, ध सां, सां रें सां ध, प ग, रे ग, रें सां ध प ग, रे ग, गं रें सां ध प ग, सां ध प ग, ध प ग रे, ग, रे सा।

देशकार : ध, ध प, ग प ध प, ग रे सा, सा रे ग प, ध ध प, ध प, सां, ध प, रें रें सां, ध प, ध ध, सां सां ध प, ध प ग रे सा, ध, ध प; प ग, प ध, सां, रें सां, सां रें गं रें सां, रें सां ध प, ध ध, रें सां ध ध प, ग प ध सां, ध प, ग प ध प, ग रे सा ध, ध प।

इस स्वर-विस्तार में, मैं स्थान-स्थान पर जैसे रुकता गया था, उसे तुमने ध्यान में रखा होगा। अब तुम्हें ये दोनों राग भिन्न-भिन्न समझ में आ गए होंगे ?

प्रश्न : वास्तव में ये भिन्न-भिन्न राग दिखाई देते हैं। इस स्वर-समुदाय को ठीक हृदयस्थ करना ही ठीक होगा। उत्तरांगप्रधान होने पर कैसी भिन्नता हो जाती है और वादी स्वर का महत्त्व कैसे दिखाया जाता है, इसकी थोड़ी-थोड़ी कल्पना हमें हो गई है। जो भी हम भिन्न-भिन्न रागों की स्वर-मालिका गाते हैं, उनके रागों को रचना के तत्त्व बिना समझे गाने से उतना आनन्द प्राप्त नहीं हो सकता। राग-नियम सीखना कितना आनन्ददायक होता है। मेरा विश्वास है कि जो व्यक्ति रागों के वादी-संवादी स्वरों को बिना जाने गाता है, उसका गाना मूर्खतापूर्ण कहा जा सकता है। जो गायक इन स्वरों को यथायोग्य रीति से जानकर गाता है, वही वास्तविक आदर का पात्र होता है। परंतु मेरे खयाल में ऐसे गायक बहुत थोड़े ही होंगे।

उत्तर : तुम्हारा तर्क युक्तिसंगत है। वास्तव में ऐसे विज्ञ गायक बहुत कम पाए जाते हैं। खूब रियाज कर केवल गला तैयार किए हुए गायक बहुत पाए जाएँगे, परंतु इन लोगों को न तो राग-नियमों की जानकारी ही होती है और न ये धीरतापूर्वक गाकर उन खूबियों को श्रोताओं के सम्मुख रख ही सकते हैं। गाते-गाते चाहे जिन असंबद्ध स्वरों पर रुककर, एक असंगत प्रकार-मात्र उत्पन्न कर देते हैं और भोले-भाले श्रोता उसे अत्यन्त कुशल समझकर उसकी तारीफ ही करते हैं। एक बार सम्पूर्ण पद्धति सीख जाने पर तुम्हारे मन में ऐसे गायकों के विषय में कोई सम्मान नहीं रहेगा। इस समय यह एक दृढ़ धारणा बन गई है कि जिसका गला उत्तम तैयार हो, वही उत्तम गायक है। गले की तैयारी तो आवश्यक है ही, परंतु राग-नियमों के ज्ञान की भी गायक को अत्यन्त आवश्यकता है। अस्तु—

इस भूपाली राग में शुद्धकल्याण का भाग अनेक स्थानों पर दिखाई पड़ना सम्भव है, क्योंकि ये दोनों राग पूर्वांगवादी हैं। भूपाली में ग-प स्वरों की संगति बहुत

सुंदर दिखाई देती है। दक्षिण की ओर 'भूपाली' का नाम 'मोहन' राग बताया गया है। मोहन राग एक अत्यंत लोकप्रिय राग कहलाता है। दक्षिण के गायकों के गायन सुनकर यह ज्ञात होता है कि वहाँ वादी-संवादी स्वरों के महत्त्व की ओर इतना ध्यान नहीं दिया जाता। मेरा उद्देश्य दक्षिणी पद्धति की टीका करना नहीं है। मैंने दक्षिण के अनेक गायकों के गाने सुने हैं, परंतु उनके गायन से मुझे उतना आनंद प्राप्त नहीं हुआ, जितना उत्तर के गायकों के गानों से प्राप्त हुआ। किसी-किसी ग्रंथ में 'भूपाल' नाम प्राप्त होता है। वहाँ इस भूपाल राग को भैरवी ठाठ में बताया गया है। मेरे खयाल से हमें भूपाल और भूपाली को दो भिन्न राग मानना चाहिए। भैरवी ठाठ में म, नि वर्ज्य राग को 'भूपाल' और शुद्ध स्वरों के म, नि वर्ज्य राग को 'भूपाली' कहते हैं। राग भूपाली रात्रि के प्रथम प्रहर में और भूपाल राग दिन के प्रथम प्रहर में गाया जाता है।

प्रश्न : लक्ष्यसंगीतकार ने भूपाली का वर्णन कैसा किया है?

उत्तर : इस प्रकार :—

> कल्याणमेलसंजाता भूपाली बुधसंमता।
> आरोहे चावरोहेऽपि मनिहीना भवेत्सदा॥
> गांधारः केवल वादी धैवतोऽमात्यईरितः।
> स्यादस्याः प्रकृतिः शुद्धकल्याणसदृशी ध्रुवम्॥
> पूर्वांगस्य प्रधानत्वात् सायंगेयत्वमीप्सितम्।
> संपूर्णावरोहणोऽपि कल्याणोऽस्याभवेत्पृथक्॥
> सत्युत्तरांगप्राधान्ये देशीकारः समुद्भवेत्।
> वादित्वाद्धैवतस्यैव वैलक्षण्यं प्रकाशयेत्॥

ये श्लोक तुम्हें याद कर लेने चाहिए।

प्रश्न : आपने कहा था 'रागविबोध' में वर्णित भूपाली अपने प्रचलित भूपाली से मिलता है। तब 'रागविबोध' में इस राग का वर्णन कैसा किया है?

उत्तर : 'रागविबोध' में इस प्रकार कहा गया है :—

> मल्लारिमेलउक्तास्तीव्रतररिमृदुमतीव्रतरधाश्च।
> मृदुसः शुद्धाः समपा अस्मादेते तु मल्लारिः॥

* * *

> सन्यासग्रहगांशा मनिहीनोषसिस्मृतेहभूपाली।

पहली आर्या में मल्लारी मेल के स्वर बताए हैं। हमारे शुद्ध रे, ध स्वर ही 'रागविबोध' के तीव्र रे व तीव्रतर ध स्वर हैं और जो स्वर हमारे शुद्ध ग और नि हैं, वे स्वर 'रागविबोध' के मृदु 'म' और मृदु 'सा' हैं। इस विवरण के अनुसार 'रागविबोध' का मल्लारी ठाठ हमारे बिलावल ठाठ-जैसा ही सिद्ध होता है। रागविबोधकार ने 'भूपाली' को प्रभातकालीन राग माना है और

हमारे यहाँ यह राग रात्रिकालीन माना गया है, यही मतभेद है। प्राचीन काल में भूपाली के प्रातःकाल गाए जाने के प्रमाण-स्वरूप कोई-कोई कहते हैं कि हमारे दक्षिणी घरों की स्त्रियाँ प्रातःकाल उठकर 'भूपाल्या' पद्य गाती हैं और उन पद्यों का राग बिलकुल अपने प्रसिद्ध राग भूपाली के समान ही होता है। यह धारणा असंगत नहीं है, इसपर भी विचार करना चाहिए। परंतु इस समय तो प्रचार में भूपाली राग गायकों द्वारा रात्रि में ही गाया जाता है, यह निर्विवाद है। हमें प्रचार की तरफ ध्यान देते हुए आगे बढ़ना है, क्योंकि हम हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति का विचार कर रहे हैं। 'रागविबोध' में इसे प्रातःकालीन माना गया है और इसका वादी स्वर गांधार ही स्वीकार किया गया है। यह आंशिक रूप से हमारे राग से मिलती हुई धारणा है।

प्रश्न : मेरे खयाल से वादी-संवादी शब्दों के अर्थ नवीन रूप से स्थापित करते हुए, विद्वानों ने पूर्वांग व उत्तरांग रागों का विभाग करते हुए ही रागों का समय निर्धारित किया होगा ?

उत्तर : तुम्हारा कथन असंभव नहीं कहा जा सकता। 'भूपाली' राग को रात्रिकालीन और गांधारस्वरप्रधान मानकर ही 'देशकार' से उत्तम प्रकार से भिन्न किया जाता है। हमारे पंडितों की कुशलता ही है कि एक-से स्वर-समुदाय के दो भिन्न-भिन्न राग मानकर, केवल वादी स्वर की सहायता से ही भिन्न-भिन्न समयों के राग बनाकर दिखा दिए।

प्रश्न : संभवतः गायक लोग भूपाली राग को गांधार से ही आरम्भ करते होंगे ?

उत्तर : प्रायः ऐसा ही करते हैं, परंतु कहीं-कहीं सा, प, इन स्वरों से भी गीत आरम्भ करते हुए मुझे सुनाई दिए हैं। इस समय प्रचार में ग्रह, न्यास आदि स्वर-नियमों को बिलकुल छोड़ दिया गया है। हमारे देशी संगीत में ग्रह, न्यास के नियम लगाने पर राग-वैचित्र्य सीमित हो जाएगा, ऐसा विचार भी कोई-कोई व्यक्त करते हैं। 'कामाचार प्रवर्तित्वं देशीत्वम्', यह देशी संगीत की व्याख्या निश्चय ही बहुत-कुछ तथ्य लिए हुए है। राग का केवल आलाप करते हुए ग्रह, न्यास के नियम थोड़े प्रमाण में ग्रहण किए जा सकते हैं, परंतु गीतों में भी उनका अनिवार्य रूप से ग्रहण किया जाना शक्य नहीं है। जबकि प्राचीन संगीत में सम्पूर्ण रूप से परिवर्तन हो गया है, तब इन नियमों की क्या आवश्यकता है ? अस्तु—

'भूपाली' एक सरल रागों में माना जाता है। नवीन सीखनेवालों को यह राग शीघ्रता से आ जाता है। कोई-कोई विद्वान् यह कहते हैं कि 'सा, रे, ग, प, ध', यह स्वर-समुदाय एक अत्यन्त प्राचीन काल का ठाठ है। इस ठाठ से निर्मित होने के समय 'म' और 'नि' स्वरों का निश्चयीकरण नहीं किया गया था। परंतु यह प्रश्न इतिहास का है। इसपर कुछ पाश्चात्य ग्रंथ Sensations of Tone (Helmholtz), Students' History of Music (Ritter), History of Music (Chappell), Theory of Sound in its Relation to Music (Blasserna). आदि तुम्हें पढ़ने चाहिए। उन ग्रंथों के जिन भागों को पढ़ना आवश्यक है, उनको मैं तुम्हें आगे बताऊँगा। संगीत के इतिहास को सीखते समय पाश्चात्य ग्रंथों का अवलोकन करना आवश्यक है।

प्रश्न : हम आपसे ऐतिहासिक चर्चा में जाने का आग्रह नहीं करते। अब हम भूपाली राग ठीक समझ चुके हैं, अब आगे का राग बताइए ?

उत्तर : ठीक है ! अब हम 'चद्रकांत' राग के विषय में चर्चा करें। इस नाम की नवीनता का कारण इस राग का प्रचार में नवीन होना मात्र है। इसका वर्णन ग्रंथों में पाया जाता है। इसे कल्याण-अग का राग मानते हैं। यह बहुत अंशों में शुद्धकल्याण-जैसा ही दिखाई देता है। इसके आरोह में मध्यम वर्ज्य है और निषाद का प्रयोग होता है। इस प्रकार यह शुद्धकल्याण से भिन्न हो जाता है। इसमें 'नि, रे, ग, रे सा, ग रे ग, प म ग रे, सा रे ग रे सा' स्वर-समुदाय यमनकल्याण का आता है। परंतु यमन राग संपूर्ण है और इसमें आरोह में मध्यम नहीं लगाया जाता, इस दृष्टि से यह यमन से अलग हो जाता है। 'चंद्रकांत' में अवरोह में मध्यम लेते हुए गायक उसे मीड़ में लेकर शुद्धकल्याण के अनुसार रूप दिखाते हैं ! केवल निषाद स्पष्ट दिखाते हैं, जिससे यह शुद्धकल्याण से अलग हो जाता है। इस राग का वादी स्वर गांधार व संवादी स्वर निषाद माना गया है। इसका समय रात्रि का प्रथम प्रहर है। 'रागलक्षण' ग्रंथ में इसके स्वर इस प्रकार बताए हैं :—

मेचकल्याणिकामेलाच्चंद्रकांत इति श्रुतः ।
आरोहणे मरिक्तः स्यादवरोहे समग्रकः ॥

'लक्ष्यसंगीत' में इसकी व्याख्या इस प्रकार की गई है :—

कल्याणीमेलके ख्यातश्चंद्रकांतो गुणिप्रियः ।
आरोहे मध्यमत्यक्तो ह्यवरोहे समग्रकः ॥
गांधारस्यैव वादित्वं संध्याकालप्रसूचकम् ।
प्राधान्यं स्यात्सुनिश्चितं पूर्वांगेऽत्र सतां मते ॥

उपर्युक्त वर्णन के अनुसार ही गायक इसे प्रचार में गाते हैं। इस राग के विषय में अधिक कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। यद्यपि यह राग प्रसिद्ध नहीं है, परंतु मधुर अवश्य है।

प्रश्न : हम यमन, शुद्धकल्याण, भूपाली और चंद्रकांत, इन चारों रागों को उत्तम रूप से समझ गए हैं। इनके वादी स्वर तथा अन्य सभी बातें हमारे ध्यान में आ गई हैं। अब आप हमें इन रागों का विस्तार सुना दीजिए।

उत्तर : ठीक है, मैं तुम्हें इन सबका स्वर-विस्तार सुना देता हूँ। यह और भी सुविधाजनक होगा :—

यमन

ग, रे, सा; सा रे ग, रे ग, ऩि रे ग, रे सा; सा रे ग रे सा, ऩि ध़ प़, प़ ध़ ऩि, ध़ ऩि, रे रे, ऩि रे ग, रे ग, रे, सा; प म॑ ग, रे ग, रे, ग म॑ प, म॑ ग रे, ऩि रे ग रे, ऩि रे ग म॑ प, रे सा; प़ प़ ध़ ध़ ऩि ऩि ध़ ऩि, रे ऩि, रे ऩि, ग ग, रे ग प म॑ ग, ध प म॑ ग, रे ग, रे सा; ऩि रे ग म॑ प, ग म॑ प, ध ध प, म॑ ग, रे ग, प, रे, सा, ऩि रे सा; नि ध प म॑ ग म॑ प, नि ध, म॑ ध नि ध प, म॑ म॑ ग ग, रे रे, ग ग रे ग, ऩि रे ग, रे,

ग मं ग, ध प मं ग, रे ग, पग, रे, सा; नि़ रे ग रे सा, नि़ रे ग मं प रे सा, नि ध मं ध प मं ग रे, ग मं प मं ग, रे ग, प़ प़ ध़ ध़ नि़ नि़ रे रे, ग रे ग, प मं ग, रे ग, रे रे सा; ग ग, प ध प, सां, सां, नि रें सां, नि रें गं रें सां सां नि ध, नि ध प मं प ध प, नि ध प, सां नि ध प, मं ग रे, ग मं प मं ग, रे सा; नि, मं, ग रे, ग मं प, नि, रें सां, गं रें सां, नि नि, ध नि, मं ध मं प, नि नि, मं ग, रे रे, नि़ रे ग मं प, रे ग, रे सा; नि़ रे सा।

शुद्धकल्याण

ग, रे, सा; सा रे सा, ग, रे ग, रे, सा रे ग रे सा; रे रे सा नि़ ध़ प़, प़ ध़ प़, सा, सा रे ग, रे ग, प ग, रे ग, रे सा, ग रे सा रे, सा नि़ ध़ प़, नि़ ध़ प़, ध़ प़, सा, सा रे ग रे सा, ग रे ग, प रे सा; सा रे ग, प मं ग, रे ग, मं ग, ध प मं ग, रे ग, प ध नि ध प, ग, रे ग, प रे सा; प़ ध़ प़ प़, सा, ध़ सा, ग रे ग, प मं ग रे ग, ध प ग रे, ग प ग रे, ग रे सा; सां ध प ग, रे ग, ध प ग, रे ग, रे, सा; प मं ग रे, ग रे सा, प ग रे सा, सा रे ग प ग रे सा, नि ध प ग प प प ग रे, ग प ध नि ध प, ग, ध प ग, रे ग, प रे, सा; ग, रे, सा, रेसा; नि़ ध़ प़, प़ सा, रे ग रे सा, सा, ग रे ग, प़ ध़ प़ सा, रे ग, ग, ध ध प ग, रे ग, सा रे ग, ध प ग रे, सा; प प ग ग, प प ध प, सां, सां, गं रें सां, सां रें गं रें सां, रें रें सां, नि ध ध प प, ग ग, प ध, रें सां, नि ध प, प ग रे ग, प रे रे सा।

भूपाली

ग, रे, सा, सा ध़, सा रे ग, रे ग, रे सा; सा रे ग रे सा, प़ प़ ध़ सा, सा ध़, रे सा ध़, ग रे ग, सा रे सा ध़ ध़ प़, प़ ध़ सा, सा रे; ग रे; सा रे सा; ग रे ग प ग रे, ग प ध प ग, रे ग, प ध प, ग रे, ग रे सा; प़ ध़ सा रे ग, रे ग, ग प ध ध प, ध प ग रे, सां सां ध प ग रे, ध प ग रे, सां रें सां, ध प ग रे, सा रे ग रे, ग प ग रे, सा; ग ग प ध प, सां, सां, सां रें सां, सां रें गं रें सां, रें रें सां ध प ग, सां ध प ग, ध प ग, रे ग, प ध सां, प ध प ग, रे ग, रे, सा; ग ग प ध सां; सां रें सां, सा रें गं रें सां, सां रें गं पं गं रें सां, गं रें सां, रें सां ध प ग, ध प ग रे, सा रे ग प ध सां ध प ग रे, ग रे, सा; ध़ ध़ प़ ध़ सा, प़ ध़ सा, ध़ सा, रे, सा, ग रे ग, ग प ग, ग प ध प ग, सां ध प ग, रें रें सां ध प ग, रे ग, प ग, ध प ग, रे रे सा, सा रे ग।

चंद्रकांत

ग रे सा, नि़ ध़ प़, ध़ प़, सा, सा रे ग रे सा, रे रे सा; नि़ रे ग, रे ग, रे रे, ग प रे ग, मं ग, प मं ग, रे ग रे सा; नि़ रे ग, रे सा, रे रे सा, रे रे सा, नि़ ध़ नि़ ध़ प़, प़ ध़ नि़ रे, ग रे, ध ग प रे, नि़, रे ग रे सा।

प़, ध़ प़, नि़ ध़ प़, नि़ रे, ग रे ग, प मं ग, नि ध प मं ग, रे ग, प, रे सा; सा ध़ प़, ध़ ध़ प़, प़ ध़ सा, नि़ रे ग रे सा, सा सा ग रे ग, रे ग, नि नि मं ग, रे ग, प, रे सा; ध मं ग रे ग, मं ग रे, प, नि ध, मं ग रे, ग प ग रे सा, ग ग रे ग प, ध प, सां, सां, नि रें गं रें सां; नि रें गं पं गं रें सां, सां रें सां नि ध, नि ध प, ग रे, ग प, नि रें, नि ध मं ग रे ग प, ग रे सा।

सा सा, प प, मं ग रे, ध ध, नि ध मं ग रे, ध प मं ग रे, ग प ग रे, नि़ रे ग, नि ध प मं ग रे, ग प ग रे, ग रे सा।

अब इनके अधिक विस्तृत विस्तार करने की आवश्यकता दिखाई नहीं देती। 'यमन' अत्यंत सरल राग है। इसके विषय में बहुत-कुछ बता ही चुका हूँ। 'भूपाली' और 'भूपाल', ये दो राग अलग-अलग हैं, यह स्मरण रखने की बात है। इन दोनों को ग्रंथाधार प्राप्त है। पुंडरीक विट्ठल पंडित ने भूपाली को 'केदार मेल' का राग माना है। उनका केदार मेल अपने बिलावल ठाठ-जैसा ही है। मैं तुम्हें बता चुका हूँ कि भूपाली शुद्ध स्वरों के ठाठ में मानी गई है। 'केदार मेल' का वर्णन पंडित पुंडरीक विट्ठल ने इस प्रकार किया है :—

लघ्वादिकौ षड्जकमध्यमौ च। शुद्धौ समौ पंचमको विशुद्धः।
निगौ विशुद्धौ च यदाभवंति। तदातु केदारकमेल उक्तः ॥

यह स्वर-वर्णन तुम्हें नवीन ही मालूम होगा, परंतु इसे समझने में तुम्हें अधिक परेशानी न होगी। यहाँ जो 'लघु' षड्ज व मध्यम बताए हैं, वे क्रमशः हमारे तीव्र नि और ग हैं और जिन नि-ग को यहाँ शुद्ध कहा है, वे स्वर हमारे प्रचलित शुद्ध ध और शुद्ध रे हैं। पुंडरीक दक्षिण का विद्वान् था, अतः उसका शुद्ध स्वर-ठाठ दक्षिण का ही था। 'रागविबोध' में भी यही शुद्ध ठाठ माना गया है। इन दोनों ग्रंथों में वर्णित राग अनेक स्थानों पर परस्पर मिलते हैं। ग्रंथों के स्वरों का मिलान अपने स्वरों से करने का वर्णन तुम्हें बता दिया है। 'लक्ष्यसंगीत' में यह तुलना उत्तम रूप से की गई है। यदि तुम चाहो, तो तुम्हें वे श्लोक सुना दूँ?

प्रश्न : अवश्य सुनाइए, हम उन्हें कंठस्थ करेंगे।

उत्तर : सुनो! 'लक्ष्यसंगीत' में कहा है:—

समपा लक्ष्यशुद्धास्ते ग्रंथेष्वपि तथैव च।
कोमलौतुरिधावत्र ग्रंथेषु शुद्धसंज्ञकौ ॥
अस्माकं यः कोमलोगस्तत्र साधारणो मतः।
तीव्रगांधारसंज्ञोऽत्र ग्रंथेषु चांतराभिधः ॥
निषादस्तीव्रकोस्माकं भवेत्काकलिसंज्ञकः।
कोमलोनिर्व्यवहारे ग्रंथे स्यात्कैशिकाह्वयः ॥

तीव्रमध्यमस्य संज्ञा बहवः स्युः सुलक्षिताः
वरालीमः प्रतिमोऽपि कैशिकी पंचमो मृदुः ।
अस्मच्छुद्धरिधौ तत्र शुद्धौस्यातांगनीक्रमात् ॥

इन श्लोकों को कण्ठस्थ करने से तुम्हें ग्रंथों के वाक्यों का अर्थ सरलता से समझ में आने लगेगा। यद्यपि इन श्लोकों से भी 'रत्नाकर', 'दर्पण' आदि ग्रंथों में बताए राग समझ में नहीं आ सकगे, परंतु अन्य अनेक ग्रंथों की स्पष्टता अवश्य हो जाएगी।

प्रश्न : तो क्या 'रत्नाकर' व 'दर्पण' में रागों का वर्णन निराले प्रकार से किया हुआ है ?

उत्तर : इन ग्रंथों में राग-वर्णन में ग्राम व मूर्च्छना का प्रयोग किया गया है। यह विषय कठिन और विवादग्रस्त है। हमारे हिन्दुस्तानी संगति में वैसी ग्राम-मूर्च्छना की उलझन नहीं है। इन दोनों ग्रंथों के भाषान्तर हो गए हैं। इन्हें पढ़ने से तुम ग्राम-मूर्च्छना का उपयोग जान सकोगे। जब मैं तुम्हें इन ग्रंथों को पढ़ाऊँगा, तब इस विषय की चर्चा करना उपयुक्त होगा।

प्रश्न : 'रत्नाकर' व 'दर्पण', इन दोनों ही ग्रंथों की राग-रचना क्या एक-सी है ?

उत्तर : नहीं, 'दर्पण' में छह राग और तीस रागिनी मानी गई हैं। इसके रचयिता दामोदर पण्डित का कथन है कि यह रचना हनुमान् (हनुमत)-मत के आधार पर की गई है। हनुमन्मत के आदि प्रधान ग्रंथ का कोई वर्णन नहीं किया है। इस समय भी हनुमन्मत का ग्रंथ प्राप्त नहीं है। दर्पणकार ने 'रत्नाकर' का केवल स्वराध्याय ग्रहण किया है और 'रत्नाकर' के रागाध्याय को छोड़कर उसके स्थान पर अन्य किसी ग्रंथ का रागाध्याय अंकित कर दिया है। कोई-कोई ऐसा तर्क करते हैं कि दर्पणकार ने 'रत्नाकर' का रागाध्याय (रागों का खुलासा) नहीं समझा था; शायद ऐसा ही हो, हमें इस विवाद में पड़ने की आवश्यकता नहीं है। ग्रंथों में रागों के विषय में दिए हुए विवरण परस्पर इतने निराले और विपरीत हैं कि उन्हें जानकर तुम्हारे मन में हिन्दुस्तानी संगीत के प्रति बने हुए आदर-भाव पर आघात होना सम्भव है। इस बात को एक उदाहरण से समझ लो। तुम्हारे कल्याण ठाठ में सब स्वर तीव्र लगते हैं, यह मैं बता चुका हूँ। इस ठाठ के समर्थन में एक-दो ग्रंथाधार मैंने तुम्हें बताए हैं। अब 'पुण्डरीक विट्ठल' के ग्रंथ 'रागचन्द्रोदय' का कल्याणी मेल देखो :—

शुद्धौ सगौ शुद्धपधौ तथैव । लध्वादिकौ षड्जकपंचमौ च ।
साधारणो गोपियदा भवेत्तु । कल्याणकस्याभिहितः सुमेलः ॥

यह स्पष्ट है कि यह वर्णन प्रचलित कल्याण ठाठ में नहीं लग सकता। इस प्रकार के भिन्न-भिन्न वर्णन ग्रंथों में बहुत पाए जाते हैं। इसी कारण अपने गायक

कल्याण के भिन्न-भिन्न प्रकारों को स्वीकार करते हैं। पुण्डरीक के कल्याणी मेल की निन्दा करने की जरूरत नहीं है। जरा रागविबोधकर्त्ता सोमनाथ का कथन तो सुन लो :—

कल्याणस्य तु मेले शुचयः सपधा रिरस्ति तीव्रतरः ।
साधारणश्च मृदुपो मृदुसोऽस्मिन्नेष इतरे च ॥

ये दोनों ग्रंथकार एक ही मत के माननेवाले हैं। ऐसे ग्रंथों के अभिमतों को तिरस्कृत भी नहीं करना चाहिए। इनका उपयोग हमारे द्वारा कैसे हो सकता है, यह मैं तुम्हें आगे बताऊँगा।

प्रश्न : ठीक है, ऐसा ही कीजिएगा। अब केवल एक तीव्र मध्यम को ही ग्रहण करनेवाले रागों का विचार हमें करना चाहिए।

उत्तर : एक मध्यमवाले इस ठाठ के राग मालश्री, हिंडोल व यमन माने जाते हैं। इनमें से यमन का वर्णन आश्रय राग होने के कारण इससे पहले किया जा चुका है। मालश्री व हिण्डोल राग औडव हैं। इनमें पाँच स्वर ही लगाए जाते हैं। प्रथम मालश्री की ओर ध्यान दें। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि इसमें सभी स्वर तीव्र लगते हैं। इस राग में रे, ध स्वरों को वर्ज्य किया जाता है। यह ठीक है कि बुद्धिमान लोग हमारी संगीत-रचना अत्यन्त सरलता से समझ सकते हैं। कल्याण ठाठ के स्वर 'सा रे ग म प ध नि' में से भिन्न-भिन्न स्वरों को वर्ज्य करते हुए भिन्न-भिन्न रागों को उत्पन्न किया जाता है; जैसे—उक्त संपूर्ण स्वरों से 'यमन' राग हो जाता है, आरोह-अवरोह में म, नि वर्ज्य करने पर भूपाली, केवल आरोह में म, नि वर्ज्य करने पर शुद्धकल्याण, केवल आरोह में म वर्ज्य करने पर चन्द्रकांत राग हो जाता है, यह तुम सीख ही चुके हो। अब यह याद रखो कि उपर्युक्त ठाठ के स्वरों में रे, ध वर्ज्य करने से मालश्री और रे, प वर्ज्य करने से हिंडोल हो जाता है।

प्रश्न : आपके कथन का तात्पर्य हम समझ रहे हैं। आपने अभी तक जो-जो बातें बताई हैं, उन्हें समझने में हमें कोई कठिनाई नहीं हुई। वास्तव में हमारी राग-रचना अत्यन्त मनोरंजक है। मेरा खयाल है कि जिस प्रकार कल्याण में म-नि और रे-ध स्वर वर्ज्य करने से नवीन राग उत्पन्न हो जाते हैं, इसी प्रकार अन्य ठाठों में भी ये ही स्वर वर्ज्य करने से नवीन राग उत्पन्न होते होंगे!

उत्तर : तुम्हारी कल्पना गलत नहीं है। आगे बिलावल ठाठ में इसी नियम से आरोह में मध्यम वर्ज्य करने से 'अल्हैयाबिलावल', म-नि वर्ज्य करने से 'देशकार', आरोह में रे-ध वर्ज्य करने से 'बिहाग' हो जाता है। खमाज ठाठ में रे-ध स्वर वर्ज्य करने से 'तिलंग' हो जाता है। ये स्वर भैरवी ठाठ में वर्ज्य करने से 'धनाश्री' राग का एक विशिष्ट प्रकार उत्पन्न हो जाता है। पूर्वी ठाठ के आरोह में रे-ध वर्ज्य करने पर 'जैतश्री' होता है। तोड़ी ठाठ में इन्हीं स्वरों को आरोह में छोड़ने से मुलतानी राग होता है। अधिक क्या, प्रत्येक ठाठ में सम्पूर्ण-औडव-षाडव प्रकार से ४८४ राग गणित से होना सम्भव है। यद्यपि इतने प्रकार नहीं हैं,

परंतु प्रत्येक ठाठ में निम्नलिखित १२ प्रकारों में नवीन-प्राचीन ग्रंथकारों ने इसी प्रकार अनेक राग उत्पन्न कर उनके भिन्न-भिन्न नाम दिए हैं। ये बारह प्रकार नीचे भैरव ठाठ के उदाहरण से समझो:—

भैरव ठाठ

१.	सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सां।
२.	सा	रे	×	म	प	ध	×	सां।
३.	सा	रे	×	म	प	ध	नि	सां।
४.	सा	रे	ग	म	प	ध	×	सां।
५.	सा	×	ग	म	प	×	नि	सां।
६.	सा	×	ग	म	प	ध	नि	सां।
७.	सा	रे	ग	म	प	×	नि	सां।
८.	सा	रे	ग	×	प	ध	×	सां।
९.	सा	रे	ग	×	प	ध	नि	सां।
१०.	सा	रे	ग	म	प	ध	×	सां।
११.	सा	रे	ग	म	×	ध	नि	सां।
१२.	सा	×	ग	म	×	ध	नि	सां।

इन प्रकारों में हमारे मिश्रराग, वक्र रूप, वादी स्वर-परिवर्तन से बदलनेवाले राग तो अभी आए ही नहीं हैं। यह नियम कठिन नहीं है, इसका प्रयोग हमारे अशिक्षित गायक ठीक-ठीक कर लेते हैं, फिर सुशिक्षित लोग तो इसे सरलता से प्रयोग में ला सकते हैं। इस रीति से उत्पन्न होनेवाले नवीन रागों को लोकप्रिय बनाने में पर्याप्त समय और परिश्रम की आवश्यकता है, परंतु यही एकमात्र उपाय इन्हें प्रचलित करने का हो सकता है। हमारे संगीत-व्यवसायी गायकों को सदैव नवीन राग बनाने और उन्हें सिखाने व सुनाने की उत्कंठा रहती है। ऐसे गायकों को ये नवीन रूप सिखाए जाने पर अपने-आप ही ये राग-स्वरूप लोकप्रिय हो जाएँगे। यह अनुभव स्वतः मुझे प्राप्त हुआ है और इस कार्य से मुझे प्रशंसा भी प्राप्त हुई है। हमारे श्रोताओं को नए राग बहुत पसंद आते हैं। कई गायकों ने अपने प्रचलित रागों को तोड़-मोड़कर और इस प्रकार नए स्वरूप बनाकर भी कीर्ति पाई है। ऐसे उदाहरण मेरे सामने आए हैं। उनके इन नवीन रागों के नियमों पर कौन विचार करता है। इस प्रकार के गायकों का अज्ञान उनके राग-विस्तार करते समय मार्मिक श्रोताओं द्वारा सदैव पकड़ में आ जाता है। यह स्पष्ट है कि नियम स्थिर करने का भार हमारे सुशिक्षित लोगों पर है। अस्तु, हम 'मालश्री' की ओर बढ़ें।

ग्रंथों में 'मालश्री' नाम भी दिखाई देता है। किसी-किसी ग्रंथ में 'मालाश्री', 'मालासी' आदि नाम भी पाए जाते हैं; परंतु ये सभी नाम बहुमत की दृष्टि से एक ही राग के नाम हैं। इस प्रकार दिखाई देता है कि 'मालश्री' राग शास्त्रसिद्ध है। प्रचार में मालश्री में गांधार और निषाद तीव्र (शुद्ध) लिए जाते हैं। इस प्रकार मध्यम स्वर भी तीव्र माना जाता है। ग्रंथों में जो 'मालश्री' राग पाया जाता है

उसका ठाठ श्रीराग का ठाठ अर्थात् प्रचलित काफी का ठाठ है, यह तुम्हें पहले बता दिया गया है ? तब हम प्रचलित मालश्री के लिए ग्रंथों का आधार कैसे ग्रहण कर सकते है ? यह भी एक विचित्रता है कि उन रागों में कहीं-कहीं रे-ध स्वर विवादी कहे गए हैं। रागविबोधकार का कथन निम्नलिखित है। उन्होंने ठाठ श्री राग का ही माना है।

सग्रहसांशन्यासा मालश्रीर्निग्रहांशा वा ।
पूर्णाथवा रिधाल्पा गेयाऽदौ मंगलाय शाश्वतिकी ॥

'पारिजात' में इस राग का ठाठ काफी माना गया है; परंतु धैवत वर्ज्य करने का कथन नहीं किया है। बहुत-से संस्कृत-ग्रंथों में मालश्री को काफी ठाठ में ही माना गया है। भेद इतना ही है कि कोई-कोई इसे सम्पूर्ण मानते हैं और कोई-कोई इसे षाडव-औडव भी मानते हैं। लक्ष्यसंगीतकार ने मालश्री का वर्णन इस प्रकार किया है :—

कल्याणे मेलके तत्र मालश्रीर्गीयते बुधैः ।
पंचमांशग्रहन्यासा रिधहीनौडवा मता ॥

यह स्वरूप प्रचलित मालश्री का वास्तविक स्वरूप है। अन्य ग्रंथकारों ने 'मालश्री' के विषय में जो-जो कहा है, वह उन्हीं के शब्दों में तुम्हें सुना देता हूँ।

रागलक्षणे—

हरप्रियाख्यमेलाच्च संजातश्चसुनामकः ।
मालवश्रीरितिख्यातः सन्यासं सांशकग्रहम् ॥
रिवर्जं वक्रमारोहे रिपवर्ज्यावरोहकम् ।

'हरप्रिय ठाठ' अर्थात् हमारा काफी ठाठ है। यह स्वरूप मालश्री का नहीं है, यह स्पष्ट है।

पारिजाते—

रिहीना मालवश्रीः स्यात् शुद्धमेलस्वरोद्भवा ।
मध्यमादिस्वरोद्ग्राहा धांशयुक्तान्त्यपास्मृता ॥

संगीतसारामृते—

श्रीरागमेलसंजाता षड्जन्यासग्रहांशिका ।
रिवर्जिता मालवश्रीः षाडवा मंगलप्रदा ॥
रागांगमेनांशंसन्ति प्रगेया सर्वदा बुधैः ॥

'स्वरमेलकलानिधि' के मत से भी 'मालवश्री' का ठाठ काफी कहा गया है।

प्रश्न : 'स्वरमेलकलानिधि' ग्रंथ किस समय का है ?

उत्तर : 'शाकेनेत्रधराधराब्धिधरणीगण्येथसाधारणे'—इस प्रकार ग्रंथकार ने कहा है; अर्थात् यह १४७२ शाके की रचना है। तिथि के लिए कहा गया है—'वर्षे श्रावणमासिनिर्मलतरेपक्षेदशम्यांतिथौ'।

चतुर्दण्डिप्रकाशिकायाम्—

षाडवोमालवश्रीः स्यात् रागांगमृषभोज्झितः ।
मेलेश्रीरागविख्याते सर्वकालेषु गीयते ॥

रागचंद्रोदये—

चतुःश्रुतीयत्ररिधी भवेतां साधारणो गोऽपिचकैशिकीनिः ।
तथाविशुद्धाः समपा भवन्ति श्रीरागकस्याभिहितः समेलः ॥
श्रीरागकोऽस्मादपिमालवश्रीर्धन्नासिकाभैरविका तथैव ।
अन्येऽपिरागाः कतिचित्प्रसिद्धा भवन्ति सैंधव्यभिधादयश्च ॥

भावार्थ : जिसमें ऋषभ और धैवत चार-चार श्रुति के लिए गए हैं, गांधार स्वर साधारण नाम से लिया है, निषाद कैशिक तथा षड्ज, मध्यम और पंचम शुद्ध लिए जाते हैं, उसे विद्वान् श्री राग का ठाठ कहते हैं। इस राग मेल से ही मालश्री, धन्नासी (धनाश्री), भैरवी और अन्य सैंधव आदि राग उत्पन्न होते हैं। यह भी काफी का ही ठाठ है। अब यह प्रश्न उत्पन्न हो जाता है कि क्या हमारा प्रचलित मालश्री राग बिलकुल अशुद्ध है ? प्राचीन ग्रंथों की दृष्टि से इसको शास्त्र-शुद्ध कैसे कहा जा सकता है ?

मेरी दृष्टि से तो यह निर्णय है कि 'रागविबोध' ग्रंथ में वर्णित मालश्री और 'लक्ष्यसंगीत' में वर्णित मालश्री दो भिन्न-भिन्न राग हैं। काफी ठाठ के स्वरों में रे-ध दुर्बल करते हुए एक स्वतंत्र 'मालश्री' को भी हम स्वीकार कर सकते हैं। काफी ठाठ के विषय में विचार करते समय मैं इस विषय पर तुम्हें अधिक बताऊँगा। लक्ष्यसंगीतकार ने इसी प्रकार मानते हुए कहा है—'ग्रंथेषु मालवश्र्युयाख्या काफीमेले सुलक्षिता; नासावस्मल्लक्ष्यमार्गप्रसिद्धेति परिस्फुटम्' । तुम्हें इस कथन को सुनकर आश्चर्य होगा, परंतु यह उपाय मानने का आधार सर्वमान्य ग्रंथ 'रत्नाकर' में भी वर्णित है—'यद्वालक्ष्यप्रधानानि शास्त्राण्येतानि मन्वते; तस्माल्लक्ष्यविरुद्धं यत्तच्छास्त्रं नेयमन्यथा'। उसकी टीका करते हुए कल्लिनाथ ने लिखा है—'एतानि शास्त्राणि देशी विषयाणि; लक्ष्यप्रधानानि लक्ष्यमेव प्रधानं येषांतानि; तस्मात् लक्ष्यविरुद्धं यच्छास्त्रं तत् लक्ष्यविरुद्धं यथा न भवति तथा व्याख्येयमिति' । यह उपाय वास्तव में उत्तम है। रागविबोधकार ने 'रत्नाकर' के उपर्युक्त श्लोक के विषय में एक स्थान पर ऐसा कहा है—'शास्त्राणां लक्ष्यानुग्रहाय प्रवृत्तत्वात् यत्र तयोर्विरोधस्तत्र शास्त्रैर्नियमितस्याप्यर्थस्य उपलक्षणत्वादिना प्रकारांतरेण गतिः कर्तव्या न तु लक्ष्यमुपेक्ष्यम्' । अस्तु, 'मालश्री' राग को दिन के अन्तिम प्रहर में गाने की प्रथा है। इस समय गाए जाने-वाले रागों का प्रधान चिह्न यह है कि अधिकांश रागों में रे-ध स्वर वर्ज्य या दुर्बल ग्रहण किए जाते हैं। उदाहरण के लिए धानी, धनाश्री, भीमपलासी, मुलतानी व मालश्री को लिया जाता है। जैसे-जैसे सूर्य अस्ताचलगामी होता है, वैसे-वैसे ही संधिप्रकाश रागों का आरम्भकाल आ जाता है, अर्थात् दिन-भर चलनेवाले तीव्र रे और ध दुर्बलत्व पाने लगते हैं। उपर्युक्त धानी, धनाश्री आदि

रागों में गांधार, निषाद कोमल लिए जाते हैं; इस विषय में भी किसी-किसी का मत है कि इनका भी झुकाव व्यवहार में तीव्र गांधार, निषाद की ओर होता जाता है। उनका कथन है कि प्रभातकाल में गांधार और निषाद कोमल लिए जाते हैं; वहाँ वे रे और ध के अधिक निकट आ जाते हैं। परंतु तुम्हें इस सूक्ष्म भेद में जाने की आवश्यकता नहीं है। हमारी पद्धति में रागों की भिन्नता सूक्ष्म स्वरों से नहीं मानी जाती। 'मालश्री' राग दिन के चौथे प्रहर में गाया जाता है।

यह अभी ऊपर कहा जा चुका है। इसका वादी स्वर पंचम और उसका संवादी स्वर षड्ज है। चौथे प्रहर में पंचम स्वर का वादित्व अन्य रागों में दिखाई पड़ता है। गायक लोग बहुधा गांधार स्वर का प्रयोग षड्ज की मीड़ लेकर करते हैं। यह काम बहुत सुन्दर होता है। यह एक प्रकार से इस राग की पकड़ ही है। प्रत्येक राग को ध्यान में लाने के लिए भिन्न-भिन्न युक्तियों की योजना की गई है, उसी प्रकार की यह भी योजना है। इसके लिए ग सा, ये दोनों स्वर जोड़कर गाने का अभ्यास होना चाहिए। मीड़ लेने से इन दोनों स्वरों के मध्य का ऋषभ घसीट में लिया जाता है; इससे राग-सौंदर्य में वृद्धि होती है। अवरोह में ऐसा प्रयोग उत्तम कहा जाता है। आरोह में सा तथा ग, ये दोनों स्वर बिलकुल अलग-अलग गाए जाते हैं। यह भी तुम्हें ध्यान में रखना चाहिए कि कल्याण ठाठ के हिण्डोल राग में (जिसे मैं तुम्हें उसके बाद बताऊँगा) ऋषभ इसी प्रकार वर्ज्य है। वहाँ भी ग सा स्वर इसी क्रम से आते हैं, परंतु वह कार्य मालश्री में सुन्दर दिखाई नहीं देगा। इसका कारण यह है कि हिंडोल प्रातःकालीन राग है। हिंडोल गाते हुए ग स्वर से सा मिलाते हुए गायक लोग अत्यन्त सूक्ष्म कोमल मध्यम का कण गांधार में जोड़ देते हैं। परंतु ऐसा कण मालश्री में नहीं लिया जा सकता। 'लक्ष्यसंगीत' में लिखा है, 'लक्ष्येक्रमात्सगासक्ता रिमच्छायावरोहणे'। तुम यदि ध्यानपूर्वक देखोगे, तो तुम्हें यह विशेष रूप अवश्य दिखाई देगा। केवल वर्णन-मात्र से ही ऐसी बातें अच्छी तरह नहीं बताई जा सकतीं, अतः मैं तुम्हें इसका प्रयोग कर दिखाता हूँ। इसका अभ्यास कर लेने पर ही गायक गांधार में मध्यम का अंश जोड़कर फिर षड्ज पर आते हैं और फिर मन्द्र के तीव्र धैवत को लेकर षड्ज पर आते हुए अपनी तान पूरी करते हैं। मालश्री गानेवाले गांधार से मीड़ लेकर षड्ज पर आते हैं और फिर मन्द्र पंचम लेकर षड्ज पर जाते हैं। ये दोनों प्रकार तुम्हें तैयार होने चाहिए। कल्याण ठाठ के ऋषभ वर्ज्य होनेवाले राग बिना सीखे उक्त प्रयोग में भूल करना संभव है। प्रचार में तुम्हें ऐसे गायक भी मिलेंगे, जो मालश्री को सा, प, ग, ऐसे तीन ही स्वरों पर गाते हैं। वे तुम्हें 'सा सा ग ग प प, ग प ग सा, ग सा प़ सा, प ग प प ग, सा', इस प्रकार का प्रयोग दिखाएँगे। शास्त्रीय दृष्टि से उनका यह प्रयोग योग्य नहीं कहा जा सकता, क्योंकि हमारा सर्वमान्य नियम 'पंचोनेभ्यः स्वरेभ्यश्चनस्याद्रागस्यसंभवः' है।

रागों के तीन वर्ग औडव, षाडव और सम्पूर्ण भी उक्त नियम की साक्षी देते हैं। जो गायक उपर्युक्त राग को तीन ही स्वरों में गाने का दावा करते हैं, उनके गाने को

सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर म, नि स्वरों का प्रयोग भी घसीट में किया हुआ दिखाई दे सकता है।

प्रश्न : 'मालश्री' का राग-स्वरूप (राग-विस्तार) बताइए ?

उत्तर : 'मालश्री' का राग-स्वरूप इस प्रकार होता है :—

प, प, प ग सा, सा सा ग ग प, प, प मं ग, प ग सा; सा सा प़ नि़ सा, ग प ग, मं ग, सा, नि़ सा ग प मं ग, प ग सा; प मं ग, प मं ग, मं ग, सा ग मं ग, मं ग, सा, प़ प़ सा, सा ग सा सा, ग प मं ग प ग सा, नि प मं ग, ग मं प मं ग ग सा; प प ग सा, ग प सां, नि सां गं सां, पं मं गं सां, नि नि प मं ग प सां, सां नि प ग, सा ग प सां, नि प ग, प ग, गसा;

सा सा प प मं प नि प, प मं ग प सां नि प प, नि प ग सा, ग प सां, गं सां नि प, ग प ग सा।

यह स्वरूप इस स्वर-समुदाय को बार-बार गाकर समझ लेना चाहिए। इसमें विशेषता यही है कि इस राग को बिहाग और शंकरा नामक रागों के प्रमाण से अधिक युक्तिपूर्वक नहीं मिलने देना चाहिए। मालश्री गाते समय श्रोताओं को उक्त दोनों रागों का थोड़ा-थोड़ा आभास होना संभव है।

बिहाग में शुद्ध मध्यम स्पष्ट रूप से लगता है, इस कारण उसे भिन्न करके बताना सरल है। शंकरा के अवरोह में कोई-कोई रे स्वर का प्रयोग करते हैं। धैवत भी शंकरा में वर्ज्य नहीं है, इस कारण इसे मालश्री से भिन्न किया जा सकता है। मालश्री में 'म' और 'नि' स्वरों को बिलकुल गौण बना देने पर किसी यूरोपियन ट्यून का-सा आभास होता है। कल्याण ठाठ में रे-ध वर्ज्य होनेवाले राग सिर्फ मालश्री और हिण्डोल ही हैं, यह याद रखना कठिन नहीं है। शंकरा और बिहाग, यह रे-ध वर्ज्य करनेवाली जोड़ी आगे बिलावल ठाठ में आएगी।

प्रश्न : अब हिण्डोल के विषय में बताइए ?

उत्तर—हिण्डोल प्रभातकालीन राग प्रचार में माना गया है, अतः इसमें प्रभातकालीन कोई चिह्न होना चाहिए।

प्रश्न : मेरे खयाल से यह राग उत्तरांगवादी होगा ?

उत्तर : स्पष्ट है। वह स्वर इस राग में धैवत माना गया है। परंतु इसमें कौन-सा ऐसा भाग है, जो प्रभातकाल के समय असंगत प्रतीत होगा।

प्रश्न : इसमें लगनेवाला तीव्र मध्यम स्वर ही ऐसा दिखाई देता है। शायद इसे प्रभात के रागों में अपवाद-स्वरूप माना गया है ?

उत्तर : हाँ ऐसा ही है। हमारे नियमों के अपवाद-स्वरूप रागों में से एक राग यह भी है। इस प्रकार की सूचना मैंने तुम्हें पहले भी दी थी। अस्तु—

हिंडोल में वादी स्वर धैवत और संवादी स्वर गांधार माना गया है। कोई-कोई इसमें वादी गांधार और संवादी धैवत मानते हैं, परंतु हम तो धैवत को ही वादी स्वीकार करेंगे।

प्रभातकाल के रागों का स्पष्ट चिह्न उत्तरांगवादी होना और अवरोह में अधिक विचित्रता होना है। इसी प्रकार का एक नियम यह भी साधारण रूप से हो जाता है कि रात्रिकाल के रागों में 'रे' स्वर आरोह में अधिक स्थानों में दिखाई देता है, इस प्रकार प्रभात के या दिन के रागों में नहीं दिखाई देता। यह नियम अत्यंत दृढ़ नहीं है, फिर भी इस नियम के अनेक उदाहरण प्राप्त हो सकते हैं। हिंडोल के विषय में प्राचीन ग्रंथकारों ने क्या लिखा है? उन्हें सुनकर संभवतः तुम्हें निराशा होगी। मैं तुम्हें भिन्न-भिन्न मतभेद जानने की उत्सुकता की दृष्टि से भिन्न-भिन्न ग्रंथों के मत सुनाता हूँ। सर्वप्रथम इस समय के संगीत-आधारग्रंथ माने हुए 'संगीतपारिजात' ग्रंथ की तरफ देखो। पं० अहोबल कहते हैं:—

हिंदोलेऽथ रिपौ त्याज्यौ कोमलो धैवतो भवेत्।
हिंदोलो रिपयोगेन मार्गहिंदोलको भवेत्॥

'पारिजात' का शुद्ध ठाठ काफी (प्रचलित) का है। इस दृष्टि से इस हिंडोल का स्वरूप प्रचलित मालकोश-जैसा हो जाएगा। दूसरे शब्दों में इसे ऐसा कहा जा सकता है कि आसावरी ठाठ के स्वरों में रे, प वर्ज्य करने से हिंडोल के स्वर रहते हैं। 'स्वरमेलकलानिधि' के रचयिता 'रामामात्य' ने हिंडोल के स्वर इस प्रकार बताए हैं:—

श्रीरागमेले यल्लक्ष्म तत्स्यात् हिंदोलमेलके।
धैवतः शुद्ध एवात्र विशेषोयं प्रदर्शितः॥

इस ग्रंथ में वर्णित श्री राग का ठाठ प्रचलित काफी-जैसा है, अतः यह मत भी 'पारिजात' के मत से मिलता हुआ है।

चतुर्दंडिकार कहता है—हिंदोलसंज्ञको रागो भैरवीमेलसंभवः; औडवो रिधलोपेन सर्वकालेषु गीयते'। यह भी उपर्युक्त ठाठ ही होता है।

'संगीतसारामृत' में भी हिंदोल को भैरवी ठाठ में ही माना है:—

हिंदोलो भैरवीमेलसंजातो रिपवर्जितः।
औडवः सर्वदा गेयः संगीतागमकोविदैः॥

संगीतदर्पणकार कहता है—'हिंदोलको रिधत्यक्तः सत्रयो गदितो बुधैः; मूर्छना शुद्धमध्यास्यादौडवः काकलीयुतः'। इस ग्रंथ में ग्राम, मूर्च्छना आदि के द्वारा राग-विवरण समझाया है। इन विवादग्रस्त विषयों में तुम्हें न लेजाकर केवल इतना बताए देता हूँ कि प्रचलित हिंदोल के रूप का उपर्युक्त वर्णन नहीं है। विद्यापति ने अपने ग्रंथ 'रागतरंगिणी' में हिंदोल का ठाठ कर्णाट माना है, अर्थात् यह ठाठ श्री राग का ही है, जिसे प्रचार में काफी ठाठ कहते हैं। (प्राचीन श्री राग प्रचलित काफी ठाठ में आता है।)

अब तुम्हारे ध्यान में आ गया होगा कि प्रचलित हिंदोल उनमें से किसी भी मत से नहीं मिलता। इस राग को यमन (कल्याण) ठाठ में किसने और कब प्रविष्ट कर दिया, यह प्रश्न भी उपस्थित होता है, परन्तु हमें प्रचलित रागों को सामने रखते हुए चलना है, अतः ग्रंथों में वर्णित हिंदोल को एक निराला राग मान लेना ही उत्तम है। हमारे प्रचलित हिंदोल का समर्थक मत इस प्रकार है :—

कल्याणीमेलकोत्थः स्याद्धिंदोलः सर्वसम्मतः ।
प्रातःकालप्रगेयोऽपि धांशको गांशकोऽथवा ॥
वादित्वं तद्गस्वरस्य प्रातर्नैव सुरक्तिदम् ।
इतिकेचिद्वदस्य प्राहुः समीचीनं हि मे मते ॥
रिपयोरत्र लुप्तत्वाद्मात्यो गस्वरो भवेत् ।
अवरोहेण वर्णेन प्रायो गानं सुखावहम् ॥

उपर्युक्त मत लक्ष्यसंगीतकार का है।

प्रश्न : बंगाल के प्रसिद्ध संगीतज्ञों ने इस राग के विषय में क्या शोध की है?

उत्तर : वहाँ भी इन प्राचीन ग्रंथों को समझनेवाले व्यक्ति अधिक नहीं देखे गए। प्रचलित संगीत के विषय में ही बँगला भाषा में एक-दो उत्तम ग्रन्थ पाए जाते हैं, परन्तु संस्कृत ग्रंथों की स्पष्टता वहाँ भी दिखाई नहीं देती। इस हिंदोल के विषय में उधर के एक ग्रंथकार का कथन तुम्हें बताता हूँ:—

हिंदोल राग संस्कृत-ग्रंथों में वर्णित 'हिंडोल' राग ही है। इसकी जाति औडव है, इसमें ऋषभ और पंचम स्वर विवादी हैं। इसको वसंत ऋतु में भूला-महोत्सव पर गाने की प्रथा है। हनुमन्मत के अनुसार हिंदोल में पंचम के स्थान पर धैवत स्वर विवादी माना गया है। हमारे प्रदेश के लोग हनुमन्मत के अनुसार न गाकर धैवत स्वर को सम्पूर्ण महत्त्व देते हुए गाते हैं। मैं एक स्थान पर कह चुका हूँ कि हमारी तरफ हनुमन्मत का प्रचार अधिक नहीं है, क्योंकि इस मत के विपरीत अनेक राग प्रचार में हैं। 'संगीततरंग' के ग्रंथकार ने एक स्थान पर लिखा है कि हमारे देश में इस समय हनुमन्मत का ही प्रचार है; और यही ग्रंथकार आगे चलकर हिंदोल में पंचम वर्ज्य करने का उल्लेख करता है। फिर भला हनुमन्मत के प्रचार से इसकी क्या संगति हो सकती है! 'शब्दकल्पद्रुम' ग्रंथ में हिंदोल में रे, प स्वर वर्जित बताए गए हैं। 'रागविबोध' और 'संगीतनारायण' ग्रंथों के जो कुछ राग 'Sir William Jones' ने संगृहीत किए हैं, उनमें भी हिंदोल का विवरण पंचम वर्जित ही पाया जाता है।

उपर्युक्त उद्धरण 'संगीतसार' ग्रंथ का है। इस ग्रंथ में हिंदोल का स्वरूप कल्याण ठाठ के स्वरों में ही बताया गया है। 'रागविबोध' का शुद्ध ठाठ कौन-सा है, सम्भवतः इसे बंगाली ग्रंथकारों ने नहीं समझा है, तभी उन्होंने उसे शुद्ध बिलावल ठाठ-जैसा समझकर अपने ग्रंथों में उससे यत्र-तत्र बिना विचारे

उद्धरण रख दिए हैं। मेरी समझ से तुम्हें भी इन बंगाली ग्रंथकारों का यह कार्य अनुचित ही जँचा होगा। रागविबोधकार ने हिंदोल को औडव माना है और हम भी प्रचार में उसे औडव मानते हैं। इतनी साम्यता देखकर ही 'रागविबोध' के आधार पर अपने रागों को बताने लगना पागलपन है। 'रागविबोध' का हिंदोल प्रचलित आसावरी ठाठ में और हमारा हिंदोल कल्याण ठाठ में आता है; फिर भला इनमें क्या एकता हो सकती है। बँगला ग्रंथों में ऐसे अनेक उदाहरण मुझे दिखाई दिए हैं। उनका संगीत-ग्रंथों का ज्ञान हमारे यहाँ की अपेक्षा बहुत अधिक नहीं कहा जा सकता। वहाँ संगीत-रुचि निस्संदेह अधिक है, परंतु वहाँ मुझे संगीत-ज्ञाता अधिक प्राप्त नहीं हुए। जिनसे मेरी भेंट हुई, उनकी भी ग्रंथों में वर्णित अनेक स्थलों पर गलत धारणा बनी हुई देखी गई। इस प्रकार की गलतफहमी का एक उदाहरण तुम्हें सुनाता हूँ। बंगाल-प्रवास करते समय मेरी एक संगीत-शास्त्र-ज्ञाता से भेंट हुई। उन्होंने 'संगीत-दर्पण' का अध्ययन किया था, ऐसा उनकी बातों से प्रकट हुआ। मैं उनसे सहज ही पूछ बैठा कि 'दर्पण' में वर्णित शुद्ध स्वरमेल कौन-सा है! उन्होंने कहा—'वह तो बिलावल मेल ही है'। तब मैंने उनके सामने श्री राग की व्याख्या रखते हुए पूछा कि फिर श्री राग के स्वर कौन-से होंगे! श्रीराग की वह व्याख्या यह थी:—

श्रीरागः स च विख्यातः सत्रयेण विभूषितः।
पूर्णः सर्वगुणोपेतो मूर्छना प्रथमा मता।
केचित्तु कथयंत्येनमृषभत्रयसंयुतम् ॥

उन्होंने उत्तर दिया कि हम लोग श्री राग में 'रे' स्वर कोमल लेते हैं। षड्ज स्वर चार श्रुति का है और वहाँ 'सत्रय' अर्थात् तीसरे दर्जे का है, अतः क्या वह कोमल नहीं हो जाता ?

मैं उनका यह उत्तर सुनकर आश्चर्य में पड़ गया। मुझे स्वप्न में भी 'सत्रय' के उपर्युक्त अर्थ का बोध नहीं था। 'सत्रय' का अर्थ—जिस राग में 'सा' स्वर ग्रह, अंश व न्यास, इन तीन स्थानों में आता हो—इस प्रकार होता है। उक्त सज्जन का यह अर्थ सुनकर मैंने पूछा कि श्री राग में धैवत कोमल और मध्यम तीव्र लिया जाता है। इस विषय में इस श्लोक में क्या कहा है! इसका उत्तर उनके द्वारा कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ। संगीतसारकर्ता ने श्री राग के स्वर प्रचलित स्वरों के अनुसार ही ग्रहण किए हैं, अर्थात् उसने कोमल रे, तीव्र मध्यम, कोमल धैवत, ऐसे स्वर ग्रहण किए हैं और संस्कृत-आधार लिया है सोमेश्वर और कल्लिनाथ का; और उसपर वही ग्रंथकार श्री राग को सम्पूर्ण जाति का बताता है! यह सोमेश्वर यदि रागविबोधकार हुआ, तो इस राग का ठाठ तो काफी का ठाठ हो गया (मैं पहले कह चुका हूँ), परंतु यह तो दूसरा ही सोमेश्वर सुना गया है।

मैं बँगला-ग्रंथों की आलोचना नहीं करना चाहता हूँ, परंतु उधर के ग्रंथों के विषय में तुम्हारे प्रश्न करने पर अपनी दृष्टि से प्रमाणबद्ध बात ही बता रहा हूँ। उधर

के संगीतज्ञ बड़े खोजी हैं, यह असंदिग्ध है; परंतु ग्रंथों के अध्येता नहीं हैं और इसी कारण ये गलतियाँ होना संभव है। यह मेरा अपना मत है। मैंने तुमसे उधर के प्रसिद्ध ग्रंथों को पढ़ने के लिए आग्रह किया ही है। तुम स्वयं उन ग्रंथों को पढ़कर अपना मत निश्चित कर लेना।

प्रश्न : आपने कहा था कि भावभट्ट अधिक प्राचीन ग्रंथकारों में से नहीं है। इसने हिंडोल का वर्णन कैसा किया है ?

उत्तर : भावभट्ट ने केवल भिन्न-भिन्न ग्रंथों के मत एकत्र किए हैं, परंतु इससे भी 'रत्नाकर', 'दर्पण' आदि ग्रंथों की स्पष्टता नहीं हो सकी। अन्य जिन-जिन ग्रंथों के उद्धरण इसने ग्रहण किए हैं, वे समझने-योग्य हैं।

प्रश्न : भावभट्ट ने 'रत्नाकर' के राग अपने ग्रंथों में नहीं बताए हैं ?

उत्तर : नहीं ! उसने तो 'रत्नाकर' के रागों को वैसे-के-वैसे ही उद्‌धृत कर दिया है, परंतु इस अनुकृति से कोई उपयोगी लाभ नहीं हुआ है। भावभट्ट ने 'रत्नाकर' के राग जैसे-के-तैसे उद्‌धृत कर दिए और उनके समझने का प्रयत्न न करते हुए भिन्न-भिन्न ग्रंथों की व्याख्या एकत्र कर दी। 'रत्नाकर' के ग्राम-राग ग्राम, मूर्च्छना, जाति आदि साधनों से समझाए गए हैं, इनकी स्पष्टता अनेक ग्रंथकारों ने नहीं समझी और वे ग्राम-रागों के मार्ग पर गए ही नहीं। ग्राम, मूर्च्छना, जाति की उत्तम स्पष्टता करते हुए 'रत्नाकर' के रागों का स्वरूप स्पष्ट करना वास्तव में बहुत कठिन कार्य है। 'रत्नाकर' के पश्चात् के अनेक ग्रंथ उत्तम समझने-योग्य हैं और हमारे लिए उपयोगी भी हैं। भावभट्ट ने हिंडोल की व्याख्या इस प्रकार की है—'द्वितीयगतिकोरिश्च त्वेकैकगतिकौ गनी; तदा हिंदोलमेल: स्यात्' इस प्रमाण से हिंडोल का ठाठ आसावरी का ठाठ ही सिद्ध होता है। आसावरी ठाठ का हिंडोल प्रभातकाल में गाया जानेवाला राग है, यह कथन असंगत नहीं है। उसे ही कल्याण ठाठ में गांधार वादी कहते हुए वर्णन करने पर मतभेद उत्पन्न हो सकता है। 'रागविबोध' में हिंडोल के विषय में कथन है—'हिंदोलो रिपहीनो मांश सांतग्रह: सदोषसिवा' इस राग का ठाठ वसंत बताया है। वसंत मेल की व्याख्या इस प्रकार की गई है, 'शुद्धा वसंतमेले सरिपमधा अन्तरश्च काकलिका'। इस व्याख्या से हिंडोल का ठाठ भैरव ठहरता है। यहाँ भी रे,प स्वरों को वर्ज्य किया है। यह सब देखते हुए कहा जा सकता है कि हिंडोल का स्वरूप भिन्न-भिन्न समयों में भिन्न-भिन्न प्रकार से होता गया है। हमें 'लक्ष्यसंगीत' का मत प्रचलित रूप से मिलता हुआ होने से पसंद करना है। लक्ष्यसंगीतकार भी ग्रंथों के इस मतभेद को जानता था, यह उसके कथन से स्पष्ट हो जाता है। भैरव ठाठ में रे, प वर्जित हिंडोल राग का एक नवीन प्रकार आगे प्रचार में आएगा। हमें अभी तो प्रचलित हिंडोल पर ध्यान देना है। यह राग कभी-कभी गायकों द्वारा रात्रि में गाया हुआ भी सुना है। उस समय उनका तीव्र मध्यम स्पष्ट और गांधार को महत्त्व का स्वर बनाना योग्य नहीं कहा जा सकता। मैं फिर कहता हूँ कि यदि कोई इसे रात्रिगेय और वादी गांधार से युक्त राग बताता है, तो मैं उसके कथन को असंगत नहीं कहूँगा। हिंडोल में पंचम वर्ज्य है, अत: स्वाभाविक ही धैवत का महत्त्व अधिक हो जाता है। यही उत्तरांगवादित्व देखकर इसे प्रभात का राग माना है। कोई-कोई गायक वादी

स्वर षड्ज मानते हैं, यह हमारे मान्य नियम के विरुद्ध नहीं है, क्योंकि सा म प चाहे जिस समय के राग में वादी हो सकते हैं। इस समय प्रचार के अनुसार चलने के लिए हमें धैवत को ही वादी स्वीकार करना पड़ेगा। इस राग के आरोह में निषाद वक्र रूप से लिया जाता है। अर्थात् आरोह में निषाद तक आकर पुनः एक-दो स्वर तक वापस जाना पड़ता है। वक्रत्व का अर्थ मैं तुम्हें पहले समझा चुका हूँ। 'सा, ग, मं ध नि ध, सां' यह हिंडोल का आरोह है और 'सां, निध, मंग, सा' अवरोह है। 'म ध नि सां' ऐसा सरल आरोह करने पर श्रोताओं को 'सोहनी' राग का आभास होना संभव है, इसलिए उपर्युक्त वक्रता ग्रहण की गई है। गंभीर विलम्बित लय में गाते हुए उपर्युक्त नियम को उत्तम रूप से निभाया जा सकता है और उसका परिणाम भी उत्तम होता है। जलद-गायन द्रुत लय में गाते हुए अनेक गायक नियम-भंग करते हुए पाए जाते हैं। जलद-तानों में निषाद स्वर को बिलकुल गौण बना देने से भी श्रोताओं के मन में राग-अशुद्धि की तिरस्कृत भावना उत्पन्न नहीं होती। निषाद की वक्रता अनेक रागों में तुम्हें दिखाई देगी। कल्याण ठाठ के दो मध्यमवाले रागों के आरोह में निषाद वक्र या वर्ज्य पाया जाता है। जलद-तानों में इस वक्रता की रक्षा न करने पर निषाद 'प्रच्छादित' या 'अनभ्यस्त' कहा जाता है। हिंडोल उत्तरांग-प्रधान राग है, अतः इसका स्वरूप अवरोह में अधिक खिलता है। इस राग की प्रकृति बड़ी गंभीर है। इस राग में निषाद का प्रयोग जितना कम किया जाएगा, उतना ही यह राग स्पष्ट दिखाई देगा और वही निषाद जितना अधिक प्रयुक्त होगा; उतना ही अधिक 'सोहनी' के निकट हमारा राग जाएगा। 'हिंडोल' सुननेवाले श्रोताओं को मारवा, पूरिया, सोहनी तथा एक प्रकार का पंचम आदि रागों की थोड़ी-थोड़ी छाया दिखाई देना संभव है। यद्यपि ये सब राग अपने-अपने नियमों के अनुसार पृथक्-पृथक् हैं, परंतु इनमें थोड़ी-बहुत मात्रा में समीपता भी है। इन सभी रागों में कोमल 'रे' का प्रयोग होता है; अतः पूर्वांग में ये राग 'हिंडोल' से अलग हो जाते हैं, परंतु उत्तरांग में ये राग 'हिंडोल' के बहुत निकट आ सकते हैं।

प्रश्न : हमें हिंडोल का राग-स्वरूप (विस्तार) स्वरों में बतलाइए?

उत्तर : हिंडोल का राग-विस्तार निम्न प्रकार से होता है :—

सा, ध़सा, गसा, सा, गमंग, सा, सानि़ध़, नि़ध़, मं़ध़सा, सा, सा, गमंग, सा

सा, ध़, मं़ध़, मं़ग़, मं़ध़सा सागमंध, धमंगसा; धधमंग, मंग, मंधनिध, मंग, धमगगसा, सासागग, मंधमंग, धधमंगमंगसा, सागमंग, सा; गगमंध, मंधसां, सांसांधध, गंमंगंसां, सांनिध, निधमंगग, निधमंग, मंगसा;

ध़ध़सा, गगसा, सागमंगसा, साग, मंग, निधमंग, धधमंग, मंगसा;

गगमंधसां, सां, सांगंमंगं, मंगंसां, सांनिधमंगग, धमंग, मंगगसा, निनिधधमंमंगग, मंग, सा, ध़, साग;

इन स्वरों को गाने पर हिंडोल का स्वरूप उत्तम रूप से स्पष्ट दिखाई देने लगेगा।

मेरे विचार से हमने कल्याण ठाठ के प्रथम दो वर्गों के रागों पर पर्याप्त चर्चा कर ली है। अब हम तीसरे वर्ग के दोनों मध्यम ग्रहण करनेवाले रागों पर विचार करेंगे।

प्रश्न : जी हाँ, कहिए ?

दो मध्यमवाले राग

उत्तर : इस विभाग में सर्वप्रथम हम 'हमीर' राग को लेते हैं। कहीं-कहीं इसे 'हंबीर' नाम भी दिया गया है। रागों के नाम योग्य हैं या अयोग्य, इस प्रश्न की उलझन में न पड़ते हुए हमें प्रचलित नामों को ही ग्रहण करना है। मैं तुम्हें बता चुका हूँ कि रागों के नाम भिन्न-भिन्न कारणों से दिए गए हैं। मि० बनर्जी अपने ग्रंथ में इस प्रकार लिखते हैं:—

'राग-रागिनियों का संग्रह देश के भिन्न-भिन्न भागों में किया गया है। इसके प्रमाण-स्वरूप अनेक रागों के नाम हैं, जो कि भिन्न-भिन्न देश-भागों पर रखे गए हैं; जैसे—सैंधवी, बंगाली, सोरठी, भूपाली, गुर्जरी, मालवी, कर्नाटी, कामोदी, गांधारी, टंकी (राजपूताना), वैराटी, कालिंगड़ा तथा मुलतानी आदि। मुख्य छह रागों के नाम छह ऋतुओं पर से रखे गए दिखाई देते हैं। खैर, हमें अभी इस चर्चा में पड़ने की आवश्यकता नहीं है। 'हमीर' कल्याण ठाठ का, दोनों मध्यम (तीव्र या कोमल या शुद्ध) वाला राग है। यह सम्पूर्ण जाति का माना गया है। किसी-किसी संस्कृत-ग्रंथ में इसे शंकराभरण ठाठ से उत्पन्न बताया है। इसका कारण यही कहा जा सकता है कि दो मध्यमवाले रागों में तीव्र मध्यम की अपेक्षा कोमल (शुद्ध) मध्यम ही अधिक महत्त्वपूर्ण रहता है। यह ठीक है कि प्रचार में ऐसे सभी रागों में तीव्र मध्यम लिया जाता है। तीव्र मध्यम की गौणता का एक प्रबल प्रमाण यह भी है कि यदि इसका प्रयोग न भी करें, तो भी राग-स्वरूप नहीं बिगड़ पाता। 'हमीर' में आरोह में निषाद वर्ज्य माना गया है; वैसे ही अवरोह में गांधार स्वर वर्जित किया गया है। कोई-कोई इसी बात को इस ढंग से भी कहते हैं कि 'हमीर' में, आरोह में निषाद और अवरोह में गांधार वक्र लिया जाता है। इन दोनों स्वरों का प्रयोग गायक अत्यन्त कुशलतापूर्वक ही कर सकता है। प्रमाणापेक्षा कम-अधिक प्रयोग में लेने पर 'यमन' का आभास हो सकता है। 'ग रे सा' इस प्रकार का सरल अवरोह करने पर यमन राग का अंग स्पष्ट दिखाई देता है, इसी लिए गायक ऐसी जगहों पर 'ग म रे सा' इस प्रकार प्रयोग करते हैं। 'लक्ष्यसंगीत' ने दो-दो मध्यमवाले रागों के लिए यह नियम भी प्रचार को देखते हुए बना दिया है कि ऐसे रागों के आरोह में 'नि' दुर्बल व अवरोह में 'ग' दुर्बल होता है। कहा है:—

द्विमध्यमेषु रागेषु नियमः प्रायशो भवेत्।
आरोहे स्यान्निदौर्बल्यं गदौर्बल्यं विपर्यये ।।

विलम्बित रूप से इस राग का आलाप करते समय इस नियम की ओर पूर्ण ध्यान रखकर ही अपने राग को शुद्ध और सुन्दर बनाया जा सकता है। जलद-तान लेते हुए 'प प ध नि सां रें' इस प्रकार का अन्श अन्य गायकों-जैसा लिया जा सकता है, परन्तु योग्य स्थानों पर मूल राग के स्वर-सौष्ठव की योजना

करते हुए इसे 'यमन' से बचाते रहना चाहिए। उत्तम गायक राग को जिस प्रकार गाते हैं, उसको ध्यानपूर्वक सुनने से अनुकरण करना शीघ्र आ जाता है। 'हमीर' का अंग तुम्हारे हृदय में ठीक से जमा देने के लिए मैं जिन स्वर-समुदायों को गाकर सुनाता हूँ, उनपर ध्यान देना।

'सा, ग म ध, नि ध, सां, रेंसां, नि, धप, मंपधप, ग ग मरे, गम धप, गम रे सा।' यह स्वर-समुदाय उत्तम तैयार करने पर इस राग का स्वरूप बिना भूल किए तुम गा सकोगे। इसकी अपेक्षा छोटा प्रकार निम्नलिखित है:—

'सा, रे सा, ग म ध, नि ध सां। सां नि ध प, मं प, ध प, ग म रे सा' 'ग म ध' इस स्वर-समुदाय का इतना अधिक प्रचार है कि इसका प्रयोग होने-मात्र से लोग हमीर का नाम ले देते हैं। यह स्वर-समुदाय ही इस राग की एक-मात्र पकड़ हो गई। हमीर राग का वादी स्वर 'धैवत' मानने का एक कारण 'ग म ध' समुदाय भी कहा जाता है। ग्रंथों में धैवत को वादी नहीं बताया गया है और वह कुछ अंशों में ठीक भी है, क्योंकि रात्रि के प्रथम प्रहर में गाए जानेवाले रागों में धैवत स्वर का वादी होना ठीक नहीं दिखता। गाते समय धैवत पर जो वजन दिया जाता है, उसे देखते हुए उसे वादी ही बना लेना चाहिए, यह ठीक नहीं। संगीतसारकर्त्ता ने एक संस्कृत-ग्रंथ के आधार पर अपने ग्रंथ में इस राग के विषय में लिखा है:—

षड्जन्यासग्रहांशासा हंबीरापूर्णतांगता।
निशायाः प्रथमे यामे गेया प्रोक्ता मनीषिभिः॥

यह आधार लेखक ने 'सोमेश्वर' की रचना से लिया हुआ बताया है। 'रागविबोध' का लेखक सोमनाथ प्रसिद्ध है; परंतु यह श्लोक 'रागविबोध' में नहीं पाया जाता, अतः उपर्युक्त सोमेश्वर या सोमनाथ कोई दूसरा ही है। यदि चक्राधार में सोमेश्वर ने हमीर ठाठ का शंकराभरण माना हो तो ठीक है, परंतु राग के ठाठ के विषय में संगीतसारकर्त्ता की कहीं गड़बड़ी हो गई है; अतः सोमेश्वर का हमीर ठाठ अन्यत्र भी कहा गया है, परंतु वह शंकराभरण से भिन्न ही बताया है। शंकराभरण में धैवत तीव्र है, यह सर्वत्र प्रसिद्ध है, परंतु हमीर ठाठ के वर्णन में कुछ ग्रंथों ने धैवत स्वर कोमल बताया है। मैं तुम्हें इन ग्रंथों का वर्णन सुनाता हूँ। 'रागविबोध' का कथन है:—

हंमीरमेलउज्ज्वलसमपधतीव्रतररिमृदुममृदुसकाः।
हंमीरविहंगडकेदारप्रमुखा अतो मेलात्॥

यहाँ पर सा, म, प स्वर शुद्ध हैं, अर्थात् वे हमारे शुद्ध ठाठ-जैसे हैं। तीव्रतर 'रि' हमारा शुद्ध ऋषभ हो जाता है। मृदु 'म' और मृदु 'सा' अपने शुद्ध 'ग' और शुद्ध 'नि' को कहेंगे; परंतु 'रागविबोध' का शुद्ध 'ध' हमारा कोमल धैवत कहलाएगा। इसी स्थान पर प्रचलित हमीर से इसका अन्तर हो जाता है। 'अनूपसंगीतरत्नाकर' ग्रंथ में हम्मीर का वर्णन इस प्रकार पाया जाता है:—

द्वितीयगतिकोरिश्च तृतीयगतिकौ निगौ ।
हंमीरमेल एषः स्याद्धमीराद्यास्तदुद्भवाः ॥
सत्रिस्तृतीययामेच हंमीरः पूर्णईरितः ॥

यहाँ पर ऋषभ दूसरे दर्जे का अर्थात् हमारा शुद्ध रे, निषाद व गांधार तीसरे दर्जे के अर्थात् हमारे नि तथा ग हो जाते हैं। शेष चार स्वर सा, म, प, ध को शुद्ध बताया गया है। इस प्रकार यह मत भी 'रागविबोध' जैसा ही सिद्ध होता है, क्योंकि इस ग्रंथ का शुद्ध धैवत हमारा कोमल ध है। 'रागचंद्रोदय' में हम्मीर का वर्णन इस प्रकार किया गया है :—

शुद्धौसगौमध्यमपंचमौच शुद्धस्तथाधैवतकोयदिस्यात् ।
लघ्वादिकौषड्जकमध्यमौचेत् हंमीरनट्टाह्वयकस्यमेलः ॥
हंमीरनट्टप्रमुखाश्चरागाः केचित्प्रसिद्धाः प्रभवंत्यमुष्मात् ।
सांशग्रहांतोऽहनितूर्ययामे पूर्णोभवेन्नट्टहंमीरपूर्वः ॥

यह वर्णन हम्मीरनाट का है, परंतु हम्मीर व नाट एक ही ठाठ के बताए हैं, अतः हमें ठाठ के स्वरों को देखना उपयोगी होगा। यहाँ बताया हुआ शुद्ध गांधार हमारा तीव्र (शुद्ध) रे, षड्ज व मध्यम लघु अर्थात् हमारे तीव्र नि और ग लेते हैं। इनका शुद्ध धैवत हमारा कोमल धैवत हो जाता है। अर्थात् यह मत भी 'रागविबोध' से मिलता हुआ है। अन्य अधिक उदाहरण न देते हुए अब तुम्हें मैं बताता हूँ कि हमीर को शंकराभरण मेल राग किसने बताया है? तुम्हें मैं 'रागतरंगिणी' ग्रथ का नाम इससे पहले भी सुना चुका हूँ। इस ग्रंथ में हम्मीर को शंकराभरण ठाठ का बताया है। इस ग्रंथ का शुद्ध ठाठ काफी का है, यह मैं तुम्हें बता चुका हूँ। इस ग्रंथ में हम्मीर को केदार ठाठ में माना गया है और केदार ठाठ के स्वर इस प्रकार बताए हैं—'गांधारो मध्यमस्य श्रुतिद्वयं गृह्णाति। निषादश्च षड्जस्य श्रुतिद्वयं गृह्णाति तदा केदारसंस्थानम्।' काफी ठाठ में ग-नि तीव्र हो जाने से हमारा शुद्ध ठाठ हो गया है। केदार ठाठ के रागों के विषय में ग्रंथकार कहता है :—

केदारस्वरसंस्थाने श्रुतः केदारनाटकः ।
आभीरनाटमात्र गेयो रागस्तथापरः ॥
खंबावती ततो ज्ञेया शंकराभरणस्तथा ।
बिहागडा च हंबीरः श्यामः श्रुतिमनोहरः ॥
छायानट्टश्च भूपाली ज्ञेया भीमपलासिका ॥

उपर्युक्त उद्धरण विशेषकर इसलिए मैं दे रहा हूँ कि आगे हमें केदारश्याम, छायानट, इन रागों के विषय में भी चर्चा करनी है। 'रागतरंगिणी' ग्रंथ उत्तरी भाग का और ऊपर के बताए हुए ग्रंथों के रचयिता पं० भावभट्ट, पुण्डरीक, सोमनाथ दक्षिण-भाग के मान लिए जाने पर संगीत का इतिहास समझने में सरलता होगी। खैर, अभी हमें इस विषय पर चर्चा नहीं करनी है। शंकराभरण ठाठ का आधार हमारे राग हमीर को प्राप्त हो जाने से बहुत-सी कठिनाइयाँ हल हो गईं। अब केवल तीव्र मध्यम लगाने का प्रश्न रह गया है। इसके लिए यह कहा जा सकता है कि तीव्र मध्यम रात्रिगेय रागों का सूचक स्वर है और हमीर राग को रात्रिगेय निश्चित करने पर उसमें तीव्र मध्यम का प्रयोग असंगत नहीं कहा जा सकता, उलटे वह राग सौंदर्यवर्धक ही होता है। उपर्युक्त कथन का प्रमाण उस स्वर (तीव्र मध्यम) को गौण बना देना है। दोनों मध्यमवाले सारे रागों से यदि तीव्र मध्यम निकाल भी दिया जाए, तो विशेष रूप से राग-हानि नहीं हो सकती। 'लक्ष्यसंगीत' में किया हुआ वर्णन हमारे प्रचलित हमीर का वास्तविक वर्णन है, क्योंकि यह रचना 'रागतरंगिणी' के पश्चात् की और हमारी हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति की ही रचना है।

कल्याणी नामके मेले हंमीरः प्रोच्यते बुधैः।
गग्रहः पांशकः कैश्चिद्धैवतांशोऽपि लक्ष्यते ॥
धैवतेऽवधारणं यन्नैतद्वादित्वकारणम्।
लक्ष्यगतं समालोच्य बुधः कुर्यात्स्वनिर्णयम् ॥
स्यादारोहे निदौर्बल्यमवरोहेऽपि गस्यतत्।
सायंगेयं तथा पूर्णं वक्रं रूपं सतां मतम् ॥
मध्यमावत्र द्वौ ग्राह्यौ रोहणे एव तीव्रमः।
सरलत्वे रोहणस्य यमनः स्यात्सुनिश्चितम् ॥
संघातादूगमधानां स्यादेतद्रूपं परिस्फुटम्।
प्रायोऽनेनैव श्रोतारः कुर्वंति नामनिर्णयम् ॥

उपर्युक्त श्लोकों के तात्पर्य को स्मरण रखने के लिए इन्हें कण्ठस्थ कर लेना चाहिए, क्योंकि इनकी सहायता से तुम प्रचलित राग का ठीक-ठीक प्रतिपादन कर सकोगे। प्रचार में धैवत को वादी मानने का बहुमत है, तो भी पंचम या षड्ज को वादी मानकर भी काम चला सकते हो। यदि इसका वादी धैवत ही मानकर लोकमत को सम्मान देना पड़े, तो इसे रात्रिकालीन रागों का अपवाद मानना होगा। हमीर राग गायकों के द्वारा गाते हुए सुनने पर तुम्हें केदार, श्याम और कामोद का स्थान-स्थान पर आभास होता जाएगा। ये राग हमीर के निकटवर्ती राग हैं। इस प्रकार के समप्राकृतिक रागों के नियम बहुत अच्छी तरह समझ लेने चाहिए। आगे चलकर मैं तुम्हें अपनी पद्धति के समप्राकृतिक रागों का एक कोष्ठक बता

दूँगा, जो तुम्हारे लिए उपयोगी होगा। मेरे खयाल से हमीर की इतनी जानकारी तुम्हारे लिए पर्याप्त हो गई है।

प्रश्न : जी हां, हमीर का ठाठ, आरोह, अवरोह, वादी, समय, तीव्र मध्यम का नियम और ग-नि का नियम आदि सभी बातें हम समझ चुके हैं। अब इसका स्वरूप स्वरों द्वारा स्पष्ट गाकर बता दीजिए ?

उत्तर : सुनो!

सा, गमध, निध, सांनिधप, गमध, प, धप, गमरे, धप, गमरे, सारेसा, गमध। सारेसा, निधप, मंपधप, सा, सारेरेसा, गमध, प, मंप, गमरेसा, गमध।

मंपधमंप, गमरे, निध, सां, निध, निधप, पपधधपप, मंपधमंप, गमरे, गमधप, गमरेसा, निनिध, निधप, मंप, धधपप, पगमरे, गम, निध, सांनिधप, मंपधप, गमरेसा, गमध।

सारेसासा, गमपमं, धपनिध, सां, सांरेंसां; सांधनिप, धमं, पग, मरे, गमधध, प, गमरे, सारेसा।

पपसां, सां, सां, सांरेंसां, गंमंपंगंमंरेंसां, सांनिध, निधप, मंपधप, सांरेंसांनिधप मंपधधप, गमरे, गमधप, गमरेसा, गमध।

इस प्रकार से इस राग का विस्तार करने पर यह तुम्हारा राग उत्तम तैयार हो जाएगा। इस प्रकार स्वर-समुदाय असंख्य किए जा सकते हैं। इन दो मध्यम-वाले रागों में अन्तरे का आरम्भ प्रायः पंचम से शुरू किया जाता है। यह एक साधारण नियम तुम्हें दिखाई पड़ेगा। इसका अन्तरा प्रायः 'पपसां, सां, सांरेंसां, सांध, सां, सांरेंसांनिधप' इस प्रकार से आरम्भ किया जाता है। इस नियम का पालन सभी गायकों द्वारा कठोरता से होता ही है, ऐसा मेरा कथन नहीं है; परतु तुम्हें प्रचार में इस नियम के अनुरूप अनेक उदाहरण प्राप्त होंगे। इस दो मध्यमवाले राग में तार-षड्ज से पंचम तक अवरोह करते हुए धैवत पर स्पष्ट विश्रांति ली जाती है। धैवत से पंचम तक जाते हुए, प्रायः गायक लोग बहुत अल्प, परंतु समझ सकने-योग्य कोमल निषाद का प्रयोग करते हैं। यह प्रयोग सुन्दरता-वर्धक होता है। इस निषाद के स्पर्श करने से बिलावल-जैसा स्वल्प आभास हो जाता है। कोमल 'नि' इस राग में विवादी स्वर हो जाता है, परंतु इसका अत्यन्त अल्प प्रयोग अवरोह में करने से राग-हानि नहीं होती।

प्रश्न : यह हमारे ध्यान में आ गया। अब आप 'केदार' की ओर बढ़िए!

उत्तर : अच्छा सुनो! 'केदार' नाम प्राचीन है। यह राग साधारण रागों में से है और बहुत-से गायक इसे जानते हैं। ऐसे प्रसिद्ध राग के विषय में विशेष मतभेद नहीं है। संस्कृत-ग्रंथों में यह राग पाया जाता है; उनमें से किसी ने इस राग का ठाठ शंकराभरण (वर्तमान बिलावल) माना है और वह हमारे प्रचलित

स्वरूप के अधिक निकट है। प्रचार में तीव्र मध्यम लगाए जाने से हमने इसे कल्याण ठाठ के अन्तर्गत माना है। यह रात्रिगेय राग है और इसमें ग, नि भी कोमल नहीं हैं, अतः इसमें तीव्र मध्यम का प्रयोग असगत प्रतीत नहीं होता। इस राग का समय रात्रि का प्रथम प्रहर माना गया है। इस राग में गायक लोग एक विशेष प्रकार से स्वर-प्रयोग भी करते हैं। वे बीच-बीच में दोनों मध्यम एक के बाद एक लगाते जाते हैं। यह काम इस राग में बहुत सुन्दर दिखाई देता है, किन्तु बार-बार यही काम करना उत्तम नहीं लगता। तथापि योग्य रूप से प्रयोग करने पर राग-वैचित्र्य बढ़ जाता है। इस प्रकार दोनों मध्यमों की निकट-संगति बहुत थोड़े रागों में ग्रहण की गई है, इसलिए मैंने विशेषकर तुम्हारा ध्यान इस ओर आकर्षित किया है।

प्रश्न : इस प्रकार दोनों मध्यमों का निकट-प्रयोग अन्य किन-किन रागों में हुआ है?

उत्तर : पूर्वी, ललित, बसत, पंचम आदि कुछ रागों में इ । प्रकार के प्रयोग तुम्हें दिखाई पड़ेंगे। इसके विषय में, मैं तुम्हें विस्तृत रूप से आगे बताऊँगा। केदार राग मे दोनों मध्यम होते हुए विलम्बित रूप से गाना आवश्यक होता है। जलद लय (द्रुत लय) में गाते हुए, वे प्रायः नहीं लिए जाते और गाने पर भी सुन्दर नहीं दिखाई देते। दोनों मध्यमवाले रागों में प्रायः तीव्र मध्यम आरोह में ही लिया जाता है। उपर्युक्त कथन से मेरा यह भाव नहीं है कि तीव्र मध्यम ग, मं, प, इस प्रकार से इस राग में लिया जाता है। ऐसा प्रयोग इस राग में नहीं होता। इस राग में तीव्र मध्यम एक आगंतुक स्वर-जैसा है, नियमित स्वर नहीं है। आरोह व अवरोह, राग के स्वीकृत स्वरों को बताते हैं। इनके सिवाय विशेष उपयोग के हेतु लिए हुए स्वरों का प्रयोग नियमित रूप से नियत स्थान पर ही किया जाता है। 'केदार' राग में तीव्र मं पंचम की संगति में थोड़ा प्रयुक्त होता है। जिस प्रकार यमनकल्याण में कोमल 'म' गांधार की संगति में प्रयुक्त होता है, उसी प्रकार यहाँ भी इस स्वर का प्रयोग है। यमन में जैसे—ग, म, प, इस प्रकार नहीं लगते हैं, वरन् 'प म ग म ग'-जैसा शुद्ध 'म' का प्रयोग करते हैं, उसी प्रकार का विशिष्ट प्रयोग इसमें तीव्र मध्यम का होता है। इस प्रकार के मनोरंजक स्वर का प्रयोग अनेक रागों में किया गया है। दोनों मध्यमवाले प्रायः सभी रागों में तीव्र मध्यम को लेने का प्रत्यक्ष उदाहरण बताता हूँ। देखो, मैं तीव्र मध्यम किस प्रकार लेता हूँ—'सा, म, मप, पध, प, मं प, म, मपधपम, रेसा; मंपध, मंप, निधप, मंप, धपम, मप, मरेसा'। इसी प्रकार दोनों मध्यम जोड़ने का उदाहरण भी सुनाता हूँ—'साम, मप, पध, पम, मपधपमंम, धपम, पम, रेसा'। अधिक उदाहरण तुम्हें राग-विस्तार बताते समय सुनाऊँगा। केदार राग में गांधार स्वर यद्यपि वर्ज्य नहीं कहा गया है, परंतु प्रचार में उसे इतना गौण किया जा चुका है कि उसका आस्तित्व ही नहीं रहा है। इस राग में गांधार स्वर को सँभाले रहना भी बड़ी कुशलता का काम है। इसे बिलकुल छोड़ देने से सारंग राग का आभास हो जाता है और परिमाण से अधिक प्रयोग करने से कल्याण, कामोद आदि रागों की छाया उत्पन्न हो जाती है। यह

सुनकर तुम्हें घबराना नहीं चाहिए। यह सारा काम वर्णन सुनने से चाहे कठिन दिखाई देता हो, परंतु प्रत्यक्ष करने पर वैसा कठिन नहीं है। दस-पाँच बार इस खूबी की ओर ध्यान देने पर अपने-आप ही आ जाता है। जब गायक मध्यम स्वर से ऋषभ स्वर की ओर आता है, वहीं उसे गांधार स्वर दिखाना पड़ता है। यह गांधार स्वर सदैव मध्यम की संगति में मिला हुआ आता है। मध्यम इस राग का प्रधान स्वर है, अतः श्रोताओं को गांधार स्पष्ट समझ नहीं पड़ता। केदार राग का एक प्रधान नियम यह है कि इसके आरम्भ में रे, ग, ये दोनों स्वर छोड़कर साम, मप, इस प्रकार प्रयोग होता है। ऋषभ स्वर इस राग के आरोह में वर्ज्य स्वर माना गया है। रे म, प, इस प्रकार आरोह करने से सारंग या मल्लार दिखाई पड़ने लगता है। रे, प करने से कामोद का अंग उत्पन्न हो जाता है। रे, ग आरोह करने से केदार राग बिगड़ जाता है। इस राग में तीव्र मध्यम बिलकुल नहीं लेने से राग पहचाना जा सकता है। ऐसा लेने पर भी कोई-कोई गायक तीव्र मध्यम के कम-अधिक परिमाण से केदार के अनेक प्रकार मानते हैं। तीव्र मध्यम स्वर का अधिक प्रयोग करते हुए जो प्रकार गायक गाते हैं, उसे 'चाँदनीकेदार' कहते हैं। एक प्रसिद्ध मुसलमान गायक ने मुझे 'शुद्धकेदार' और 'चाँदनीकेदार' का भेद इस प्रकार बताया है कि 'शुद्धकेदार' में तीव्र 'म' बिलकुल अल्प लिया जाता है। कोई-कोई लेते भी नहीं हैं; परंतु 'चाँदनीकेदार' में उसे आरोह में लिया जाता है। इसी प्रकार 'चाँदनीकेदार' में बीच-बीच में धैवत की संगति में, अवरोह में कोमल निषाद लिया जाता है। यह भिन्नता अवश्य है, परंतु इसके लिए कोई शास्त्राधार प्राप्त नहीं होता। 'चाँदनी' नाम उर्दू भाषा का दिखाई देता है और इससे यह सिद्ध होता है कि किसी अर्वाचीन गायक ने ही ग्रंथों में वर्णित केदार को तोड़-मोड़कर इस रूप में कर दिया है। ग्रंथों में शंकराभरण ठाठ लेकर उसमें तीव्र मध्यम व स्वल्प कोमल निषाद मिलाकर इस रूप को उत्पन्न किया है। वर्तमान गायक दोनों मध्यम लेकर केदार गाते ही हैं। इस प्रकार उसे मिश्रण कर 'चाँदनीकेदार' नाम दिया गया है। 'चाँदनीकेदार' राग के गीतों में गायक 'चाँदनी' शब्द की योजना भी प्रायः कर देते हैं। केदार के स्वरूप में परिवर्तन कर गायकों ने मलूहा, जलंधर आदि अनेक प्रकार उत्पन्न किए हैं। इसके विषय में हम ठाठ में विचार करेंगे। धैवत की संगति में कोमल 'नि' का अंश लेने का जो वर्णन मैंने किया है, वहाँ अवरोह में सां, नि, ध, प, इस प्रकार प्रयोग न समझते हुए 'ध नि ध' (यहाँ नि के नीचे लगी हुई आड़ी लकीर स्वर की कोमलता की द्योतक है) इतना ही प्रयोग समझना चाहिए। यमन में जैसे कोमल मध्यम का प्रयोग होता है, उसी प्रकार का यह प्रयोग समझना चाहिए। गायकों से चाँदनीकेदार और शुद्ध-केदार के अलग-अलग नियम पूछें, तो वे उत्तर नहीं दे सकेंगे। वे तुमसे ही कहेंगे कि इन रागों के गीतों में इन नियमों की भिन्नता देख लो। इसका कारण यह है कि उन्होंने अपने गीत सुन-सुनकर तैयार किए हैं। उन्हें किसी ने नियम आदि नहीं सिखाए। जो वास्तविक प्रसिद्ध गायक हैं, उन्होंने ही इस प्रकार के कुछ नियम अवश्य बना दिए हैं। वास्तव में रागों के भिन्न-भिन्न नाम कहने के साथ-साथ उनके नियमों की भिन्नता भी दूसरों को समझाते जाना आवश्यक है।

प्रश्न : आपके कथन का तात्पर्य हम समझ गए। हमने केदार की जानकारी इस प्रकार हृदयंगम की है। केदार राग ग्रंथों में शकराभरण ठाठ में बताया गया है, परंतु इसमें तीव्र मध्यम का प्रयोग भी किया जाने से सुविधा की दृष्टि से इसे कल्याण ठाठ में ग्रहण किया गया है। इसके आरोह में रे-ग स्वर छोड़ दिए जाते हैं, विशेषकर आरोह में रे स्वर सदैव वर्जित किया जाता है। गांधार स्वर अत्यन्त अल्प रूप से सदैव मध्यम की संगति में आता है। मध्यम स्वर इस राग का प्रधान स्वर है। तीव्र मध्यम का अधिक प्रयोग कर व धैवत के अंश में कोमल निषाद अवरोह में अल्प ग्रहण कर गायक 'चाँदनीकेदार' नामक नया स्वरूप बना देते हैं।

उत्तर : बस-बस ! तुमने इस राग को ठीक समझ लिया है, अब आगे बढ़ें। रागविबोधकार ने केदार का वर्णन दो प्रकार से किया है। एक का ठाठ हमीर-जैसा है, उसकी व्याख्या इस प्रकार की गई है—'केदारोल्परिधोनिशि सन्यासोगांशग्रहकः'। यह हमीर ठाठ है, परंतु इसमें कोमल धैवत लेने का आदेश है। यह हमारा स्वीकृत रूप नहीं है। दूसरा प्रकार शंकराभरण ठाठ में बताया है—'न्यंशन्यासग्रहकः पूर्णोनिश्येव केदारः।' यहाँ पर निषाद को अंश स्वर बताया गया है, परंतु वह अपने यहाँ प्रचार में नहीं है। हम तो मध्यम को अंश स्वर मानते हैं। 'हृदयप्रकाश' नामक ग्रंथ में केदार राग को शकराभरण ठाठ में माना है और इससे श्याम, नाट, हमीर आदि रागों की उत्पत्ति बताई है। एक विशेष बात स्पष्ट ही तुम्हें बता रहा हूँ कि किसी भी ग्रन्थ में तीव्र मध्यम को ग्रहण करने का आदेश नहीं दिया गया है। 'संगीतपारिजात' के रचयिता पं० अहोबल 'केदार' के विषय में लिखते हैं—'गनी तीव्रौ तु केदार्यां रिधौ नस्तोऽथ गादिमा'। यह ठाठ शंकराभरण का है। इसमें रे-ध बिलकुल वर्ज्य करने का आदेश दिया हुआ है, किंतु हम प्रचार में उपयोग नहीं करते। हम आरोह में रे स्वर मानते हैं। गांधार को महत्त्व न देते हुए हम मध्यम स्वर को वादी मानते हैं। इसी ग्रंथ में आगे 'केदारनाट' राग का वर्णन किया गया है। वहाँ आरोह में रे-ध स्वर वर्ज्य बताए हैं। यह स्वरूप कुछ अंशों में प्रचलित केदार के निकट आ जाता है। गांधार स्वर को इस राग में कभी भी वादी स्वीकार नहीं किया जा सकता। 'संगीत-सारामृत' में तुलजेंद्र कहते हैं :—

रागः केदारसंज्ञः स्याच्छंकराभरणोद्भवः ।
संपूर्णः सग्रहः सांशः सायंकाले प्रगीयते ॥

इस उत्तम वर्णन में भी विशेष नियम नहीं बताए गए है। 'रागचंद्रोदय' में केदार मेल इस तरह बताया गया है :—

लघ्वादिकौ षड्जकमध्यमौ च। शुद्धौ समौ पंचमको विशुद्धः ।
निगौ विशुद्धौ च यदा भवन्ति । तदातु केदारकमेल उक्तः ॥

और इसकी व्याख्या आगे इस प्रकार दी हुई है—'स्यंशांतको निग्रहकोऽरि-धोवा; केदारकः सायमभीष्ट एषः'। यह ग्रंथ दक्षिण की ओर का माना जाता है,

इसलिए इस ग्रंथ का केदार मेल 'रागविबोध' के ठाठ के अनुसार ही होगा। यहाँ पर धैवत के विषय में कुछ नहीं कहा गया है; अर्थात् वह शुद्ध (ग्रंथकार के मत से) यानी हमारे मत से कोमल स्वर होगा।

'रागमंजरी' ग्रंथ में इस ग्रंथ का ठाठ चंद्रोदय के अनुसार ही बताया गया है। 'रिधौ द्वितीयगतिकौ तृतीयगतिकौ निगौ' उपर्युक्त सम्पूर्ण उद्धरणों में तीव्र मध्यम लगाने के विषय में कोई आदेश दिखाई नहीं देता। यही बात मैं तुमको पहले कह चुका हूँ। रागतरंगिणीकार ने जो केदार ठाठ का वर्णन किया है, उसे मैं तुम्हें हमीर राग समझाते समय बता चुका हूँ। 'संगीतदर्पण' में हनुमन्मत के प्रमाण से 'केदारी' को दीपक राग की रागिनी माना है और इसकी व्याख्या इस प्रकार की गई है :—

केदारी रिधहीना स्यादौडवा परिकीर्तिता।
नित्रया मूर्छना मार्गी काकलीस्वरमंडिता॥

'दर्पण' का शुद्ध ठाठ दक्षिण का है। उसमें से रे-ध छोड़ देने पर सा ग म प नि स्वर रह जाते हैं। दक्षिणी ठाठ के शुद्ध रे-ध अपने कोमल रे-ध होते हैं और उनका प्रयोग हमारे केदार राग में नहीं किया जाता। हमें विवादग्रस्त विषयों में जाने की आवश्यकता नहीं है। जिस ग्रंथकार ने केदार का ठाठ शंकराभरण बताया है, उसके आधार को हमें मान लेना चाहिए।

प्रश्न : लक्ष्यसंगीतकार इस विषय में क्या कहते हैं ?

उत्तर : लक्ष्यसंगीतकार का कथन प्रचलित राग-रूप का पूर्ण समर्थन करता है, क्योंकि वह तुम्हारी पद्धति का ही ग्रंथ है। इस ग्रंथ के अभाव में तुम्हारा प्रचलित संगीत अनेक स्थानों पर निराकार ही हो जाता है। इस ग्रंथ का वर्णन निम्नलिखित हैः—

कल्याणीमेलके प्रोक्तः केदारो बहुसंमतः।
शंकराभरणेऽप्यन्ये केचिदाहुर्विपश्चितः॥
मद्वंद्वमिह संप्रोक्तं गौणत्वं तीव्रमे यदि।
अंशत्वं शुद्धमेऽभीष्टं व्यस्तत्वं चापितत्स्वरे॥
रिगोनत्वं रोहणे स्यात्पूर्वांगे संमतं सताम्।
असत्प्रायत्वमारोहे चावरोहे तु गस्यतत्॥

यह वर्णन तुम्हें पूर्ण रूप से ध्यान में रखना चाहिए, क्योंकि यह तुम्हारे प्रचलित राग-रूप का उत्तम समर्थन करता है। 'रागलक्षण' में केदार राग इस प्रकार बताया गया है :—

मेलाच्चसंभवो धीरशंकराभरणाच्च वै।
केदारराग इत्युक्तः सन्यासं सांशकग्रहम्॥
आरोहेप्यवरोहे धवर्जं षाडवं तथा॥

यहाँ भी ठाठ शंकराभरण माना गया है, परंतु उसमें धैवत स्वर वर्ज्य करने का आदेश दिया गया है। हमारे प्रचलित केदार में धैवत वर्ज्य नहीं माना जाता। 'चत्वारिंशच्छतरागनिरूपणम्' नामक ग्रंथ में केदारी को दीपक की रागिनी कहा है। और इसका वर्णन (रूप या ध्यान) इस प्रकार कहा गया है :—

विरहविधुरचित्ता पांडुगंडा कृशांगी ।
मलयजरसपूरैः सिच्यमाना सखीभिः ॥
सरसकमलपत्रैः क्लृप्तशय्यानिविष्टा ।
हिमकरसितवस्त्रा भातिकेदारिकेयम् ॥

प्रश्न : परंतु यहाँ इस रागिनी के स्वर तो बताए ही नहीं हैं ?

उत्तर : हाँ, यहाँ केवल एक चित्र-मात्र दिया हुआ है। ऐसे बहुत-से ग्रंथ हैं, जिनमें इसी प्रकार का राग-वर्णन पाया जाता है। राग के स्वरों के विषय में और अन्य नियमों के विषय में कोई बात ऐसे ग्रंथों में नहीं बताई गई है। इस स्वरूप-मात्र से राग-गायन कैसे सम्भव है ? इस प्रकार की शंका यथार्थ है। कोई-कोई कहते हैं कि सात स्वरों के वर्णन बताए गए हैं; उनकी मदद से इस प्रकार के चित्रों में लगनेवाले स्वरों की खोज की जा सकती है। मेरी समझ से इतनी कुशलता बेचारे श्रोताओं में या गायकों में प्राप्त होनी दुर्लभ है। इसके स्थान पर यह मानना अधिक सुविधाजनक है कि हमारे प्राचीन संगीतज्ञों ने एक-एक राग-रागिनी को एक-एक देवता माना है। इसका ध्यान करने के लिए किसी मूर्ति का ध्यान होना चाहिए—इस प्रकार से इन स्वरूपों की कल्पना उन लोगों द्वारा की गई है। 'संगीतदर्पण' में सभी राग-नियमों के इसी प्रकार के ध्यान दिए हैं। रागिनी का ध्यान यथायोग्य रीति से करने पर उसकी प्रसन्नता प्राप्त होती है और तभी उसके द्वारा गायक कीर्ति पा सकता है। कुछ ऐसी ही धारणा उन पंडितों की समझी जा सकती है।

इस विषय पर Sir William jones कहते हैं—"Every branch of knowledge in this country has been embellished by poetical fables; and the inventive talents of the Greeks never suggested a more charming allegory than the lovely families of the six Ragas,named, in the order of seasons above exhibited, Bhairava, Malawa, Shri Rag, Hindola or Vasanta, Deepaka and Megha; each of whom is a genius, or Demi God, wedded to five Raginees or Nymphs, and father of eight little Genii, called his putras, or sons; the fancy of shakespeare and the pencil of Albano might have been finely employed in giving speech and form to this Assemblage of new aerial beings, who people the fairy land of Indian imagination; nor have the Hindoo poets and painters lost the advantage, with which so beautiful a subject presented them.'

प्रश्न : लक्ष्यसंगीतकार का इस विषय में क्या कथन है ?

उत्तर : लक्ष्यसंगीतकार ने एक स्पष्टवक्ता के में रूप में साफ-साफ लिखा है ।

रागादीनामुदीर्यंते नानाग्रंथेषु मूर्तयः ।
तत्र तेषां च रागाणां नस्वराद्युपलभ्यते ॥
संगीतदृष्टया ते ग्रंथाः केवलं निष्फला मताः ।
मेलाः कथंमूर्तितः स्युरित्यप्युल्लेखमर्हति ॥

यह कथन गलत नहीं है। मैं तुम्हें यह पहले ही कह चुका हूँ कि हमारे लिए उन्हीं ग्रंथकारों की रचनाएँ उपयोगी हैं, जिन्होंने अपने ग्रंथों में रागों के स्वरूप स्पष्ट रूप से स्वरों में समझाए हैं। 'कल्पद्रुम' ग्रंथ का कथन है—'मध्यमांशग्रहन्यासो धैवतो वर्जितः क्वचित्; अर्धरात्र्युत्तरंगानं केदारस्य मतं बुधैः।' इस ग्रंथ का शुद्ध ठाठ बिलावल का मानने पर यह वर्णन शुद्ध है, परंतु इस ग्रंथकार के विषय में पंडितों का मत अधिक अच्छा नहीं है, यह बता देना भी उपयुक्त है।

हमारा केदार राग गंभीर प्रकृति का राग माना गया है । जिन रागों में वादी स्वर का स्थान मध्यम स्वर प्राप्त करता है, अधिकतर वे राग गंभीर प्रकृति के ही होते हैं। इस राग का प्रभाव शीघ्र ही हृदय पर हो जाता है और देर तक नहीं मिटता । यह कल्याण ठाठ का एक स्वतंत्र स्वरूप है। इसके मध्यम स्वर को लक्ष्यसंगीतकार ने 'व्यस्त' और कहीं-कहीं 'मुक्त' विशेषण दिया है । प्रत्येक ठाठ के इस प्रकार के व्यस्त मध्यमवाले रागों का एक निराला वर्ग बन जाता है, जो राग-परिचय की दृष्टि से एक स्वतंत्र साधन के रूप में सहायक होता है। केदार राग में 'म रे सा' स्वर-समुदाय बहुत ही महत्त्वपूर्ण और मनोहर है । इसका ठीक रूप से अभ्यास करने की आवश्यकता है । इन तीनों स्वरों को भिन्न-भिन्न प्रकार से गाने से भिन्न-भिन्न राग दिखाई पड़ने लगते हैं। 'म' से मीड़ लेकर 'रे' पर आने से सोरठ व मल्हार की छाया दीखने लगती है । 'म', 'रे' 'सा', इस प्रकार खुले स्वरों का प्रयोग करने पर सारंग की छाया स्पष्ट हो जाती है। इसमें यह विशेषता है कि मध्यम का उच्चारण कर थोड़ा रुकते ही सूक्ष्म गांधार का कण अपने-आप ही योग्य परिमाण से लग जाता है, जिसकी आवश्यकता केदार राग में होती है। तुम्हें चिंतित होने की आवश्यकता नहीं है, थोड़े-से अभ्यास से उक्त कण अपने-आप तुम्हारे गले से निकलने लगेगा। 'सा म, मप, पध, पम' इस प्रकार स्वरों को गाते हुए तुम्हारे मध्यम पर आकर वहाँ से 'रे' पर जाने के पूर्व ही, वह 'ग' अपने-आप गले से लग जाता है। परंतु यदि तुम 'सा, रे म, प, नि प, म' इन स्वरों पर से घूमते हुए मध्यम पर आकर, ऋषभ पर जाना चाहोगे, तो वह गांधार अपने-आप वर्ज्य हो जाएगा और तुम्हारे स्वरों से 'सारंग' का स्वरूप प्रकट हो जाएगा।

प्रश्न : यह हम समझ गए। अब कृपाकर 'केदार' के स्वरों का स्वरूप (राग-विस्तार) समझा दीजिए ?

उत्तर : बहुत अच्छा, सुनो !

साम, मप, पधपम, म, मपधम, पम, रे, सा, । सासारेसा, म, रेसा, पम, रेसा, साम, पधप, म, रे, सा ।

सारेसानि़ध़प़, ध़ध़प़, सा, रेसा, म, मपधपम, रे, सा । सा म, मप, निध, प, मंपधपम, सांनिधप, मंपधप, मंम, मम, साम, पधपम, पम, रेरे, सा ।

निनिधप, मंपधनिधप, मंपधपम, रेंसांनिध, पमंपम, पमंम, पम, साम, मंमंरेंसां, रेंरेंसांनिधप, सांनिधपम, साम, मप, धपम, मपम, रेसा ।

पप, सां, सां, सांरेंसां, धसां, धसां, मंमंरेंरेंसां, सांरेंसांनिधप, मंपधनिधप, मंपधपम, साम, मंरेंसांनिधपम, मपधप, मपम, रेरे, सा ।

पपधपम, पप, सां, रेंसां, निधप, धनिधप, मंपधम, साम, पम, निधपम, मपधपम, पम, रे, सा ।

प्रश्न : अब आगे का राग बताइए ?

उत्तर : हम अब 'कामोद' राग पर विचार करेंगे । इस राग में भी दोनों मध्यमों का प्रयोग होता है और कल्याण ठाठ का राग है, इसे दुहराने की आवश्यकता नहीं है। यह भी तुम्हें मैं समझा चुका हूँ कि इन दो मध्यमवाले रागों में तीव्र मध्यम गौणता प्राप्त करता है और इस कारण शंकराभरण ठाठ में भी किसी-किसी के द्वारा माने जाते हैं। कामोद राग का अंग स्वतन्त्र है। इस राग की प्रधान पकड़—'गमप, गमरेसा, रे' स्वर-समुदाय है। यह राग रात्रि के प्रथम प्रहर में गाया जाता है। इस राग का वादी स्वर पंचम और संवादी षड्ज या ऋषभ माना जाता है। इस राग में गांधार स्वर का प्रयोग कुशलतापूर्वक किया जाना चाहिए। 'मगरेसा' सरल अवरोह और 'सारेगम' सरल आरोह करने से राग-हानि हो जाती है, अतः कोई-कोई विद्वान् गांधार को वक्र मानते हैं। इससे पूर्व तुम्हें बताया हुआ नियम दोनों मध्यम होने से इस राग में भी लगता है, अर्थात् आरोह में 'नि' दुर्बल और अवरोह में 'ग' दुर्बल माना जाता है। यद्यपि साधारण रूप से गांधार सभी लगाते हैं, परंतु इस राग में 'ग' और 'नि', दोनों स्वर दुर्बल माने गए हैं। 'लक्ष्यसंगीत' में इस राग के आरोह के निषाद स्वर को 'असत्प्राय' बताया है।

इस राग के अवरोह में 'ग रे सा' ले लेने से एकदम कल्याण-अंग का स्वरूप सामने आ जाता है, अतः गांधार पर आकर 'गमरेसा' इस प्रकार प्रयोग करने का चलन है। यह प्रयोग बहुत सुन्दर दिखाई देता है। इस राग में दूसरी प्रधान बात बीच-बीच में 'रे' और 'प' की संगति दिखाई देने की है। यह स्वर-संगति मल्लार

नामक राग में भी तुम्हें दिखाई देगी। मल्लार में तीव्र मध्यम बिलकुल नहीं लिया जाता, इसलिए यह राग बिलकुल निराला हो जाता है। रे-प की संगति गायक द्वारा दिखाने पर भी कामोद में लगते ही तीव्र मध्यम जोड़कर कामोद-अंग बता दिया जाता है, जिससे मल्लार राग का भाग स्पष्ट नहीं हो पाता; जैसे—रेपप, मंप, धप, गमप, गम, रेसा, रे, पप— यह काम बहुत उत्तम दिखाई देता है। इसी प्रकार के राग श्याम और छायानट हैं, जिनमें उपर्युक्त स्वरूप स्वल्प मात्रा में प्रयुक्त होता है; परंतु निराले बनाने का अलग नियम है।

कोई-कोई संगीतज्ञ कामोद राग को गौड़ और हम्मीर राग का मिश्रित रूप बताते हैं। कुछ अंशों में यह कथन तथ्य-पूर्ण कहा जा सकता है। बिलकुल थोड़े में इस राग का स्वरूप बताने के लिए 'सा, रेपपमंप, धसां, निधप, गमप, गमरेसा, रे', इन स्वरों का प्रयोग काफी होगा। जो आरम्भ में रे-प की संगति नहीं मानते, वे प्रारंभ में गौड़ का स्वरूप 'गमरेसा रे, मंप' लगाते हैं, परंतु राग-विस्तार करते हुए उन्हें भी 'रेप' की संगति दिखानी ही पड़ती है, क्योंकि यह अन्य रागों से भिन्न करने का प्रधान साधन है। इस राग को ठीक रूप से न समझ सकने की दशा में गायक प्रायः श्याम या छायानट राग में चला जाता है। छायानट में 'रे, गमप, गमरेसा' स्वर-समुदाय विशेष भाग के रूप में अनिवार्य रूप से लिया जाता है, परंतु कामोद में इस क्रम के अनुसार स्वर नहीं लिए जाते। श्याम राग के आरोह में निषाद का स्पष्ट प्रयोग राग में बड़ा माधुर्य-वर्धक होता है और धैवत अल्प हो जाता है। इस राग के स्वरूप बताते समय तुम्हें स्पष्ट रूप से दिखाई देगा। कामोद में ऋषभ स्वर बहुत महत्त्व पा लेता है। यही देखकर कुछ लोग ऋषभ को वादी मानते हैं, परंतु मेरे विचार से तुम्हें वादी पंचम ही मानना सुविधापूर्ण होगा। छायानट में पंचम का महत्त्व देखकर कामोद में ऋषभ को वादी कहते हैं, परंतु तुम्हें ऐसा करने की आवश्यकता नहीं है। यद्यपि पूर्वांग राग में वादी स्वर पूर्वांग का होना चाहिए, परंतु यह बन्धन सा, म, प के लिए नहीं है। वे चाहे जिस प्रकार के रागों में वादी स्वीकार किए जाते हैं। कामोद राग में 'ग' और 'नि' स्वर अल्प प्रयुक्त होने के कारण कोई-कोई इसे औडव मानते हैं। यह ठीक से समझ लेना चाहिए कि इस राग में गांधार स्वर बिलकुल वर्जित नहीं है। ऐसा करने से अलग ही स्वरूप उत्पन्न हो जाता है, 'पमरेसा' स्वरों से तत्काल सारंग दिखाई देने लगता है। हाँ, कामोद में निषाद का कोई महत्त्व नहीं है, यह कहा जा सकता है। जहाँ आरोह में निषाद नहीं लिया जाता, वहाँ इसका महत्त्व अवरोह में भी अधिक नहीं रहता। कामोद में प्रत्येक समय तीव्र मध्यम का प्रयोग पंचम की संगति में ही कम परिमाण में किया जाता है। 'पमंग' अवरोह और 'गमप' आरोह, दोनों प्रकार इस राग में नहीं आते) तीव्र मध्यम का प्रयोग 'मपधमंप, गमपगम, रेसारे' इस प्रकार होता है। दो मध्यम का राग होने के कारण इसके अन्तरे का आरम्भ प्रायः 'पपसांसां, सांरेंसां' इन स्वरों से किया जाता है। ऐसे रागों का सारा आनन्द पूर्वांग में होता है, अतः गायक लोग उत्तरांग में स्वतंत्रता से 'तान' लेते हैं; अर्थात्—निषाद के नियम की ओर सूक्ष्मता से ध्यान नहीं देते। 'पपधनि, सां रें' इस प्रकार आरोह का स्वरूप समुदाय-नियमों से विपरीत न होते हुए भी इस राग में असंगत माना जाएगा, क्योंकि वह यमन का भाग है। फिर भी गायक लोग इसका प्रयोग इस राग

में भी करते हैं। क्योंकि प्रत्येक तान में 'पपनिधसां' अथवा 'पपधनिधसां' स्वर लेने में बड़ी कठिनाई पड़ती है। इस कठिनाई को देखते हुए ही विवादी स्वर का अर्थ 'अल्पत्व', 'प्रच्छादितत्व', 'अनभ्यास' आदि किया है। अवरोह में धैवत से पंचम की ओर जाते हुए कोमल निषाद का स्पर्श बहुत सुन्दर रीति से किया जाता है। यह मैं तुम्हें बता चुका हूँ कि यह प्रयोग दोनों मध्यमवाले प्रायः सभी रागों में होता है। कोई-कोई कहते हैं कि इस प्रकार के रागों के अन्तरे बहुत-कुछ समान होते हैं। यह कथन भी आंशिक रूप से यथार्थ है।

इस 'कामोद' राग के विषय में संस्कृत-ग्रंथकारों के मत, ऐतिहासिक जानकारी और कुछ अंशों में संतुलन की दृष्टि से तुम्हें बताता हूँ। ग्रंथों के मतभेद देखकर तुम्हें उलझनों में न पड़कर प्रचलित रूप को ही महत्त्व देना चाहिए। रागविबोधकार ने 'कांबोदी' नामक एक राग का नाम बताया है। इसका ठाठ इस प्रकार से बताया है:—

कांबोदीमेले तीव्रतररिरंतरकंतीव्रतरधौ च।
काकलिका शुचिसमपा अतश्चकांबोददेवक्री॥

आगे चलकर 'कांबोदी' के लक्षण इस प्रकार बताए हैं—'पूर्णासादिरनिर्वा क़ांबोद्यंशान्तसाचसायाह्ने'। इस ठाठ को अपना शुद्ध ठाठ कह सकते हैं। इसमें निषाद वर्ज्य करने का विवरण ध्यान देने योग्य है। अन्य ग्रंथों में 'कांभोजी' राग बताया है, पर वह बिलकुल निराला राग है। 'रागमंजरी' में कामोद के विषय में लिखा है:—

निगावेकैकगतिकौ तृतीयगतिकोऽपिमः।
एषकामोदमेलः स्यादस्मादन्यतराः परे॥
सत्रिः संपूर्णकामोदो गायेत्तुरीययामके॥

'रागचन्द्रोदय' ने कामोद को इस प्रकार बताया है:—

शुद्धौ पधौ पंचमको लघुश्च शुद्धौसरी त्रिश्रुतिकौ निगौ च।
एवं यदा स्यात् स्वरमेलनं च तदाहि कामोदकमेल एषः॥
षड्जग्रहांशांतविराजमानः कामोदरागो दिवसांतयामे॥

'नृत्यनिर्णय' के मत से यह राग इस प्रकार है:—

कामोदः कामरूपी धृतमुकुटकरः श्वेतवस्त्रंदधानः।
× × ×
सम्पूर्णः सत्रिकोऽसौ विधुगतिगनिकश्चापराह्णेचकास्ति।

'अनूपसंगीतविलास' के संकीर्ण रागाध्याय-प्रकरण में कामोद-सम्बन्धी विवरण इस प्रकार दिया है:—

गौंडाह्लिलावलाज्जातः कामोदः पंचधा भवेत् ।
कामोदः शुद्धकामोदः सामन्तस्तिलकस्तथा ॥
पुनः कल्याणकामोद इत्युक्तं भरतादिभिः ।
तथाहि शुद्धकामोदो यदि शुद्धेन संयुतः ॥
कामोदेन च संयुक्तः केदारो यदिगीयते ।
तदाभवति सामन्तकामोदः प्रीतिवर्धनः ॥
खटरागोयदायुक्तः कामोदेन ब्रतादिषु ।
तदा तिलककामोदो भवेद्भवविदारकः ॥
यद्वीमने सम्मिलतीहगौंडस्तुगडे गुणीनामथवा च वृन्दे ।
तदावनीपालसभासुयाति कल्याणकामोद इति प्रसिद्धम् ॥
शुद्धनाटेन कामोदो युक्तः कामोदनाटकः ।
आडीसिंहलिपूर्वस्तु कामोदः सप्तधा भवेत् ॥

ये कामोद के भिन्न-भिन्न भेद बताए गए हैं। इन भेदों पर इस समय हमें विचार नहीं करना है। मिश्र रागों के प्रपंच में हमें इस समय पड़ने की आवश्यकता नहीं है। ग्रंथों के ये उद्धरण यदि तुम्हारे ध्यान में रह गए तो ठीक ही है, अन्यथा इन्हें याद न रखने से भी तुम्हें कोई कठिनाई नहीं होगी। तुम्हें प्रचलित सभी बातें बताई गई हैं। केवल लक्ष्यसंगीतकार का निम्नलिखित मत याद रखना ही अधिक उपयोगी होगा :—

कल्याणीमेलकेतत्र कामोदो विबुधप्रियः ।
द्विमध्यमप्रयोगेण लक्ष्येऽसौ स्याद्विद्वमेलजः ॥
पंचमस्यैव वादित्वं विदुषामत्र सम्मतम् ।
अमात्यत्वंरिस्वरेस्यादगवक्रमवरोहणे ॥
तीव्रमस्य प्रयोगोऽपि स्वल्प एवानुलोमके ।
निषादः स्यादसत्प्राय आरोहे तद्विदांमते ॥

प्रश्न : वास्तव में आपने जो ब तें बताई हैं, उनका पूर्ण रूप से समर्थन 'लक्ष्य-संगीत' में प्राप्त होता है। आपने जिन-जिन ग्रथों का विवरण दिया है, उनमें परस्पर स्थान-स्थान पर बड़ी विभिन्नता है। इसका क्या कारण है ?

उत्तर : तुम्हारे प्रश्न के उत्तर में प्रधान कारण तो यह कहा जा सकता है कि ये ग्रंथकार भिन्न-भिन्न समय में और भिन्न स्थानों पर हुए थे, अतः विभिन्नता होना स्वाभाविक है। हमारे यहाँ के प्रचलित राग दक्षिण में भी गाए जाते हैं, परतु उनका स्वरूप वहाँ भिन्न है, इसका कारण स्थान-भेद है। दूसरा कारण यह है कि सगीत में समाज की रुचि के अनुसार भिन्न-भिन्न समयों में बड़ा परिवर्तन हुआ है।

लक्ष्यसंगीतकार के समय भी संस्कृत-ग्रंथ प्राप्त थे और वह ग्रंथकर्त्ता ने देखे भी थे, परंतु प्रत्यक्ष उपयोगी संगीत के ग्रंथों के विपरीत परिवर्तित रूप में देखकर 'लक्ष्य प्रधानानि शास्त्राणि' न्याय से प्रचलित संगीत का ही वर्णन अपने ग्रंथ में किया है। यह कार्य उत्तम हो गया है। इससे एक लाभ यह भी हुआ है कि सौ-पचास वर्ष बाद यदि कोई पंडित इस समय के संगीत की शोध करे, तो उसे इस ग्रंथ से अत्यधिक सहायता प्राप्त हो सकेगी। इस समय हम प्रत्यक्ष ही उपर्युक्त ग्रंथ की सहायता पा रहे हैं, यह स्पष्ट है।

प्रश्न : जी हाँ, आपका कथन ठीक है। अब 'कामोद' का स्वर-विस्तार सुनाइए ?

उत्तर : ठीक है, सुनो !

सा, रे, पप, मंप, धप, मग, मप, गमप, गमरेसा। रेपप, मंपधधप, मंपधमंप, गमप, गमरेसा, रे, पप, गमरेसा। सारेसा, मरे, पप, धधप, मंप, निधप, मपपमंप, मरे, पप, गमरेसा। सारेसा, मरे, सारेसा, पप, गमप, गम, रेसा, रे सारेसा, सानि़ध़प़, पपधधप, गमप, गमरेसा। पप, सां, सां, सांध, सांरेंसां, गंमंपं, गंमंरेंसां, सांसांरेंरेंसां, सांनिधधप, पप, गमप, गमरेसा, मंमंरेंरेंसां, सांरेंसां, धधप, गमप, गमरेसा। सांसांरेंरेंसां, रेंसां, निधप, मंप, धधपमंप, गमरे, गमपगमंरेसा।

इस प्रकार से स्वरों को गाते हुए कामोद का स्वरूप तुम्हारे ध्यान में जम जाएगा। कामोद को रागलक्षणकार ने भी 'कल्याण ठाठ' में बताया है, परंतु उसका वर्णन इस प्रकार किया है :—

मेचकल्याणिकामेलात्कामोदा परिकीर्तिता।
सन्यासंसांशकंचैव सषड्जग्रहमुच्यते।
आरोहेचावरोहेपि पधवर्जन्तदौडवम्॥

यह वर्णन हमारे लिए उपयोगी नहीं है; क्योंकि हम पंचम को वर्ज्य नहीं कर सकते। ऊपर बताए गए राग-स्वरूप में तीव्र मध्यम का प्रयोग अनेक जगहों पर तुम्हें दिखाई देगा, परंतु कोई-कोई गायक इस राग में इस स्वर को बहुत थोड़ा उपयोग में लेते हैं, कभी-कभी तो इस राग में तीव्र मध्यम का प्रयोग बिलकुल नहीं करते। मेरे विचार से तीव्र मध्यम अवश्य लेना चाहिए, क्योंकि उसके प्रयोग करने से राग-वैचित्र्य बढ़ जाता है। इस राग को उत्तम रूप से सीख जाने पर तुम अपना मत कायम करना 'ग म प, ग म रे सा, रे' यह अंग जहाँ तक सुनाई देगा, श्रोता लोग उसे कामोद ही समझेंगे। कुछ बँगला-ग्रंथों में कोमल निषाद स्पष्ट रूप से प्रयोग करने का विवरण भी प्राप्त होता है, परंतु वैसा हमारे यहाँ प्रचार में नहीं है। यह रात्रि के प्रथम प्रहर में गाया जानेवाला राग माना गया है। इसमें हम्मीर व गौड़ रागों का मिश्रण होता है, यह भी तुम्हें बताया जा चुका है। Capt. Willard साहब की पुस्तक में मिश्र रागों का एक कोष्ठक पाया जाता है। इसके विषय में भी तुम्हें मैंने बताया है। 'संगीतकल्पद्रुम' ग्रंथ में 'राग-मिलाप' विषय पर एक प्रकरण है, वह तुम्हें उस ग्रंथ को पढ़ते समय दिखाई देगा।

प्रश्न : परंतु केवल मिश्रित होनेवाले रागों के नाम जानकर ही मिश्रण कैसे किया जा सकता है ? इस मिश्रण के लिए कहीं कुछ नियम बताए गए हैं ?

उत्तर: ऐसा ही तो नहीं है। हम इस मिश्र राग का अर्थ इस प्रकार करेंगे कि जिसे सुनकर श्रोताओं को अलग-अलग विशिष्ट रागों की छाया दिखाई दे, उसे मिश्रित राग कहेंगे। कामोद में गौड़ और हम्मीर का आभास हो ही जाता है। 'संगीतदर्पण' में कामोद का वर्णन इस प्रकार किया गया है:—

धांशन्यासग्रहा पूर्णा पौरवी मूर्च्छना मता।
मल्लारनिकटेगेया कामोदी सर्वसम्मता॥
शिवभूषणकेदारयुक्ता सर्वसुखप्रदा॥

'दर्पण' के उक्त कथन की टीका करना ही निरर्थक होगा।

प्रश्न: अब अगले राग के विषय में समझाइए?

उत्तर: अब मैं तुम्हें छायानट के विषय में बताता हूँ। यह राग रात्रि के प्रथम प्रहर का माना जाता है। अन्य दो मध्यमवाले रागों के समान इस राग को भी ग्रंथों में शंकराभरण ठाठ में बताया गया है। हमने तीव्र मध्यम के प्रयोग की सुविधा के लिए इसे कल्याण ठाठ के अन्तर्गत माना है। प्राचीन ग्रंथों में भी इस राग के विवरण प्राप्त होते हैं। दक्षिण में इस राग को 'रागांग राग' माना जाता है; क्योंकि यह बहुत प्राचीन रागों में से है। दक्षिण-मत की धारणा है कि मार्ग-संगीत के जो-जो ग्राम-राग अर्थात् प्रसिद्ध जनक राग हैं, उनका शुद्ध अंग देशी संगीत में व्यवहृत होने पर 'रागांग राग' कहा जाता है। उनके इस कथन का इस समय कोई अर्थ नहीं है। यह ठीक है कि दक्षिण के विद्वान् अपने रागों में 'रागांग', 'भाषांग' आदि भेद अब भी मानते हैं। 'रागांग राग' के विषय में उनकी धारणा ऊपर बताई ही है। 'भाषांग राग' उन रागों का नाम है, जिनके स्वरों में लोक-रुचि के अनुसार परिवर्तन हो गया है। इनके इन भेदों की ओर हमें जाने की आवश्यकता नहीं है। छायानट हमारे यहाँ के रागों में एक साधारण राग कहा जा सकता है, क्योंकि बहुत-से गायक इसे जानते हैं। इस राग का ध्यान में रखने-योग्य अंग 'धपप, रेगमप, मगमरे, सारेसा' है। प्रत्येक गायक उपर्युक्त स्वर-समुदाय को इस राग में किसी-न-किसी स्थान पर श्रोताओं के समक्ष रखता ही है। इसी स्वर-समुदाय से इस राग की परख की जाती है। ऐसा भी कहते हैं कि उपर्युक्त अंग न होने से यह राग ही नहीं हो सकता है। बहुत-से गायक अपने गीतों को इसी अंग से आरंभ करते हैं। यह अंग इतना अधिक स्वतंत्र है कि जिन-उन रागों में प्रयुक्त किया जाए, प्रत्येक पर अपनी छाया डाल देता है और इस कारण उन रागों के नामों के साथ 'नट' शब्द भी जोड़ दिया जाता है। छायानट पूर्वांग-राग है। इसकी पूर्व-वर्णित पकड़ याद रखनी चाहिए। हमीर का मुख्य अंग—'गमध, निध, प, मंप, धप, गमरे, गमधप, गमरेसा', केदार का मुख्य अंग—'सा, म, मप, पधपम, मपम, रे, सा', कामोद का मुख्य अंग—'सा, रेपप, मंप, धधप, मंप, गमप, गमरेसा' तुम्हें बताए गए हैं। इसी प्रकार 'धधपप, रेगमप, मगमरे सारेसा' स्वर-समुदाय छायानट के लिए याद रखना चाहिए। छायानट में 'रेगमप' स्वरों का प्रयोग विलंबित रूप से सुंदर दिखाई देता है। ऐसा प्रयोग केदार, कामोद आदि रागों में नहीं किया जाता। नियमानुसार होने के कारण अवरोह में गांधार का

वक्रत्व बहुत सुन्दर दिखाई देता है। जिन अंगों को नियमबद्ध किया गया है, उन्हें उत्तम रीति से सँभालते हुए प्रयोग करना चाहिए। तीव्र मध्यम की स्थिति इस राग में भी केदार, कामोद जैसी ही अर्थात् पंचम की संगति में प्रयोग करने की है। इस राग में भी 'गमप' अवरोह और 'पमग' आरोह करने से यमन राग दिखाई देने लगता है। उत्तरांग में तान लेते समय निषाद स्वर के नियम को दुर्बल कर दिया जाता है; इसका कारण मैं पहले ही बता चुका हूँ। इस राग में तीव्र मध्यम को बिलकुल ही न लेने पर विशेष राग-हानि नहीं होती। तीव्र मध्यम इस राग का सौंदर्य और वैचित्र्य-वर्धक स्वर होने के साथ ही समय-बोधक (रात्रिकाल का द्योतक) स्वर भी है, अतः इसका प्रयोग स्थान-स्थान पर योग्य परिमाण से करना उत्तम होगा। दूसरी महत्त्व की बात यह है कि पंचम और ऋषभ की संगति इस राग में अनोखा माधुर्य भर देती है। 'धधपप, रेगमप' इस स्वर-समुदाय में पंचम से ऋषभ पर जाते ही श्रोताओं को राग पहचान में आ जाता है। यह चमत्कार ही है कि 'सा' रेरे, पप', इस प्रकार स्वर-समुदाय आते ही श्रोताओं को कामोद का रूप ध्यान में आ जाता है और 'पपरेरे' स्वर-समुदाय का प्रयोग होते ही छायानट का स्वरूप उत्पन्न हो जाता है। यह विलक्षणता तुम्हें सदैव ध्यान में रखनी चाहिए। मन्द्र-स्थान के पंचम से मध्य-स्थान के ऋषभ पर आने से भी छायानट का आभास उत्पन्न हो जाता है। इस राग में कोई-कोई पचम वादी मानते हैं और ऋषभ को संवादी मानते हैं। इसके विपरीत कोई-कोई ऋषभ को वादी और पंचम को संवादी मानते हैं। हम पंचम को ही वादी मानेंगे। अधिकतर इस राग के गीत धैवत से आरम्भ किए जाते हैं। यह देखकर कोई-कोई इस स्वर को भी वादी मानते है, परंतु यह ठीक नहीं है। राग के सम्पूर्ण स्वरूप पर विचार करने से धैवत का महत्त्व नहीं दिखाई देता। खींच-तानकर धैवत को महत्त्व देने से राग-हानि होना सम्भव है। इस राग में हमीर और केदार के अनुसार अवरोह में कभी-कभी कोमल निषाद का कण लगा देते हैं। वह बुरा नहीं दिखाई देता, क्योंकि यह प्रयोग केवल अवरोह में ही किया जाता है; परंतु यह स्वर इस राग का नियमित स्वर नहीं है, क्योंकि सां नि ध प इस प्रकार का अवरोह करना कभी भी शक्य नहीं है। इस राग को सुनते हुए श्रोताओं को यमन, गौड़, हम्मीर, बिलावल आदि रागों का थोड़ा आभास होता है। इस राग का स्वरूप निम्नलिखित है :—

सासा, धधपप, रेगमप, मग, मरे, सारेसा।

सासा, रेरे, गमप, मगग, मरे, सारेसा, सारेसा, ऩिध़प़प़, प़प़रेरे, रेगमप, गमप, गमरे, सा।

गमप, गमरे, धधपप, गमरे, पगमरे, सारेसा, सारेगमप, गमरेसा।

रेरेसासा, गमरेसा, पपगमप, गमरेसा, धधप, रेगमप, सारेसा।

पपसांसां, सांरेंसां, सांरेंगंमंप, गंगंमंरेंसां, सांसांरेंरें, सांसांधप, रेगमप, गमरेसा।

सासारेसा, सारेगम, रेसा, पमंपधप, गमरेसा, धधपप, रेगमप, मगमरे, सारेसा, सांरेंसांनिधप, निधप, धधपरेगमप, गमरेसा।

कुछ गायक छायानट को मिश्र राग बताते हैं। उनका कथन है कि यह 'छाया' और 'नट', इन दो रागों का मिश्रित स्वरूप है। एक गायक ने मुझे 'छाया' राग के

आरोह में निषाद लगाकर और अवरोह में गांधार लेकर छाया और नट का भेद दिखाया था। यह प्रकार भी तुम ध्यान में रख सकते हो। प्रचार में छाया और छायानट भिन्न-भिन्न नियमों से गानेवाले तुम्हें अधिक प्राप्त नहीं होंगे। यमन और कल्याण, भीम व पलासी, अल्हैया व बिलावल (ये अन्तिम राग अभी तुम्हें नहीं बताए हैं) इनके भेदों के अनुसार ही यह प्रकार भी है। 'रत्नाकर' में 'छाया' राग भिन्न प्रकार का राग माना गया है और उसमें भी यह भेद माना गया है। इस राग में पंचम और ऋषभ की संगति कोई-कोई मीड़ द्वारा सुन्दर रूप से प्रदर्शित करते हैं। अब मनोरंजन की दृष्टि से ग्रंथों में किए गए छायानट के वर्णन को देखते हैं। 'संगीतपारिजात' ग्रंथ के लेखक पंडित अहोबल इस राग के विषय में लिखते हैं :—

छायानट्टस्तुविज्ञेयः शंकराभरणस्वरैः।
आरोहणे निवर्ज्यः स्यादवरोहेगवर्जितः।
धैवतोद्‌ग्राहसंयुक्तो रिन्यासोऽनेकमध्यमः॥

यह वर्णन प्रचलित स्वरूप से बहुत-कुछ मिलता है। 'रागलक्षण' ग्रंथ में छायानट मेल में दोनों गांधार और कोमल निषाद स्वरों को ग्रहण किया गया है। हमारे तीव्र ऋषभ स्वर को उन्होंने वर्ज्य किया है। यह रूप हमारे उपयोग का रूप नहीं है। छायानट के ठाठ को उन्होंने 'बागधीश्वरी' मेल बताया है। यह ग्रंथ भी दक्षिण की ओर का है। 'संगीतसारामृत' ग्रंथ में छायानट के विषय में इस प्रकार कहा है :—

समपाः स्युस्त्रयः शुद्धाः षट्श्रुत्यृषभसंज्ञकः।
अंतराख्यानगांधारः पंचश्रुतिकधैवतः॥
कैशिक्याख्यनिषादश्चेत्येतत्सप्तस्वरैर्युतः।
छायानट्टस्यमेलोऽस्मिन्नेतदाद्या भवंतिहि॥
छायानाटः स्वमेलोत्थः संपूर्णः सग्रहांशकः।
उपांगंसायमेवैष गेयः संगीतकोविदैः।

यह ठाठ 'रागलक्षण' के ठाठ से मिलता है। षट्श्रुति ऋषभ हमारा कोमल ग है, अन्तर ग हमारा तीव्र ग, पंचश्रुति ध हमारा तीव्र ध और कैशिक नि हमारे कोमल नि स्वर के नाम हैं। यह रूप भी हमारा स्वीकृत नहीं है।

रागमंजरी :—

छायानाटस्त्रिसः सायं काकल्यंतरराजितः॥

रागचन्द्रोदय :—

शुद्धौसमौ पंचमकोविशुद्धः शुद्धोनिषादो लघुमध्यमश्च।
निगौ यदा त्रिश्रुतिकौ भवेतां कर्णाटगौडस्य तदैष मेलः॥

षड्जग्रहः सांतयुतश्चसांशोंऽतराश्रितः काकलिदीप्यमानः।
छायादिमः सायमसौविगेयो नटाह्वयो गानविचक्षणेन॥

नृत्यनिर्णय :—

'कर्णाटस्यैवमेले प्रकटितसुतनुश्चादिमध्यांतषड्जः ।

कर्नाट ठाठ में दोनों गांधार ग्रहण करने का उल्लेख है। इस प्रकार का छायानट भी प्रचार में ग्राह्य नहीं है। 'रागतरंगिणी' ग्रंथ में छायानट को केदार मेल का राग बताया है। यह ठाठ हमारी पद्धति का शुद्ध स्वरों का ठाठ (बिलावल ठाठ) ही है, यह पहले भी कहा जा चुका है। संगीतदर्पण, स्वरमेलकलानिधि, इन ग्रंथों में राग का वर्णन प्राप्त नहीं होता। 'चतुर्दंडिप्रकाशिका' ग्रंथ में छायानट का ठाठ 'रागलक्षण' के समान ही बताया गया है। अब 'लक्ष्यसंगीत' के छायानट का राग-विवरण बताता हूँ :—

स्यात्कल्याणीमेलकेऽपि छायानट्टोऽतिरंजकः ।
रिपसंवादसंपन्नः संध्याकालोचितः पुनः ॥
सुसंगतिरत्रप्रोक्ता पर्योश्चैवसुसंमता ।
पंचमादृषभे पातो नूनं स्याद् हृदयंगमः ॥
रागेस्मिन् गायकैः कैश्चिद्धैवतो ग्रह ईरितः ।
न्यसनं षड्जस्वरेऽपि मते तेषां सुनिश्चितम् ॥
आरोहणे तीव्रमस्य प्रयोगो दृश्यते कृतः ।
गवक्रंस्यादवरोहे नियमेन सतांमते ॥

प्रश्न : यह वर्णन हमारे प्रचलित रूप के अनुरूप है। हम इसे अच्छी तरह ध्यान में रखेंगे। अब आप कौन-सा राग बताएँगे ? हमारे विचार से 'श्याम' राग का वर्णन बताइए ?

उत्तर : ठीक है, श्याम राग साधारण रागों में से नहीं है। इस राग को बड़े-बड़े गायक ही जानते हैं। यह अप्रचलित है और इसके रूप के विषय में भी प्रचार में मतभेद हैं। यह एक मत से कल्याण ठाठ में दोनों मध्यम लगने-वाला राग माना जाता है। इस राग को केदार और कामोद राग से प्रयत्न-पूर्वक अलग करना पड़ता है, क्योंकि ये सब समप्राकृतिक राग कहलाते हैं। 'केदार' के विषय में हम जानते हैं कि इसके आरोह में ऋषभ वर्ज्य है, गांधार स्वर पंगु है और निषाद स्वर असत्प्राय है। श्याम राग में आरोह में ऋषभ लेते हैं और निषाद भी स्पष्ट दिखाया जाता है। कामोद में गांधार स्वर थोड़ा प्रयुक्त होता है और अवरोह में थोड़ा-सा निषाद भी लिया जाता है। श्याम राग के आरोह में निषाद स्वर बहुत वैचित्र्य उत्पन्न करता है और गांधार भी स्पष्ट रूप से लिया जाता है। यमनकल्याण व शुद्धकल्याण में गांधार स्वर प्रधान स्वर माना गया था, केदार में मध्यम स्वर प्रधान माना गया है, कामोद और छायानट में पंचम स्वर

को वादी बनाया गया है, यह तुम जानते ही हो। श्याम राग में वादी स्वर षड्ज और संवादी मध्यम माना जाता है। यह स्वरूप तुम्हें बहुत पसन्द आएगा। इस राग में चतुःश्रुतिक स्वर सा, म, प बहुत बढ़ाए जाते हैं। केदार राग में मध्यम प्रधान स्वर (वादी) और षड्ज संवादी होता है। इस राग में इससे विपरीत स्थिति में षड्ज वादी और मध्यम संवादी माना जाता है, परंतु इन्हीं दो स्वरों को अन्य स्वरों की अपेक्षा अधिक बढ़ाने से 'श्याम' राग में केदार का स्वरूप आ जाने का संदेह रहता है। पंचम स्वर लेते हुए उसमें तीव्र मध्यम जोड़ा जाता है। इस स्थान पर कामोद का आभास हो जाता है। एक बात ध्यान में रखने योग्य है कि इस राग में मध्यम और पंचम को समान महत्त्व नहीं देना चाहिए। श्याम राग में पंचम स्वर को वादी माननेवाले इस राग में कामोद का अंग अधिक दिखाते हैं।

'रे, म, रे' स्वरों का प्रयोग केदार में नहीं होता और कामोद में भी नहीं किया जाता। इस राग में यह प्रयोग तो होता ही है और साथ में आगे 'नि़, सा' स्वर भी लगा दिए जाते हैं। 'रे, म, रे, नि़, सा, रे' यह तान श्याम राग की बहुत मधुर तान है। इस तान से श्रोताओं को मल्लार या सोरठ का आभास होना संभव है। इसके हेतु गायक अन्तिम 'रे' से एकदम 'मं प' आरोह करते हैं। यह काम उत्तम दिखाई देता है। श्याम का स्वरूप उत्तम रूप से ध्यान में रखने के लिए निम्न स्वरों पर ध्यान देना चाहिए। 'रे मं रे, नि़ सा रे, मं प, ग मं प ध, मं प, ग म प, ग म रे, नि़ सा, प नि़ सा, रे' इस प्रकार से गाते हुए यह अन्य रागों से बहुत अलग किया जा सकता है। यह भी ध्यान में रखने की बात है कि इस राग के आरोह में धैवत नहीं लिया जाता, परंतु निषाद का प्रयोग होता है। एक तरह से 'आरोहे तु निवर्जः स्यात्' नियम का यह राग अपवाद कहा जा सकता है। 'श्याम' को कोई-कोई 'श्यामकल्याण' भी कहते है। कोई-कोई श्याम और कल्याण दो अलग-अलग राग मानते हैं। 'लक्ष्यसंगीत' में इसे 'श्याम' ही कहा है। ग्रंथों में भी इसी प्रकार दिखाई पड़ता है। अतः हम इतना ही नाम ग्रहण करेंगे। यह राग रात्रि के प्रथम प्रहर में गाया जाता है। इस राग में रे म, रे प, ये दोनों ही स्वर-संगतियाँ आ सकती हैं। इन्हें अलग-अलग बताकर गायक राग-वैचित्र्य उत्पन्न कर देते हैं। ग और नि स्वरों के अल्पत्व से भी इस राग का स्वतंत्र अस्तित्व बना रहता है। मध्यम और ऋषभ की मीड़ के अन्तर्गत गुप्त रूप से घसीट द्वारा गांधार दिखाया जाता है। इस समय सोरठ का आभास होने के पूर्व ही ऋषभ से तीव्र मध्यम पर जाकर राग की विलक्षणता बताने के साथ उसके रूप की रक्षा भी कर ली जाती है। कोई-कोई गायक श्याम राग में वादी स्वर धैवत को मानकर हमीर-जैसा प्रकार गाकर दिखाते हैं। मुझे यह स्वरूप पसन्द नहीं है। हमीर को देखते हुए धैवत को वादी स्वर बनाने की कोई आवश्यकता नहीं है। यह मैं तुम्हें पहले ही बता चुका हूँ। मेरे मित्र राजा सुरेन्द्रमोहन टैगोर (इनका मुझसे प्रत्यक्ष परिचय भी है) द्वारा दी हुई पुस्तक 'संगीतसारसंग्रह' में एक ग्रंथ (सम्भवतः 'संगीतनारायण') के कई रागों का वर्णन संकलित किया है। इनमें श्यामकल्याण भी बताया है; उसका कुछ वर्णन तुम्हें सुनाता हूँ :—

संपूर्णः श्यामरागः स्यात् धांशन्यासग्रहात्मकः ।
प्रदोषो गानकालोऽस्य निर्णीतो गानकोविदैः ॥

इस वर्णन में धैवत को अंश स्वर कहा गया है । अब यह कठिन प्रश्न उपस्थित हो जाता है कि इस ग्रंथ का शुद्ध ठाठ कौन-सा है ? इस विषय में 'संगीतसारसंग्रह' में कोई स्पष्टता प्राप्त नहीं होती । शंकराभरण शुद्ध ठाठ ऊपर की व्याख्या में नहीं लिया जाता, क्योंकि किसी भी प्राचीन ग्रंथ में इसे शुद्ध ठाठ नहीं माना है; केवल 'लक्ष्यसंगीत' ने ही शंकराभरण को शुद्ध ठाठ माना है, परंतु यह आधुनिक ग्रंथ है । कुछ ऐसे भी पंडित हैं, जो 'धैवतांश ग्रहन्यासः' जैसे वर्णों में कोमल रे-ध के ठाठ को मानने के समर्थक हैं । 'संगीतसारसंग्रह' में कुछ दूसरी ही व्याख्या प्राप्त होती है । वह नीचे लिखे अनुसार है :—

धैवतांशग्रहन्यासश्छायानट्टः प्रकीर्तितः ।
संपूर्णः कथितश्चासौ कविभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥
रिग्रहन्यासकांशा स्यात् छाया संपूर्णलक्षणा ।
प्रदोषेच प्रगातव्या विधिरेष प्रकीर्तितः ॥
षड्जग्रहा मरहिता छाया शृंगारवीरयोः ।
गांधारांशग्रहन्यासा वीरशांतिरसाश्रिता ।
संपूर्णागौडसारंगी गेयमध्याह्नतः परम् ॥

'संगीतनारायण' ग्रंथ कलकत्ता की Royal Asiatic Library में है ।

प्रश्न : और कौन-कौनसे ग्रंथ वहाँ पर हैं ?

उत्तर : मैं वहाँ गया था । मुझे उक्त लाइब्रेरी के Catalogue में ये ग्रंथ प्राप्त हुए—१. संगीतरत्नाकर, २. रत्नाकर-टीका, (कल्लिनाथ) ३. रत्नाकर-टीका, (सिंहभूपाल), ४. संगीतनारायण (पुरुषोत्तम), ५. कल्पद्रुम, ६. संगीतभाषा ७. पारिजात, ८. संगीतशिरोमणि, ९. संगीतसार, १०. अमोघानंदिनी शिक्षा, ११. रागमाला (क्षेमकर्ण), १२. संगीतदर्पण, १३. नारदीय शिक्षा, १४. संकीर्ण-रागलक्षण । अब तो उस पुस्तकालय में और भी अधिक ग्रंथ हो गए होंगे । यदि उधर प्रयास करने का अवसर मिले, तो उस Library को एक बार अवश्य देखना चाहिए ।

प्रश्न : यह कैसे कहा जा सकता है कि अब उस लाइब्रेरी में और अधिक ग्रंथ होंगे ।

उत्तर : मैं संगीत-संबंधी जानकारी के हेतु बनारस गया था । वहाँ गाय-घाट पर रहनेवाले पं० बालमुकुंदजी मालवीय कर्मकांडी के घर प्रसंगवशात् गया था । ये सज्जन भिन्न विषयों के हस्तलिखित ग्रंथों का संग्रह करते हैं और इस

विषय के शोधक व्यक्तियों को बेचते हैं। इन्होंने मुझे बताया कि कलकत्ते के प्रसिद्ध महामहोपाध्याय पं० हरिप्रसाद जी, एम. ए. ने उनके पास से संगीत-सम्बन्धी निम्नलिखित ग्रंथ लिए हैं :—

१. रागविबोध
२. गांधर्व वेद
३. रागचुम्बकमणिरुचिमालिका
४. संगीतसग्रह
५. संगीतविद्यानिधान
६. संगीतकल्पलता
७. संगीतरघुनन्दन
८. आनंदजीवन (मदन पाल)
९. सोमेश्वर-मत
१०. गीतगिरीश-काव्य
११. संगीतरसकौमुदी
१२. संगीतसार (केदारनाथ)
१३. गीतसार
१४. भरत-कृत गानशास्त्र
१५. सामप्रकाश

पं० बालमुकुन्द जी ने यह भी बताया था कि ये ग्रंथ पं० हरिप्रसाद जी ने कलकत्ते की R. A. Library के लिए ही लिए थे। अब वहाँ जाकर उन ग्रंथों को देखने का अवसर मुझे तो शायद ही प्राप्त हो, परंतु तुम कभी समय निकालकर अवश्य देख आना। मैंने अपने कलकत्ता-प्रवास में जिन-जिन ग्रंथों को उस लाइब्रेरी में देखा था, उनके विषय में अपनी डायरी में विस्तृत नोट लिख लिए थे। उनको भी समय पर तुम्हें बताऊँगा।

मैंने मद्रास के इलाके में रामेश्वर तक प्रवास किया। उधर मद्रास, तंजावर, त्रिवेंद्रम और मैसूर के प्रसिद्ध पुस्तकालयों में संगीत-सम्बन्धी ग्रंथ भी मुझे देखने को प्राप्त हुए थे।

प्रश्न : उन पुस्तकालयों में कौन-कौनसे ग्रंथ हैं ?

उत्तर :

मद्रास Oriental Library

१. नृत्तालपुराण-संग्रह २. रागविशेष ३. संगीतदर्पण ४. संगीतरत्नाकर ५. संगीतसारसंग्रह ६. स्वरमेलकलानिधि।

तंजावर Palace Library

१. संगीतसारामृत २. संगीतमुक्तावली ३. रागरत्नाकर ४. अभिनयदर्पण ५. अष्टोत्तरशत काललक्षण ६. तालप्रस्तार ७. काललक्षण ८. तालदीपिका ९. रागप्रस्तार १०. तालदशप्राणदीपिका ११. रागलक्षण १२. दंतिलकोहलीयम् १३. संगीतमकरंद १४. चत्वारिंशच्छतरागनिरूपणम् १५. संगीतदर्पण १६. रत्नाकर। और भी दो-चार ग्रंथ थे, जिनके नाम मैं भूल गया हूँ।

त्रिवेंद्रम Palace Library

१. अंगहारलक्षण २. नाट्यग्रंथ ३. नाट्यवेद ४. नाट्यवेदविवृत्ति ५. नृत्यरत्नाकर ६. बलराम भरत ७. भावप्रकाश ८. रसार्णवसुधाकर ९. संगीतचिन्तामणि १०. संगीतचूड़ामणि ११. संगीतसुधा १२. संगीतसुधाकर (हरिपाल) १३. सप्तस्वरलक्षण १४. स्वरतालादि-लक्षण।

मैसूर Government Oriental Library

१. अभिनयदर्पण, २. अभिनयप्रकरण, ३. अभिनयमुकुर, ४. अभिनवभरत-सारसंग्रह, ५. आदिभरत, ६. संगीतदर्पण, ७. भरतसारसंग्रह, ८. संगीतचूड़ामणि, ९. संगीतमकरंद १०. संगीतरत्नाकर-व्याख्या, ११. संगीतलक्षणदीपिका, १२. संगीत-लक्षण, १३. संगीतसमयसार, १४. स्वरप्रस्तार, १५. स्वरमेलकलानिधि।

उत्तरी भाग में भी मैंने बहुत यात्रा की। वहाँ पर उल्लेखनीय ग्रंथों का स्थान महाराज बीकानेर की लाइब्रेरी है। पंजाब, काश्मीर और नेपाल में भी बड़े-बड़े पुस्तकालय हैं और उनमें संगीत-ग्रंथ भी हैं, परंतु अभी तक वहाँ जाने का मुझे अवसर प्राप्त न हो सका, बीकानेर-लाइब्रेरी में मेरे द्वारा प्रत्यक्ष देखे हुए निम्न ग्रंथ हैं:—

१. संगीतसूत्र, २. संगीतरत्नाकर-टीका (कल्लिनाथ), ३. संगीतरत्नाकर-टीका (सिंहभूपाल), ४. संगीतराज रत्नकोश, ५. अनूपसंगीतरत्नाकर, ६. अनूपसंगीतविलास, ७. संगीतविनोद, ८. संगीतवर्तमान, ९. संगीतानूपरागसागर, १०. संगीतोद्देश, ११. शृंगारहार संगीत, १२. स्वरमेलकलानिधि, १३. हृदयप्रकाश, १४. हृदयकौतुक, १५. सगीतानन्दजीवन, १६. संगीतरागमाला (क्षेमकर्ण),१७. संगीतदर्पण, १८. दर्पण (हिंदी), १९. हनुमन्मतीय रागविभाषा, २०. संगीतरागकौतुक, २१. संगीतोपनिषत्सार, २२. रागतत्त्व, २३. संगीतकल्पतरु, २४. रागविबोध, २५. रागकाव्यरत्न, २६. रागमाला, २७. संकीर्णराग, २८. रागध्यान, २९. गमकमंजरी, ३०. संगीतमकरंद, ३१. मुक्तावली, ३२. नृत्याध्याय, ३३. मुखचालीनृत्याध्याय, ३४. संगीतसारनृत्याध्याय, ३५. स्वराध्याय भाषा ध्रुपद, ३६. मुरलीप्रकाश, ३७. पारिजात, ३८. संगीतसारकलिका, ३९. राग-चद्रोदय, ४०. रागमाला, ४१. रागमंजरी, ४२. नृत्यभेदनिर्णय, ४३. संकीर्णरागाध्याय, ४४. संगीतशारीरिकं, ४५. संगीतविनोद।

मेरी समझ में इस संग्रह के समान अन्य किसी शहर में कोई संग्रह नहीं है। मेरे देखे हुए ग्रंथों में जो-जो जानकारी मिलने-योग्य थी, उसके नोट मैंने अपनी डायरी में लिख लिए थे। वे सभी तुम्हारे सामने आते ही जा रहे हैं, अतः इस विषय में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है। एक प्रधान बात यह मैं तुम्हें बताए दे रहा हूँ कि संगीत-सम्बन्धी इतने ग्रंथ उपलब्ध हैं, परतु किसी में 'रत्नाकर' के ग्रामराग अथवा जातिप्रकरण की स्पष्टता प्राप्त नहीं होती। 'रत्नाकर' के रागों की व जाति-प्रकरण की अक्षरशः अनुकृति करनेवाले अनेक ग्रंथकार व उनकी रचनाएँ हैं, परंतु उसे उत्तम रूप से समझकर लिखने अथवा समझा देने का कोई प्रमाण इन ग्रथों में नहीं मिलता। इस बात को तुम और अच्छी तरह तभी समझ सकोगे, जब मैं तुम्हें ये ग्रथ समझाऊँगा। मैंने ऊपर जिन ग्रथों का उल्लेख किया है, उनमें से अधिकांश 'रत्नाकर' के बाद की रचनाएँ हैं। लक्ष्यसंगीतकार ने इन मध्यकालीन ग्रंथकारों के लिए जो कुछ कहा है, वह कठोर दिखाई देने पर भी असत्य नहीं है। अस्तु, अब हम अपने अपूर्ण विषय की ओर चलें।

प्रश्न : जी हाँ, अभी हमें 'श्याम' राग का संदर्भ पूरा करना है।

उत्तर : इस राग के नाम संस्कृत-ग्रंथों में साम, श्याम, सोम, श्यामकल्यानी आदि दिखाई पड़ते हैं। इनमें से सोम राग हमें बिलकुल भिन्न जान पड़ता है।

'रागलक्षण' में इस राग में रे ध नि स्वर कोमल माने हैं। इस प्रकार के राग को हमारे गायक कभी भी श्याम मानने को तैयार नहीं होंगे। आगे तुम्हें यह रूप एक स्वतन्त्र राग के रूप में आता हुआ प्राप्त होगा। ऐसे पंडित भी हैं, जो साम व श्याम रागों को भिन्न नहीं मानते। 'चतुर्दंडिप्रकाशिका' में साम राग का वर्णन इस प्रकार किया है—

शंकराभरणान्मेलात्संभूतस्सामरागकः ।
संपूर्णः सततं गेयो मंद्रमध्यमभूषितः ॥

तुलाजी महाराज के ग्रंथ 'संगीतसारामृत' में साम का वर्णन इस प्रकार हुआ है :—

कांभोजीमेल उत्पन्नः सामरागो निवर्जितः ।
षाडवः सग्रहन्यासः सदागेयः शिवप्रदः ॥

'आरोहे गांधार लंघनम्' वहाँ भी कहा गया है। रागतरंगिणीकार ने श्याम नाम का स्पष्ट उल्लेख किया है और उसे केदार ठाठ, अर्थात् हमारे शुद्ध स्वर ठाठ में माना है, यह सब ऊपर बताया जा चुका है। 'चत्वारिंशच्छतरागनिरूपणम्' ग्रंथ में 'श्यामकल्याणी' को हंसक राग के पुत्र सामन्त राग की भार्या माना है। यहाँ स्वरों की स्पष्टता नहीं है। चतुर पंडित ने 'लक्ष्यसंगीत' में श्याम का वर्णन इस प्रकार किया है :—

कल्याणीमेलसंप्रोक्तः श्यामरागः सुसंमतः ।
कल्याणस्य प्रकारोऽयमिति कैश्चिदुदीर्यते ॥
मध्यमावत्र द्वौ प्रोक्तौ लक्ष्यमार्गविचक्षणैः ।
स्यात् षड्जस्यैव वादित्वं संवादित्वं तु मेस्वरे ॥
गायने चास्य रागस्य कामोदांगं स्फुटं भवेत् ।
निगाल्पत्वं तत्र दृष्टं नैवमत्र मते सताम् ॥
रिपयो रिमयोर्वापि संगती रक्तिदा भवेत् ।
आरोहणे धैवतस्य वर्जनं सुखमावहेत् ॥

यह वर्णन प्रचलित रूप का है, अतः स्वीकारणीय भी है। 'अनूपसंगीतविलास' में 'श्यामनाट' नामक राग दिया हुआ है; उसका वर्णन इस प्रकार है :—

श्यामनाटस्तुकेदारमेले गेयो मनीषिभिः ।
गादिपूर्णश्चमन्यासः पमांशः श्यामनाटकः ॥

इस वर्णन में ठाठ शंकराभरण कहा है और वादी स्वर म अथवा प बनाने के लिए कहा गया है। श्याम राग नट राग से अनेक समय मिश्रित होता प्रतीत होता है, इस कारण ही कुछ ग्रंथकारों ने 'श्यामनाट' का ही लक्षण बताया है। हमीर, केदार, कामोद आदि राग भी नटराग से सुन्दर रूप से मिश्रित किए जा सकते हैं।

'चतुर्दंडिप्रकाशिका' ग्रंथ में भी 'शांतकल्याण' नामक एक मेल-राग का नाम दिया है। यह दक्षिण के ७२ ठाठों में से ही एक ठाठ है। यह ठाठ हमारे यमनकल्याण का ही है। शांतकल्याण में भी आरोह-अवरोह संपूर्ण कहे गए हैं।

प्रश्न : अब आप श्याम राग का स्वरूप बताइए ?

उत्तर : सुनो !

सा, रे, मरे, रेमरेनि़सा, रे, मंप, प, धप, मंप, मरे, पगमरे, नि़सा।
प़नि़, सा, रेनि़सा, मगमरे, नि़सा, मंपधप, मंपम, रेपगमरेनि़सा।
मम, रेनि़सा, रेनि़, मरेनि़, प़नि़, रेनि़सा, सारेमंप, गमरेनि़सा।

प़प़नि़सा, रेरेनि़सा, मंपरेनि़सा, रेमरे, मंप, निमंप, मंपधमंप, मग, गमपधमंप, गमप, गमरे, नि़सा, रे, मंप। पप, सां, सां, रेंनिसां, निसांरें, मंरें, निसां, निधप, मंपप, निरेंनि, मंप, मंपप, धमंप, मग, गमपधमंप, गमप, गमरे, नि़सा।

इस राग में, मैं कहाँ-कहाँ किस प्रकार से ठहरता हूँ, इसे ध्यानपूर्वक याद रखने की आवश्यकता है। इस राग में मध्यम से ऋषभ तक की मीड़ व साथ ही नि़ सा स्वरों का मधुर उच्चारण बहुत ही विशेषतापूर्ण होता है।

प्रश्न : अब 'गौड़सारंग' राग के विषय में बताइए ?

उत्तर : ठीक है, मैं बताता हूँ। गौड़सारंग के बाद यमनी राग का वर्णन तुम्हें सुनाता हूँ, परंतु उसे हम सहूलियत की दृष्टि से बिलावल ठाठ बताते हुए लेंगे। यमनी, बिलावल का ही एक प्रकार है। इस कारण जब तक तुम बिलावल नहीं समझ सकोगे, तब तक यमनीबिलावल समझना असुविधापूर्ण होगा। यमनी को कल्याण ठाठ में ग्रहण करने का कारण केवल उसमें तीव्र मध्यम का प्रयोग है।

प्रश्न : ठीक है, ऐसा ही कीजिए।

उत्तर : अच्छा, अब गौड़सारंग की ओर देखिए। गौड़सारंग अपनी पद्धति में संपूर्ण राग माना गया है। इसमें दोनों मध्यमों का प्रयोग होता है। इस राग के गाने का समय बहुमत से दिन का दूसरा प्रहर माना गया है। मेरी दृष्टि से यह समय इस प्रकार के तीव्र स्वरों के रागों के उपयुक्त नहीं है। इसे दोपहर का राग मानने का कारण इसके नाम में सारंग का प्रयोग मात्र है। दोपहर के समय में तीव्र 'ग' वाले राग सुन्दर नहीं होते, इसी नियम के अनुसार ही सारंग में धैवत और गांधार स्वर कम किए गए हैं। गौड़सारंग को ठीक प्रकार से देखने से उसमें सारंग का भाग बिलकुल नहीं दिखाई देता; फिर भी इस बेचारे की तकदीर में दोपहर का समय जड़ दिया गया है। इस राग में तीव्र मध्यम लिया जाता है। यह भी इसके दोपहर के समय के अयोग्य होने का एक कारण कहा जा सकता है। सारंग के पूर्व गाए जानेवाले राग आसावरी, तोड़ी, देवगांधार, जौनपुरी आदि हैं। इन-सबमें गांधार कोमल ग्रहण किया जाता है। सारंग के पश्चात् गाए जानेवाले राग धनाश्री, भीमपलासी, धानी और मुलतानी आदि हैं। इनमें भी गांधार कोमल ही माना गया है। स्वतः सारंग में गांधार को बिलकुल वर्ज्य माना गया है।

ऐसी दशा में गौड़सारंग का समय दोपहर निश्चित करना युक्तिसंगत नहीं है। मेरी समझ से अनेक मर्मज्ञों का भी यही मत होगा; फिर भी यदि बहुमत को भी स्वीकार किया जाए, तो यह एक अपवाद ही माना जाएगा। इसे दिन का ही राग मानें, तो इसे बिलावल के समकालीन मानना अधिक युक्तिसंगत है; यह अधिक उत्तम होगा। बिलावल को दिन के प्रथम प्रहर में गाने की प्रथा प्रसिद्ध ही है। गौड़सारंग के उत्तरांग में बिलावल की स्वल्प छाया दिखाई पड़ सकती है। इसी प्रकार का दोनों मध्यम वाला राग यमनीबिलावल भी है। यह मैंने स्वय का मत तुम्हें सुनाया है। तुम शीघ्र ही समझने लगोगे कि कौन-सा मत ठीक है और कौन-सा गलत है। यह राग दो मध्यम का है; अतः इसमें निषाद स्वर गौण ही रहेगा। गौड़सारंग में कुछ स्वरूप कल्याण का भी है, अतः कोई-कोई विद्वान् इसका वादी स्वर गांधार मानते हैं। मेरे खयाल से इसे दिवसगेय मानने पर इसका वादी स्वर धैवत और संवादी गांधार मानना योग्य है। ये दोनों स्वर इस राग के प्रधान स्वर हैं। मैं इस राग को इस रूप में बिलावल के समय गाया जानेवाला मानता हूँ। तीव्र मध्यम की स्थिति पूर्ववत् पंचम की संगति में ही रहती है। मंपध, मंप, मग, रेगरे, मग, प, रेसा, यह स्वर-समुदाय इस राग की पहचान करानेवाला है। तीव्र मध्यम का प्रयोग बिलकुल नहीं करने पर भी यह राग पहचान लिया जाता है, परंतु प्रयोग करने पर राग-वैचित्र्य बढ़ जाता है। इस राग को रात्रिगेय मानने पर तीव्र मध्यम की रात्रि-सूचकता और गांधार का वादित्व उत्तम शोभनीय हो जाता है। ग्रंथों में यह राग शंकराभरण ठाठ में माना गया है। किसी-किसी ग्रंथ में इस राग का वादी स्वर स्पष्ट रूप से गांधार बताया गया है। गौड़सारंग वक्र रागों में से है। इस राग के आरोह-अवरोह को ठीक रूप से देखने पर इसकी वक्रता स्पष्ट हो जाती है।

प्रश्न : क्या इस राग का स्वरूप केवल आरोह-अवरोह से नहीं दिखाया जा सकता ?

उत्तर : हाँ, क्यों नहीं। इस प्रकार से आरोह-अवरोह करने से यह हो जाएगा—'सा, रेसा, गरे, मग, पमं, धप, निधसां। सांध, निप, धम, पग, मरे, ग सा'। देखा, यह स्वरूप कितना वक्र है ? ऐसा नहीं समझना चाहिए कि गायक लोग सदैव इसी रीति से गाते हैं। जलद-तानों में इतनी वक्रता नहीं सँभाली जा सकती। इस राग का मुख्य अंग अर्थात् मुख्य पकड़ 'सारेसा, गरे, मग' स्वर-समुदाय का प्रयोग करते हुए राग-अस्तित्व बनाए रखते हैं। हमीर राग को भी वक्र राग ही कहा जाता है। 'सारेसा, गमध, निध, सां, सांरेंसां, निधपमंप, धधप, गमरे, गमधप, गमरे, सारेसा', इस प्रकार के स्वर-समुदायों से हमीर स्पष्ट हो जाता है। अच्छा बताओ, यह स्वर-समुदाय किस राग का अंग हो सकता है ? सा, म, मप, पधप, म, मप, धप, म, रेसा।

प्रश्न : यह अंग केदार राग का होना चाहिए।

उत्तर : बिलकुल ठीक है। 'सारेरेपध, मंग, धप, धप, गमप, गमरेसा', यह कामोद का अंग भी तुम जानते हो और 'रेमरे, निसा, रे,मंमंपप, धमंप, म, रे, पगमंरे, नि, सा', यह श्याम का अंग है। वक्र रागों का स्वरूप विलंबित लय में गाते हुए तो ठीक-ठीक सँभाला जा सकता है।

परंतु जलद-लय में उसे साधे रहना मुश्किल होता है, अतः उस राग को व्यक्त करनेवाले स्वरों को विशेष रूप से ध्यान में रखना पड़ता है। पंचम स्वर से आगे के स्वरों पर गायक जरा तान लेते हैं, पर आश्रय राग यमन का स्वरूप लेने लगता है; परंतु योग्य स्थानों पर राग-वाचक स्वर-समुदाय स्पष्ट रूप से दिखाकर गायक मूल राग दिखा दिया करते हैं। इस कार्य को जान-बूझकर करने से गायक की प्रशंसा ही होती है। कई गायक तानबाजी में इतने तन्मय हो जाते हैं कि उन्हें गाए जाने वाले राग का भी ध्यान नहीं रहता। ऐसे गायक कितनी ही तानें क्यों न लें, परंतु उनका गायन श्रेष्ठ नहीं कहलाता। यह सदैव ध्यान में रखना चाहिए कि केवल गला तैयार करना ही कुशलता या विद्वत्ता नहीं है। तुम्हें इस बात के अनेक उदाहरण प्राप्त होंगे कि अधिक तानबाजी से श्रोतागण उकता जाते हैं। धीरे-धीरे नियमों को ध्यान में रखते हुए गायन आरम्भ करना और फिर गति बढ़ानी चाहिए। फिर भी समय-समय पर मूल राग की प्रत्यक्षता सिद्ध करते रहने से ही श्रोताओं की तृप्ति होगी और तुम्हारी विद्वत्ता उत्तम दिखाई देगी। केवल 'रे सा, ग रे, म ग, प रे, सा' स्वरों के गाने से ही गौड़सारंग दीखने लगता है। यह अंग किसी भी राग में मिला देने पर वहाँ पर भी गौड़ का आभास उत्पन्न होता है।

प्रश्न : इस राग का विस्तार हमें समझा दीजिए?

उत्तर : हाँ, सुनाता हूँ :—

सा, रेसा, मग, रेगरेमग, प, रेसा। सारेमग, पपमंप, धधप, धप, मग, रेगरेमग, परेसा। धधमंप, निधमंप, धमंप, धप, मग, रेगरेमग, परेसासारेसासा, धनिधप, धसा, गरेमग, रेगरेमग, परेसा। धधमंप, निध, सांनिध, निधप, मंप, निधप, मंपधमंप, मग, निधमंप, मग, रेगरेमग, परेसा।

पपसां, सां, सांरेंसां, सांरेंमंगं, रेंगंरेंमंगं, परेंसां, सांरेंसां, निधनिधप, मंप, धनिधप, मंपधमंप, मग, धमंपमग, रेगरेमग, परेसा।

इस राग को गाते हुए गायक बहुधा प्रचार में 'प रे सा' स्वरों का उपयोग करते हुए पाए जाते हैं। यह उपयोग भी वे प्रत्येक तान पूरी करते समय ही करते हैं। इसी प्रकार मैंने भी ऊपर के स्वरों में तुम्हें बताया है। तुम इस प्रकार की कितनी तानें कंठस्थ कर सकते हो? एक बार उत्तम रूप से नियम समझ लेने के पश्चात् तुम्हारे-जैसों को अधिक सहायता की आवश्यकता नहीं है। धीरे-धीरे गाते-गाते राग के अंग और स्वरूप अपने-आप ध्यान में आ जाते हैं और यह भी समझ में आ जाता है कि इस राग में कौन-सा स्वर-समुदाय सुसंगत है और कौन-सा असंगत है। दैनिक अभ्यास करते जाने से थोड़े ही दिनों में वास्तविक जानकारी हो जाती है। हमारे गायकों को तानबाजी किसी ने सिखाई नहीं है, परंतु दैनिक रूप से गाते हुए उनके गले अपने-आप तैयार हो गए हैं। अस्तु—

अब मैं तुम्हें 'गौड़सारंग' के विषय में एक-दो ग्रंथों के मत सुनाता हूँ। 'हृदयप्रकाश' ग्रंथ का कथन है—'मादिगपांशः सम्पूर्णः गौड़सारंग उच्यते'। इस ग्रंथ के ठाठ के विषय में मैं तुम्हें बता ही चुका हूँ। कलकत्ता के किसी ग्रंथकार

ने यह राग अपने प्रचलित स्वरों में बताकर उसके सम्पूर्ण होने का ही संस्कृत-ग्रंथ का हवाला दिया है। परंतु यह नहीं बताया है कि उस ग्रंथ का शुद्ध ठाठ कौन-सा है। इस प्रकार के आधार देने का कोई विशेष अर्थ नहीं होता। ग्रन्थकार ने किस उद्देश्य से प्रमाण दिया है, यह वही जाने। लक्ष्यसंगीतकार ने, ग्रन्थ कैसा होना चाहिए, इस विषय पर एक स्थान पर कहा है :—

स्वाभिप्रायं स्पष्टतया जानीयुः सकला जनाः।
एतदर्थं लेखनं स्याद्ग्रन्थानामित्यसंशयम् ॥
प्राचीनशास्त्रे ह्यज्ञाते संगीतपरिवर्तनात् ।
वस्तुस्थितिरुदाहार्या ग्रन्थकृद्भिरमायया ॥
परिवर्तनशीलं यत्संगीतं ग्रंथकर्तृभिः।
प्राचीनं नष्टप्रायं तत्स्पष्टीकर्तुं न शक्यते ॥
नावश्यकं हि तत्किंतु यथाकयापि भाषया।
तदसामंजस्य बुद्धिर्नेष्टेत्येव ब्रवीम्यहम् ॥

मेरा खयाल है कि उपर्युक्त कथन ठीक ही है। जबकि प्राचीन संगीत नष्टप्राय हो चुका है, तब इस प्रकार स्पष्ट लिखने में कोई हर्ज नहीं? पश्चिमी (यूरोपियन) विद्वानों के ग्रंथ देखने से तुम्हें पता चलेगा कि वहाँ इस प्रकार की संदिग्ध तथा लोगों को भ्रम में डालनेवाली बात कभी नहीं पाई जाती।

रागतरंगिणीकार विद्यापति गौड़सारंग के विषय में इस प्रकार लिखता है:—

मेघरागस्य संस्थाने मेघो मल्लार एवच।
गौड़सारंगनाटीच रागो वेलावली तथा।

मेघ ठाठ के स्वर बताते हुए ग्रन्थकार ने कहा है :—

गांधारो मध्यमस्य श्रुतिद्वयं गृह्णाति, मध्यमश्च पंचमस्य श्रुतिद्वयं गृह्णाति, निषादः षड्जस्य श्रुतिद्वयं गृह्णाति, मध्यमः शुद्धो भवति, तदा मेघ-संस्थानम् ॥

'तरंगिणी' का शुद्ध ठाठ काफी का है। इसे ध्यान में रखते ही ऊपर की सभी बातें साफ हो जाती हैं। गौड़सारंग में हम दोनों मध्यमों का प्रयोग करते हैं, यह इस ग्रंथ के अनुसार भी प्रमाणित होता है। रागलक्षण, पारिजात, रागविबोध. रागमंजरी, नृत्यनिर्णय, रागचंद्रोदय आदि ग्रंथों में यह राग ही नहीं पाया जाता।

प्रश्न : चलो यह और सुविधा हुई। कृपा कर रागचंद्रोदयकर्त्ता पुण्डरीक के विषय में कुछ जानकारी दें। इनके श्लोक मुझे अच्छे दिखाई दिए हैं ?

उत्तर : पुंडरीक विट्ठल के ग्रंथ रागचन्द्रोदय, रागमंजरी, रागमाला, नर्तन-निर्णय आदि बीकानेर-नरेश के पुस्तकालय में तुम्हें प्राप्त हो सकते हैं। इन्हें मैं तुम्हें आगे सिखानेवाला हूँ। पंडित पुंडरीक विट्ठल दक्षिण की ओर के थे, ऐसा उनके लिखने से पता चलता है। 'रागचंद्रोदय' के स्वराध्याय के अंत में उसने लिखा है— 'श्री कर्णाटजातीयपुंडरीकविट्ठलविरचिते सद्रागचंद्रोदये स्वरप्रसादः समाप्तः'। यह एक उत्तम पंडित हो गया है।

प्रश्न : तो फिर इनका शुद्ध ठाठ दक्षिण का ही है। आपने यह हमें पहले भी बताया था। 'चंद्रोदय' में इन्होंने राग-रचना किस प्रकार की है, यह भी थोड़े में समझा दीजिए। इस विषय में अधिक गहराई में न जाकर हम साधारण जानकारी ही चाहते हैं।

उत्तर : इस ग्रंथकार ने मुख्य ठाठ या मेल १७ माने हैं। इन्हीं में ६८ जन्य-रागों का वर्णन किया है। मैं तुम्हें ये सारे ठाठ बताए देता हूँ। इन सभी श्लोकों को कंठस्थ करने की आवश्यकता नहीं है, केवल समझ लेना ही पर्याप्त है :—

तत्राद्यमेलस्तु मुखारिकायास्ततोभवेन्मालवगौडमेलः।
श्रीरागमेलस्तदनंतरं स्यात् स्याच्छुद्धनट्टाह्वयकस्य मेलः॥
देशाक्षिकाया अपिमेलकः स्यात्कर्णाटगौडस्य भवेत्सुमेलः।
केदारकाख्यस्य भवेच्चमेलो हिजेजमेलोऽपि हमीरमेलः॥
कामोदरागाभिधकस्य मेलस्ततस्तुतोड्याह्वयकस्य मेलः।
आभीरिकायाः सुमतश्च मेलो मेलो भवेच्छुद्धवराटिकायाः॥
स्याच्छुद्धरामक्र्यभिधस्य मेलो देवक्रियायाश्च भवेत्सुमेलः।
सारंगमेलस्तदनंतरं स्यात् कल्याणमेलस्तु ततः पुरः स्यात्॥
हिंदोलरागस्य भवेत्तुमेलः स्यान्नादरामक्र्यभिधस्य मेलः।
इतीरितास्ते नवचंद्रसंख्या एवंपरास्तान्कलयंतु तज्ज्ञाः॥

इस प्रकार के १९ ठाठ 'चंद्रोदय' में पुंडरीक ने बताए हैं। जन्यरागों की व्यवस्था इस प्रकार की गई है :—

१. मुखारी :	१. मुखारी।
२. मालवगौड :	१. मालवगौड, २. गौंडक्रिया, ३. गुर्जरी, ४. टक्क, ५. पाडी, ६. कुरंजी, ७. बहुली, ८. पूर्वी, ९. रामक्री, १०. द्रविड़गौड़, ११. गौड़ी, १२. बंगाल, १३. आसावरी, १४. पंचम, १५. रेवगुप्ति, १६. प्रथममंजरी, १७. कर्णाट बंगाल, १८. शुद्धगौड़, १९. शुद्धललित, २०. देवगांधार, २१. मारविका।
३. श्री :	१. श्री, २. मालवश्री, ३. धन्नासिका, ४. भैरवी, ५. सैंधवी।
४. शुद्धनाट :	१. शुद्धनाट।
५. देशाक्षी :	१. देशाक्षी।

६. कर्णाटगौड़ : १. कर्णाटगौड़, २. तुरुष्कतोड़ी, ३. शुद्धबंगाल, ४. छायानट, ५. सामंत।
७. केदार : १. केदार, २. नारायणगौड़, ३. बेलावली, ४. शंकराभरण, ५. नट नारायण, ६. मध्यमादि, ७. गौड़मल्लार, ८. सालंगनाट, ९. भूपाली, १०. सावेरी, ११. सौराष्ट्री, १२. कांबोजी।
८. हिजेज : १. हिजेज, २. भैरव
९. हंमीर : १. हम्मीरनाट
१०. कामोद : १. कामोद
११. तोड़ी : १. तोड़ी
१२. आभीरी : १. आभीरी
१३. शुद्धवराटी : १. शुद्धवराटी, २. सामवराटी
१४. शुद्धरामक्री : १. शुद्धरामक्री, २. त्रावणी, ३. देशी, ४. विभास, ५. ललित।
१५. देवक्री : १. देवक्री
१६. सारंग : १. सारंग
१७. कल्याण : १. कल्याण
१८. हिंदोल : १. हिंदोल
१९. नादरामक्री : १. नादरामक्री।

प्रश्न : यह बहुत उत्तम वर्गीकरण है, परन्तु जब तक उन १९ ठाठों के स्वर हम नहीं जान सकें, तब तक इस ग्रंथ के रागों को कैसे समझा जा सकता है ? मैं आपसे चाहे जो कुछ प्रश्न पूछ रहा हूँ, इससे विषयांतर जरूर हो रहा है; परन्तु आपने जब इतनी जानकारी दी है, तो इतना और भी बता दीजिए।

उत्तर : ठीक है, मैं संक्षेप में वह भी बताए देता हूँ। पुंडरीक की परिभाषा तुम्हें एक बार ध्यान में जमा लेनी चाहिए। अपने सा, म, प शुद्ध स्वर हैं, वे ही उनके शुद्ध सा, म, प स्वर हैं। अपने तीव्र 'ग' और 'नि' स्वरों को उन्होंने लघु 'म' और लघु 'सा' बनाया है। अपने कोमल 'रे' और 'ध' स्वर उनके शुद्ध 'रे' और 'ध' स्वर हैं। अपने कोमल 'ग' और कोमल 'नि' स्वरों को कहीं-कहीं पर साधारण 'ग' और कैशिक 'नि' कहा गया है। अपने 'रे' और 'ध' स्वर उनके शुद्ध 'ग' और 'नि' स्वर हैं। अपना तीव्र 'म' स्वर उनका लघु 'प' स्वर है। इस ग्रंथ में लघु शब्द का प्रयोग नवीन ही किया है। पुंडरीक ने केवल श्रीराग को चतुःश्रुति 'रे' व 'ध' बताया है। इन स्वरों के स्थान पर अपने शुद्ध रे, ध स्वर एक श्रुति ऊपर ठहरते हैं। परन्तु दक्षिण की ओर हमारे तीव्र रे, ध (शुद्ध) स्वर चतुःश्रुतिक रे, ध समझे जाते हैं। 'रागविबोध' का श्रीराग का ठाठ पुंडरीक के ठाठ से उत्तम रूप से मिलता है। मेरा खयाल है कि मैंने कहीं-कहीं तुम्हें इन स्वरों के विषय में बताया भी है, परन्तु तुम्हें और एक बार बता देता हूँ, जिससे तुम्हें सहूलियत होगी।

१. मुखारी : सभी स्वर शुद्ध, अर्थात् दक्षिण का शुद्ध ठाठ।

२. मालवगौड़ : 'सा रे म प ध' स्वर शुद्ध, षड्ज और मध्यम लघु (अपना भैरव ठाठ)।

३. श्री—रे ध चतुःश्रुतिक, साधारण ग, कैशिक नि, सा म प शुद्ध (अपना काफी ठाठ)

४. शुद्धनाट—नि ग त्रिश्रुतिक, सा म लघु, सा म प शुद्ध (दोनों ग नि)
५. देशाक्षी—सा म लघु, ग त्रिश्रुतिक, सा म प नि शुद्ध।
६. केदार—सा म लघु, सा म प शुद्ध, नि ग शुद्ध (शंकराभरण)
७. कर्नाटगौड़—सा म प शुद्ध, शुद्ध नि, लघु म, नि ग त्रिश्रुतिक।
८. हिजेज—सा रे म प ध शुद्ध, म लघु, नि कैशिक।
९. हमीर—सा ग म प ध शुद्ध, सा म लघु।
१०. कामोद—प ध शुद्ध, लघु प, सा रे शुद्ध, नि ग त्रिश्रुतिक।
११. तोड़ी—सा रे म प ध शुद्ध, साधारण ग, कैशिक नि (भैरवी ठाठ)
१२. आभीरी—सा प म ध शुद्ध, साधारण ग, शुद्ध ग, लघु सा।
१३. शुद्धवराटी—सा रे ग प शुद्ध, ध शुद्ध, सा प लघु।
१४. शुद्धरामक्री—सा रे प ध शुद्ध, म लघु, सा प लघु (पूर्वी)
१५. देवक्री—म सा प नि शुद्ध, सा प लघु, म पंचश्रुतिक (तीव्र)
१६. सारंग—सा ग म प शुद्ध, सा प लघु, नि कैशिक।
१७. कल्याण—सा ग प ध शुद्ध, सा प लघु, साधारण ग।
१८. हिंदोल—सा रे म प ध शुद्ध, ग नि त्रिश्रुतिक।
१९. नादरामक्री—सा रे म प ध शुद्ध, ग साधारण, सा लघु।

विकृत स्वरों के नाम याद करने के लिए निम्न श्लोक उपयोगी होंगे :—

शुद्धाः स्वरायेतु भवंति सप्त। तज्जान् विकारान् प्रवदामि सप्त।
स्वोपांतिकश्रुत्यधिसंश्रितः स्यात्। षड्जाभिधानोलघुषड्जनामा ॥
एवं मपौ स्तो लघुशब्दपूर्वौ। साधारणो गः प्रथमश्रुतिस्थः।
मस्य द्वितीयश्रुतिगोऽतरः स्यात्। षड्जाह्वयस्य प्रथमश्रुतिस्थः ॥
तथा द्वितीयश्रुतिवर्तमानो। निः कैशिकी काकलिनामधेयः।
अथो रिधावाद्यगनिश्रुतिस्थौ। लक्ष्येषु वेदश्रुतिकौ भवेताम् ॥
मः पंचमाद्यां श्रुतिमेत्य लक्ष्ये। क्वचिच्च पंचश्रुतितां प्रयाति।

भाइयो ! अब हमें इस विषय की अधिक गहराई में जाने की आवश्यकता नहीं है। लक्ष्यसंगीतकार ने अपने ग्रंथ के अन्त में कुछ वर्गीकरण दिए हैं, उनमें यह वर्गीकरण नहीं बताया है, अतः उसे मैंने तुम्हें बता दिया। भावभट्ट के ग्रंथ के वर्गीकरण भी आवश्यक हैं; परंतु इस स्थान पर नहीं किए जा रहे हैं। वे वर्गीकरण मैंने तुम्हारी सुविधा के लिए पहले ही अन्यत्र लिख दिए हैं। लक्ष्यसंगीतकार ने ये सभी ग्रंथ देखे हैं, ऐसा उसके कथन से स्पष्ट दिखाई देता है।

प्रश्न : अब आप लक्ष्यसंगीतकार का मत बताइए ?

उत्तर : वह इस प्रकार है :—

कल्याणीमेलके ज्ञेयो गौडसारंगनामकः ।
अतिवक्रस्वरूपोऽपि द्वाभ्यां माभ्यां सुभूषितः ॥
मध्याह्नार्हो भवेन्न्यल्पो गवक्रश्चावरोहणे ।
वादित्वं स्याद्धैवतस्य संवादित्वं तु गे पुनः ॥
नूनं विसंगतं चास्य गानं माध्याह्निकं भवेत् ।
वादित्वं चेन्मतं गेतदिति धांशो मतो मया ॥

यह मत हमें स्वीकृत है। इसे पूर्ण रूप से ध्यान में रखना आवश्यक है ।

प्रश्न : बहुत अच्छी बात है। हम इसे स्मरण रखेंगे। अब बिलावल ठाठ को आरम्भ कीजिए ?

उत्तर : अच्छा सुनो ! 'बिलावल' राग बहुत प्राचीन प्रतीत होता है। संस्कृत-ग्रंथों में वेलावली, वेलावल, बिलावली आदि नाम दिखाई पड़ते हैं। इनके राग-रूपों में भेद पाया जाता है। किसी-किसी ग्रंथ में 'वेलावली' में गांधार कोमल बताया गया है। प्रचार में गांधार तीव्र ही ग्रहण किया जाता है। बहुमत से बिलावल का ठाठ 'शंकराभरण' माना गया है। 'शंकराभरण' दक्षिण का अत्यन्त लोकप्रिय राग है। हमारे यहाँ 'बिलावल' राग भी उसी प्रकार लोकप्रिय है। इन दोनों रागों में तुम्हें बहुत साम्यता दिखाई पड़ेगी। ये दोनों राग प्रभातगेय माने गए हैं। ग्रंथों में 'शंकराभरण' को प्रभात का राग बताया गया है। 'शंकराभरण' राग आजकल हमारे यहाँ भी प्रचलित हो गया है। हमारा 'बिलावल' भी दक्षिण की ओर लोकप्रिय होता जा रहा है। दक्षिण की पद्धति में 'विलहरी' नामक एक प्रकार है, जो कुछ अंशों में अपने बिलावल से मिलता हुआ है। हम लोग बिलावल को प्रातःकाल ही गाते हैं।

प्रश्न : तब तो यह राग उत्तरांगवादी और अवरोह में विलक्षण रूप का होगा ?

उत्तर : ठीक कहते हो। जिस प्रकार संध्या के संधिप्रकाश रागों के बाद 'कल्याण' गाया जाता है, उसी प्रकार प्रभातकालीन सधिप्रकाश रागों के बाद 'बिलावल' गाया जाता है। कोई-कोई इसे प्रभातकालीन 'कल्याण' भी कहते हैं। इसमें सन्देह नहीं है कि यह योजना अत्यन्त कुशलता से की हुई है।

प्रश्न : दक्षिण में शकराभरण ठाठ से निकलनेवाले कौन-कौनसे राग लोक-प्रिय हैं ? उसी प्रकार अपने यहाँ कौन-कौनसे राग इस ठाठ से उत्पन्न होकर लोकप्रिय हुए हैं ?

उत्तर : दक्षिण के एक प्रसिद्ध सज्जन ने मुझे बताया है कि इस ठाठ से निकले हुए निम्नलिखित राग वहाँ प्रचलित हैं :—

१. शंकराभरण २. अठाणा ३. आरभी ४. कुरंजी ५. केदार ६. सावेरी ७. बिलहरी ८. बिहाग ९. हंसध्वनि १०. नवरोज ११. देवगांधारी ।

इन रागों के आरोह-अवरोह तुम्हें दक्षिण की अनेक तेलुगू-पुस्तकों में दिखाई देंगे। वहाँ पर ठाठ और आरोह-अवरोह का अत्यधिक महत्त्व है।

प्रश्न : दक्षिण-भाग के संगीत का ज्ञान प्राप्त करने के लिए हमें मुख्य रूप से किन-किन पुस्तकों का पढ़ना आवश्यक है :—

उत्तर : मेरी समझ से तुम्हें ये पुस्तकें अवश्य पढ़नी चाहिए :—

1. Capt. Day's 'The Music and Musical Instruments of Southern India'

2. Chinnuswami Moodliar's 'Oriental Music'

३. 'संगीतसम्प्रदायप्रदर्शिनी' by SubramDixit, Pandit.

४. पंडित शिंगराचार्य की क्रमिक पुस्तकें.

५. 'गानविद्यासजीवनी' by Mr. T. Naidu M. R. A. S.

६. भरतकल्पलतामंजरी

इनमें से प्रथम दो पुस्तकों को अवश्य पढ़ना चाहिए। वे अँग्रेजी में हैं और बहुत उत्तम हैं। शेष पुस्तकें तेलुगू में हैं।

प्रश्न : दक्षिण-पद्धति के कौन-कौनसे संस्कृत-ग्रंथों को पढ़ना चाहिए ?

उत्तर : चतुर्दण्डिप्रकाशिका, संगीतसारामृत, रागलक्षण आदि ग्रंथ देखना उपयोगी होगा। 'चतुर्दण्डिप्रकाशिका' ग्रंथ तो दक्षिणी पद्धति की जड़ है, ऐसा कहना गलत नहीं कहा जा सकता। यह ग्रंथ अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ है। मद्रास इलाके के इटय्यापुर नामक स्थान में एक पंडित सुब्रह्म दीक्षित नामक सुप्रसिद्ध विद्वान् हो गए हैं। उनके घराने में ही यह ग्रंथ है। स्वर्गीय दीक्षित जी मेरे मित्र थे। उन्होंने मुझे उस ग्रंथ की प्रतिलिपि दी है; वह मैं तुम्हें आगे बताऊँगा। वह ग्रंथ ही तुम्हें पढ़ना है। Mr. Moodliar एक बुद्धिमान् लेखक थे। वे इन्हीं पंडित दीक्षित के अनुयायी थे।

प्रश्न : Capt. Day साहब का ग्रंथ कहीं प्राप्त होता है ?

उत्तर : मेरे खयाल से अब प्राप्त नहीं होता। इसकी एक प्रति B. B. R. A. Society Library में है, ऐसा मैंने सुना है। संगीत-विषय के ग्रंथों की अधिक खपत न होने से प्रायः संगीत-ग्रंथों की अधिक आवृत्तियाँ नहीं हो पातीं। यह दुर्भाग्यवश हमारे यहाँ भी अनुभव किया जा सकता है। अस्तु, अब हम अपने विषय की ओर बढ़ें।

प्रश्न : किन्तु यह बात अभी रह गई है कि अपने यहाँ बिलावल ठाठ के कौन-कौनसे राग प्रसिद्ध हैं ?

उत्तर : इस ठाठ में हमें जिन-जिन रागों को ग्रहण करना है, वे ये हैं :—

१. शुद्धबिलावल २. अल्हैयाबिलावल ३. शुक्लबिलावल ४. देवगिरी ५. नटबिलावल ६. ककुभ ७. मलुहाकेदार ८. गुणकली ९. पहाड़ी १०. देशकार ११. माड़ १२. बिहाग १३. शंकरा १४. दुर्गा १५. हंसध्वनि १६. हेमकल्याण १७. सर्पर्दा १८. लच्छाशाख। इसी प्रकार के बिलावल के प्रकार प्रचार में माने जाते हैं।

गायक बिलावल के और भी भेद मानते हैं, परंतु उनका स्वरूप बहुत विवादग्रस्त है, ऐसा देखा गया है।

प्रश्न : एक राग के भिन्न मानने की प्रथा प्राचीन ही दिखाई देती है। आपने यहाँ बिलावल के अनेक प्रकार कह दिए हैं, इसी प्रकार कल्याण के बताए थे!

उत्तर : हाँ 'रत्नाकर' के 'उपांग' राग आदि प्रपंच इसी धारणा पर बने हुए हैं। वहाँ गौड़, बिलावली, गुर्जरी आदि के भिन्न-भिन्न प्रकार माने गए हैं। मार्ग-संगीत में भाषा, विभाषा, अन्तर-भाषा और देशी संगीत में भाषांग, क्रियांग, उपांग आदि वर्ग पाए जाते हैं। दक्षिण की ओर के रामनाद नामक स्थान में एक प्रसिद्ध पंडित हैं; उन्होंने मुझे रागांग, भाषांग, क्रियांग, उपांग आदि की व्याख्या इस प्रकार बताई थी :—

'रागांग राग' शुद्ध शास्त्रीय रागों को कहा जाता है। ग्रंथों में बताए हुए आरोह-अवरोह से प्रयत्नपूर्वक गाए जाते हैं। ये Classical अर्थात् प्रथम वर्ग के राग हैं। शास्त्र-नियम भग होते ही 'रागांग' राग नहीं रह पाता।

'भाषांग राग' वे राग हैं, जो बड़े शास्त्रीय सिद्धान्त पर आश्रित नहीं रहते। देशों की भिन्न-भिन्न प्रचार-शैलियों द्वारा इनका निर्माण हो जाता है। ऐसे राग जिन शास्त्रीय रागों के निकट होते हैं, उन्हीं रागों के भाषांग माने जाते हैं। ऐसे रागों के नाम प्रान्तीय नामों से सम्बन्धित होते हैं।

'क्रियांग राग' वे राग हैं, जिनमें शास्त्रवर्णित नियम तो कायम रहता है, परंतु (बहुधा अवरोह में) कोई विवादी स्वर का उपयोग भी विचित्रता और लोक-रंजन की दृष्टि से कर लिया जाता है। शुद्ध कसौटी पर ये राग 'भ्रष्ट' कहे जा सकते हैं, परंतु रुचि और रक्तिरंजकता को देखते हुए यह कृत्य कुशलता की दृष्टि से किया जाता है।

'उपांग राग' ये भी क्रियांग के ही अनुसार 'रागांग' रागों को भ्रष्ट करके उत्पन्न किए जाते हैं, परंतु इनमें एक विशिष्ट भिन्नता है। क्रियांग रागों में शुद्ध राग-स्वरूप कायम रखते हुए कोई नवीन स्वर ग्रहण किया जाता है, परंतु उपांग रागों में मूल राग के स्वरों में कुछ या कोई स्वर कम किया जाकर नया स्वर ग्रहण किया जाता है। हमारी हिन्दुस्तानी पद्धति में इस प्रकार का कोई प्रपंच नहीं है।

अभी यह व्याख्या उत्तम, स्पष्ट रूप से समझने-योग्य है, यह कोई भी कह सकेगा। 'संगीतविलास' नामक ग्रंथ में पण्डित भावभट्ट ने यही व्याख्या इस प्रकार की है :—

ग्रामोक्तानांच रागाणां छायामात्रं भजंतिहि। गीतज्ञैः कथिताः सर्वे रागांगास्तेन हेतुना॥ भाषाच्छायाश्रिता येच जायंते तादृशाः किल। भाषांगास्तेन कथ्यते गायकैः सौतिकादिभिः॥ रागच्छायानुकारित्वादुपांगमिति कथ्यते। उपांगानिमतंगेनांतर्भावितानितेषुच॥

बिलावल के भिन्न-भिन्न प्रकार गायकों द्वारा प्रचार में गाए जाते हैं। इन भेदों को अलग-अलग स्पष्ट रूप से पहचानने में तुम्हें अवश्य ही प्रयास होगा। इसका कारण यह भी है कि बिलावल के अधिकांश भेद 'संपूर्ण' जाति के हैं और उसी तरह प्रायः सभी उत्तरांगवादी भी हैं। प्रत्येक भेद में राग के प्रमुख अंग (बिलावल-अंग) को रखने के प्रयत्न में बहुतों के अन्तरे समान दिखाई पड़ने लगते हैं। इस कठिनाई को मिटाने की दृष्टि से राग-पहचान के स्वरों को आरम्भ के स्वरों में या 'मुखड़े' में ही स्थित कर दिया जाता है। यहाँ हमने बिलावल के जिन-जिन प्रकारों को पसन्द किया है, उनमें से अधिकांश के लक्षण पर्याप्त रूप से शीघ्र ही ध्यान में आने-योग्य हैं।

'बिलावल' का एक निश्चित अवरोह इस प्रकार है—'सां, नि ध, प ध नि ध प, म ग, म, रे सा'। इस अवरोह के स्वरों का प्रयोग करते ही बिलावल स्पष्ट हो जाता है। उत्तरांगवादी रागों की यह एक विशेषता है कि वे राग अवरोह में ही स्पष्ट रूप से पहचाने जा सकते हैं। मेरे विचार से तुम्हें इन स्वरों को याद कर लेना चाहिए। बिलावल के अवरोह में मध्यम स्वर वर्ज्य नहीं किया जाता। मध्यम वर्ज्य करने से 'देशकार' का स्वरूप उत्पन्न हो जाता है। रात्रि के प्रथम प्रहर के रागों में धैवत वादी बनाने पर वह 'मारक' (राग-भ्रष्टकर्ता) हो जाता है। वही धैवत प्रभातकालीन प्रथम प्रहर के रागों का वादी के रूप में 'पोषक' हो जाता है। रात्रि के रागों में धैवत वादी बनाने पर वे प्रभात के राग दिखाई देने लगते हैं। इसी प्रकार प्रभात के किसी भी राग में जितना रे, ग स्वरों को बढ़ाया जाए, उतना ही रात्रिकालीन राग दिखाई देने लगता है। यह क्यों होता है? इस विवादग्रस्त विषय पर अभी हमें विचार नहीं करना है। यह कहना भी 'बहुत-कुछ ठीक है कि हमारा संगीत रे, ग, ध, नि स्वरों की भिन्न-भिन्न व्यवस्था पर अवलम्बित है। प्रभात के प्रथम प्रहर के बाद से संध्या के सन्धिप्रकाश रागों तक तीव्र गान्धारवाला राग शायद ही तुम्हें दिखाई पड़ेगा। 'गौड़सारंग' एक अपवाद-स्वरूप है, यह तुम्हें मैं बता ही चुका हूँ। तीव्र मध्यम दिन के बहुत थोड़े रागों में प्रयुक्त होता है, यह भी तुम्हें मैंने बताया ही है। इसी प्रकार की कुछ साधारण बातों पर ध्यान देते रहना चाहिए।

प्रश्न : हम तो इस प्रकार का एक साधारण नियम ही बना लेते हैं कि गायक यदि दिन में गाता है, तो पहले यह देखना चाहिए कि वह तीव्र मध्यम का प्रयोग करता है या नहीं। तीव्र मध्यम मिलने के बाद 'रे' स्वर होता है या नहीं, यह देख लेना चाहिए। तीव्र 'रे' दिखाई देने पर 'गौड़सारंग या यमनी-जैसा राग समझ लेना चाहिए। यदि वह 'रे' स्वर वर्जित कर रहा है, तो बहुधा हिन्दोल राग समझ लेना चाहिए ?

उत्तर : शाबाश ! इस प्रकार की युक्ति सोच निकालना अयोग्य नहीं है। तीव्र मध्यम की मदद ले तुम्हें राग-पहचान अनेक स्थानों पर प्राप्त होगी। बिलावल में हम वादी स्वर धैवत और संवादी गांधार या ऋषभ को मानेंगे। गांधार को संवाद

मानने का प्रचार अधिक है। कोई-कोई गायक गांधार स्वर को ही वादी मानते हैं; परन्तु तुम्हें इस मत को पसन्द नहीं करना चाहिए। किसी-किसी ग्रंथ में बिलावल का स्वरूप रे, प वर्ज्य माना हुआ दिखाई देगा, परंतु ऐसा बिलावल हम नहीं गाते। इस प्रकार के औडव स्वरूप का एक नवीन और सुन्दर राग हमें मिल जाता है। इस औडव बिलावल का स्वरूप इस प्रकार होगा—'धनिसां, निसां, निधमग, सा। ध़नि़सा, मग, मध, मग, मध, निसां, गंसां, ध, मग, सा। सासागग, मग, मध, निधमग, धनिसां, गंगंसां, गंमंगंसां, सांनिध, निधमग, सा। यह प्रकार बहुत मधुर हो जाता है। इन प्रकारों के नाम खोज निकालने का हमारे पास एक सरल साधन है।

प्रश्न : वह कौन-सा ?

उत्तर : मैं तुम्हें पहले Capt. Day साहब की पुस्तक का नाम बता चुका हूँ। उस पुस्तक में लगभग एक हजार रागों के आरोह-अवरोह ठाठ के नामों के साथ बता दिए गए हैं। एक मराठी भाषा के प्रसिद्ध संगीत-ग्रंथ में दो-सौ के लगभग राग उसी ग्रंथ में से लिए गए हैं। Capt. Day साहब ने यही सामग्री संस्कृत-ग्रंथों से प्राप्त की है। तन्जावर के एक संगीतज्ञ-विद्वान् ने मुझे 'रागलक्षण' नामक एक छोट-सी पुस्तक दी है। उस पुस्तक में सैकड़ों रागों के आरोह-अवरोह बताए गए हैं, परंतु केवल आरोह-अवरोह की सहायता से ही राग नहीं गाया जा सकता, इस बात को तुम भी अच्छी तरह समझ गए हो। अस्तु—

मैं तुम्हें बता रहा था कि बिलावल राग में 'रे' और 'प' स्वर वर्ज्य करने पर एक सुन्दर राग-स्वरूप उत्पन्न हो जाता है। यद्यपि बिलावल राग सम्पूर्ण रागों में से है, परंतु पहचान के लिए उसका निम्नलिखित स्वरूप ध्यान में रखना चाहिए —'सा, रेसा, गरे, गप, धनिध, निसां। सांनिधप, धमग, मरे, सा'। थोड़ी देर के लिए बिलावल के यही आरोह-अवरोह मान लिए जाएँ, तो भी हानि नहीं। इन स्वरों को उत्तम रूप से गाकर तैयार करना पड़ता है। बिलावल का स्वरूप बिलकुल स्वतन्त्र है। जैसे-जैसे वह स्वरूप स्पष्ट होता जाता है, वैसे-वैसे ही बिलावल का कोई-न-कोई प्रकार उत्पन्न होता जाता है। उत्तरांग में 'प प, ध नि ध, नि सां' ये स्वर इतने चमत्कारपूर्ण हैं कि तीव्र स्वरवाले किसी भी राग में इन्हें सम्मिलित करने पर बिलावल का आभास होने लगता है। आगे हम बिलावल के भेदों पर विचार करेंगे, परंतु प्रायः बहुत-से भेदों में 'प प, ध नि ध, नि सां' स्वर-समुदाय अन्तरे के रूप में ही दिखाई पड़ेगा।

इतना ही नहीं, अपितु वे सारे भेद बिलावल के ही हैं, यह भी इसी स्वर-समुदाय से निश्चित किए जाएंगे। तुम यह शंका कर सकते हो कि फिर वे राग भिन्न-भिन्न रूप से कैसे पहचाने जाएँगे? इसका उत्तर यह है कि ऐसे रागों में वादी-संवादी स्वरों से ही राग-भिन्नता का निर्णय किया जाता है। कुछ ऐसे प्रकार भी हैं, जिनमें बिलावल के साथ अन्य रागों का मिश्रण हुआ है। बिहाग, जयजयवन्ती, झिझोटी, छायानट, नट, गौड़ आदि राग बिलावल से उत्तम रूप से मिल सकते हैं। इनकी सहायता से ही बिलावल के प्रकार पहचाने जाते हैं। इस विषय पर मैं तुम्हें आगे

इन रागों का वर्णन करते हुए अधिक बताऊँगा। अभी मैंने जिन रागों का नाम लिया है, वे बिलावल के स्थायी के भाग में मिले हुए अधिक पाए जाते हैं। अन्तरे में 'प प ध नि ध नि सां', यह अंग गायक को अनिवार्य रूप से दिखाना पड़ता है, क्योंकि ऐसा न करने से बिलावल का स्वरूप स्पष्ट नहीं दिखाया जा सकता। बिलावल राग के अवरोह में विशेष रूप से ध म स्वरों की संगति मुख्य रूप से ली जाती है और इसके प्रयोग से राग की विचित्रता तथा सौन्दर्य बढ़ता है।

अब मैं तुम्हें एक मतभेद बताता हूँ। कोई-कोई गायक शुद्धबिलावल और अल्हैयाबिलावल, ऐसे दो भिन्न-भिन्न राग मानते हैं। यदि तुम उनसे यह पूछो कि इन दोनों रागों को अलग-अलग बताने के लिए कौन-से नियमों का आश्रय लिया जाता है, तब उनका उत्तर यह होगा कि जिस प्रकार सायकाल में यमन राग आरोह-अवरोह में सम्पूर्ण माना गया है, उसी प्रकार प्रातःकाल शुद्ध स्वरों का बिलावल राग समझना चाहिए। उनके मत से शुद्धबिलावल का आरोह-अवरोह 'सा रे ग म प ध नि सां, सां नि ध प म ग रे सा' है। इस प्रकार में, आरोह में मध्यम वर्ज्य करने पर और अवरोह में थोड़ा-सा कोमल निषाद लेने पर अल्हैया-बिलावल हो जाता है, यह उनका कथन है। यह मत गलत नहीं है, परंतु प्रचार में शुद्धबिलावल और अल्हैयाबिलावल अलग-अलग मानकर गानेवाले गायक शायद ही कोई होंगे। किसी भी गायक से बिलावल गाने को कहते ही वह तत्काल अल्हैया गाने लगता है। यदि उसके बाद शुद्धबिलावल गाने की फरमाइश की जाए, तो वह कह देगा कि मुझे नहीं आता, अथवा चाहे जो कुछ गाकर समय नष्ट करने लगेगा। बिलावल के प्रकारों में धैवत की संगति में कोमल निषाद का कण अधिकतर लगा दिया जाता है; यह काम अवरोह में ही किया जाता है और वहीं सुन्दर दिखाई देता है। यद्यपि अवरोह की प्रत्येक तान में यह नहीं लिया जाता, परन्तु बीच-बीच में इस कोमल निषाद का दर्शन हो ही जाता है। कल्याण ठाठ के दोनों मध्यम लगनेवाले रागों का वर्णन करते हुए मैंने तुम्हें यह बताया था कि उन रागों के अवरोह में भी बिलावल के अनुसार ही धैवत की सगति में कोमल निषाद का कण लिया जाता है। बिलावल ठाठ और कल्याण ठाठ में केवल कोमल-तीव्र मध्यम का ही अन्तर है, इसी कारण ये दोनों राग एक-दूसरे के निकट आ जाया करते हैं। इसी प्रकार की निकटता भैरव और पूर्वी ठाठ में भी दिखाई पड़ेगी। बिलावल राग का पूर्वांग-विस्तार बहुत-कुछ कल्याण-जैसा ही देखने में हो जाता है। अल्प अनुभववाले श्रोता को अनेक बार ये दोनों राग अलग-अलग करने में कठिनाई पड़ जाती है; परंतु गायक जब उत्तरांग की ओर बढ़ता है, तब सन्देह को स्थान नहीं रह पाता। अधिकतर संगीतज्ञ लोग मध्य-सप्तक में ही राग के प्रधान अंग को बताते हैं, क्योंकि मन्द्र-स्थान और तार-स्थान में गायन अपूर्ण ही कहलाता है। बिलावल गाते हुए गायक धैवत पर बार-बार जाकर कल्याण की छाया कम करता रहता है। यह काम मैं तुम्हें प्रत्यक्ष करके बताता हूँ, जिससे तुम सरलता से समझ सको। बिलावल राग में कोई संगीत-पंडित षड्ज स्वर को वादी मानते हैं।

षड्ज स्वर किसी भी राग का वादी हो सकता है, यह अपना नियम है ही। बिलावल के लक्षण 'लक्ष्यसंगीत' ग्रंथ के अनुसार तुम्हें याद रखने चाहिए :—

शंकराभरणे मेले रागो वेलावलः स्मृतः ।
षड्जांशको बुधैः प्रोक्तो धैवतांशोऽपि सम्मतः ॥
आरोहणं भवेत्तत्र मन्यल्पस्वरसंयुतम् ।
अस्य गानं मतं प्रातरुत्तरांगप्रधानकम् ॥
प्रातःकालीयकल्याण इति केचिद्वदंत्यमुम् ।
अवरोहे गदौर्बल्यं कल्याणं च निवारयेत् ॥
धमयोः संगतिस्तत्र नित्यं वैचित्र्यकारिणी ।
आरोहे तु निवक्रत्वं केषांचित्सुमतं सताम् ॥

इन लक्षणों को याद करने से बिलावल की जानकारी मिल जाती है। मैंने तुम्हें जितनी बातें बताई हैं, वे सभी लक्ष्यसंगीतकार ने बहुत थोड़े में ऊपर कह दी हैं। यह ग्रंथ वर्तमान पद्धति का है, इसी लिए इसमें प्रचलित बातों को अधिक महत्त्व दिया है। इसके लेखक चतुर पंडित का मैं अनुयायी हूँ, इस सम्बन्ध में तुम्हें पहले ही विस्तारपूर्वक बता चुका हूँ। अब हम प्राचीन ग्रथों में देखते हैं कि वे बिलावल के विषय में क्या कहते हैं :—

'संगीतरत्नाकर' ग्रंथ में बेलावली को ककुभ ग्राम-राग की भाषा भोग-र्वाद्धनी से उत्पन्न माना है। ककुभ का वर्णन इस प्रकार है :—

मध्यमापंचमीधैवत्युद्भवः ककुभो भवेत् ।
धांशग्रहः पंचमान्तो धैवतादिकमूर्छनः ॥
प्रसन्नमध्यारोहिभ्यां करुणे यमदैवतः ।
गेयः शरदि तज्जाता × × × ॥

इसके बाद आगे, शार्ङ्गदेव ऐसा कहते हैं :—

विभाषा ककुभे भोगवर्धनी तारमंद्रगा ।
धैवतांशग्रहन्यासा गापन्यासा रिवर्जिता ॥
धनिभ्यां गमपैर्भूरिवैराग्ये विनियुज्यते ।
तज्जा वेलावली तारधा गमन्द्रा समस्वरा ॥
धाद्यन्तांशा कम्प्रषड्जा विप्रलंभे हरिप्रिया ।

'रत्नाकर' में वर्णित ग्राम, मूर्च्छना तथा जाति का विचार अभी तक हमने नहीं किया है।

'संगीतदर्पण' ग्रंथ में वेलावली की व्याख्या इस प्रकार की गई है :—

धैवतांशग्रहन्यासा पूर्णा वेलावली मता ।
पौरवी मूर्च्छना ज्ञेया रसे वीरे प्रयुज्यते ॥

यह रागिनी हिन्दोल की भार्या मानी गई है, और मूर्च्छना धैवत से शुरू होनेवाली बताई है । इन्हीं दामोदर पंडित ने आगे श्लोक ६१ में 'वेलावल्याः स्वराः प्रोक्ताः शंकराभरणे बुधैः' इस प्रकार भी कहा है ।

प्रश्न : बंगाली ग्रंथकारों ने प्राचीन ग्रंथों के ग्राम और मूर्च्छना आदि विषयों को किस प्रकार स्पष्ट किया है ?

उत्तर : वहाँ पर भी संतोषजनक स्पष्टता नहीं दिखाई पड़ती । उधर के दो मुख्य ग्रंथ 'संगीतसार' और 'गीतसूत्रसार' ही हैं । उनका अभिमत इस विषय में जो है, वह तुम्हें बताता हूँ । सर्वप्रथम श्री बनर्जी इस विषय में क्या कहते हैं, उनका सारांश सुना देता हूँ । इसका यह मतलब न समझना कि मैं उनके मत से संपूर्ण रूप से सहमत हूँ ।

'प्राचीन समय में भिन्न-भिन्न प्रकार के स्वर-ग्राम (मूल स्वरों का सप्तक) व्यवहृत होते थे । इन ग्रामों के स्वरों में भिन्न नियम बनाकर अन्तर कायम किए गए थे । प्राचीन ग्रंथकारों ने ग्रामों के सूक्ष्म-विभाग किए थे । किसी ने इन सूक्ष्म विभागों की संख्या २२ और किसी ने इससे अधिक संख्या मानी है । इन सूक्ष्म स्वरों को श्रुति कहते हैं । प्राचीन ग्रंथों में षड्ज-ग्राम, मध्यम-ग्राम और गांधार-ग्राम, इन तीनों ग्रामों का उल्लेख बार-बार हुआ है । इन तीनों ग्रामों में मूल सात स्वरों की रचना भिन्न-भिन्न प्रकार से हुई है । प्रत्येक ग्राम में सूक्ष्मांतरों (श्रुतियों) की संख्या २२ ही मानी गई है । इन श्रुतियों को पाँच जातियों में विभाजित किया गया है । इन जातियों के नाम १. दीप्ता २. आयता ३. करुणा ४. मृदु ५. मध्या कहे गए हैं । दीप्ता जाति की चार श्रुति, मृदु जाति की चार, आयता की पाँच श्रुति, करुणा की तीन और मध्या जाति की छह श्रुतियाँ मानी गई हैं । इन जातियों को किस उद्देश्य से बनाया गया है, यह वे ग्रंथकार ही जानें । हमें तो ये काल्पनिक प्रकार समझ में आते हैं । इनमें हमें कोई संगीत-सम्बन्धी रहस्य नहीं दिखाई देता । संस्कृत-ग्रथों में भिन्न ग्रामों में बताई हुई श्रुतियाँ (स्वरान्तर) आधुनिक स्वरान्तरों से बहुत ही भिन्न हैं । ग्रंथों में षड्ज-ग्राम के स्वरान्तर इस प्रकार कायम किए हैं : –

षड्जत्वेन गृहीतो यः षड्जग्रामे ध्वनिर्भवेत् ।
ततस्तूर्ध्वस्तृतीयः स्यादृषभो नात्र संशयः ॥
ततो द्वितीयो गांधारश्चतुर्थो मध्यमस्ततः ।
मध्यमात्पंचमस्तद्वत् तृतीयो धैवतस्ततः ॥
निषादोऽतो द्वितीयस्तु ततः षड्जश्चतुर्थकः ॥

मध्यम-ग्राम के स्वरान्तर अधिकांश रूप से षड्ज-ग्राम के अनुसार ही समझने चाहिए । केवल पंचम स्वर को एक श्रुति नीचे माना गया है । गांधार-ग्राम में

रे और ध स्वर, ऊपर बताए हुए दोनों ग्रामों के रे-ध स्वरों से एक-एक श्रुति नीचे माने गए हैं, और ग तथा नि स्वर एक-एक श्रुति ऊँचे माने गए हैं।

तीनों ग्रामों में षड्ज और मध्यम स्वर एक-से ही हैं। पंचम स्वर मध्यम-ग्राम और गांधार-ग्राम में एक-सा ही लिया गया है। ग्रामों के स्वरान्तरों के विषय में भी ग्रंथकारों में एक मत नहीं है, परंतु मैंने तुम्हें बहुमत के अनुसार ही ऊपर का विवरण बताया है। इस समय हमारे आधुनिक संगीत में इन ग्रामों में बताए हुए स्वरान्तर के प्रमाण से स्वर-रचना नहीं दिखाई देती। ग्रंथकारों ने कहा कि पृथ्वी पर केवल षड्ज और मध्यम-ग्राम ही हैं। गांधार-ग्राम का प्रयोग केवल देवलोक में होना कहा गया है। इसका अर्थ केवल इतना ही समझ सकते हैं कि इन ग्रंथकारों के समय गांधार-ग्राम उपलब्ध नहीं था। संगीत में समय-समय पर परिवर्तन हुआ है, इसका यह भी एक प्रमाण कहा जा सकता है। षड्ज व मध्यम-ग्राम के स्वरों को ध्यान-पूर्वक देखने से दिखाई देगा कि इन दोनों ग्रामों में ग, नि स्वर कोमल हैं और गांधार-ग्राम में 'रे ग, ध, नि स्वर कोमल हैं।

षड्ज-ग्राम के स्वरान्तरों की ओर ध्यान-पूर्वक देखने से एक आश्चर्यजनक बात दिखाई देगी। जहाँ सा स्वर है वहाँ रे, जहाँ रे है वहाँ ग, इस प्रकार से स्वर मान लेने पर हमारा आधुनिक शुद्ध ठाठ (बिलावल ठाठ) उत्पन्न हो जाएगा। इन बातों को देखते हुए कई बार हमें यह संदेह होने लगेगा कि श्रुतियों की संख्या के प्रमाण से मूल सात स्वरों को निश्चित करते हुए हमारे ग्रंथकार कहीं भूल तो नहीं कर गए हैं? हम जानते हैं कि भरत, हनुमान् इत्यादि शास्त्रकारों के ग्रंथ तो लुप्त हो चुके हैं। मध्यकाल के ग्रंथकारों की जानकारी परम्परा से चलती हुई सुनी जाती है।

ग्रामों में लगनेवाले सप्तस्वरों की श्रुति-संख्या के सम्बन्ध में :—

चतुश्चतुश्चतुश्चैव षड्जमध्यमपंचमाः।
द्वे द्वे निषादगांधारौ त्रिस्त्री ऋषभधैवतौ ॥

—यही सुना जाता है। इन ग्रंथकारों में से किसी एक ने अपनी स्वतः की कल्पना से यह ग्राम-रचना तैयार की है और आगेवाले ग्रंथकारों ने 'महाजनो येन गतः स पंथा' न्याय के अनुसार अपने-अपने ग्रंथों में भी उद्धृत कर ली है। इस प्रमाण से सबसे पहले ग्रंथकार की ही भूल दिखाई देती है। ऐसा न होने की दशा में प्रत्येक स्वर का अपनी अन्तिम श्रुति पर बोलना, यह विधान ही असंगत दिखाई देता है। ग्राम का प्रथम स्वर सा, पहली श्रुति पर मानना ही अधिक युक्तिसंगत दिखाई देगा।

यह सब देखने से यही निश्चित होता है कि उन प्राचीन शास्त्रकारों का रहस्य हमारे मध्ययुगीय ग्रंथकार नहीं समझ सके। यह मैं जानता हूँ कि प्राचीन ग्रथकारों पर भूल करने का दोषारोपण करना महापाप करना है। अतः हम इस

प्रकार न कहते हुए यह कहेंगे कि वह प्राचीन ग्राम-रचना प्राचीन संगीत में उत्तम रूप से प्रयुक्त थी, परंतु इस समय हमारे संगीत में वैसा नहीं है। बिना ऐसा कहे दूसरी गति नहीं है। ग्रंथकारों ने कहा है कि गांधार-ग्राम देवलोक को गया है। हम भी उनका अनुकरण करते हुए इस प्रकार कहेंगे कि जिस कारण से ग्रंथकारों द्वारा वर्णित षड्ज और मध्यम-ग्राम की स्वर-रचना प्रचार में नहीं है, उसी कारण इस समय गांधार-ग्राम भी परलोकवासी हो गया है।

विकृत स्वर—संस्कृत-ग्रंथकारों ने शुद्ध स्वर सात और विकृत स्वर बारह माने हैं। जिन स्वरों को हम इस समय विकृत कहते हैं, वे ही स्वर उनके थे, ऐसा नहीं समझ लेना चाहिए। षड्ज-ग्राम के मूल सात स्वर (जिन्हें वे शुद्ध स्वर कहते हैं) एक या दो श्रुति ऊँचे-नीचे होने पर विकृत संज्ञा प्राप्त करते हैं। यद्यपि प्राचीन ग्रंथकारों ने विकृत स्वर १२ माने हैं, परंतु वे समस्त एक ही ग्राम में प्रयुक्त नहीं होते। षड्ज-ग्राम में ३ स्वर स्वतन्त्र रूप से विकृत हैं। मध्यम-ग्राम में ५ स्वर स्वतन्त्र रूप से विकृत माने गए हैं। शेष ४ स्वर दोनों ग्रामों में साधारण माने गए हैं। प्राचीन मत से मुख्य सात स्वरों की नियत अवस्था में अन्तर होने पर उनकी विकृत अवस्था उत्पन्न होती है। सा, ग, म, नि, ये चार स्वर दो प्रकार से विकृत होते हैं। विकृति दो प्रकार से होती है—पहली विकृति नियत स्थान से स्वर के च्युत हो जाने पर और दूसरी विकृति निकट स्वर के विकृत हो जाने पर उत्पन्न होती है। षड्ज-ग्राम के तीन विकृत स्वर—कैशिक नि, च्युत सा, विकृत रे, मध्यम-ग्राम के ५ विकृत स्वर—साधारण ग, च्युत म, च्युत प, कैशिक प, विकृत ध; और दोनों ग्रामों के साधारण स्वर—अच्युत सा, अन्तर ग, अच्युत म और काकली नि माने गए हैं।

मेरी समझ से इन विकृत स्वरों के घोटाले में तुम्हें पड़ने की आवश्यकता नहीं है। बाद में ग्रंथकारों ने षड्ज और पंचम को अचल और शेष पाँच का ही विकृत होना स्वीकार किया है, यह मैं तुम्हें बता चुका हूँ। एक स्थान पर कहा गया है:—

षड्जोऽचलः पंचमश्च ऋषभश्चलति स्वरः।
गांधारो मध्यमश्चाथ निषादो धैवतश्चलः॥

—संगीतदामोदरे

आधुनिक संगीत में यही प्रकार ग्रहण किया गया है। जिन ग्रंथों को हम देखेंगे, उनके विकृत स्वरों के विषय में वहीं अवश्य ही विचार कर लेंगे। अब तुम्हें मूर्च्छना के विषय में श्री बनर्जी के विचार बताता हूँ।

'स्वर-ग्रामों में प्रत्येक स्वर से आरम्भ कर आठवें स्वर तक आरोह करना और पुनः उन्हीं स्वरों पर अवरोह करना, इस कृत्य को शास्त्रकारों ने मूर्च्छना कहा है; जैसे—'क्रमात्स्वराणां सप्तानामारोहश्चावरोहणम्' (रत्नाकरे); 'आरोहणावरोहेण क्रमेण स्वरसप्तकम्, मूर्च्छनाशब्दवाच्यं हि विज्ञेयं तद्विचक्षणैः ('मतंगः' । 'सा रे ग

म प ध नि' यह एक मूर्च्छना हुई, 'रे ग म प ध नि सां' यह दूसरी मूर्च्छना हुई। प्रत्येक ग्राम में ७ मूर्च्छनाएँ मानी गई हैं। इन प्रकारों को मूर्च्छना कहने का कारण ग्रंथकारों ने अच्छी तरह नहीं बताया है। ग्रंथकारों ने मूर्च्छना का सुन्दर नाम-मात्र दे दिया है। षड्ज-ग्राम की मूर्च्छना 'सा' स्वर से और मध्यम-ग्राम की मूर्च्छना 'म' स्वर से आरम्भ होती है। पं० शार्ङ्गदेव का कथन है कि कुछ पंडितों के मत से 'सा' स्वर के स्थान पर 'रे' स्वर की स्थापना कर मूल स्वरों का रे, ग, म, प, ध, नि, सां, इस प्रकार का आरोह करने पर 'अभिरुद्गता' नामक मूर्च्छना होती है।

'सा' के स्थान पर 'ग' स्वर को मानकर (अर्थात् 'सा' की जगह 'ग' उच्चारण करते हुए) आरोह करने से अश्वक्रांता नामक मूर्च्छना होती है। इस मूर्च्छना का अर्थ वास्तव में युक्तिसंगत है। मूर्च्छना से भिन्न-भिन्न राग उत्पन्न होते हैं, ऐसा ग्रंथकार मानते हैं। मूर्च्छना का इसी प्रकार का अर्थ ग्रहण करने से संतोषजनक स्पष्टता हो सकती है। सारांश यह है कि हमारे आधुनिक संगीत में जिन्हें ठाठ कहते हैं, उन्हें भी प्राचीन ग्रंथों में ठाठ कहा गया है। मूर्च्छना बता देने पर फिर स्वरों को ऊँचा-नीचा करने की उलझन नहीं रहती।

ग्रीस देश के प्राचीन संगीत में ऐसा ही प्रकार दिखाई पड़ता है, यह भी विचारणीय है :—

१. उत्तरमन्द्रा	(१ ली मूर्च्छना)	सा रे ग म प ध नि (Ionian)
२. अभिरुद्गता	(२ री ")	रे ग म प ध नि सां (Dorian)
३. अश्वक्रान्ता	(३ री ")	ग म प ध नि सां रें (Phrygian)
४. मत्सरीकृता	(४ थी ")	म प ध नि सां रें गं (Lydian)
५. शुद्धषड्जा	(५ वीं ")	प ध नि सां रें गं (Myxolydian)
६. उत्तरायता	(६ वीं ")	ध नि सां रें गं मं पं (Aeolian)

ग्रामों का मूल स्वरान्तर कायम कर लेने पर केवल मूर्च्छना बदलने से ठाठ अपने-आप ही बदल जाता है। हमारे संगीत में कुछ ठाठ ऐसे हैं, जो केवल शुद्ध मूर्च्छना के बदलने से प्राप्त नहीं होते। ऐसे स्थानों पर विकृत स्वरों से मूर्च्छना आरम्भ करनी पड़ेगी।

भाइयो ! हम इस विषय की बहुत गहराई में जा पहुँचे हैं। अब इसे छोड़ देना ही उत्तम होगा। 'मूर्च्छना के संयोग से प्राचीन समय में ठाठ बताए जाते थे—इस प्रकार का मत श्री बनर्जी का है। 'संगीतदर्पण' * का भाषान्तर हो चुका है; उसे भी इस विषय के सम्बन्ध में पढ़ लेना चाहिए।

प्रश्न : 'संगीतसार' में इस विषय में क्या कहा गया है ? यह आपने नहीं बताया है। यदि वह भी इसी प्रकार लम्बा और समझने में कठिन हो, तो रहने दीजिए !

* 'संगीतदर्पण' का हिन्दी-अनुवाद संगीत-कार्यालय, हाथरस से प्रकाशित हो चुका है।

उत्तर : नहीं-नहीं, उस ग्रंथकार ने दस-पाँच बातों में ही यह भाग पूर्ण कर-दिया है। वह इस प्रकार कहता है—"मूर्च्छना और तान का आश्रय-रूप स्वर-समुदाय शास्त्रों में ग्राम कहा गया है। ग्राम तीन माने गए हैं—१. षड्ज-ग्राम, २. मध्यम-ग्राम, ३. गांधार-ग्राम। शास्त्रकार लिखते हैं कि पंचम स्वर अपनी नियत चौथी श्रुति पर स्थिति होने पर और धैवत स्वर की तीन श्रुति हो जाने से षड्ज-ग्राम हो जाता है। पंचम स्वर अपनी उपान्त्या (तीसरी) श्रुति पर होने पर और धैवत चतुःश्रुतिक होने पर वह मध्यम-ग्राम हो जाता है। द्विश्रुतिक गांधार को ऋषभ और मध्यम की एक-एक श्रुति देने पर गांधार-ग्राम हो जाता है। इन तीन ग्रामों में से षड्ज और मध्यम-ग्राम इस लोक में प्रचलित हैं। गांधार-ग्राम देवलोक में व्यवहृत होता है। यदि कोई यह प्रश्न करे कि सा, म, ग, इन तीन स्वरों के सिवाय अन्य स्वरों के ग्राम क्यों नहीं माने गए ? इसका उत्तर यह है कि षड्ज स्वर आदि-स्वर है और 'म' तथा 'प' स्वर उसके संवादी हैं, अर्थात् ये भी ग्रामत्व के योग्य हैं। औडव, षाडव मूर्च्छना (शुद्ध तान) बताते हुए कहीं भी मध्यम का लोप किसी ग्रंथ में नहीं बताया गया है, अर्थात् मध्यम का ग्रामत्व योग्य हो जाता है। षड्ज व मध्यम दो स्वर देवकुल के हैं, वैसा ही गांधार भी है, इस कारण गांधार को भी ग्राम बनाया गया है। कोई-कोई षड्ज-ग्राम को प्रधान और मध्यम को गौण मानते हैं। मेरी समझ से यह मान्यता ठीक ही है, क्योंकि षड्ज स्वर अन्य स्वरों का जनक (उत्पादक) कहा गया है। षड्ज स्वर की दृष्टि से ही अन्य स्वरों का नाम प्रचार में देते हैं। यदि षड्ज ही नहीं, तो फिर ऋषभ-गांधार कैसे हो सकते हैं ? इन बातों को सोचते हुए षड्ज की प्रधानता ही ठीक प्रतीत होती है। मध्यम स्वर को षड्ज बना देने से केवल एक ही स्वर विकृत हो सकता है (तीव्र म), अतः मध्यम का गौण ग्राम माना गया है।"

इस ग्रंथकार के विचार प्राचीन शास्त्रों के विवेचन की दृष्टि से अधिक उच्च प्रतीत नहीं होते। मूर्च्छना के विषय में इनका कथन है—"प्राचीन पण्डितों के मत से शास्त्रोक्त सप्तस्वरों का आरोह-अवरोह करने से मूर्च्छना हो जाती है, परन्तु आधुनिक पंडित इस मत को नहीं मानते। एक स्वर पर घर्षण करने से दूसरा स्वर जिस क्रिया से दिखाया जाता है, उसे मूर्च्छना कहते हैं। हमने आधुनिक मत का अनुसरण करते हुए यही स्वीकार किया है।" अस्तु—

'वेलावली' राग के विषय में, मैं तुम्हें संगीतदर्पणकार का मत बता चुका हूँ। संगीतदर्पणकार के विषय में आगे प्रसंग आने पर और भी कुछ बताऊँगा। 'रागविबोध' में 'बिलावली' शुद्ध स्वरों के ठाठ में कही गई है, यह बात भी महत्त्वपूर्ण है। राग की प्रत्यक्ष व्याख्या सोमनाथ ने इस प्रकार की है:—

धांशांतादिः पूर्णाऽरिपापि वेलावली व्युष्टे

यहाँ वेलावली के दो प्रकार बताए हैं—१. सम्पूर्ण वेलावली और २. औडव वेलावली। वेलावली प्रातर्गेय और वादी स्वर धैवत स्वीकार किया है, यह ठीक है। औडव प्रकार में ऋषभ और पंचम वर्ज्य किए गए हैं। इस प्रकार का उदाहरण मैं तुम्हें आरम्भ में ही गाकर दिखा चुका हूँ। 'रागविबोध' ग्रंथ की बिलावली का

लक्षण प्रचलित बिलावल का बहुत-कुछ रूप से समर्थक है। 'चतुर्दण्डिप्रकाशिका' ग्रंथ में पं० वेंकटमखी कहते हैं:—

सम्पूर्णस्वरसंयुक्ता सर्वकालेषु गीयते।
वेलावली तु भाषांगं जाता श्रीरागमेलके॥

श्रीराग मेल, अर्थात् प्रचलित काफी ठाठ है। यह लक्षण बिलावल का समर्थक नहीं है। कोई-कोई बिलावल और वेलावली को भिन्न-भिन्न राग मानते हैं, परन्तु ऐसा नहीं हो सकता। 'रागविबोध' और 'दर्पण' में स्पष्ट रूप से वेलावली का ठाठ शंकराभरण बताया है।

शुद्धाः स्युः समपाः पंचश्रुती ऋषभधैवतौ।
साधारणाख्यगांधारः काकल्याख्यनिषादकः॥
एतैः सप्तस्वरैर्युक्तो वेलावल्याश्च मेलकः।
वेलावली तु भाषांगं पूर्णेयं हि स्वमेलजा॥
धन्यासांशग्रहा प्रातर्गेया संगीतकोविदैः॥

—सारामृते

इस वर्णन में गांधार कोमल है। यह प्रकार भी हमारा प्रचलित प्रकार नहीं है।

पूर्णो वेलावलीरागो धन्यासस्तु च धग्रहः।
क्वचिद्रिपाभ्यां न्यूनः स्यादवरोहे प्रभातजः॥

—स्वरमेलकलानिधौ

इस ग्रंथकार ने भी वेलावली को काफी ठाठ में रखा है।

वेलावल्यां गनी तीव्रौ मूर्च्छना चाभिरुद्गता।
आरोहे मनिहीनायामंशः षड्जो बुधैः स्मृतः।
अवरोहे गवर्जायां क्वचिद्गांधारमूर्च्छना॥

—संगीतपारिजाते

अहोबल पण्डित का उपर्युक्त वर्णन उत्तम है। पण्डित अहोबल प्राचीन ग्रंथों की मूर्च्छना सम्पूर्णतया समझते थे या नहीं, यह अलग प्रश्न है। 'पारिजात' के स्वराध्याय में:—

आरोहश्चावरोहश्च स्वराणां जायते यदा।
तां मूर्च्छनां तदा लोके आहुर्ग्रामाश्रयं बुधाः॥

यह मूर्च्छना की व्याख्या दी गई है। अहोबल ने मूर्च्छना के सम्पूर्ण नाम 'रत्नाकर' के ही स्वीकार किए हैं। 'रागवर्णन' में उन्हें इस प्रकार बीच-बीच में ठूँस रखा है कि पाठकों को इस प्रकार समझ पड़ता है कि ग्रंथकार ने उनका वास्तविक रहस्य नहीं समझा है। हमारे यहाँ प्राचीन ग्रंथ-वाक्यों को कहीं भी और कैसे भी रख देने के उदाहरण बहुत-से प्राप्त होंगे। वस्तुतः उक्त वाक्यों की कोई

आवश्यकता ही नहीं रहती। अहोबल जानते थे कि ऋषभ की मूर्च्छना अभिरुद्गता होती है :—

ऋषभादिस्वरोद्भूता सप्तम्याख्याभिरुद्गता

यह इसी की व्याख्या है। अब 'अहोबल' इस विषय में कुछ नहीं कहते कि ऊपर के राग में (बिलावल) यह व्याख्या कैसे लगाई जाएगी। वे कहते हैं कि मेरे राग हनुमन्मत के प्रमाण से हैं :—

लक्षणानि ब्रुवे तेषां संमत्याच हनूमतः (श्लोक ३३३)

'दर्पण' के राग भी हनुमन्मत के ही हैं। इन दोनों ग्रंथों के वर्णन तुम खुद अवकाश के समय में मिलाकर देखना।

रागचन्द्रोदयकार ने वेलावली, केदार मेल में बताई है :—

लघ्वादिको षड्जकमध्यमौ च। शुद्धौ समौ पंचमको विशुद्धः ॥
निगौ विशुद्धौ च यदा भवन्ति। तदा तु केदारकमेल उक्तः ॥
केदारनारायणगौडकाख्यौ। वेलावली शंकरभूषणाख्यः॥ इ० ॥
धांशग्रहांता रिपवर्जिता वा। वेलावली प्रातरसावभीष्टा ॥

यह मत 'रागविबोध' से मिलता है। यह हमारे लिए उपयोगी भी है। 'संगीतअनूपांकुश' ग्रंथ में भावभट्ट ने वेलावली का वर्णन 'अहोबल' के शब्दों में ही किया है, अतः उसे देने की कोई आवश्यकता नहीं। इन भावभट्ट की कुशलता का कहीं-कहीं विलक्षण उदाहरण मिलता है। इनके लिखे हुए ग्रंथ 'अनूपसंगीतरत्नाकर' में शार्ङ्गदेव के सैकड़ों श्लोक शब्दशः अंकित पाए जाते हैं। केवल जहाँ शार्ङ्गदेव का नाम आया है, वहाँ उन्हें हटाकर अपने नाम रख दिए हैं।

परमर्दी च सोमेशो जगदेकमहीपतिः।
व्याख्यातारो भारतीये लोल्लटोद्भटशंकुकाः ॥
भद्राभिनवगुप्तश्च श्रीमत्कीर्तिधरः परः।
अन्येच बहवः पूर्वे ये संगीतविशारदाः ॥
अगाधबोधमंथेन तेषां मतपयोनिधिम्।
निर्मथ्यानूपसिंहोऽयं सारोद्धारममुं व्यधात् ॥

'संगीतरत्नाकर' के इस समय प्रकाशित हो जाने से यह कार्य ठीक नहीं दिखाई देगा। परन्तु उसने यह नहीं समझा था कि यह आगे चलकर प्रकाशित हो जाएगा। उसने अपने ग्रंथ में बहुत-से ग्रंथों से यथावत् उद्धरण लेकर ग्रंथ में मिला दिए हैं, वह ठीक ही हुआ है।

'अनूपसंगीतविलास' ग्रंथ में 'रागमंजरी' का ही मत बताया है। वह इस प्रकार कहा है :—

धत्रिका रिपहीनावा प्रातर्वेलावलीष्टदा ।

यहाँ भी ठाठ केदार है, अतः वह ठीक ही है ।

'नृत्यनिर्णय' ग्रंथ में इस प्रकार का कथन है :—

धाद्यंतांशाऽरिपावा सरपरदसुना सत्कुडाईसहाया ।

मैंने तुम्हें अल्हैयाबिलावल के विषय में कुछ कहा है । यह नाम संस्कृत-ग्रंथों में नहीं होगा, ऐसा सहज ही सन्देह हो जाता है; परन्तु 'संगीतरागतरंगिणी' नामक ग्रंथ में इसे स्पष्ट रूप से बिलावल से अलग बताया है :—

मेघरागस्य संस्थाने मेघोमल्लार एव च ।
गौडसारंगनाटी च रागो वेलावली तथा ॥
अलहीया तथा ज्ञेया शुद्धसुहुस्तथैव च ।

मेघसंस्थान अर्थात् हमारा प्रचलित शुद्ध ठाठ ही है । मेरे खयाल से अब अधिक ग्रंथों के मतों की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि उनका प्रत्यक्ष उपयोग नहीं होगा ।

प्रश्न : हमें बिलावल का स्वरूप सुनाइए ?

उत्तर : ठीक है, सुनो :—

सा, रे सा, ग म रे सा, नि़ ध़ नि़ ध़ प़, प़ ध़, सा, सा रे ग म, ग, म रे सा, ध ध प, ध म ग, म रे, सा ।

ग म रे, ग प, ध ध ग म, रे सा, ध प म ग, म रे, ग म प, ग म, रे सा ।

सा रे ग म, रे ग म, प म ग म रे, ध ध प, नि ध प, ध म ग, रे ग म प, म ग, म रे, सा ।

नि नि ध ध प, ध प, नि ध प, ध म, ग प, ध नि॒ ध प, ध म, ग, म रे, ग प, म ग, म रे सा ।

सा सा ग म, रे ग प ध, म प, नि ध, ध प, ग म प, म ग म रे, ग म प, ग म, रे रे, सा ।

सा, ग म, रे ग म, प, ध ध, नि ध, सां, नि ध, नि ध प, ध ध, म ग, म रे, ग प, ध नि॒ ध' प, ध म ग, म रे, ग प, ग म रे रे सा ।

सा रे ग म, रे रे सा, सा रे सा, ग म रे रे सा, ध नि॒ ध प, प ध, नि सां सां, ध ध प ध म प, नि ध सां, सां, नि ध प, प ध नि॒ ध प म ग, ग म रे, ग म प, ग म रे, सा रे, सा ।

प प ध नि ध, नि सां, ध नि सां, सां, सां रें गं मं, रें रें सां, सां रें सां, ध ध, ध नि॒ ध प, ध म प, रें सां, ध नि॒ ध प, म ग म रे, रे ग म प, ग म ग, म रे, रे सा ।

सां नि ध प, म ग रे, ग प, ध नि॒ ध प, ध ध प, ध म प, ध नि ध सां, रें गं मं रें सां, सां रें सां, नि ध प, म ग म रे, प म ग ग, म रे, सा ।

प्रश्न : हम इस राग को ठीक-ठीक समझ गए, अब दूसरा बताइए ?

उत्तर : मेरे खयाल से अब हमें देवगिरी राग पर विचार करना चाहिए। देवगिरी नाम दौलताबाद का प्राचीन नाम है। देवगिरी प्रचार में बिलावल राग का एक प्रकार माना जाता है। ग्रंथों में देवगिरीबिलावल, इस प्रकार संयुक्त नाम प्राप्त नहीं होता, वरन् देवगिरी-मात्र ही प्राप्त होता है। यह अलग से बताने की आवश्यकता नहीं है कि देवगिरी में सभी स्वर शुद्ध ही लगते हैं। किसी-किसी ग्रंथ में देवगिरी को कल्याण ठाठ में माना है, अर्थात् उसमें तीव्र मध्यम ग्रहण किया जाता है। इस प्रकार के गीत गानेवाले गायक भी देखे गए हैं। यह मत 'संगीत-पारिजात' का है, परन्तु यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि प्रचार में शंकराभरण ठाठ में ही देवगिरी का गायन अधिकतर सुनाई देता है। मेरे विचार से तुम्हें दोनों प्रकार समझ लेने चाहिए। तीव्र मध्यम का प्रकार भी बुरा नहीं दिखाई देता। कल्याण ठाठ में 'देवगिरी' को यमन से अलग करना सरल है, क्योंकि देवगिरी के अवरोह में ध, ग स्वर वर्ज्य करने का नियम है। तुम्हें कल्याण ठाठ में इस प्रकार का राग नहीं दिखाई दिया होगा ? मालश्री में रे, ध, हिन्दोल में रे, प, भूपाली में म, नि वर्जित होते हैं, परन्तु अवरोह में ध, ग वर्जित होनेवाला राग एक भी नहीं आया है। इस प्रकार देवगिरी का वादी स्वर षड्ज होता है। प्रचलित देवगिरी का स्वरूप कल्याण के स्वरों से इतना अधिक मिलता है कि दोनों रागों के स्थायी भागों को अलग-अलग करना कभी-कभी कठिन हो जाता है। 'सा, नि़ ध़, नि़ ध़, सा, रे ग, ग रे ग, रे सा'—इन स्वरों को विलम्बित रूप से गाने पर बहुत सुन्दर दिखाई पड़ता है, परन्तु इनसे कल्याण का बहुत-कुछ आभास उत्पन्न हो जाता है। इसके लिए गायक आगे स्पष्ट रूप से शुद्ध मध्यम लेकर दिखा देते हैं; जैसे 'ग, म ग, रे, सा'। यह कुशलता तुम्हें ध्यान में रखनी चाहिए। ऐसा बहुमत है कि बिलावल के सम्पूर्ण प्रकार कल्याण के बहुत निकटवाले राग होते हैं। कल्याण का तीव्र मध्यम न लेने पर बहुत-से स्वरूप कल्याण-जैसे दिखाई देने लगते हैं, अर्थात् देवगिरी भी ऐसा ही राग है। आरोह में मध्यम का प्रयोग बहुत थोड़ा दिखाई पड़ता है। मध्यम लेने पर 'बिहाग' में चले जाने का भय रहता है। बिहाग के आरोह में ऋषभ नहीं लेने से वह राग अलग ही हो जाता है। इसे मैं तुम्हें आगे बतानेवाला हूँ। बिलावल का आरोह करते हुए मध्यम इस प्रकार टाल दिया जाता है —'सा, नि़ ध़, सा, रे ग, ग, म ग, प, ध प, म ग, म रे, सा, सा रे ग, म ग, रे सा, ग प ध ध प, ग म ग, रे सा'। 'ग प ध नि, ध, सां'। इस भाग के प्रयुक्त होते ही बिलावल स्पष्ट हो जाता है। पहले बताया जा चुका है कि पं० अहोबल ने अवरोह में ध, ग वर्ज्य करने को कहा है। कोई-कोई गायक उस नियम का प्रयोग शंकराभरण ठाठ के अपने देवगिरी राग में भी करते हैं; जैसे 'प प ध नि, प, ग, म रे, सा, नि़ ध़, सा, रे ग म रे, सा'। देवगिरी प्रभात के प्रहर का राग माना गया है। यह उत्तरांगवादी है। इसका सौंदर्य अवरोह में विशेष दिखाई पड़ेगा। यह अपने नियम से ही है, अतः कोई नई बात नहीं है। लक्ष्यसंगीतकार ने इस राग का वर्णन करते हुए ठीक ही लिखा है :—

आरोहणे रात्रिगेया यथा रागा परिस्फुटाः ।
तथैवावरोहणे ते दिनगेयाः प्रकीर्तिताः ।।

मैंने तुमसे यह कहा ही है कि बिलावल के बहुत-से प्रकारों में अवरोह में धैवत की संगति में कोमल निषाद का कण जोड़ना सुन्दर लगता है । इस कण को इस राग में भी गायक लोग बीच-बीच में जोड़ते जाते हैं । राग की पहचान के जो-जो मुख्य-मुख्य स्थल मैंने तुम्हें बताए हैं; उन्हें प्रयत्नपूर्वक याद रखना आवश्यक है, क्योंकि उन्हीं की मदद से तुम्हें राग निश्चित करना आ सकेगा। तुम्हें इस राग के विषय में उलझन न हो, इसलिए मैं पुनः संक्षेप में इसकी सभी मुख्य-मुख्य बातें बता देता हूँ ।

'देवगिरी' दो प्रकार से गाया जाता है । कोई तीव्र म लेकर और कोई शुद्ध म लेकर गाते हैं । दूसरा प्रकार अधिक दिखाई पड़ता है, परन्तु कोमल मध्यम होने के कारण उससे भिन्न हो जाता है । इसका वादी स्वर षड्ज है । यह प्रभात का राग है । इसके आरोह में मध्यम स्वर दुर्बल और अवरोह में ध, ग स्वर दुर्बल माने गए हैं । इसका अन्तरा बिलकुल बिलावल का ही गायक लोग लेते हैं, जिससे कि श्रोताओं को भ्रान्ति न रहे । प्रायः गायक इसके पूर्वांग में कल्याण और उत्तरांग में अल्हैया के स्वर लेकर इसे गाते हैं ! तुम्हें प्रचार में अल्हैया के बहुत-से गीत उत्तरांग से आरम्भ होनेवाले प्राप्त होंगे । इस राग का स्वरूप मैं तुम्हें स्वरों में बताए देता हूँ :—

सा, नि़ ध़, सा, रे ग, ग, म रे, सा, रे सा, नि़ ध़ नि़ ध़ प़, सा रे ग, म रे सा ।

सा रे ग, रे ग, प म ग, म रे ग, सा रे ग म, रे सा, रे सा, नि़ ध़ प़, प़ ध़ नि़ प़, ग म रे सा, सा ध़, सा रे ग ।

ग म रे ग, ग प ध नि ध, सां, नि ध-नि प, ग म ग, प ग, म रे सा ।

सा रे सा, सा रे ग म, रे रे सा, रे सा, ध नि॒ प ग म रे, सा, नि़ ध़, सा रे ग ।

प़ प़ सा, नि़ ध़ सा, सा रे सा, ग म रे, सा, प ग म रे, सा, ग प ध नि॒ प, सां रें सां नि ध ध, नि प, प ग म रे, सा रे सा, नि़ ध़, सा रे ग ।

सा ध़, सा रे ग, ग, म रे ग, प, ध नि॒ प, म ग, म रे, ग प, ध नि॒ प, ग ग म रे, ग प, म ग, म रे सा, सा रे ग ।

सा रे ग, रे रे सा, ध, म रे रे सा, प प ग ग म रे, सा रे ग, रे सा, रे सा, नि़ ध़ नि़ प़, ध़ सा, सा रे ग म प, ग म रे सा ।

सा ध़, सा रे ग, रे ग, रे रे सा, ग, म ग, म रे सा, सा, नि़, ध़, प़, प़ ग, ग, म ग, रे ग, ग प, म ग म रे, सा ।

प प, सां ध, नि सां, सां, रें सां नि ध नि ध प, ग म ध ध, ध नि॒ ध प, प ध सां, नि ध प, प ध प म ग, म रे सा ।

प ध नि ध, सां, सां रें सां, सां नि ध, नि सां नि ध त्रि प, ग ग म रे, ग प, प प ध नि, प, प ग, म रे, ग म रे, सा रे सा, सा ध़, सा रे ग ।

उपर्युक्त स्वर-विस्तार में कहीं-कहीं जान-बूझकर ग, नि स्वरों की ओर दुर्लक्ष्य किया है। इस रीति से इस राग को कल्याण के निकट लाने का प्रयत्न किया है। प्रचार में तुम्हें अनेक समय ऐसे प्रयोग दिखाई देंगे। कोई-कोई गायक अल्हैया और यमनी का मिश्रण कर देवगिरी राग गाते हैं; परंतु तीव्र मध्यम छोड़ देते हैं, क्योंकि ऐसा न करने पर यमनीबिलावल गाना कठिन हो जाता है। कोई-कोई देवगिरी में 'म' और 'नि' स्वरों को बिलकुल अल्प रूप में लेकर देशकार की छाया उत्पन्न करते हैं। कोई कहते हैं कि अल्हैया में बिहाग का मिश्रण करने से देवगिरी उत्पन्न होता है। प्रचार में अधिकतर कल्याण, भूप, जयजयवन्ती, बिहाग, नट, गौड़, झिंझोटी—इन रागों का बिलावल से मिश्रण कर बिलावल के अनेक प्रकार बनाए गए हैं। इन प्रकारों के नाम निश्चित करने में कठिनाई उत्पन्न हो जाती है और इसके मतभेद भी दिखाई पड़ते हैं। देवगिरी, लच्छासाख, सर्पर्दा आदि राग निश्चित करने में बड़ी उलझन उत्पन्न होती है, क्योंकि गायकों में मतैक्य नहीं है। 'लक्ष्यसंगीतकार' का कथन है :—

नूनं बिलावलस्यैते प्रकारा वादमूलकाः ।
केवलं लक्ष्यमाश्रित्य बुधाः कुर्वंति निर्णयम् ॥

मेरे खयाल से उपर्युक्त कथन बहुत अंशों में तथ्यपूर्ण है। हमें तो बहुमत के अनुसार ही चलना है। बहुमत इस प्रकार है :—

शुद्धस्वरसमायोगाज्जातो देवगिरिस्तथा ।
बिलावलप्रभेदोऽयं कल्याणांगेनमंडितः ॥
षड्जस्तत्रभवेद्वादी विलोमे दुर्बलौ धगौ ।
नातिदीर्घस्तीव्रमोऽपि क्वचिल्लक्ष्ये प्रदृश्यते ॥
अवरोहे धैवतेनसह कोमलनेर्लवः ।
वेलावलस्वरूपंतत्प्रदर्शयेदसंशयम् ॥

—लक्ष्यसंगीतम्

कोई-कोई ग्रंथकार बिलावल में पंचम वर्ज्य करते हुए, देवगिरी का स्वरूप उत्पन्न करने का उल्लेख करते हैं; परंतु यह मत भी प्रचार में नहीं है। बिलावल के किसी भी प्रकार में पंचम वर्ज्य करने का प्रचार नहीं है। पंचम वर्ज्य करने पर एक नवीन ही प्रकार उत्पन्न हो जाता है।

अब हम देवगिरी के विषय में ग्रंथकारों के कथनों पर विचार करेंगे। ग्रंथोक्तियाँ उपयोगी होंगी या नहीं, इस बात पर तुम ध्यान देते रहना। हमारे यहाँ ग्रंथों (शास्त्रों) का स्वाभिमान बहुत पाया जाता है।

काबोदिमेले तीव्रतररिंतरक्तीव्रतर धी च ।
काकलिका शुचिसमपा अतश्च कांबोद्देवक्री ॥
अपराह्णे देवक्र्याः सांशन्यासग्रहाऽपात्रा ।

—रागविबोधे

अन्तर और काकली स्वर अपने तीव्र 'ग' और 'नि' स्वरों के स्थान पर समझ लेने चाहिए। ये नाम दक्षिण की ओर सैकड़ों वर्षों से अभी तक चल रहे हैं। अपने यहाँ एक-दो पंडित मुझे ऐसे भी मिले थे, जिन्होंने यह कहा कि ग्रंथों में बताए हुए सभी स्वर (सा म प छोड़कर) अपने प्रचलित स्वरों से भिन्न हैं। प्राचीन स्वर इस समय बिलकुल प्रयोग में नहीं आते, यह सुनकर मैंने उनसे पूछा—'फिर क्या हमारा प्राचीन संगीत-ग्रंथों पर अभिमान करना उचित है ? जब प्राचीन स्वर नहीं हैं, तब उन स्वरों पर अवलंबित राग भी नहीं हैं और इनके न होने पर हमारी संगीत-शास्त्र-निपुणता को क्या समझना चाहिए ? हम कभी-कभी मुसलमान गायकों को उनकी विद्या-हीनता और शास्त्र-अज्ञानता के कारण तुच्छ समझते हैं। यदि हम यह भी मान लें कि हमारे प्राचीन संगीत का इस समय कोई उपयोग नहीं है, तो फिर हमारा महत्त्व बढ़ा हुआ कैसे कहा जा सकता है ?' मेरे इस प्रश्न का उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया। मेरे मत से जबकि इस समय उपलब्ध होनेवाले बहुत-से ग्रथ दक्षिण-संगीत से मिलते हुए पाए जाते हैं, तब दक्षिण-पद्धति के प्रचलित १२ स्वरों को उन ग्रंथों में मान लेना ही युक्ति-संगत है। इतना ही नहीं, इस प्रकार मानने से ही उन ग्रंथों को समझ सकने-योग्य स्पष्टता हो सकती है।

अब देवगिरि की ओर ध्यान दें। अपने यहाँ देवगिरी में पंचम स्वर वर्जित नहीं किया जाता। यह एक नवीन प्रकार उत्पन्न होता है और आगे हमारे लिए उपयोगी भी सिद्ध हो जाएगा।

देवक्रिया क्रियांगं स्यात् कांभोजीमेलसंभवा ।
गनिलोपादौडुवाऽसौ सग्रहांशा मता सदा ॥

—सारामृते

इस ग्रंथ का काम्भोजी मेल अपना खमाज ठाठ है। प्रचार में ग, नि स्वरों को वर्ज्य मानकर 'देवगिरी' नहीं गाया जाता। इन मतभेदों को देखकर किसी ने यह सोचा है कि देवगिरी, देवक्रिया, देवकी, देवकृति आदि राग भिन्न-भिन्न मानने चाहिए। वास्तव में युक्ति उत्तम है, परंतु ग्रंथकार भी ऐसा मानते थे या नहीं, यह आगे के मतों को देखकर तुम्हीं बता सकोगे।

'चत्वारिंशच्छतरागनिरूपणम्' ग्रंथ में देवकी को नटनारायण की भार्या माना है। इस ग्रंथ में स्वरों का कोई खुलासा नहीं है, केवल मूर्ति (ध्यान) मात्र दी गई है।

बंगाली शुद्धमालंका कांभोजी मधुमाधवी ।
देवक्रीति च पंचैता नटनारायणांगनाः ॥
देवक्रीमृदुधिपाशिपाद्युगला ग्रैवेयभूषोज्वला ।
स्तब्धोरोजसरोजकामचपला सास्त्री परासुन्दरी ॥
कौसुंभाबरधारिणी विधुमुखी श्रीखंडचर्चेस्तनी ।
काश्मीरारुणविग्रहा सुनयना बिंबोष्ठिका राजते ॥

यद्यपि यह चित्र अच्छा है, परन्तु प्रत्यक्ष राग गाने के लिए इस चित्र की सहायता बहुत थोड़ी हो सकेगी। ऐसे अनेक ग्रंथकार प्राप्त होंगे। राजा साहब टैगोर का ग्रंथ 'संगीतसारसंग्रह' और रागमाला, चूड़ामणि आदि ग्रंथों में इस प्रकार के रूप बहुत प्राप्त होंगे। मैं पुनः उसी बात पर जोर देता हूँ कि जिन ग्रंथकारों के ग्रंथों में अपनी पद्धति की स्पष्टता, स्वर, ठाठ, राग आदि उत्तम रूप से समझाए हुए प्राप्त होते हों, उनके ही ग्रंथ हमारे लिए मूल्यवान् हैं। ये चित्र बताते हैं कि कौन-से ग्रन्थ हमारे लिए उपयोगी हो सकते हैं।

उपर के श्लोक में केवल यही बताया है कि 'देवक्री' नटनारायण की भार्या है। इसी राग की एक भार्या कांभोजी भी बताई गई है। सारामृतकार ने 'देवक्री' कांभोजी ठाठ में बताई है। नटनारायण का ठाठ सारामृत के प्रमाण से कांभोजी का ही है।

'चतुर्दण्डिप्रकाशिका' और 'रागतरंगिणी' ग्रंथों में इस राग का वर्णन नहीं है। 'स्वरमेलकलानिधि' ग्रंथ में देवक्रिया को कन्नड़गौड़ ठाठ में बताया है। इस ठाठ में दोनों गांधारों और दोनों निषादों का प्रयोग कहा गया है। 'रागलक्षण' ग्रंथ में इस प्रकार इस राग का वर्णन मिलता है :—

नटभैरविरागाख्यमेलाज्जातः सुनामकः ।
देवक्रियेतिरागश्च सन्यासं सांशकं ध्रुवम् ॥
आरोहेऽप्यवरोहेच पवर्जंतच्च षाडवम् ।

नटभैरवी ठाठ अपने आसावरी ठाठ का ही नाम है। इस मत की देवक्रिया कहीं सुनाई नहीं देती, तो भी आसावरी ठाठ में 'पंचम' वर्ज्य किया जानेवाला यह नवीन प्रकार प्राप्त होता है। रागचन्द्रोदयकार ने देवगिरी (देवक्रिया) का वर्णन इस प्रकार किया है :—

शुद्धौसमौ शुद्धपनी तथैव लध्वादिकौ षड्जकपंचमौ च ।
पंचश्रुतिर्मश्च यदाभवेत्तु देवक्रियायाः कथितः समेलः ॥
मेलादमुष्मात्कतिचित्तु रागा देवक्रियाद्याः प्रकटीभवंति ।
षड्जग्रहः सांतयुतश्च सांशः समुज्झितः पंचमकेनवास्यात् ॥
तृतीययामेदिवसस्य शुद्धवसंतको देवकृतिः सदैव ॥

इस ग्रंथ के स्वरों के बारे में मैं पहले ही बता चुका हूँ। 'संगीतसारसंग्रह' में इस राग का वर्णन इस प्रकार किया है:—

षड्जन्यासग्रहांशेयं वीरेदेवकृतिर्मता।
असावृतुषु सर्वेषु गातव्या समयेषु च ॥
इयमेव शुद्ध वसंतजातिरिति देवदत्तः ॥

इस ग्रंथ में इस राग के स्वरों का वर्णन नहीं किया गया है। 'संगीतसम्प्रदाय-प्रदर्शिनी' नामक ग्रंथ में देवक्रिया को केदारगौड़ ठाठ अर्थात् प्रचलित खमाज ठाठ में बताया है। उसमें लिखा है—'देवक्रिया चौडवी स्याद्गनिवर्जा च सग्रहा'। यह स्वरूप प्रचलित दुर्गा राग से कुछ-कुछ मिलता है।

रागमाला :—

भूपाली च देवगिरी वसंती सिंदुरी तथा।
आहीरी पंचमी प्रोक्ता हिंदोलस्यैव वल्लभाः ॥

इस ग्रंथ में भी स्वरों का स्पष्टीकरण प्राप्त नहीं होता।

'अनूपसंगीतरत्नाकर' में 'पारिजात' का ही उद्धरण इस प्रकार दिया गया है:—

अवरोहे धगौ नस्तो मस्तु तीव्रतरो भवेत्।
देवगिरी गनी तीव्रौ यत्रस्यात् षड्जमूर्च्छना ॥

'पारिजात' का मत प्रचलित स्वरूप से बहुत-कुछ मिलता है। मेरे खयाल से अधिक ग्रंथों का मत देने की और आवश्यकता नहीं है। 'देवगिरी' राग को जिस प्रकार गाया जाता है, वे सब बातें तुम्हें पहले ही बता चुका हूँ। जहाँ तीव्र मध्यम का प्रयोग किया जाए, वहाँ वह प्रयोग मर्यादित ही रहना चाहिए। यदि उसे ऐसे स्थानों पर नहीं लिया जाए, तो भी राग नहीं बिगड़ेगा। प्रभात के राग में तो इसकी आवश्यकता ही नहीं रहती। इस राग को गाते समय जहाँ-जहाँ पर कल्याण का भाग अधिक हो जाए, वहाँ शुद्ध मध्यम का कुशलतापूर्ण उपयोग किया जाकर कल्याण का प्रभाव दूर किया जा सकता है।

प्रश्न : यह सब हम पूर्ण रूप से समझ गए। अब 'यमनी' राग का वर्णन सुनाइए ?

उत्तर : सुनो ! 'यमनी' बिलावल का एक प्रकार है। 'यमनीबिलावल' का संयुक्त नाम सुनते ही समझ में आजाता है कि यह राग यमन और बिलावल' का मिश्रण है। वास्तव में इस राग में यमन और बिलावल का मिश्रण कुशलतापूर्वक किया जाता है। यमन के ठाठ में तीव्र म और बिलावल के ठाठ में शुद्ध म लेना प्रसिद्ध ही है। 'यमनी' में दोनों मध्यमों का प्रयोग होता है। 'यमनी' प्रभातकालीन

राग है, अतः इसमें तीव्र मध्यम की अपेक्षा शुद्ध मध्यम को अधिक प्रधानता दी गई है। तीव्र म का उपयोग केवल यमन का भाग दिखाने-मात्र के लिए किया जाता है। यमनी में 'प मं ग, ग म ग, रे, सा' इस प्रकार गायक स्पष्ट प्रयोग करते हैं। इस राग को गाते हुए गायक, यमन का एक तीव्र म लगने वाला टुकड़ा बिलावल के बीच-बीच में रखते जाते हैं। 'यमन' में शुद्ध मध्यम अत्यंत मर्यादित रूप से प्रयुक्त किया जाता है, परंतु इस प्रकार की कोई मर्यादा यमनी में नहीं है। कल्याण-जैसा स्वरूप अधिक दिखाई देने पर गायक शुद्ध मध्यम का प्रयोग करके बिलावल को प्रदर्शित कर देते हैं यह कार्य खूबी से कर दिखाना ही गायक की कुशलता है। निम्न स्वर-समुदाय को देखो :—

'सा रे ग, ग म, रे ग, प म ग, रे सा, प मं ध ध प, प ध प म ग, म रे, सा, प मं ग, म ग रे, सा, सा रे ग।'

यहाँ बिलावल और यमन, दोनों राग मिश्रित हैं। अधिकांश तानें बिलावल की ही ली जाती हैं, परंतु राग के नाम का निश्चय करने के लिए यमन का अंश लगाना पड़ता है।

गांधार और निषाद स्वर की वक्रतासाधारण बिलावल के नियमों के अनुसार ही की जाती है, परंतु इस राग में कल्याण-अंग भी आता है, अतः वह साधारण नियम बीच-बीच में मोड़ दिया जाता। 'यमनीबिलावल' एक संपूर्ण जाति का आधुनिक राग है। इसमें तीव्र मध्यम सदैव बिलकुल थोड़ा पाया जाएगा। जहाँ वह नहीं लिया जाता, वहाँ इस प्रकार के स्वर-समुदाय से भी यमन को दिखाया जा सकता है :—'नि़ रे ग रे सा, नि़ रे सा, ग म ग रे सा, नि़ ध़ नि़ प़, ध़ नि़ रे ग म ग, प ग म ग, रे रे सा, ग म प म, ग रे रे सा'। ऐसे कोई-कोई गायक तीव्र मध्यम न लेकर अपना राग दिखाते हैं और यमनी का स्वरूप लोगों के मन में जमा देते हैं। मेरे विचार से तुम्हें तीव्र मध्यम थोड़ा-सा लेना ही ठीक होगा। देवगिरी के सिवाय अन्य किसी बिलावल-प्रकार में तीव्र 'म' नहीं लिया जाता। इस राग को पहचानने में इस स्वर से तुम्हें बहुत सहायता मिलेगी।

देवगिरी और यमनी, इन दोनों को अलग-अलग बताने के लिए इनके नियमों को स्पष्ट रूप से समझकर उपयोग में लाना चाहिए। अन्य लोगों के नियम व्यवहार की दृष्टि से चाहे भिन्न हों, परंतु तुम्हारा गाना सदैव नियमबद्ध ही होना चाहिए। तुम्हारे नियम और तुम्हारी पद्धति ऐसी होनी चाहिए, जो सुशिक्षित लोगों के योग्य हो और उन्हें ग्राह्य हो सके। 'बाबावाक्यम् प्रमाणम्' इस प्रकार का समय अब नहीं है। अब समाज बहुत चैतन्य और चिकित्सक हो चुका है। अपनी समझ के अनुसार प्रमाणबद्ध रूप से अपने माने हुए नियमों को श्रोताओं के आगे रख देना अपना कर्त्तव्य पूर्ण करना है। यदि अपने नियम उन्हें पसंद आते हैं, तो उत्तम है ही; अन्यथा वे नवीन नियमों को खोजकर निकालेंगे और परिणाम शुभ ही होगा, तर्क करने का अधिकार सभी को समान है। अस्तु—

देवगिरी और यमनी, दोनों रागों के राग-स्वरूप एक प्रसिद्ध गायक के अनुसार तुम्हें बताए देता हूँ :—

'सा नि़ ध़, नि़ ध़, सा, रे ग, ग म रे ग, म रे सा, सा रे सा नि़ ध़, नि़ ध़ प़, प़ प़ ग, म ग, रे ग, प म ग, म रे सा। सा ध़, सा रे ग। प, नि ध, सां, रें सां नि ध, नि सां नि ध प, ग मं ध ध, ध नि ध प, मं प, नि ध सां, सां, नि ध प, प ग म ग, म रे, सा, सा नि़ ध़ सा रे ग।'

मैं इन स्वरों को विलम्बित रूप में कैसे गाता हूँ, इसे समझ लो।

यमनी :—

'सा रे ग रे सा, नि़ सा, प़ ध़ नि़ सा, सा रे ग रे सा, सा ग म रे ग, प मं प, ग म, रे ग, ग प म ग, म रें सा, रे, सा रे ग रे सा।

सा सा, ग म रे ग, प मं प, म ग म रे, सा, सा रे ग, सा नि़ ध़, नि़ ध़ प़ प प ध ध प, मं प, म ग म रे, सा।

प, ध नि ध, सां, नि ध, सां, सां रें गं मं, रें सां, सां ध सां, रें सां नि ध प, प ध प, मं प, म ग रे ग, प म ग म रे सा।

ये दोनों राग एक-दूसरे में कितने अधिक मिल जाते हैं, यह तुम समझ गए होगे। इन्हें भिन्न-भिन्न करने के लिए कुशल गायकों ने एक उपाय किया है। वे इनमें से एक में तीव्र 'म' का प्रयोग ही नहीं करते। ऐसा करने से स्पष्ट रूप से ये दो निराले राग हो जाते हैं। यदि तुम्हें ऐसा करना पसन्द आए, तो तुम प्रसन्नता से कर सकते हो; परंतु यहाँ यह मनोरंजक प्रश्न भी उत्पन्न होगा कि फिर इन दोनों में से किस राग में तीव्र 'म' का प्रयोग करना चाहिए। यह प्रश्न वास्तव में विचारणीय है। 'देवगिरी' राग प्राचीन ग्रंथोक्त है। किसी-किसी ग्रंथ में इसमें तीव्र म लेना बताया है और किसी में नहीं। यमनी एक आधुनिक राग है। यह यमन और बिलावल के संयोग से उत्पन्न हुआ है; ऐसा बहुमत भी है। यमन में तीव्र 'म' प्रसिद्ध ही है; इस उलझन को देखते हुए हमें लक्ष्यसंगीतकार का मत ही स्वीकार करना चाहिए, वही अधिक सुविधापूर्ण होगा। उसका मत इस प्रकार है :—

कल्याणीनामके मेले यमनी लक्षिता बुधैः।
वेलावल्याः प्रकारोऽयं स्वीकृतो यमनांगतः॥
संपूर्णो गीयते प्रातर्द्विमध्यमसुभूषितः।
मिथः संवादिनावत्र सपाविति मतं सताम्॥
आरोहणे तीव्रमेण यमनांगं स्फुटं भवेत्।
अवरोहे शुद्धमेन बुधस्तत्परिमार्जयेत्॥
निषादे प्रायशो दृष्टं वक्रत्वमनुलोमके।
अस्यामपि प्रसक्तं वद्धवेदिति सुसंमतम्॥

प्रश्न : हमें भी यही मत पसंद है। देवगिरी में तीव्र मध्यम को टालते जाना और यमनी में स्पष्ट रूप से दिखाना—यही ठीक है, परंतु 'यमनी' का वादी स्वर कौन-सा है?

उत्तर : यमनी में वादी षड्ज और संवादी पंचम मानना उत्तम है। तीव्र मध्यम के उपयोग से यह राग देवगिरी से अलग करके रखा जा सकता है, इसलिए षड्ज को वादी मान लेने में कोई हर्ज नहीं होता। चतुर पंडित के द्वारा बताए हुए देवगिरी के लक्षण तुम्हारे ध्यान में होंगे ही। यमनीबिलावल के लिए अन्य ग्रंथाधार खोजते रहने की आवश्यकता नहीं है; शायद इसके लक्षण प्राप्त भी नहीं हो सकेंगे।

प्रश्न : हमें आवश्यकता भी नहीं है। इस प्रकार के स्पष्ट रूप के मिश्र रागों के लक्षण ग्रंथकार भला और क्या बताएँगे? अब आगे चलिए।

उत्तर : इसके बाद मुझे बिलावल के अन्य प्रसिद्ध प्रचलित भेदों को बताना है; परंतु सारे भेद एकसाथ बताने से गड़बड़-घोटाला हो जाना संभव है, इसलिए मैं निराली प्रकृति के एक-दो राग बीच में बताए देता हूँ। पहले तुम्हें देशकार का वर्णन बताऊँगा।

प्रश्न : जी हाँ, ऐसा ही कीजिए।

उत्तर : 'देशकार' या 'देशिकार' राग शुद्ध स्वरों के ठाठ से ही उत्पन्न होता है। इसमें मध्यम व निषाद स्वर वर्ज्य किए जाने से यह राग 'औडव' संज्ञा प्राप्त करता है। यह इस समय प्रभातगेय रागों में माना जाता है। संस्कृत-ग्रंथों में किसी में इसका समय सन्ध्या-काल बताया है और किसी में इसका समय दोपहर का बताया है। हम इसे प्रभात-काल का राग ही मानेंगे। देशकार का वादी स्वर धैवत है। इसकी प्रकृति बड़ी गंभीर है। इस राग में वादी स्वर धैवत को यथास्थान दिखा देना कुशलतापूर्ण कार्य है। यदि यह ठीक रूप से नहीं किया जा सके तो तत्काल भूपाली की छाया उत्पन्न हो जाती है। यह ठीक रूप से ध्यान में रखना चाहिए कि भूपाली पूर्वांगवादी राग है और यह उत्तरांगवादी है। विलंबित में 'ध, प, ग प ध ध प प, ग रे सा, ध प' स्वरों को गाने पर तत्काल देशकार दिखाई देने लगता है और 'ग, रे सा, सा रे ग, ध प ग, रे ग, रे, सा' स्वर-समुदाय को गाने पर 'भूपाली' राग दिखाई देने लगता है। मेरे विचार से इन दोनों रागों के उपर्युक्त स्वर-समुदायों को बार-बार गाकर इसका परिमाण ध्यान में जमा लेना चाहिए। अपने प्रचलित देशकार के स्वरूप को शायद कोई विभास कहेंगे, परंतु हम विभास को दोनों प्रकार का मानते हैं, जोकि भैरव ठाठ और मारवा ठाठ के अंतर्गत है। इन ठाठों के रागों पर विचार करते समय विभास के विषय में तुम्हें बताऊँगा।

किसी-किसी ग्रंथकार ने देशकार को 'पूर्वी' ठाठ में बताया है। उसमें मध्यम तीव्र और रे-ध कोमल लेकर संध्याकालीन प्रकार मान लेने में कोई आश्चर्य की

बात नहीं है। हम शुद्ध स्वरों के इस प्रकार को अभी ही ग्रहण करते हैं। यह राग बिलावल राग के गाने के पूर्व गाया जाने से उत्तम दिखाई देता है। यह राग गाने में कठिन नहीं है, इसका वर्णन लक्ष्यसंगीतकार ने बहुत उत्तम रूप से इस प्रकार किया है:—

शंकराभरणान्मेलाद्देशीकारः प्रजायते ।
औडवो मनिवर्जः स्यात् प्रथमे यामके दिने ।
धैवतस्यात्र वादित्वं पंचमे न्यास उच्यते ।
उत्तरांगप्रधानोऽयं प्रातःकाले प्रगीयते ॥
केचिदाहू रूपमेत द्विभासस्य सुनिश्चितम् ।
विभांशुको मतोऽस्माभिर्मेले मालवगौडके ॥
विभांशुक इति नाम प्रस्फुट सवितुर्यतः ।
गानं तस्यापि रागस्य मतं भानूदयात्परम् ॥
संध्याकाले यथा प्रोक्ता भूपाली गांशिका बुधैः ।
देशीकारो भवेदत्र प्रातःकाले सुधांशकः ॥
केचिदन्ये वदंत्येनं पूर्वामेलसमाश्रितम् ।
मध्याहहे कंप्रमनिं वयं लक्ष्यानुवर्तिनः ॥

प्रश्न : इस वर्णन की सभी बातें आपने अभी बताई हैं। अब इस राग का स्वर-विस्तार भी बता दीजिए ?

उत्तर : इस राग का स्वर-विस्तार इस प्रकार होता है:—

सां, ध ध प, ग प ध प, ग रे सा, सा रे ग प, ध ध, ग प ध ध प, ग रे सा।

सा ध़ ध़ सा, रे ग, प, ग प, ध प, सां, ध प, सा रे ग प, ध, प ग प ग रे सा।

सा रे ग रें सा, ग प ध ध प, ग रे सा, सा ध़ सा, रे ग प, ध, सां, ध प, ध प ग रे सा।

प ग प ध, ध ध प प, ध सां ध प, ध ध, रें रें सां, ध प, ग प ध प ग रे सा, ध, प।

सा रे सा, ध प ग रे सा, ध़ ध़ सा, सा रे ग प, ध, गं रें सां, रें सां ध, ग प ध, सां ध, सां रें सां ध, ग प ध प ग रे सा, ध, ध प।

सा रे ग प, ग प ध, प ध, सां ध, रें रें सां ध, सां रें सां, ध प, ग प ध सां रें सां ध प, ग प ध प ग रे सा, ध, ध प।

ग ग प ध सां, सां, सां ध सां रें, रें सां ध प, गं रें, सां रें सां ध प, प ध सां, ध ध प प, सा रे ग प ध सां ध प, ग प ध प ग रे सा, ध, ध प।

यहाँ पर एक बात और स्मरण रखने योग्य है। इन्हीं पंच स्वरों के प्रकार को कोई-कोई 'जैतकल्याण' भी मानते हैं। इसका वादी स्वर पंचम बनाकर वे धैवत के महत्त्व को अल्प कर देते हैं। उसका स्वरूप इस प्रकार है— 'प प, प ध प, रे रे सा, सा, ग प प ग, प ध ग, प प, ध प, रे रे सा। प प, सां, सां रें सां, रें सां, प, प ग सा, ग प, ध सां, प ध ग, प प, प ध प, रे रे सा। हम आगे 'जैत' पर मारवा ठाठ में भी विचार करेंगे। देशकार में धैवत को गौणता देने पर स्वरूप बिगड़ जाता है। 'संगीतरागतरंगिणी' में 'जैतकल्याण' यमन ठाठ में बताया गया है। अस्तु—

देशकार के विस्तार में ऋषभ और धैवत स्वर कोमल कर देने से विभास राग दिखाई देने लगेगा। विभास भी उत्तरांगप्रधान राग है और उसमें वादी स्वर धैवत ही माना गया है। देशकार में जैसे पंचम पर न्यास शोभा देता है, वैसे ही विभास में वह सुंदर दिखाई देता है। प्राचीन संगीत में ग्रह, अंश व न्यास, ये प्रायः एक ही स्थान पर माने गए हैं; परंतु हमारे देशी संगीत में ऐसा नियम नहीं लगता। मेरे खयाल से यह सब मैं तुम्हें पहले ही बता चुका हूँ, 'चतुर पंडित' ने इस संबंध में एक जगह इस प्रकार लिखा है :—

उक्तदशलक्षणानां नूनं स्याद्गौरवं पुरा।
देश्यामिह पुनस्तेषां संमतं परिवर्तनम् ॥
ग्रहन्यासापन्यासानां नियमाः साम्प्रतं हि ते।
यथायोग्यं नैव लक्ष्ये दृश्यंत इति संमतम् ॥

'देशकार' के स्वरों के विषय में संस्कृत-ग्रंथकारों का मत देखो :—

शुचिरामक्रीमेले मृदुमकतीव्रतमममृदुसाः शुद्धम्।
सरिपधम् इ० × × × ॥ रागविबोधे ॥

यहाँ पर जो ठाठ बताया गया है, वह अपना 'पूर्वी ठाठ' हो जाता है। सोमनाथ उसे 'शुद्ध रामक्रीमेल' कहता है। प्रत्यक्ष देशकार का वर्णन उसने ऐसा किया है :—

सांशाद्यंतोऽह्नोंतः कंप्रमनिर्देशकृत्पूर्णः।

हम जिसे प्रचार में देशकार मानते हैं, वह रूप यह नहीं है। इस प्रकार का स्वरूप तुम्हारी दृष्टि में कभी नहीं आएगा, ऐसा तो नहीं कहा जा सकता, परंतु मैंने 'लक्ष्यसंगीत' का स्वरूप ही पसंद किया है। 'रागविबोध' में वर्णन किया हुआ रूप इस प्रकार दिखाई देगा :—

'सां सां, नि ध़ प, प ध़ प, ग प ध़, सां ध़ प, प प ध़ ग प, ग रे़ सा, सा रे़ सा, ग प ध़ प, ग रे़ सा।

मं ध सां, सां रें़ सां, सां नि ध़, सां गं मं गं रें़ सां, सां रें़ सां, रें़ रें़ सां, नि ध़, नि ध़ प, म प ध़, सां नि ध़ प ध़ ध़ प, ग प ध़ प, ग रे़ सा।'

यह प्रकार भी कानों को अच्छा नहीं लगेगा। 'संगीतरागतरंगिणी' में देशकार राग का ठाठ 'गौरी' माना है। गौरी मेल का वर्णन इस प्रकार किया गया है:—

शुद्धाः सप्तस्वराः कार्या रिधौ तेषु च कोमलौ।
तोडी सुरागिणी ज्ञेया ततो गायकनायकैः॥
एवं सति च गांधारो द्वेश्रुती मध्यमस्य चेत्।
गृह्णाति काकलीनिः स्यात् तदा गौरी प्रवर्तते।
मालवः स्याद् गुणमयः श्रीगौरी च विशेषतः।
चैत्रीगौडी तथा प्रोक्ता पहाडीगौरिका पुनः॥
देशी तोडी देशकारो गौरो रागेषु सत्तमः।

यहाँ पर तोड़ी मेल बनाकर फिर ग-नि स्वर तीव्र करने का कथन है। तोड़ी का ग्रंथ-वर्णित ठाठ अपनी भैरवी का है। श्री, तोड़ी, शंकराभरण, मालवगौड़ आदि ठाठ बहुत प्रसिद्ध हैं और ग्रंथों के प्रमाणों की एकता सिद्ध करने के लिए उपयोगी होते हैं। तोड़ी के ठाठ में ग-नि तीव्र करने पर प्रचलित भैरव ठाठ हो जाता है।

'अनूपसंगीतविलास' ग्रंथ में पंडित भावभट्ट ने इस राग के विषय में लिखा है:—

तृतीयगविनिगमा देशकारस्य मेलके।
देशकार स्त्रावणी च देशीललितदीपकौ॥
विभासो जयतश्रीश्च संभवंत्यत्र मेलतः।
देशिकारोऽपराह्णे स्यात् सत्रिः संपूर्णको भवेत्॥

इसमें बताए हुए समप्राकृतिक रागों को देखते हुए पूर्वी ठाठ ही दिखाई देता है।

देशकार्यां गनी तीव्रौ धांशो धादिकमूर्च्छना॥

—पारिजाते

यह अपने शुद्ध ठाठ का प्रकार अवश्य है, परंतु रूप संपूर्ण माना गया है।

देशकारी तु संपूर्णा षड्जन्यासग्रहांशिका।
मूर्च्छना प्रथमा ज्ञेया वैराटीमिश्रिता भवेत्॥

—दर्पणे

'वराटी' राग अनेक स्थानों पर पूर्वी ठाठ में ही कहा गया है। 'दर्पण' का राग-वर्णन संतोषजनक नहीं है, यह मैं कह चुका हूँ। यह प्रकार अन्य स्थानों पर भी

तुम्हें दिखाई पड़ेगा। ग्रंथकारों के संबंध में मेरे एक स्पष्टवक्ता और प्रामाणिक रूप से बोलनेवाले मित्र के विचार तुम्हें सुनाए देता हूँ :—

"जो लोग यह कहते हैं कि अपने मध्यकालीन ग्रंथकारों ने प्राचीन शास्त्र की स्पष्टता नहीं की है, वे गलत नहीं कहते। ऐसे ही वे मध्यकालीन ग्रंथकार प्रत्यक्ष संगीत (Practical Music) में भी उत्तम रूप से निपुण थे, यह उनके लिखने से प्रतीत नहीं होता (यह स्वीकार किया जा सकता है कि वे कुछ अंशों में जानकार थे)। यद्यपि वे उत्तम संस्कृतज्ञ थे; परंतु प्रत्यक्ष संगीत के उत्तम ज्ञान के बिना सच्चा उपयोगी संगीत-ग्रंथ लिखना सम्भव नहीं कहा जा सकता। ग्रंथकारों की व्यर्थ निंदा करना मैं भी ठीक नहीं समझता, परंतु उनके दृष्टिकोणों की शुद्धता-अशुद्धता को निश्चित करना पाप नहीं कहा जा सकता। इस समय भी बहुत-से ग्रंथकर्ता पंडित पाए जाएँगे, जो प्रत्यक्ष संगीत की उच्चकोटि की जानकारी नहीं रखते। जबकि इस समय ऐसे व्यक्ति मिल जाते हैं, तो उस समय भी ऐसे व्यक्ति होना असंभव नहीं कहा जा सकता।"

यह बिलकुल ठीक है कि किसी-किसी ग्रंथकार ने अपने रागों की व्याख्या करते हुए उसमें ग्राम-मूर्च्छना आदि का उपयोग ऐसे विलक्षण रूप से किया है कि पाठकों को संतोष होना तो दूर रहा, उनका बड़े भारी भ्रम में (गड़बड़-घोटाले में) पड़ जाना अधिक संभव है। अपने से प्राचीन ग्रंथकारों के दोष निकालने का साहस तो उनमें था ही नहीं, साथ ही ग्रंथों का उपयोग भी जैसा चाहिए, वैसा नहीं किया गया।

प्रत्यक्ष संगीत जाननेवालों को प्रायः संस्कृत-ज्ञान नहीं था और संस्कृतज्ञ पंडितों का कथन था कि यह विषय (प्रत्यक्ष संगीत-गायन-वादन) हमारा नहीं है।

मैं इसके सम्बन्ध में 'संगीतदर्पण' का उदाहरण ही तुम्हें देता हूँ। इस ग्रंथ में ग्रंथकार पंडित दामोदर ने अपनी बुद्धि का उपयोग करते हुए कौन-सा भाग लिखा है और कौन-सी बात स्पष्टता से बताई है ? हमें यह दिखाई देता है कि उसने 'संगीत-रत्नाकर' का स्वराध्याय तो अपनी रचना में अनेक स्थलों पर शब्दशः उद्धृत कर लिया है। परंतु 'रत्नाकर' के सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण और कठिन 'जाति-प्रकरण' को उसने बिलकुल ही छोड़ देना पसंद किया है। इस प्रकार 'रत्नाकर' के चरण-चिह्नों का अनुकरण करते हुए 'स्वराध्याय' पूरा कर लिया; आगे जो 'रागाध्याय' प्रत्यक्ष उपयोगी है, उसके विषय में क्या किया है, यह भी देखो। रागाध्याय में अकारण ही 'रत्नाकर' के वर्णन को धता बताकर महादेव का आह्वान कर लिया और उनके पाँच प्रश्नों से पाँच रागों की सृष्टि कर डाली। थोड़ा और आगे बढ़ने पर दर्पणकार ने इन महादेव और इनके रागों को एक तरफ हटाकर हनुमन्मत का आश्रय लिया है। इस प्रकार विचित्रता देखते हुए अपने नवीन सीखनेवाले को आश्चर्य और रोष होना स्वाभाविक ही है। यह गंगा-जमुनी संगम क्या मतलब रखता है ? जबकि शार्ङ्गदेव के 'स्वराध्याय' को अपने ग्रंथ में सम्पूर्ण रूप से ग्रहण किया है, तब उसके रागाध्याय को क्यों छोड़ दिया ? इसका कोई कारण ग्रंथकर्ता ने कहीं नहीं बताया है। किसी निर्भीक स्पष्टवादी आलोचक के इस कथन का क्या उत्तर दिया जा सकता है कि दामोदर ने शार्ङ्गदेव

के ग्राम, मूर्च्छना, जाति-प्रकरणों को योग्य स्पष्टता से नहीं समझा था'। दामोदर के ग्रंथ 'दर्पण' में इस आरोप से उसका बचाव करने के योग्य कोई प्रमाण नहीं मिलता। यह कोई भी कह देगा कि 'रत्नाकर' के ग्राम-रागों के भाग को छोड़कर हनुमन्मत के रागों की उलटी-सीधी तस्वीर खींचने की (राग-ध्यान-चित्र की) कोई खास जरूरत नहीं थी। जबकि उसने मार्ग-संगीत की सम्पूर्ण जानकारी सुनी थी, उसके समय में सर्वत्र देशी संगीत प्रचलित था, यह समझते हुए दर्पणकार ने 'रत्नाकर' का रागाध्याय क्यों छोड़ दिया ? हम कैसे जान सकते हैं ? परंतु स्वयं पं० दामोदर ने जो राग-व्याख्या दी है, उसके अनुसार ही राग गानेवाला कोई हुआ भी है ? ऐसा गानेवाला मैंने आज तक नहीं सुना, जो 'दर्पण' के आधार पर राग गाता हो। जो ग्रंथकार ग्राम की मूर्च्छना की गड़बड़ छोड़कर प्रचार के अनुसार अपने ग्रंथ लिखता है, उसकी योग्य तारीफ होनी चाहिए; परंतु प्रश्न यह है कि शार्ङ्गदेव के रागों का क्या हुआ, वे निरुपयोगी कैसे ठहराए गए ? इनका उत्तर भी तो दर्पणकार को देना चाहिए था। साथ ही यह भी प्रश्न है कि क्या 'दर्पण' में हनुमन्मत का स्पष्टीकरण मिलता है ? इस मत का ग्रंथ कौन-सा है ? उसमें शुद्ध-विकृत स्वर कौन-से हैं ? उसकी मूर्च्छना कैसे छोड़ दी गई ? इन सब बातों की स्पष्टता दर्पणकार ने बिलकुल नहीं की। जबकि 'रत्नाकर' का स्वराध्याय 'दर्पण' के रागाध्याय में दर्पणकार ने उपयोगी मानकर ग्रहण किया है, तब दोनों ग्रंथों के साधारण रागों में समानता होनी चाहिए। परंतु यह समानता नहीं है। अब प्रश्न है कि इस समानता के न होने का क्या कारण है ? मेरा खयाल है कि इन ग्रंथों को पढ़ते समय इन बातों पर विचार करना अधिक सुविधाजनक होगा। रत्नाकर, दर्पण आदि ग्रंथों के संगीत के स्पष्ट होने पर प्रचलित संगीत छोड़कर लोग उसे ही ग्रहण करें, ऐसा होना तो सम्भव नहीं है; परंतु सामवेद के समय से संगीत कैसे-कैसे बदलता आया है, इसे पद्धतिपूर्वक सिद्ध करने के लिए विद्वानों को इस कार्य में हाथ लगाना चाहिए।

प्रश्न : आपने सामवेद का नाम लिया है, अतः मैं एक प्रश्न पूछता हूँ। क्या आपने सामवेद के संगीत के विषय में भी कुछ खोज की है ? यदि की हो, तो आपको कुछ उपयोगी जानकारी भी प्राप्त हुई है या नहीं ?

उत्तर : मुझे खेद है कि मुझे इस बात की खोज के लिए अभी तक अवसर प्राप्त नहीं हो सका। उत्तरी भाग में प्रवास पर जाते समय मैंने 'साम' के गाने के सम्बन्ध में कुछ प्रश्न कागज पर लिख लिए थे। वे प्रश्न मैंने उधर के पंडितों से पूछे भी थे, परंतु उनसे उन प्रश्नों का स्पष्ट उत्तर प्राप्त नहीं हुआ। यद्यपि वे बड़े विद्वान् थे, परंतु उनका विषय 'साम' नहीं था। मुझे यह जानकारी मिली है कि गोदावरी के किनारे निजाम की सीमा पर इन्दूर नामक एक छोटा-सा क्षेत्र है; वहाँ पर साम के गाने के सम्बन्ध में योग्य बातें मिल सकती हैं। यदि ईश्वर-कृपा से मैं वहाँ जा सका, तो वहाँ से यह जानकारी प्राप्त कर सकूँगा। यदि मैं प्राप्त न कर सकूँ, तो तुम करना। 'साम' का अभ्यास एक स्वतन्त्र विषय है। पाश्चात्य पंडितों ने इस विषय पर कुछ-कुछ लिखा है, परंतु मैं अभी तक उनकी रचनाएँ

भी पर्याप्त रूप से न देख सका। राजा साहब टैगोर की 'Hindu-Music' नामक पुस्तक में एक यूरोपियन पंडित का एक निबंध प्राप्त होता है, वह मैंने देखा है। परंतु उससे भी सम्पूर्ण जानकारी नहीं पाई जाती। तुम्हें यह ध्यान रखना चाहिए कि तुम्हारे प्रचलित संगीत का 'साम' से कोई सम्बन्ध नहीं है।

प्रश्न : आपने उत्तर के पंडितों से कौन-कौनसे प्रश्न पूछे थे ?

उत्तर : वे बिलकुल साधारण प्रश्न थे। मुझे उस विषय की जानकारी नहीं होने से अधिक मार्मिक प्रश्न पूछना शक्य भी नहीं था, मैंने निम्नलिखित प्रश्न पूछे थे :—

१. सामवेद का गायन उत्तम रूप से सीखनेवाले विद्यार्थी को कौन-सी पुस्तकें पढ़नी आवश्यक हैं ?

२. साम की पुस्तक में मंत्रों के अक्षरों पर १, २, ३, ४, ५, ६, ७ ऐसे अंक लिखे हुए हैं। इन अंकों का सम्बन्ध किनसे और कैसा है ?

३. यदि ये अंक स्वर के द्योतक हैं, तो इनका स्पष्ट विवरण किस ग्रंथ में प्राप्त होगा ? क्या सात से अधिक अंक भी हो सकते हैं ? यदि नहीं तो क्यों ?

४. संहिता में १, २, ३, अंक ही क्यों हैं ? संहिता केवल उदात्त, अनुदात्त और स्वरित स्वरों में ही कही जाती है, अर्थात् वह नहीं गाई जाती। क्या यह ठीक कारण है ?

५. मंत्रों के बीच-बीच में बड़े अंक दिए हुए हैं। क्या उन अंकों और अक्षर के ऊपरी भाग में दिए हुए अंकों का भेद प्रत्यक्ष मंत्र गाकर समझा सकते हैं ?

६. क्या 'नारदीय शिक्षा' का उपयोग 'साम' का प्रत्यक्ष गान समझने में हो सकता है ? यदि हाँ, तो प्रत्यक्ष कर दिखाइए ?

७. 'प्रथमश्च द्वितीयश्च तृतीयोथ चतुर्थकः। मंद्रक्रुष्टोह्यतिस्वार एतान कुर्वंति सामगाः ।।' इस श्लोक का उपयोग क्या प्रत्यक्ष मंत्र लेकर प्रत्यक्ष कर दिखा सकते हैं ?

८. मंत्र के ऊपर लिखे हुए स्वरों की, प्रचलित 'सा रे ग म प ध नि' स्वरों से समानता या एकता बताई जा सकती है ?

९. प्रचार में सप्तस्वर एक से दूसरा ऊँचा, इस रीति से रखे गए हैं। क्या साम में भी ऐसे ही हैं ?

१०. साम-गान सुनने पर उसमें प्रायः तीन और कभी-कभी चार स्वर ही दिखाई पड़ते हैं। क्या इसपर भी आपने लक्ष्य किया है ? सामवेद के गायन के स्वर क्रमानुसार कह सकेंगे ? यह जानकारी कहाँ प्राप्त होगी ?

११. 'साम' के स्तोत्र की स्पष्टता किस ग्रंथ में प्राप्त होगी ? किसी एक ऋचा में भिन्न-भिन्न स्तोत्रों का प्रयोग हो सकता है ? भिन्न-भिन्न शाखाओं में स्तोत्र बदलते हैं ?

१२. कुल मिलाकर साम-गायन की कितनी पद्धतियाँ हैं ? उनकी कौन-कौन-सी पुस्तकें हैं ?

१३. 'तांड्यलक्षणसूत्र', 'पुष्पसूत्र', 'सामतंत्र', 'धन्वीभाष्य', 'अग्निभाष्य' आदि ग्रंथों में कौन-कौन-से विषय हैं ? इनमें से साम-गान सीखने के लिए कौन-सी पुस्तक सर्वप्रथम पढ़नी चाहिए ?

१४. 'वेय, आरण्य, ऊह व ऊह्य' ये गाने भिन्न-रूप से सुनाकर उनका भेद समझा सकेंगे ? एकऋचा-गान और त्रिऋचा-गान कैसा होता है ?

१५. 'र' अक्षर का क्या अर्थ है ? कहीं-कहीं अवग्रह-चिह्न आ जाते हैं, वहाँ क्या किया जाता है ?

१६. स्वरों का अँगुलियों पर कौन-सा स्थान है ? इसका आधार क्या है ? इस स्थान पर कायम किए हुए स्वरों को अलग-अलग क्रमानुसार बताइए ?

१७. एकदम ३ या ४ अंक देखने पर कौन-सा स्वर लगाया जाएगा ? १. ऊँचा, २. प्रथम से नीचा, ३. दूसरे से नीचा। इतनी जानकारी से ही स्वर-स्थान निश्चित हो सकते हैं ? स्वरों में परस्पर क्या सम्बन्ध निश्चित किया गया है ?

१८. अक्षरों का समय-मान किसकी सहायता से लगाया जाए ? अमुक स्वर अमुक सैकिण्ड तक गाना चाहिए, इस प्रकार के नियम हैं क्या ?

१९. 'प्रातिसाख्य' कौन-कौन-सी हैं ? और वे वैसी क्यों हैं ?

२०. शिक्षा कितनी हैं ? आप किनको स्वीकार करते हैं ? शिक्षा के प्रमाण से गायन के कितने भेद होते ? उन्हें मुझे दिखा सकेंगे ?

२१. क्या भिन्न-भिन्न शिक्षाओं के प्रमाण से स्वरों में परिवर्तन भी होता है ?

२२. एक ही प्रकार के अंक होने पर भी क्या गायन-प्रकार भिन्न हो सकता है ? मैंने इसी तरह भिन्न सुना है।

२३. गायन में 'हौं' 'हौं' पद के प्रयोग का क्या उद्देश्य है ? इन्हें लगाने के नियम किस पुस्तक में बताए गए हैं ?

२४. क्या रथन्तर भी 'साम' कहलाता है ? और अन्य कौन-कौन-से प्रकार हैं और वे कैसे पहचाने जा सकते हैं ?

२५. क्या एक ही गायक क्रम-क्रम से वेय, आरण्य आदि भेदों को गाता है ?

ऐसे ही कुछ प्रश्न मैंने लिख रखे थे, परंतु इनकी उत्तम जानकारी प्राप्त नहीं हुई। वास्तव में अभी मैंने इस विषय को हाथ में नहीं लिया है। अस्तु—अभी मुझे 'दर्पण' के विषय में दो शब्द और कहने हैं। फिर हम अपने मुख्य विषय पर आ जाएँगे।

मुसलमान गायकों को अपने से अधिक 'दर्पण' पर अभिमान करते पाया गया है, क्योंकि उसमें छह राग भैरव, मालकोष, हिंदोल, दीपक, श्री व मेघ बताए गए हैं। परंतु 'दर्पण' के रागों का स्वरूप भी अपने प्रचलित रागों-जैसा है या नहीं, इस प्रश्न का उनसे कोई उत्तर प्राप्त नहीं होता। उन बेचारों ने 'दर्पण' की केवल जानकारी-मात्र ही सुनी है। मैंने एक निमांकित हिंदू पंडित से विनय की थी कि आप मुझे 'रत्नाकर' और 'दर्पण' के रागों की एकरूपता कर दिखाइए; परंतु उन्होंने इसके उत्तर में एक बड़ी रकम की माँग पेश की, अतः यह बात वहीं रह गई। इस विषय पर अपने स्वतंत्र विचार किसी अन्य प्रसंग पर बताऊँगा। इस समय तो तुम्हें प्रचलित संगीत ही यथाशक्ति सरल बनाकर समझा देने की मेरी इच्छा है। इस प्रकार के विवादयुक्त विषय में पड़ने की इस समय आवश्यकता नहीं है।

अनेक ग्रंथकारों ने रागों की पत्नियाँ, उनके पुत्र आदि उनके परिवार का यथाशक्ति वर्णन कर अपने को धन्य कर लिया है। उन्होंने राग-रागिनियों के ध्यानों की रचना कर अपनी उत्तम काव्य-प्रतिभा का प्रदर्शन किया है। हम यह मानकर चलेंगे कि संभवतः इन राग-चित्रों (ध्यानों) का उपयोग रागों की उपासना करने में होता होगा। परंतु इस बीसवीं सदी के संगीत-विद्यार्थियों को रागों का स्वरूप चित्रों द्वारा बताने की अपेक्षा स्पष्ट स्वरों में दिया जाना अधिक अच्छा होगा, यह मेरी धारणा ठीक ही है। यथायोग्य रूप से उपासना करने पर राग-स्वरूपों से ज्ञान, प्रेरणा प्राप्त करने का धैर्य इन बेचारों में कैसे पाया जा सकता है? इन रागों के चित्र मेघकर्ण की 'रागमाला' में बहुत संख्या में प्राप्त होंगे। यह ग्रंथ भी तुम्हें आगे बताऊँगा। निजाम हैदराबाद के वे० शा० सं० आपा साहब शास्त्री और गायक के पास मुझे 'रागमाला' की एक नकल प्राप्त हुई है। उन्हीं सज्जन ने कृपाकर मुझे 'संगीतमकरंद' की भी एक नकल दी है।

प्रश्न : अब कौन-सा राग बताएँगे?

उत्तर : अब हम बिहाग, शंकरा, बिहागड़ा आदि रागों पर विचार करेंगे। 'बिहाग' को सर्वप्रथम लेते हैं। यह राग शुद्ध स्वरों का है, यह प्रसिद्ध ही है। इसकी जाति प्रचार में गुणियों के द्वारा औडव-संपूर्ण मानी जाती है। इस राग का आरोह पाँच स्वरों का होता है और अवरोह में सातों स्वर लिए जाते हैं। आरोह में रे व ध स्वर वर्जित किए जाते हैं। यह राग रात्रिगेय है और बिलकुल साधारण राग है।

प्र० : तो फिर इस राग में पूर्वांग का कौन-सा स्वर वादी माना गया है?

उत्तर : इस राग का वादी स्वर गांधार और संवादी निषाद है। इस राग का अवरोह संपूर्ण है। फिर भी इसमें रे-ध स्वर बहुत दुर्बल हो जाते हैं। यदि ये दो स्वर योग्य प्रमाण से नहीं लगाए गए, तो श्रोताओं को बिलावल का आभास हो जाता है। गायक लोग अवरोह करते हुए 'सां नि, ध प, म ग, म प, म ग, रे सा' इस प्रकार निषाद और गांधार पर थोड़ी-सी विश्रांति लेते हैं, और ऐसा करने से रे-ध स्वर अपने-आप दुर्बल हो जाते हैं, मैं तुम्हें प्रत्यक्ष प्रयोग बता देता हूँ।

बिहाग का स्वरूप स्वतन्त्र है। यह अन्य रागों से शीघ्र ही पहचाना जा सकता है। 'ग म प, म ग, रे सा' यह स्वर-समुदाय इस राग की पकड़ है। ये ही स्वर इस राग में अनेक स्थानों पर दिखाई देते हैं। परंतु 'म ग, रे सा' इस प्रकार गांधार पर विश्रान्ति नहीं पाई जाती। अवरोह में 'रे-ध' बिलकुल वर्ज्य कर देने से अन्य रागों की छाया होना संभव है। 'सां नि, प सां नि, प, ग प ग, सा' यह भाग 'शंकरा' नामक अन्य राग का है। शंकरा और मालश्री में अनेक बार 'प ग, प ग, सा' भाग दिखाई देता है। इन दोनों रागों को भी नियमों द्वारा अलग-अलग कर दिया है, परंतु बिहाग में अवरोह सम्पूर्ण होने के कारण उसी नियम का पालन करना चाहिए। शंकरा में मध्यम वर्ज्य है और मालश्री में मध्यम तीव्र लगाया जाता है। इस प्रकार ये दोनों राग बिहाग से अलग हो जाते हैं और भ्रान्ति मिट जाती है। 'बिहाग' नाम किस भाषा का है, इसपर विचार करते हुए बँगला-ग्रंथकार लिखते हैं कि यह शब्द संस्कृत शब्द 'विहग' या 'विहंग' का अपभ्रंश रूप है। हमें इस प्रकार की किसी कल्पना की आवश्यकता भी नहीं है। ग्रंथों में एक नाम बिहागड़ा भी पाया जाता है। बिहाग का आरोह-अवरोह बहुत सरल है—नि़ सा, ग म प, नि सां। नि, ध प, म ग, रे सा। इस राग का वादी स्वर गांधार है, अतः यह स्वर राग में यत्र-तत्र प्रयुक्त होता पाया जाएगा, परंतु निषाद का प्रयोग खासकर जमा लेना चाहिए। जब इस निषाद पर बीच-बीच में गायक विश्रान्ति लेने लगते हैं, तब इसकी शोभा कुछ विलक्षण हो जाती है। 'म ग, सा नि़, प़ नि़, सा' 'सा नि, प, नि सां नि प, ग म प, ग म ग, रे सा नि़' ये स्वर बार-बार प्रयोग करना सीख चुकने पर राग का गाना आ जाएगा। बिहाग का समय रात्रि का दूसरा प्रहर माना जाता है। इस राग में तीव्र मध्यम का प्रयोग करते हुए गायक तुम्हें दिखाई देंगे। रात्रिकालीन रागों में और उन रागों में, जिनमें ग-नि स्वर तीव्र लिए हों, तीव्र मध्यम स्वर कोई बड़ी हानि उत्पन्न नहीं कर सकता। यह प्रत्येक राग में लगाने की अनिवार्यता नहीं है, परंतु योग्य स्थानों पर विवादी स्वर-जैसा प्रयोग करने पर राग-हानि उत्पन्न नहीं कर सकता, ऐसा अनुभव भी है।

'बिहागड़ा' नामक एक राग प्रचार में सुना जाता है। उसके अवरोह में कोमल नि स्वर, गायकों द्वारा प्रयुक्त होता है। ग्रंथों में—बिहागड़ा को बिलावल ठाठ में माना गया है, अतः इसमें कोमल 'नि' को स्थान नहीं मिलना चाहिए। हुआ यह है कि बिहाग एक नवीन राग-नाम स्वीकार कर बिलावल ठाठ में माना गया है और ग्रंथों में वर्णित बिहागड़ा में (जो बिलावल ठाठ में पाया जाता है) कोमल नि स्वर का प्रयोग किया गया है।

कोई-कोई गायक बिहागड़ा को बिहाग से अलग करने के लिए उसका वादी स्वर 'मध्यम' बनाने लगे हैं। वे बिहागड़ा में 'सा ग, ग म' इस प्रकार का अंग प्रदर्शित करते हैं। मध्यम का इस प्रकार व्यस्त अथवा खुला प्रयोग करने पर शुक्ल-बिलावल की छाया दिखाई देने लगती है। इसे दूर करने के लिए गायक लोग आरोह में ऋषभ-धैवत स्वरों का प्रयोग करते हैं। यह प्रयोग स्वरों में बताने पर

तुम्हें अधिक स्पष्ट हो सकेगा। मुझे एक प्रसिद्ध गायक ने एक गीत बिहागड़ा का सिखाया है, उसके आधार पर इस राग का स्वर-स्वरूप इस प्रकार होता है :—

सा, ग, ग म, म ध, म ध नि॒, ध प म, प म ग, सा, ग, ग म।

ग, म प, नि सां, नि॒ ध प, म प म ग रे सा, सा ग, ग, म।

प प नि, नि सां, सां, सां रें गं, रें सां, नि॒ ध प, सां गं, रें गं मं, गं रें सां, सां नि॒ ध प, ध म ग, रे सा ग, ग प म।

यहाँ पर आरोह में, 'रे' स्वर का अनेक जगहों पर प्रयोग किया गया है। यह तुम्हें दिखाई देगा कि निषाद भी दोनों प्रयुक्त हुए हैं। यह स्वरूप बिहाग से बिलकुल निराला हो जाता है।

प्रश्न : आप 'बिहाग' का स्वर-विस्तार और बता दीजिए, जिससे हमें उनकी तुलना करने में सुविधा हो!

उत्तर : यह लो :—

सा, ग, रे सा, नि़ सा, प़, नि़ सा, ग म ग, रे सा।

नि़ सा ग म प, ग म ग, रे सा, नि़ सा प़ नि़ सा, ग नि़ सा, ग म प ग म ग, रे सा।

नि़ सा ग म प, ग म प, ग म ग, प ग म ग, रे सा, नि, प, ग म प ग म ग, रे सा।

ग म प प, नि नि प, सां नि प, ध प, ग म ग, प ग म ग, रे सा, नि़ सा ग रे सा सा नि़, प़ नि़ सा, सा ग म प, ग म प, ग म ग, रे सा।

प प नि नि सां, सां, सां गं सां, सां रें सां, नि प, प नि, सां नि, ध प, ग म प नि सां, गं रें सां, सां नि, प, ग म प ध, म ग, रे सा।

तुम्हें स्वरमालिका कंठस्थ है ही, इसलिए और अधिक विस्तार नहीं कर रहा हूँ। यह राग सरल रागों में गिना जाता है। अब इस राग के सम्बन्ध में दो-चार ग्रंथों के मतों पर विचार करें। ग्रंथों में बिहागड़ा या बिहागरा नाम ही अनेक स्थानों पर प्राप्त होगा। 'रागविबोध' में बताया है :—

हंमीरमेल उज्ज्वलसमपधतीव्रतररिमृदुममृदुसकाः।
हंमीरविहंगडकेदारप्रमुखा अतो मेलात्।
न्यंशग्रहसन्यासोऽल्पधो लसेन्निशि विहंगडः॥

इस स्थान पर धैवत शुद्ध बताया है, अर्थात् हमारा प्रचलित कोमल धैवत लगाने का उल्लेख है। हमारे गायक इस राग में कोमल धैवत का प्रयोग बिलकुल नहीं करते। 'नृत्यनिर्णय' ग्रंथ में बिहागड़ा केदार मेल का राग बताया है और उसे सायंकाल गाने का उल्लेख है; 'सायं केदारमेले' आदि। 'हृदयप्रकाश' ग्रंथ में यह राग नहीं पाया जाता। संगीतपारिजातकार अहोबल ने इस राग का वर्णन इस प्रकार किया है :—

बिहागडे गनी तीव्रावारोहे तु रिवर्जिते ।
गांधारोद्ग्राहसंपन्ने न्यासांशो निस्वरो मतः ॥
यद्यस्मिन् पंचमोद्ग्राहः स्यादारोहे गवर्जनम् ।
मूर्च्छना मध्यमे चापि पराहित्यं सदाभवेत् ॥

इसका ठाठ तो बिलावल है, परंतु आरोह में धैवत स्वर वर्ज्य करने का उल्लेख नहीं पाया जाता। दूसरे श्लोक का उपयोग हमारे लिए होना संभव नहीं है। रागतरंगिणीकार ने इसे ठाठ केदार में बताकर इसकी उत्पत्ति इस प्रकार बताई है:—

केदारस्वरसंस्थाने श्रुतः केदारनाटकः ।
आभीरनाटनामा च गेयो रागस्तथापरः ॥
बिहागरा च हंवीरः श्यामः श्रुतिमनोहरः ।
सरस्वत्यथ मारुश्च केदारापि मनोहरा ।
बिहागरासमुत्पत्तिनिदानं त्रितयं मतम् ॥

विद्यापति का केदार मेल अपना बिलावल ठाठ ही है, यह मैं तुम्हें बता ही चुका हूँ।

'रागलक्षण' ग्रंथ में बिहागड़ा का वर्णन इस प्रकार कहा गया है:—

मेलाच्चसंभवो धीरशंकराभरणाच्चव ।
बिहागडेति रागश्च सन्यासं सांशकं ध्रुवम् ॥
आरोहे रिधवर्जंचाप्यवरोहे समग्रकम् ।

शंकराभरण मेल अपना बिलावल ठाठ ही है। यहाँ आरोह में रे-ध वर्ज्य करने को कहा गया है। 'चतुर्दण्डिप्रकाशिका', 'सारामृत', 'स्वरमेलकलानिधि', इन ग्रंथों में यह राग नहीं पाया जाता। प्रसिद्ध बँगला-ग्रंथ 'संगीतसार' में 'बेहाग', 'विहंगड़ा', ऐसे भिन्न-भिन्न प्रकार बताए हैं। इन रागों की जानकारी टिप्पणी में इस प्रकार दी गई है। 'बेहाग' यह राग संस्कृत-शास्त्रानुमोदित नहीं है। इसकी उत्पत्ति विहंगड़ा से हुई है। बेहाग में निषाद ग्रह स्वर है, गांधार वादी है और ऋषभ, धैवत विवादी स्वर हैं। तो भी अवरोह में चतुरता से रे-ध स्वर लगाने का परिणाम बुरा नहीं दिखाई पड़ता।

बिहाग का संस्कृत-नाम 'विहग' या 'विहगरी' है। बहुत-से लोग 'विहग' को 'विहंगड़ा' समझ लेते हैं, परंतु वास्तव में ये दो भिन्न-भिन्न राग हैं। 'विहग' में दोनों निषादों का प्रयोग किया जाता है। 'विहंगड़ा' में केवल शुद्ध निषाद लिया जाता है। प्रसिद्ध विद्वान् कल्लिनाथ और शिल्हन ने बिहाग को सम्पूर्ण जाति का राग माना है।

प्रश्न : परंतु ये ग्रंथकार 'विहग' के स्वर कौन-से बताते हैं ?

उत्तर : यह मैं नहीं बता सकता। उनके ग्रंथ भी मेरे पास नहीं हैं। बिना स्वर समझे संपूर्ण जाति का उपयोग नहीं हो सकता, यह वास्तविक कठिनाई है। खैर आगे चलें :—

'बिहग' राग का प्रमाण 'नर्तननिर्णय' और 'रागविबोध' में पाया जाता है। वहाँ पर इसे शंकराभरण का पुत्र बताया है, 'पुत्र का ठाठ' राग-जनक ठाठ से शायद मिलता हुआ होगा।

'विहगड़ा—अस्या: जाति: संपूर्णा। इति मतंगमुनेर्मतम्'

यहाँ तुम पूछोगे कि विहंगड़ा का ठाठ मतंग मुनि ने कौन-सा बताया है, परंतु मैं उत्तर नहीं दे सकूँगा। संगीतसारकर्त्ता ने राग-विस्तार भी कर दिखाया है; उसमें दोनों निषाद लगते हैं व आरोह में धैवत का प्रयोग भी किया है। हमारे गायक इसी प्रकार से 'बिहागड़ा' गाते हैं। क्षेत्रमोहनस्वामी ने अपने ग्रंथ में 'देवबिहाग' नामक राग बताया है, उसमें रे, ध स्वर आरोह में ग्रहण किए हैं। यह एक नवीन रूप तुम्हें प्राप्त होने पर संग्रह करना चाहिए। 'अधिकस्य अधिकं फलम्'। मेरे खयाल से अब हमें बिहाग को छोड़ देना चाहिए।

प्रश्न : ठीक है, अब इसके निकट का राग शंकरा' समझाइए ?

उत्तर : वही मैं तुम्हें बता रहा था। 'शंकरा' राग प्रचार में तीन प्रकार से गाया जाता हुआ तुम्हें दिखाई पड़ेगा।

ये तीन प्रकार औडव, षाडव और संपूर्ण हैं। इस राग का चलन मालश्री और बिहाग से मिलता हुआ कुछ परिमाण में दिखाई देगा। यह हम जानते हैं कि 'बिहाग' के आरोह-अवरोह में शुद्ध मध्यम न लेने पर बिहाग नहीं हो सकता। 'शंकरा' में बहुमत से मध्यम वर्ज्य स्वर माना गया है। इन दोनों रागों में यही एक प्रधान अंतर हो जाता है। 'मालश्री' में मध्यम तीव्र लिया जाता है तथा धैवत वर्ज्य किया जाता है और 'शंकरा' में धैवत ग्रहण किया जाता है तथा मध्यम वर्ज्य किया जाता है। इस प्रकार मालश्री और शंकरा राग भी अलग-अलग किए जाते हैं।

'सा, प प, 'ग सा', यह भाग मालश्री और शंकरा, दोनों में समान है। तो भी कोई-कोई गायक इन दोनों रागों का मिश्रण न हो, इस विचार से शंकरा राग के अवरोह में ऋषभ स्वर स्पष्ट रूप से लगाते हैं; जैसे:—'प ग, प ग, रे सा, सा रे सा, ग प ग सा'। 'शंकरा' राग का स्वरूप तुम्हें अच्छी तरह याद रखने के लिए यह आवश्यक है कि इस राग में बार-बार आनेवाली इस तान को याद रखा जाए—'सां नि, ध प, नि ध सां नि प'। यह तान इस राग में बार-बार गायक लेते देखे जाएँगे। बिहाग में भी यह भाग थोड़े रूप में लिया जाता है, परतु उसमें आरोह में धैवत वर्ज्य किया जाता है। इतना ही नहीं, परंतु शंकरा का आभास न होने के लिए अवरोह में

कोमल मध्यम को स्पष्ट रूप से लिया जाता है; जैसे—'सां नि, प नि, सां नि ध प, म ग, म प म ग, रे सा'। शंकरा के उत्तरांग में बिहाग का आभास हो जाता है, तब गायक मध्यम वर्ज्य कर मालश्री का स्वरूप उत्पन्न कर देते हैं; जैसे—'प नि ध सां नि, प ग, प ग सा।' और फिर मालश्री को हटाने के लिए 'मा रे सा, ग प नि प ग प ग रे सा' का प्रयोग करते हैं। यह प्रयोग मनोरंजक होने के साथ-साथ सरल भी है। मेरे साथ दस-बीस बार गा लेने पर तुम्हें यह आ जाएगा। मैंने तुम्हें यह बताया ही है कि शंकरा तीन प्रकार से गाया जाता है। इनमें पहला प्रकार औडव है, जिसमें रे, म स्वर वर्ज्य किए जाते हैं। दूसरे षाडव प्रकार में केवल मध्यम स्वर को छोड़ा जाता है और तीसरा प्रकार संपूर्ण सातों स्वरों का है। यह अंतिम प्रकार अपने यहाँ प्रचलित नहीं है। संपूर्ण प्रकार के आरोह में तीव्र मध्यम लेते हैं, परंतु अवरोह में उसे वर्ज्य कर देते हैं। यह रूप बंगला-ग्रंथ 'संगीतसार' में बताया है। मालश्री में रे, ध वर्ज्य और अवरोह में ही मध्यम लिया जाता है। यह बँगला-स्वरूप एक नवीन रूप ही मानना चाहिए; बंगाल में यह प्रचलित है।

प्रश्न : इस राग के लिए कोई आधार भी बताया गया है ?

उत्तर : 'रागसर्वस्व' ग्रंथ में इसकी जाति संपूर्ण मानी गई है, परंतु उस ग्रंथ में शंकरा राग के स्वर बँगला-स्वरूप से मिलते हुए हैं या नहीं, यह नहीं कहा जा सकता। हमारे ग्रंथकारों को यही दृष्टि-भ्रम हो जाता है। यद्यपि वे अथक परिश्रम करते हैं, परंतु कोई महत्त्वपूर्ण बात ऐसी संदिग्ध छोड़ देते हैं कि पाठकों द्वारा कभी-कभी उनके साथ अन्याय हो जाता है। पाठकों के हृदय में उनके परिश्रम के प्रति जो श्रद्धा होनी चाहिए, वह नहीं हो पाती। उसी उदाहरण में यदि रागसर्वस्वकार ने शंकरा का ठाठ कल्याण नहीं माना हो, तो वह बंगाली स्वरूप के योग्य आधार ही नहीं होता। 'भिन्नरुचिर्हिलोक:' मानकर हम इसे यहीं छोड़ देते हैं। वहाँ पर तीव्र मध्यम लगाया हुआ यह स्वरूप बताया है :—

'पसांनि, धप, पनिधसांनि, गप, मंपग, रेगरेसा, प़नि़प़, सा, सासा, गप, गरेसा। पनिसांसां, रेंगरें, पमंपगं, रेंगरेंसां, सांरेंसां, धनिधप, पनिधसांनि, गपमंपगपग, रेग, रेसा।'

इस स्वरूप में 'पनिध, सांनि, पग, रेसा' यह भाग स्पष्टत: राग-वाचक है। शंकरा के तीनों प्रकार प्रचार में नहीं दिखाई पड़ते। साधारणतया औडव और षाडव स्वरूप ही अधिक दिखाई देते हैं। इन दोनों में प्राय: मध्यम स्वर वर्ज्य ही किया जाता है। शंकरा में यद्यपि धैवत वर्ज्य नहीं है, परंतु बिहाग-अंग लेने के कारण अपने-आप धैवत स्वर दुर्बल हो जाता है। इस राग की संपूर्ण खूबी 'नि, ध प, नि ध सां नि' और 'ग प ग सा' इन दोनों टुकड़ों में है। इन दोनों टुकड़ों को गायक भिन्न-भिन्न युक्तियों से प्रदर्शित करते हैं। इन दोनों टुकड़ों का इतना महत्त्व है कि यदि गायक ने अन्य नियमों की ओर दुर्लक्ष्य करते हुए भी, केवल इन्हीं टुकड़ों को ठीक-ठीक दिखा दिया, तो अधिक राग-हानि नहीं होती।

बहुमत से शंकरा राग रात्रिगेय माना गया है। इसका समय बिहाग के समकालीन ही है। कोई-कोई सगानज्ञ इसके उत्तराग की विचित्रता देखकर ऐसा सोचते हैं कि बिहाग में गांधार स्वर प्रधान है, अतः वह रात्रिगेय है और शकरा में षड्ज वादी मानकर उसे प्रात.काल गाना चाहिए। यह विचार युक्तिसंगत होने पर भी बहुमत के विपरीत है, अतः स्वीकार करने योग्य नहीं है। शंकरा गाते हुए गायक पंचम स्वर से गांधार पर और गांधार से षड्ज पर बार-बार मींड़ लेते हैं। यह काम बहुत सुंदर होता है। मालश्री में भी यही मींड़ बताई गई है, परंतु शंकरा और मालश्री की भिन्नता की ओर तुम्हारा ध्यान रहना चाहिए। मींड़ का अर्थ तुम जानते ही हो। 'गीतसूत्रसार' के लेखक श्री बनर्जी शंकरा को संपूर्ण मानते हैं और उसमें दोनों मध्यम लेने का आदेश देते हैं। परंतु मुझे तो मध्यम वर्ज्य करना अधिक उत्तम लगता है और वही तुम्हें स्वीकार करने की सलाह देता हूँ।

प्रश्न : लक्ष्यसंगीतकार का मत भी यही होगा?

उत्तर : हाँ, उसका भी यही मत है। 'लक्ष्यसंगीत' में इस प्रकार लिखा है:—

शंकरा षाडवा प्रोक्ता मस्वरेणविवर्जिता।
शंकराभरणे मेले रात्र्यां द्वितीययामके॥
रिमवर्जा चौडवापि दृश्यते लक्ष्यवर्त्मनि।
षड्जो गोवा भवेद्वादी बिहागांगेन मंडनम्॥
मध्यमस्य लंघनेन, बिहागाद्भित्परिस्फुटा।
गांधारस्यापि वादित्वे गानं रात्र्यां न दूषितम्॥

यह वर्णन कितना स्पष्ट रूप से किया गया है!

प्रश्न : जी हाँ, बिलकुल स्पष्ट कहा है। फिर राग का वादी स्वर हमें गांधार ही मानना चाहिए?

उत्तर : हाँ, क्योंकि यह रात्रिगेय राग है, अतः गांधार ही वादी स्वर उत्तम होगा। बिहाग को तो तुम अलग पहचान ही सकते हो?

प्रश्न : हाँ, आपने बिहाग के विषय में 'लक्ष्यसंगीत' का कथन नहीं बताया?

उत्तर : खूब याद दिलाई। लो, सुनो—

वेलावलस्य संमेलाज्जातो रागः सुनामकः।
बिहाग इतिविख्यातो गांधारांशग्रहो मतः॥
आरोहे रिधवर्जं स्यादवरोहे समग्रकम्।
रात्र्यां द्वितीयके यामे गानं तस्य सुसंमतम्॥
रिधयोः सति प्राबल्ये स्याद्बिलावलशंकनम्।
अतो गायकोत्तमै स्तौ लंघितौ दुर्बलौ स्वरौ॥

बिहाग के विषय में मेरा बताया हुआ वर्णन इन लक्षणों से बिलकुल मिलता है। 'शंकरा' का नाम प्रायः सारे ग्रंथों में 'शंकराभरण' कहा गया है। शंकराभरण और शंकरा, ये दोनों नाम समान लगने के कारण शकराभरण को शंकरा संक्षिप्त नाम से कहने को तैयार होंगे, परंतु मेरे मत से ये दोनों अलग-अलग राग हैं। ग्रंथों में केवल 'शकरा' नाम भी एक-दो जगह प्राप्त होता है। 'रागमाला' में मेघ राग का परिवार बताया है; वहाँ इसे मेघ का पुत्र शंकर माना है :—

मल्लारूप्यथ सोरटी च सुहवी ह्यासावरी कौंकणी ।
कांताः पंच पुरा पुराणविबुधा एता शशंसुस्तथा ॥
पुत्रास्तस्य नटोऽथ कानर इतः सारंगकेदारकौ ।
गुण्डो गुण्डमलारको जलभृतो जालंधरः शंकरः ॥

यहाँ पर स्पष्ट रूप से शंकर नाम दिया है, परंतु इस ग्रंथ से इस राग का स्वरूप समझ नहीं सकते, क्योंकि इसमें केवल निम्नलिखित वर्णन इस राग का किया है :—

धृतकरतलशस्त्रो धारयन् दिव्यरूपम् ।
जलजविपुलनेत्रो हस्ततांबूलधारी ॥
मलयजपरिलिप्तः कंकणांघ्रिकिरीटी ।
प्रथमसुरगणेशीः शंकरः स्तूयमानः ॥

सुप्रसिद्ध राजा टैगोर की रचना 'संगीतसारसंग्रह' में एक स्थान पर इस राग का वर्णन इस प्रकार किया है :—

निषादांशग्रहन्यासा संपूर्णा शंकराभिधा ।
निशीथाच्च परगेया रसे हास्ये प्रयुज्यते ॥

यह वर्णन भी तुम्हारे लिए उपयोगी नहीं हो सकेगा, क्योंकि इस ग्रंथ में इस राग के ठाठ का स्पष्ट कथन नहीं पाया जाता। मेरे खयाल से राजा साहब ने जिस ग्रंथ से उद्धरण लिए हैं, यदि वे उसे स्वतन्त्र रूप से प्रकाशित कराते तो उत्तम होता; क्योंकि केवल वर्णन-मात्र का, बिना स्वर जाने कुछ उपयोग नहीं किया जा सकता। केवल उस वर्णन को कंठस्थ कर लेने से कोई गायक शास्त्रीय रूप-रेखा-मात्र जान सकता है, परंतु यह परिणाम संगीत सीखने की दृष्टि से सम्पूर्ण इच्छित नहीं होता है।

प्रश्न : अब हमें शंकरा राग का विस्तार बता दीजिए ?

उत्तर : शंकरा का राग-विस्तार इस प्रकार होगा :—

सा, ग, प ग सा, प ग, प ग, सा ग, प, नि प ग, प ग सा।
प़ नि़ सा, सा ग सा, सा ग प नि प ग, ग प ग सा, नि नि ध प, ग प ग सा।

नि़ सा ग प, नि ध प, ग प नि ध, सां नि ध प, प ग रे, प म सा ।

सा रे सा, सा ग प ग सा, नि़ सा ग, नि ध सां, नि प ग प ग, रे सा ।

ध नि ध प, सां नि प, सा ग प, नि ध सां नि नि प, प ग, ग प ग, सा ।

सां सां, नि प, प नि ध सां, नि नि प, प, प ग, ग प ग रे सा, सा सा ग ग, प ग, रे सा, सां गं सां, नि प, ग ग, प ग, रे सा ।

प प सां, सां, सां रें सां, सां गं पं गं, पं गं सां, पं पं गं पं, गं सां, सां नि प, नि ध, सां नि प, सा ग प प, सां गं सां, नि प, ग ग, प प, ग प ग सा ।

यहाँ कहीं-कहीं रे-ध स्वर विशेष रूप से लगाए गए हैं । यह इस राग को मालश्री से अलग करने की उत्तम युक्ति है ।

कहीं-कहीं गायकों द्वारा प्रचार में 'शंकराभरण', 'शंकराअरण' आदि नाम भी सुने जाते हैं । उनके नियम शायद ही वे बता सकें; परंतु तुम ध्यानपूर्वक खोज करो, तो तुम्हें दिखाई देगा कि वे गायक उत्तरांग में 'सां नि प, नि, सां नि प' तान को सँभालते हैं और पूर्वांग में 'रे' व कहीं-कहीं एक या दोनों मध्यमों का प्रयोग कर भिन्न-भिन्न प्रकार उत्पन्न कर देते हैं । बिहाग के आरोह में भी 'रे' स्वर नहीं है, अतः इसे ग्रहण करने पर यह निराला प्रकार हो ही जाता है । 'रे' स्वर का प्रयोग करने से जहाँ कल्याण-जैसा रूप दिखाई देने लगा कि तत्काल शंकरा का उपरिनिश्चित रूप प्रयुक्त कर दिया जाता है । एक गायक ने मुझे पूर्वांग में कोमल रे लेकर और उत्तरांग में शंकरा का निश्चित रूप लेकर एक अलग प्रकार का 'शंकरा' बताया । वह केवल नाम ही बता सका । संभवतः 'शंकराअरण', शंकरा और अरुण राग के मिश्रण से उत्पन्न होता होगा ? 'अरुण' नामक राग को 'संगीतसार' ग्रंथ में मल्हार, कानड़ा और नट के मिश्रण से उत्पन्न बताया है । परंतु उस अरुण का योग शंकरा से कर लिया जाता है, ऐसा कहना युक्तिसंगत नहीं दिखाई देता । यह स्वरूप विवादग्रस्त है, इतना जान लेना ही पर्याप्त है ।

प्रश्न : जी हाँ, ठीक है । अब हम 'शंकरा' राग अच्छी तरह समझ गए हैं ।

बिलावल ठाठ—उत्तरार्ध

प्रश्न : अब इस ठाठ के किसी अन्य राग का विवरण बताइए ?

उत्तर : अब हम 'ककुभ' या 'कुकुभ' पर विचार करेंगे। कुकुभ नाम अत्यन्त प्राचीन दिखाई देता है। किसी-किसी मत से ककुभ और कुकुभ भिन्न-भिन्न राग हैं, परंतु प्रचार में ऐसे भेद कोई नहीं मानते। प्रचार में केवल कुकुभ नाम ही सुनाई देता है। बहुमत से कुकुभ, बिलावल का एक प्रकार माना गया है। यद्यपि संस्कृत-ग्रंथों में 'कुकुभबिलावल' ऐसा संयुक्त नाम नहीं दिखाई देता, परंतु प्रचार में इसे बिलावल का भेद ही मानते हैं। इस राग में सम्पूर्ण शुद्ध स्वर लगते हैं। जहाँ-जहाँ पर गायक को विशेष रूप से अल्हैया का भाग दिखाना हो, वहीं पर धैवत की संगति में कोमल निषाद का स्पर्श किया जाता है। इसके बिलावल-प्रकार होने के कारण इसमें बिलावल का मुख्य अंग स्वाभाविक रूप से आ ही जाता है। हम यह जानते हैं कि बिलावल उत्तरांगवादी और अवरोह में स्पष्ट होनेवाला राग है, बिलावल का मुख्य अंग 'प प, ध नि ध, नि सां, सां रें-सां नि ध, प' प्रसिद्ध ही है, अतः यह भाग कुकुभ में दिखाई पड़ना आश्चर्य की बात नहीं है। इसी प्रकार इसी राग में अल्हैया का भाग 'ध नि ध प म, प म ग, म रे सा' भी दिखाई देगा। अब मुख्य प्रश्न रह जाता है कि इस राग के पूर्वांग में किस राग का मिश्रण होता है ? मैं तुम्हें पहले ही बता चुका हूँ कि बिलावल के अनेक रूप—झिंझोटी, जयजयवंती, बिहाग, गौड़ आदि रागों का मिश्रण बिलावल में करने से उत्पन्न हो जाते हैं। कुकुभ में किसी के मत से झिंझोटी और किसी-किसी के मत से जयजयवंती का मिश्रण होता है। हम इस राग में जयजयवंती का मिश्रण ही स्वीकार करते हैं। लक्ष्यसंगीतकार ने भी यही माना है। 'राग-तरंगिणी' के मत से केदार, पूर्वी तथा वेलावली के संयोग से ककुभ राग उत्पन्न होता है 'केदारी पौरवी वेलावलीभिः ककुभामता'। प्रायः यह माना गया है कि जयजयवंती में सोरठ, गौड़ और बिलावल का योग होता है। कुकुभ में बीच-बीच में आरोह में गांधार वर्ज्य होनेवाले भाग भी आते हैं; जैसे—'रे रे प प, म ग रे ग सा, रे रे,' 'रे रे, म म, प प, ध नि ध प, म ग रे ग सा, रे रे'। गायकों द्वारा गाए जाने-वाले रागों, विशेषकर मिश्र रागों के नियम निश्चित करना कभी-कभी बहुत कठिन हो जाता है, क्योंकि उसमें भिन्न-भिन्न रागों के टुकड़े अपने-अपने नियमों से मौजूद रहते हैं। Capt. Willard साहब ने अपनी पुस्तक में 'बिलावल, पूर्वी, केदार, देवगिरी, मारू' इतने राग कुकुभ के अंगभूत बताए हैं। इस जानकारी का उपयोग तुम ठीक रूप से नहीं कर सकोगे, क्योंकि इन रागों का मिश्रण कहाँ और कैसे किया जाए; इस विषय पर कहीं भी कुछ जानकारी प्राप्त नहीं होती। 'कुकुभ' बिलावल का एक प्रकार होने के कारण प्रभातकाल में ही गाया जाता है, यह अलग कहने की आवश्यकता नहीं। इस राग में जयजयवंती का मिश्रण हुआ है, इसके प्रमाण-स्वरूप कहीं तानों में, आरोह में गांधार वर्ज्य किया हुआ तुम्हें दिखाई देगा; जैसे 'रे रे, म म, प प सां'। यह मैं बतला चुका हूँ कि जयजयवंती में सोरठ, गौड़ और बिलावल राग मिले हुए हैं। कोई-कोई संगीतज्ञ आरोह में बिलकुल गांधार

वर्ज्य करने का मत व्यक्त करते हैं, परंतु प्रचार में गायकों द्वारा केवल बिलावल के अंग दिखाते समय आरोह में ही गांधार वर्ज्य किया जाता है। राग की सारी पकड़ उस छोटे-से जयजयवंती के टुकड़े में सन्निहित है। यह टुकड़ा प्रायः आरम्भ में ही लगाया जाता है। आरोह में कोमल निषाद काफी रूप से दिखाया जाता है, क्योंकि उससे अल्हैया का अंग स्पष्ट होता है। इस राग में जहाँ-जहाँ गांधार का प्रयोग होता है, वहाँ-वहाँ वह बिलकुल स्पष्ट रूप से प्रयोग किया जाता है। क्योंकि उससे सोरठ राग को अलग किया जाता है।

प्रश्न : इस राग का स्वर-विस्तार कैसे होगा ?

उत्तर : इस प्रकार :—

'प प म ग रे ग, सा, रे, सा, प़, नि़ सा, रे रे, म प, म ग रे ग सा।

ध नि॒ ध प, ध म ग, रे ग सा, रे ग म प, म ग म, रे सा, सा रे सा, रे म प, ध म, ग म, रे सा, सां नि॒ ध नि॒ ध प, म ग म रे सा।

नि़ सा नि़ ध़ नि़ ध़ प़, सा, रे प म प ध म ग रे ग सा, म प ध प ध म ग, म रे सा।

प प, ध नि ध, नि सां, सां, ध नि ध, सां, रें सां ध नि॒ प, ग म रे ग प ध, रें सां, ध नि॒ प, ध प म ग रे ग सा, रे रे, रे ग ग म ग रे सा, सा।'

यह राग गाने में सरल नहीं है; अतः मैं जहाँ-जहाँ विश्रांति लेता हूँ, उसकी ओर अच्छी तरह से ध्यान दो। इस राग का वादी स्वर पंचम और संवादी ऋषभ है, जो इस राग में जयजयवंती का अंश है। फिर भी जयजयवंती का मुख्य अंग 'रे ग॒ रे सा, नि़ ध़ प़ प़ रे' इस राग में नहीं लिया जाता; अर्थात् यह राग भिन्न ही है। यहाँ पर कोमल गांधार वर्ज्य करने पर कुकुभ का अंग हो जाता है। कुकुभ में बीच-बीच में रे, प स्वरों की संगति बहुत अच्छी प्रतीत होती है।

प्रश्न : अपने संस्कृत-ग्रंथों में इस राग के विषय में क्या कहा गया है ?

उत्तर : दक्षिण की ओर के किसी भी ग्रंथ में इस राग का वर्णन नहीं पाया जाता। जिन ग्रंथों में इसका वर्णन मिलता है, उनका कथन निम्नलिखित है :—

पारिजाते—पंचमोद्ग्राहसम्पन्ने धहीने ककुभे पुनः।
तीव्रगांधाररराहित्य मारोहे चावदन् बुधाः॥

संकीर्णरागाध्याये—देवश्रीर्मालवः पूर्वा केदारश्चबिलावलः।
अन्योन्ययोगतस्तेषां ककुभाजनिरुच्यते॥

संगीतानूपविलासे—पूर्वीशंकरभूपाख्यः केदारश्चबिलावलः।
एतेभ्यः ककुभो रागो जातः शांतकरो नृणाम्॥

रागतरंगिणीकार ने ककुभ को 'कर्णाट' मेल में रखा है। इस ठाठ का वर्णन इस प्रकार किया गया है—'शुद्धेषु सप्तस्वरेषु गांधारश्चेत् मश्रुतिद्वयं गृह्णाति तदा कानराख्यातं संस्थानं भवति'। इस कानरा ठाठ में इसके बताए हुए रागों के नाम निम्नलिखित हैं :—

पाडवः कानरो रागो देशाविख्यातिमागतः ।
वागीश्वरीकानरश्च खम्माइची तुरागिणी ॥
सोरठः पारजो मारुः जैजयंती तथापरा ।
ककुभापि च कामोदः कामोदी लोकमोदिनी ॥

लक्ष्यसंगीते :—

स्याच्छुद्धस्वरसंमेलाद्रागः ककुभनामकः ।
बेलावलप्रभेदोऽयं रिपसंवादशोभनः ॥
रिपयोः संगतिश्चित्रा सर्वेषांस्यान्मनोहरा ।
बेलावलावरोहेण भवेद्रागप्रसूचनम् ॥
कंपनमृषभेह्यत्र जयावंतीं प्रदर्शयेत् ।
अभावे तु कोमलस्य गांधारस्य नसाभवेत् ॥

यही रूप प्रचलित रूप से मिलता है, अतः इसे ही तुम्हें स्वीकार करना चाहिए।

प्रश्न : ठीक है, हम ऐसा ही करेंगे। अब आगे का राग बताइए ?

उत्तर : अब मैं तुम्हें 'सरपरदा' राग बताता हूँ। 'सरपरदा' नाम मुसलमानी है। कहा जाता है कि अमीर खुसरो द्वारा प्रसिद्ध किए हुए रागों में से एक राग यह भी है। 'रागविबोध' के कर्नाटगौड़ की टीका में कुछ मुसलमानी रागों के नाम दिए हुए हैं, उनमें इस राग का नाम भी दिया हुआ है। 'कर्णाटगौड़' राग में बिलावल मिला देने पर 'सरपरदा' हो जाने का कथन वहाँ मिलता है। परतु इतनी-सी जानकारी से राग की सम्पूर्ण कल्पना हम नहीं कर सकते। जबकि इसे मुसलमान गायकों द्वारा प्रचारित राग माना है, तब इसके नियम प्राचीन संगीत-ग्रथों में प्राप्त होने भी शक्य नहीं हैं। 'लक्ष्यसंगीत' में इस राग का वर्णन प्राप्र होता है और तुम्हारे लिए वही मत स्वीकार करना सुविधापूर्ण है।

प्रश्न : यह राग बिलावल का प्रकार है, तब उत्तरांगवादी स्वर कौन-सा है ?

उत्तर : इस राग का वादी स्वर षड्ज और संवादी स्वर पंचम है। कोई-कोई इसमें वादी गांधार को मानते हैं। परन्तु हम ऐसा नहीं मानेंगे।

प्रश्न : बिलावल के महत्त्ववाले धैवत, गांधार इसमें भी वैसे ही बने रहते हैं ?

उत्तर : हाँ, तुम ठीक समझ गए। यह साधारण धारणा हो गई है कि 'सरपरदा' में यमन, अल्हैया और गौड़ का मिश्रण मिलता है।

प्रश्न : इन तीनों रागों के मुख्य अंग इस प्रकार हमें स्मरण हैं—'नि़रेग, रेग, रेसा'; ध नि़ ध प, म ग, म, रे सा; 'रेगरे, मग'। क्या सरपरदा में ये सभी स्वरूप हमें दिखाई पड़ेंगे ?

उत्तर ; यदि तुम ध्यानपूर्वक देखोगे, तो तुम्हें ये भाग अवश्य दिखाई पड़ेंगे। एक विशेष बात और भी है कि इस राग में कहीं-कहीं बिहाग का आभास भी दिखाई देगा।

प्रश्न : बिहाग की पकड़ आपने 'ग म प म ग, रे सा' बताई है।

उत्तर : मुझे दिखाई देता है कि मेरी बताई हुई बातों को तुमने बहुत अच्छी तरह स्मरण रखा है। इस तरह से मेरा काफी परिश्रम कम हो जाएगा। थोड़ा-सा इशारा करते ही बहुत-सी बातें तुम्हारे ध्यान में आने लगी हैं। यह मेरे लिए आनंद की बात है। अभी कितने ही राग तुम्हें बताने शेष हैं। इन्हें तुम शीघ्र समझ लोगे। मैं अब विशेष रूप से पुनरुक्ति नहीं करूँगा। यद्यपि तुम बुद्धिमान् हो, परंतु यह विषय तुम्हारे लिए नवीन है; अतः मैं बीच-बीच में विशेष रूप से पिछली बात दुहराता रहता था।

प्रश्न : जी हाँ, वह हमारे लिए सचमुच ही लाभजनक हुआ है। क्या 'सरपरदा' लोकप्रिय राग है?

उत्तर : हाँ, बहुत लोकप्रिय है। यह मुसलमानी प्रकार हम लोगों को बहुत पसंद आया है। हमारे लोग बिलकुल उदार हृदय के हैं। मधुर स्वरूप देखते ही, चाहे वह कैसा ही क्यों न हो, उन्होंने उसे आदर देकर स्वीकार कर लिया है। देखो, इस विषय पर ग्रंथकार क्या कहता है :—

रंजनाद्रागताप्रोक्ता सर्वेषामितिसंमतम् ।
यद्यत्स्यात्तद्गुणोपेतं मानमप्यर्हयेत् सताम् ॥
कैश्चिद्यावनिकैः प्रज्ञैरुन्नीतमविशंकितम् ।
अस्मत्संगीतभाण्डारमिति मतं न चाद्भुतम् ॥
सर्पर्दातुरुष्कतोड़ी हिजेजो बाखरेजकः ।
पुष्कईराखजूलूफी नवरोजी हुसेनिका ॥
उज्ज्वलो मूसली चैव ग्रहपंचसुगादुगाः ।
संतो यावनिका रागाः सोमनाथेन लक्षिताः ॥
नमे दोषास्पदं भाति तत्र किंचिद्धि न्यायतः ।
मते मम भवेन्नूनं संगीतोन्नतिरेव सा ॥

प्रश्न : हमारा यही मत है। लोकरंजनकारी रूप, राग कहलाने योग्य ही होता है। 'सरपरदा' में बिहाग की छाया दिखाई पड़ सकती है, यह अभी आपने बताया था। मेरे खयाल से जहाँ बिहाग की छाया इस राग में आती होगी, वहाँ आरोह में ऋषभ वर्ज्य कर अवरोह में अल्हैया का भाग प्रबल कर 'ध नि ध, प, म ग, म रे, सा' बिहाग की छाया सहज ही दूर कर दी जाती होगी?

उत्तर : तुम बिलकुल ठीक कह रहे हो, गायक ऐसा ही करते हैं।

प्रश्न : अब आप हमें इस राग का विस्तार और लक्ष्यसंगीतकार का मत सुना दीजिए। प्राचीन ग्रंथों में तो यह मिलेगा हो कैसे !

उत्तर : मैं तुम्हें 'चतुर पंडित' का मत सुना देता हूँ :—

शुद्धस्वरसंमेलने सपंदा रागिणीमता ।
बिलावलप्रकारोऽयं प्रातःकालोचितः पुनः ॥
सपयोरत्र संवादः स्वीकृतो बहुसंमतः ।
अवरोहे सनिश्चयं बिलावलप्रदर्शनम् ॥
गांधारस्य केचिदिह वादित्वमादिशंति तत् ।
मते तेषां धैवतोऽपि महत्त्वमाप्नुयाद्भृशम् ॥
यद्यप्यत्र बिहागस्य किंचिद्रूपं समुद्भवेत् ।
आयतो ऋषभो नूनं श्रोतृभ्रांतिं निवारयेत् ॥
यमनालायिकागौडा रागिण्यामत्र मिश्रिताः ।
इतिकेचित्संगिरंति लक्ष्यसंगीतकोविदाः ॥

इस श्लोक में बताई हुई प्रायः सभी बातें मैं तुम्हें बता चुका हूँ। अब इस राग का स्वर-विस्तार बताता हूँ :—

सा, रे ग म, ध ध प, प म प, म ग, ग म ग, रे, सा, ग म ध प, ग म रे सा। ग रे सा, सा रे ग म, रे रे सा, ध प ध म ग, म प म ग, रे रे सा।

सा रे सा, ऩि सा, प़ ध़ ऩि सा, ग रे ग म प, ग म रे, सा, रे ग म ध ध प।

ग म प, ध ध प, म प, ध ऩि ध प, म ग, रे ग म ग, म प म ग म रे, सा, ध प।

नि ध नि सां, नि ध प, ध प, नि ध प, म प ध नि सां नि ध प, म ग, ग म, ध ध प, म प, म ग, म रे, सा।

म प, ध नि ध, नि सां, सां रें गं मं गं रें सां, सां नि ध प, ग म, ध ऩि ध, ऩि प, ध नि सां, सां रें सां, नि ध ध प, ग म रे, सा, सा, रे ग म, ध ध प।

प्रश्न : यह स्वरूप हमें बिलकुल स्वतंत्र ही समझ में आया है। इस स्वर-विस्तार में भिन्न-भिन्न स्थानों पर ठहरने में ही बड़ी खूबी है ! इसी से राग-पहचान की जा सकती है ?

उत्तर : तुम ठीक कहते हो। अब तुम्हें 'नटबिलावल' राग समझना है; पर इसे कहने के पूर्व हमें 'नट' राग पर विचार करना पड़ेगा।

प्रश्न : जी हाँ, 'यमनीबिलावल' समझाने के पूर्व आपने बिलावल समझाने की आवश्यकता बताई थी, वह हमें याद है। कोई बात नहीं, आप पहले 'नट' ही समझा दीजिए, वह भी तो इसी ठाठ का राग होगा ?

उत्तर : हाँ, वह भी इसी ठाठ का राग है। नट राग को प्रचार में ग्रंथानुसार 'नाट' भी कहा जाता है। अनेक ग्रंथों में उसे 'शुद्धनाट' का नाम दिया हुआ है। वहाँ पर यह शंका होती है कि नाट और शुद्धनाट दो भिन्न-भिन्न राग तो नहीं हैं ? कई गायक इन्हें भिन्न ही मानते हैं। इसका कारण तुम्हें अभी समझ में आ जाएगा उस नाट राग में अनेक अन्य रागों का मिश्रण होकर प्रचार में भिन्न-भिन्न रूप देखे जाते हैं; जैसे कामोदनाट, केदारनाट, हमीरनाट आदि। परंतु अभी हमें उसके स्वतंत्र रूप को खोजना है। इस राग का ठाठ बहुमत से 'शंकराभरण' है। कोई-कोई इसमें तीव्र मध्यम स्वर पंचम की संगति में आरोह में लगा देते हैं। परंतु वह स्वर बिलकुल गौण ही रहता है। यह राग रात्रि के दूसरे प्रहर में गाया जाता है। इसका वादी स्वर मध्यम है और इसका प्रयोग व्यस्त अथवा खुले रूप में किया जाता है। यह काम राग के स्वरूप को बिलकुल भिन्न कर देता है।

प्रश्न : तो फिर केदार-जैसा थोड़-सा रूप उत्पन्न हो जाता होगा ?

उत्तर : हाँ, थोड़ा-सा आभास हो जाता है, परंतु केदार में गांधार स्वर स्पष्ट नहीं, आरोह में रे नहीं, अवरोह में ध वर्जित नहीं आदि भिन्नताएँ होती हैं। यहाँ रे ग म प, सा रे सा, स्वर-समुदाय सदैव दिखाई देगा।

प्रश्न : क्या यह राग छायानट-जैसा दिखाई देता है ?

उत्तर : ठीक पहचान की। यह राग उसके समान कुछ अंशों में अवश्य दिखाई देता है, परंतु छायानट में केदार-अंग नहीं है, इसी लिए यह भिन्न हो जाता है।

प्रश्न : आपने बताया था कि श्याम राग में केदार का बहुत अंश लिया जाता है, फिर उससे इस राग को कैसे दूर किया जाएगा ?

उत्तर : 'श्याम' में तीव्र मध्यम प्रधान और बहुत मधुर स्वर के रूप में आता है, वैसे ही 'मरे सा' स्वरों का प्रयोग मीड़ के रूप में होता है। परंतु नट में यह प्रकार नहीं है। नट राग का उठाव इस प्रकार से अच्छा दिखाई देता है, देखो—'सा सा, ग म म, प म ग, ग म'।

प्रश्न : क्या यहाँ पर गौड़सारंग का आभास नहीं हो जाता ?

उत्तर : हो सकता है, परंतु 'रे ग रे म ग, प रे सा,' यह तान स्थान-स्थान पर लेकर इसे अन्य समस्त रागों से बचाया जाता है।

प्रश्न : जी हाँ ठीक है, मैं भूल गया था। अब आगे बताइए ?

उत्तर : इस राग के अवरोह में ध-ग स्वर वर्ज्य किए जाते हैं। यह काम गायक बड़े कलात्मक ढंग से कर दिखाते हैं। 'सां नि ध त्रि प, म ग म रे सा' इस प्रकार का अवरोह करने पर नियम सँभाला जा सकता है।

प्रश्न : दोनों मध्यम के रागों के अवरोह में इसी प्रकार ग वर्ज्य करने के विषय में आपने बताया था।

उत्तर : तुम्हें ठीक याद है। छायानट, कामोद, श्याम आदि रागों में इसी प्रकार का स्वरूप तुम्हारे सामने आ चुका है। ऐसी स्थिति देखकर कोई-कोई मार्मिक गायक ऐसा सोचते हैं कि ऐसी जगहों पर उनमें नाट राग का अंश मिश्रित होता है। यह राग विलंबित रूप में गाते हुए गायक अपने नियमों को ठीक-ठीक सँभाल लेता है, परंतु शीघ्रतापूर्वक गाने से वे नियम वैसे नहीं रह जाते। चतुर गायक ऐसे समयों पर बीच-बीच में राग के निश्चित अंगों को श्रोताओं को दिखाते रहते हैं, जिससे कि वे मुख्य राग को भूल न सकें। ये मुख्य भाग मैं तुम्हें ऊपर बता चुका हूँ। इस नाट राग को गाने में तुम्हें छाया (छायानट), कामोद और बिलावल का आभास कहीं-कहीं पर हो सकता है, परंतु तुम उन रागों को अलग कर सकते हो।

प्रश्न : बिलावल उत्तरांगवादी है, अतः सहज ही भिन्न हो जाएगा। छाया (छायानट) और कामोद में व्यस्त मध्यम नहीं है और अवरोह में धैवत है। इस प्रकार ये राग निराले हो जाएँगे।

उत्तर : शाबाश! तुम बहुत अच्छी प्रकार से समझ गए हो। इसी का नाम पद्धति है। इस समय तुम्हें इस राग की अधिक जानकारी नहीं है, अतः एक-दो ग्रंथों का मत भी देख लें :—

रागविबोध :—

मेलेतु शुद्धनाट्याः शुचिसमपास्तीव्रतमरिमृदुमौ च।
तीव्रतमधमृदुसमतो रागाः स्युः शुद्धनाटाद्याः॥
नाटः शुचिः प्रदोषे सांशन्यासग्रहः पूर्णः॥

यह अपना प्रकार नहीं है। इसमें दो गांधार व दो निषाद लिए गए हैं व अपने स्वर रे-ध बिलकुल नहीं हैं।

स्वरमेलकलानिधि :—

शुद्धस्वरास्तुसमपाः षट्श्रुत्यृषभधैवतौ।
च्युतमध्यमगांधारश्च्युतषड्जनिषादकः।
स्वरैरमीभिः संयुक्तः शुद्धनाट्याश्चमेलकः॥

यह ठाठ भी 'रागविबोध' के ठाठ से ही मिलता है।

चतुर्दण्डिप्रकाशिका :—

षड्जः षट्श्रुतिको नाम ऋषभोऽतरसंज्ञकः।
गांधारस्तु मपौशुद्धौ षट्श्रुतिर्धैवतस्वरः।
काकल्याख्यनिषादश्चे देतावत्स्वरसंभवः॥

यह ठाठ भी 'रागविबोध' के ठाठ से मिलता है।

चंद्रोदये—

'निगौयदात्रिश्रुतिकौ भवेतां ।
लघ्वादिकौ षड्जकमध्यमौ च ॥
तथाविशुद्धाः समपा भवंति ।
विशुद्धनट्टाह्वयकस्य मेलः ॥
सांशग्रहांतः सकलस्वरश्च ।
स्याच्छुद्धनट्टोऽह्नि तूर्ययामे ॥

यह ठाठ भी 'रागविबोध' के बताए ठाठ के अनुसार ही है।

पारिजाते—

रिस्तुतीव्रतरो यस्मिन् गांधारस्तीव्रसंज्ञकः ।
धस्तुतीव्रतरः प्रोक्तो निषादस्तीव्रनामकः ॥
अवरोहे धगौनस्तो नाटे रिस्वरमूर्च्छना ॥

यह वर्णन अपने प्रचार से मिलता हुआ है। बहुत-से गायक अवरोह में धैवत वर्ज्य करना पसंद नहीं करते। इस प्रकार का एक स्वरूप 'पारिजात' में इस प्रकार बताया गया है :—

वेलावलीसमुद्भूतो मांशो रिन्यासको नटः ।
अवरोहे गहीनः स्याद्गांधारादिकमूर्च्छना ।

इस स्वरूप को 'नटनारायण' नाम दिया हुआ है। यह नाम प्रचलित नहीं है। राग-वर्णन अवश्य सुंदर और प्रचार में लाने के योग्य सरल भी है। अवरोह में धैवत ले लेने से यह प्रकार हो जाता है। मध्यम वादी तो हम मानते ही हैं। 'रागमंजरी' में 'नटनारायण' का वर्णन इस प्रकार किया गया है—'नट्टनारायणो रागः काकल्यंतर-राजितः। संपूर्णः संततं सत्रिवर्षाकालेऽतिवल्लभः ॥' चंद्रोदय में भी इसी प्रकार का स्वरूप दिया गया है। इस ग्रंथ में शुद्धनाट और नटनारायण दो अलग-अलग राग माने हैं।

रागतरंगिणीकार ने 'नाट' और 'शुद्धनाट', ये दो प्रकार माने हैं। इन दोनों को उसने मेघ-संस्थान में रखा है। मेघ-संस्थान के स्वर मैं तुम्हें ऊपर बता चुका हूँ। इस ठाठ में दोनों मध्यम लिए जाते हैं। यह मत भी हमारे लिए अच्छा है।

राजा साहब टैगोर के ग्रंथ 'संगीतसारसंग्रह' में भिन्न-भिन्न ग्रथों के उद्धरण दिए गए हैं। परंतु उन्होंने राग के स्वरों की स्पष्टता कहीं नहीं की है। अतः तुम्हें उस वर्णन का कोई उपयोगी लाभ प्राप्त नहीं हो सकता। तुम्हें इन भिन्न-भिन्न ग्रंथ-मतों से उकताहट उत्पन्न न होनी चाहिए। प्राचीन जानकारी

तुम्हें जान लेना चाहिए। प्राचीन ग्रंथों का अध्ययन किए बिना लोग यह नहीं समझेंगे कि तुम्हें संगीत-शास्त्र का योग्य ज्ञान हो गया है। ग्रंथों की जानकारी हो जाने पर प्रचलित किसी भी राग की शास्त्रीयता या अशास्त्रीयता का निश्चय करने का साधन तुम्हें प्राप्त हो जाता है। किसी-किसी प्रसंग पर ऐसे धूर्त गायकों से भी भेंट हो जाती है, जो प्रत्यक्ष संगीत तो मुसलमानी गाते हैं, परंतु बात भरत, मतंग, नारद, तुंबुरु आदि के समय की करते हैं। इनमें से कुछ बिना संस्कृत सीखे हुए भी होते हैं। ये एक विशेष कुशलता कर दिखाते हैं। जहाँ इन्हें कोई प्रत्यक्ष उत्तम गायक मिला, वहाँ ये प्राचीन संस्कृत-शास्त्र की बातें आरंभ कर देते हैं। प्रत्यक्ष संगीत और ग्रंथ, दोनों की जानकारी हो जाने पर तुम ऐसे गायकों से उत्तम रूप से बातें कर सकोगे।

प्रश्न : जी हाँ, परंतु हमें ग्रंथ-मतों से जरा भी उकताहट नहीं होती, बल्कि रुचि होती है। आपने अभी जिन चार प्राचीन ऋषियों के नाम लिए थे, क्या उनके ग्रंथ हमें देखने को मिल सकते हैं ? इन ऋषियों के नाम हमें बार-बार सुनने को मिलते हैं।

उत्तर : मेरे खयाल से तुम्हें उनके ग्रंथों का मिल सकना संभव नहीं है। इन ऋषियों के विषय में मैं दो शब्द और कहूँगा। 'भरत-नाट्यशास्त्र' इस समय छप चुका है। उसमें श्रुति, ग्राम, मूर्च्छना, जाति आदि विषयों का वर्णन है, परंतु अपने रागों का नहीं है। 'मतंग' के मत का उल्लेख 'रत्नाकर' की टीका में कहीं-कहीं दिखाई पड़ जाता है। परंतु उनका स्वतंत्र ग्रंथ मेरे देखने में नहीं आया। 'नारद' के नाम से प्रसिद्ध ग्रंथ मैंने दो-चार देखे हैं। दो-तीन तो स्वयं मेरे पास हैं, उनके नामों की चर्चा भी मैं कर चुका हूँ। 'नारदीय शिक्षा' में इस समय प्रचलित राग-परिवार आदि का उल्लेख नहीं पाया जाता। 'संगीतसारसंग्रह' में 'नारदसंहिता' की राग-रचना दी है। इस राग-रचना में केवल रागों के चित्र (ध्यान) बताए गए हैं, स्वरों का खुलासा नहीं है। परंतु यह नारद कौन-सा है ? यह प्रश्न उत्पन्न हो जाता है। यह 'नारदीय शिक्षा' का लेखक नारद तो है ही नहीं। रागों के नाम भी 'सिंधुड़ा, कानड़ा, वल्लारी, मालव, गुज्जरी, भूपाली, वराड़ी, कर्नाटी, मारहाटी (मराठी), इस प्रकार के हैं। यह भी विचारणीय बात है। तुंबुरु का लिखित कोई ग्रंथ मेरे देखने में नहीं आया। अस्तु,

अब हम अपने मूल विषय की ओर बढ़ें। तुम्हें अब नट राग का स्वरूप बताए देता हूँ—

सा, सा, म, म, ग म, म प प, म ग, ग म, म प, ध, नि सां, नि ध, नि प, रे ग, ग म प, सा रे सा।

सा रे सा, ग म, प म, ग म, ध नि प, म प ध नि प, म प म ग म, म प, सां ध नि प, रे ग प म, ग म, सा रे सा।

प म ग म, प मं प, ध नि सां नि ध नि प, सां, रें गं मं, रें रें सां, सां ध नि प, म प सां, ध नि प म प म ग, म, सा ग, ग म, प, रे ग म प, सा रे सा।

प प ध सां नि सां रें रें सां, सां रें गं गं मं, रें रें सां, सां नि ध नि प, म प म ग म, सां ध नि प, ग ग म प, सा रे सा।

प्रश्न : 'नट' का स्वरूप हो गया, अब नटबिलावल समझाइए ?

उत्तर : 'नटबिलावल' राग का स्वरूप इस प्रकार कहा जाता है :—

सा सा ग, ग म, प म, म प प, म, ग ग, म प ग ध नि सां, सां नि ध, नि प, म ग, म रे रे सा।

प प ध नि ध नि सां सां, सां नि ध, नि सां, नि ध ध प, म ग म, ध ध नि प प, ध नि सां, प प ध नि प, म प म ग, म रे रे सा, सा सा, ग, ग म।

यह राग नट और बिलावल के मिश्रण से उत्पन्न होता है, अर्थात् इसमें ये दोनों दिखाए जाते हैं। 'लक्ष्यसंगीत' ने इस राग के विषय में कहा है :—

शंकराभरणान्मेलाज्जातो रागः सुनामकः।
बिलावलो नट्टपूर्वो मध्यमांशो गुणिप्रियः॥
पूर्वांगे नट्टयोगेन धत्ते गौडस्वरूपकम्।
बिलावलस्यावरोहे भवेदंगं सुनिश्चितम्॥
स्यान्मध्यमस्य व्यस्तत्वं प्रसिद्धं नट्टगायने।
अत्रापितद्योजनीयं यथायोग्यं विचक्षणैः॥
रिधयोः संगतिश्चापि भवेद्वैचित्र्यकारिणी।
समीचीनं गानमस्य प्रथमप्रहरेदिने॥

भावार्थ : यह राग शुद्ध स्वरों के ठाठ से उत्पन्न होता है। इसका वादी स्वर मध्यम है। पूर्वांग में नट राग का भाग आता है, उसमें श्रोताओं को थोड़ा-सा गौड़ का आभास होता है। अवरोह में स्पष्ट बिलावल हो जाता है। नट में मध्यम व्यस्त रूप में लेना प्रसिद्ध ही है, वही इस राग में भी लिया जाता है। इस राग में रे, ध स्वरों की संगति उत्तम दिखाई देती है। इसके गाने का समय दिन का प्रथम प्रहर है।

नाट राग के अन्य लक्षणों पर विचार न करते हुए हमें 'लक्ष्यसंगीत' के लक्षणों को मानना ही उचित है।

प्रश्न : अच्छी बात है, अब हमें आप किस राग का वर्णन सुनाएँगे ?

उत्तर : अब हम शुक्लबिलावल पर विचार करेंगे। वह भी कुछ अंशों में नटबिलावल-सरीखा दिखाई देता है। इसका मुख्य कारण व्यस्त मध्यम का

प्रयोग है। इस व्यस्त मध्यम का प्रभाव कुछ विचित्र ही होता है। इस राग में 'सा, ग, ग म' इस प्रकार का आरम्भ गायक कभी-कभी करते हैं। परन्तु नट-बिलावल में छायानट-जैसा जो भाग कहीं-कहीं दिखाई देता है, वह इस राग में वैसा नहीं लिया जाता; नट का मुख्य अंग, अवरोह में ध, ग अच्छादित रूप से प्रयोग करके प्राय: गायक सँभालते हैं। वह काम भी इस राग में नहीं होता। मोटे रूप से यह कहा जा सकता है कि राग का आरोह-अवरोह बिलावल ठाठ-जैसा सरल ही है, परन्तु सारे राग की विचित्रता स्वर-समुदाय की रचना पर और भिन्न-भिन्न स्थानों की विश्रान्ति पर आश्रित है। दृढ़ नियमों की दृष्टि से ऐसे राग अधिक सन्तोषजनक नहीं होते, क्योंकि इनका विषय प्राय: विकारग्रस्त रहता है। परन्तु हमें प्रचलित संगीत का अनुसरण करते हुए ही आगे बढ़ना है। प्रचार में जो-जो नियम पाए जाते हैं, उन्हें ही स्वीकार करना श्रेयस्कर होगा। ऐसा करने में हमें 'लक्ष्यसंगीत' से बड़ी सहायता प्राप्त हो सकती है। लक्ष्यसंगीतकार ने बहुत-से ग्रंथ देखे हैं, ऐसा उसके लिखने से पता चलता है।

इस शुक्लबिलावल राग में बीच-बीच में श्रोताओं के सम्मुख मुक्त या खुला मध्यम प्रयुक्त कर दिखाना पड़ता है। इस ठाठ के रागों में इस प्रकार मुक्त मध्यम के प्रयोगवाले केवल दो-चार राग ही निकल सकते हैं, अत: इस राग को निश्चित करने का कार्य काफी सुविधापूर्ण हो जाता है। इस प्रकार खुला मध्यम देखकर मार्मिक श्रोता उत्तरांग ढूँढने लगते हैं; और उत्तरांग मिलने तथा उसका संयोग बिलावल में देखकर फिर केवल यही जाँच करना रह जाता है कि यह नट-बिलावल है या शुक्लबिलावल है। इस बात के निर्णय के लिए रे, ग ध स्वरों की स्थिति की खोज करनी पड़ती है। नट के नियम पालने का थोड़ा-बहुत प्रयत्न दिखाई दिया तो सिद्ध होगा कि राग नटबिलावल है; यदि ऐसा नहीं हुआ तो प्राय: शुक्ल-बिलावल ही निश्चित होता है। प्रचार में इन दोनों रागों को अलग-अलग करने में तुम्हें कठिनाई हो सकती है, परन्तु मेरी बताई हुई कोई-कोई बात तुम्हें इन रागों की पहचान करने में कुछ अंशों में सहायक सिद्ध होगी। संस्कृत-ग्रंथों में इस राग का स्वतंत्र वर्णन नहीं पाया जाता।

प्रश्न : क्या किसी भी ग्रंथ में इसका वर्णन नहीं पाया जाता ?

उत्तर : इस प्रश्न का उत्तर मैं कैसे दे सकता हूँ ? मेरे पास ये सब ग्रंथ हैं—रागविबोध, स्वरमेलकलानिधि, सारामृत, रागचन्द्रोदय, चतुर्दण्डिप्रकाशिका, संगीत-चिंतामणि, अनूपांकुश, अनूपरत्नाकर, संगीतसारसंग्रह, संगीतसुधाकर, रागमाला, रागतरंगिणी, संगीतपारिजात, संगीतदर्पण, रागमंजरी, संगीतकलिका, संगीत-समयसार, संगीतचन्द्रिका, संगीतमकरंद, संगीतकल्पद्रुम, संगीतविलास, संगीत-शिरोमणि, चत्वारिंशच्छतरागनिरूपणम्। इन्हीं सब ग्रंथों की मदद से मैं तुम्हें संगीत-पद्धति सिखा रहा हूँ। इन ग्रंथों में मुझे यह राग नहीं दिखाई दिया, इतना ही मैं कह सकता हूँ ?

प्रश्न : आप हमें ये सभी ग्रंथ पढ़ाएँगे न ?

उत्तर : अवश्य ! इनमें से कुछ ग्रंथों के अनुवाद (भाषांतर) तुम्हारे हित की दृष्टि से संगृहीत कर दिए हैं। ये सभी ग्रंथ अपने-अपने प्रमाण से उत्तम हैं, परंतु आजकल की हमारी संगीत-पद्धति को देखते हुए 'लक्ष्यसंगीत' जितना उपयोगी ग्रंथ शायद ही प्राप्त हो सकेगा, ऐसा कहना पड़ता है।

प्रश्न : शुक्लबिलावल का वर्णन लक्ष्यसंगीतकार ने किस प्रकार किया है ?

उत्तर : उसका वर्णन इस प्रकार है :—

या शुद्धस्वरमेलात्सा शुक्लावेलावली मता।
वेलावल्या प्रभेदोऽयं प्रातःकालोचितो मतः॥
शुद्धमोऽत्र भवेद्वादी संवादी षड्ज ईरितः।
आरोहे स्याद्रिदौर्बल्यं न्यासो मध्यम एव च॥
कोमलस्य निषादस्य स्पर्शो धैवतसंयुतः।
अवरोहे सुप्रविष्टो नूनं स्याद्रक्तिदः सदा॥

इस वर्णन में यह बताया गया है कि आरोह में ऋषभ दुर्बल लिया जाता है। इसे ध्यान में रखना चाहिए। इसी रीति से 'नट' का भाग उत्तम रूप से दिखाया जा सकता है। 'लक्ष्यसंगीत' के आधार पर मैंने जो लक्षण-गीत तैयार किए हैं, उन्हें सीख जाने पर ये सभी राग तुम्हें अच्छी तरह समझ में आ जाएँगे।

प्रश्न : ठीक है ! अब इस राग का विस्तार बताइए ?

उत्तर : स्वर-विस्तार सुनो :—

सा, ग, गम, गमपमग, रेग, गम, प, सां, रेंसां, धधप, मग, रेग, मप, मग, म, रेसा।

सा, गग, म, पमग, रेसा, सा, रेगम, गम, पपमपम, ग, पधप, धनिधप, मपमग, रेग, पमग, मरेसा। साग, गम।

गमप, धप, निध, प, सां, रेंसांनिध, निधप, म, पमग, म, रेरेसा।

मगम, निधप, मपम, मगरेग, सा, गम, मगमप, धनिसां, निसां, रेंसांनिधप, निधप, मगमरेसा साग, गम।

सारेगम, रेगमप, धम, धनिधपम, धमप, गम, रेरेसा, रेगम।

पप, धनिध, निसां, सां, सांरेंगंमं, रेंरेंसां, रेंसांनिधनिसां, निधप, ममप, धनिसां, निधप, मपम, ग, रेग, म, पमगम, रेरेसा, सागगम।

एक गायक ने मुझे यह सुझाया था कि इस राग के आरोह में धैवत वर्ज्य करने और अवरोह में स्पष्ट लगाने से अन्य रागों से अलग करने का एक सरल साधन प्राप्त हो जाता है। उन्होंने मुझे इस नियम के अनुकूल एक गीत भी सिखाया है, जो मैं तुम्हें आगे सिखाऊँगा। यह नियम यद्यपि सभी गायकों द्वारा नहीं निभाया जाता, परंतु विचारणीय अवश्य है। लक्ष्यसंगीतकार आरोह में ऋषभ को दुर्बल मानता है, अर्थात् इस ऋषभ का संवादी धैवत भी दुर्बल किया जाना असंगत नहीं कहा जा सकता।

प्रश्न : इस राग की हमें अच्छी तरह कल्पना हो गई। अब आगे चलिए !

उत्तर : अब हम 'लच्छासाख' राग पर विचार करेंगे। यह नाम कानों को बड़ा ही चमत्कारिक लगता है। यह एक आधुनिक प्रकार है। ऐसा बहुमत पाया जाता है। इसे अप्रसिद्ध रागों में माना जाता है। इस समय इसे बिलावल का एक प्रकार ही समझते हैं।

प्रश्न : तो फिर इस राग के उत्तरांग में अल्हैया का भाग दिखाई देता होगा और पूर्वांग में किसी दूसरे राग का मिश्रण किया गया होगा ?

उत्तर : बिलकुल ठीक समझ गए। यही बात है।

प्रश्न : आपने बिलावल में मिश्र हो सकनेवाले रागों में यमन, झिंझोटी, गौड़, बिहाग और जयजयवंती का ही नाम बताया था। यहाँ पर इनमें से कौन-सा राग मिश्र होता है ?

उत्तर : यहाँ पर झिंझोटी का मिश्रण किया जाता है। यह राग प्रभातकाल प्रथम प्रहर में गाया जाता है। इस राग का वादी स्वर धैवत और संवादी स्वर गांधार माना जाता है। बिलावल के प्रत्येक प्रकार में अवरोह में ही उसका प्रमुख अंग प्रदर्शित किया जा सकता है। यह नियम इस राग में भी लगता है। बिलावल का साधारण अवरोह 'सां नि ध, नि ध प, म ग, रे सा' तुम जानते ही हो। झिंझोटी का प्रसिद्ध अंश 'सा रे म ग, ग म प, ग म ग, रे सा ऩि ध़, सा' है। इस अंश में से 'सा ऩि ध़' भाग इस राग में नहीं लेते, क्योंकि इसे भी ले लेने से राग-रूप इतना अधिक परिवर्तित हो जाता है कि वह राग किसी अलग ठाठ में अलग ही नाम का राग हो जाएगा। इस राग में गांधार पर आते-जाते ठहरना पड़ता है; वहाँ थोड़ा-सा गौड़-सारंग का आभास हो जाता है। इस राग के वर्णन के लिए मैंने ग्रंथों में खोज की, परंतु इस नाम का कोई राग मुझे प्राप्त नहीं हुआ। 'संगीतकल्पद्रुम' में एक हिंदी भाषा का निम्नलिखित दोहा मुझे प्राप्त हुआ है :—

ककुभ वेलावलकेमिले और देशाखहीठान।
लच्छाशाखही होतहै, एक प्रहर दिन गान॥

'कल्पद्रुम' में तो तुम्हें कहीं-कहीं बड़ी मनोरंजक बातें दिखाई पड़ेंगी। जो अपने लिए उपयोगी हैं, उन्हें ग्रहण कर शेष को छोड़ देना ही उत्तम होगा। कल्पद्रुमकार को संस्कृत का अधिक ज्ञान नहीं था, यह उसकी दूसरी रचना से ही ज्ञात हो जाता है। पुराने-नए वर्णनों का अनमोल मिश्रण किसी को देखना हो, तो इस ग्रंथ में इसके असंख्य उदाहरण प्राप्त होंगे। 'संगीतदर्पण', 'रागमाला' आदि ग्रंथों का राग-वर्णन उलटा-सीधा उद्धृत कर प्रचलित राग-स्वरूपों को अपनी स्वतः की संस्कृत-भाषा के श्लोकों में निबद्ध कर ग्रंथकार ने अपना 'कल्पद्रुम' खड़ा किया है। यद्यपि प्रचार के लिए राग-स्वरूपों को बताना बहुत आवश्यक था, परंतु उन्हें प्राचीन ग्रंथों के रूपों में जोड़ने की आवश्यकता नहीं थी। ऐसा करने से जनसाधारण का

उपकार होने की अपेक्षा अपकार ही अधिक होना संभव है। मैं अपने कथन के कुछ उदाहरण भी तुम्हें सुनाता, परंतु यह विषयांतर हो जाएगा।

प्रश्न : हो जाने दीजिए, आप अवश्य सुनाइए ! हम यह जानना चाहते हैं कि आखिर इस ग्रंथकार ने किया क्या है ?

उत्तर : अच्छी बात है सुनो ! इस ग्रंथकार (कल्पद्रुम-रचयिता) द्वारा मालश्री का वर्णन उदाहरण-स्वरूप देखो :—

रक्तोत्पलं हस्ततले नियुक्तं विभावयंतितजदेहवल्लि ।
रसालवृक्षस्य तलेनिषण्णस्तोकस्मिता साकिल मालवश्री ॥
षड्जांशगृहेन्यासा रिवर्ज्या तत्र षाडव ।
तृतीयदिवसे जामश्री खाडव परिकीर्तिता ॥
धनाश्री जैतश्रीयुक्ता धवलश्री मिश्रितपुन ।
मालश्री जायते विद्वान् संगीतकल्पद्रुमे इमा ॥

गौड़सारंग का वर्णन :—

वीणाविनोदी दृढ़बद्ध वेणी कल्पतरुसंस्थितगौरगात्रतृतीयप्रहरे ।
कोकिलनादतुल्या सारंगगौरा: कथितो मुनींद्रैः ॥
ऋषभासगृहंन्यास गौरसारंग एव च । गौरासारंग संयुक्ता पुरिया
संमिश्रिताशेष दिवसजामेकं गौरसारंगगीयते ॥

अब 'रागदर्पण' में वर्णित मालश्री को देखो :—

रक्तोत्पलं हस्ततले दधाना ।
विभावयंती तनुदेहवल्ली ॥
रसालवृक्षस्य तले निषण्णा ।
स्तोकस्मिता साकिल मालवश्रीः ॥
मालवश्रीश्च रागांगा पूर्णा सत्रयभूषिता ।
मूर्च्छनोत्तरमंद्रा स्याच्छृङ्गाररसमंडिता ॥

'संगीतदर्पण' में केवल इतना ही वर्णन प्राप्त होता है। उसे कल्पद्रुमकार ने कहीं-कहीं दूसरा कुछ जोड़-तोड़कर रख दिया है। अंतिम श्लोक कल्पद्रुमकार की रचना दिखाई पड़ती है । इस प्रकार के श्लोकों से यह ग्रंथ ओत-प्रोत है। मैं तुम्हें एक बार पहले भी कह चुका हूँ कि यही देखकर संगीत-विद्वानों ने इस ग्रंथ को अल्प महत्त्व का समझ लिया है। इस ग्रंथकार की रचना देखकर कोई भी समझ सकता है कि प्राचीन ग्रथ इसकी समझ में बिलकुल नहीं आए थे। ऐसे ग्रंथों से क्या नुकसान होता है, यह भी देखो—अभी उत्तर की ओर 'नाद-विनोद' नामक ग्रंथ प्रसिद्ध हुआ है । इस ग्रंथ में 'कल्पद्रुम' को मुख्य प्राचीन आधार-ग्रंथ माना गया है । नादविनोदकर्त्ता को भी संस्कृत नहीं आती,

इसका ज्ञान उसकी रचना से हो जाता है। उसने 'कल्पद्रुम' के गलत-सलत श्लोकों को तो उद्धृत किया ही है, उसमें अपनी गलतियाँ भी शामिल कर दी हैं।

प्रश्न : उसका भी आप हमें नमूना दिखाइए ? यह भी एक मनोरंजन ही होगा।

उत्तर : नादविनोदकर्त्ता के मालश्री राग के ही उद्धृत किए हुए श्लोक देखो :—

रक्तोत्पलं हस्ततले नियुक्तं विभावयंति तजदेहवल्ली ।
रसालवृक्षस्य तले निषण्णास्तोक स्मिता साकिल मालवश्री ॥

अथ अंशन्यासगृहः

खड्जांशस्य गृहं न्यासां रीवर्जा त्रहिखाडवा ।
तृतीये दिवसे यामे गीयंते विबुधैर्जनैः ॥
धनाश्रीजयतिश्रीयुक्ता धवलश्रीमिश्रितपुनः ।
मालश्री जायते विद्वन् रागकल्पद्रुमे इमां ॥

इसमें मजा यह कि उलटे-सीधे उद्धरण प्राचीन ग्रंथों के और प्रत्यक्ष राग-स्वरूप केवल प्रचलित धारणा पर लिखे गए हैं। अब भला इस रचना की कैसे प्रशंसा की जाए ? ग्रंथों के राग-मेल इस बेचारे को स्वप्न में भी नहीं आए होंगे। मेरा मत है कि प्रत्यक्ष गायक-वादकों को बिना उतनी विद्या प्राप्त किए प्राचीन ग्रंथों के मार्ग पर जाना ही नहीं चाहिए। यदि वे प्रचलित संगीत को ही सीखने-योग्य बनाकर उसकी ग्रंथ-रचना करते, तो कितना उपकार होता ? ग्रंथकारों की निंदा करना ठीक नहीं है; परंतु मैं इतना ही कहना चाहता हूँ कि जिन्होंने अपनी शक्ति के प्रमाण से बोझ उठाया, उन्हीं की शोभा भी हुई। अस्तु, अब हम प्रस्तुत विषय की ओर आगे बढ़ें। 'लच्छासाख' राग का दोहा मैं तुम्हें सुना ही चुका हूँ। मुसलमान गायकों के मुँह से हम चार प्रकार के 'साखों' का नाम सुनते हैं—१. लच्छासाख, २. देवसाख, ३. रामसाख, ४. भूसाख। इनमें देवसाख, देशाक्षी नाम का अपभ्रंश माना जाता है। अन्य साखों के लिए 'कल्पद्रुम' में ये दोहे कहे गए हैं :—

गांधारी देशाखमिली रामकली समभाग।
रामसाख तब होत है, गावत गुनि अनुराग ॥
भूपाली, देशकारसम और कान्हरा गान।
भावसाख तब होत है, गावत गुणी सुजान ॥
पहेले कानरा स्वरभरे, सुघराई सारंग ।
राग देशाख होत है, गावत उठत तरंग ।

'कल्पद्रुम' का संस्कृत-शास्त्र-भाग निरुपयोगी है। जो भाग प्रचार के अनुरूप जानकारी देने के सम्बन्ध में है, उसका उपयोग हम कर सकते हैं। रामसाख और भूसाख प्रचार में नहीं दिखाई देते, परन्तु उनके स्वरूप नादविनोदकार ने (मेरे खयाल से ये रूप कल्पित बनाए हैं) अपने ग्रंथ में रख दिए हैं।

प्रश्न : 'लक्ष्यसंगीत' का वर्णन भी हमें याद करने के लिए सुना दीजिए !

उत्तर : वह इस प्रकार है :—

शंकराभरणे मेले लच्छाशाखो बुधैर्मतः ।
बिलावलांगभूतत्वात्प्रातःकालः परिस्फुटः ॥
धगयोश्चैव संवादः संमतो लक्ष्यवेदिनाम् ।
यतोऽत्र दृश्यते स्पष्टा झिंझूटीसंगतिर्ध्रुवम् ॥
गांधारस्य प्रयोगे चेद्गौडसारंगशंकनम् ।
बिलावलस्य प्राधान्यात्स्याच्छंकापरिमार्जनम् ॥
रागोऽयं स्यात्सुसंपूर्णो निषादद्वयमंडितः ।
अवरोहे निश्चयेन बिलावलं प्रदर्शयेत् ॥

यहाँ पर दोनों निषाद बताए गए हैं, यह ध्यान रखना।

प्रश्न : जी हाँ, हम समझ गए। यह भाग अल्हैया का है, तभी उसमें अवरोह में कोमल निषाद का प्रयोग किया है। अब इस राग का स्वरूप हमें स्वर-विस्तार करते हुए समझा दीजिए ?

उत्तर : मुझे एक प्रसिद्ध गायक के पास से मिली हुई चीज (गीत) के आधार पर यह रूप तुम्हें सुनाता हूँ :—

सा, प म ग, म प, ग म रे ग, म ग रे सा, सा सा रे ग म प, ध <u>नि</u> ध प, म प म ग, <u>नि</u> <u>नि</u> ध, रे ग म, प म ग, रे सा।

प प ध नि सां, नि सां, सां नि ध नि सां, सां नि ध ध प, प ध प म ग, ग ग म रे, ग म प, ग म रे, सा, सा, रे ग म प, ध नि सां, रें गं रें सां, सां रें सां नि ध प, ध म ग, म रे रे सा। प प, म ग, रे ग म प, म ग।

ऐसे अप्रसिद्ध रागों में गायक आलाप आदि प्रकार नहीं करते, क्योंकि ये राग अन्य रागों को तोड़-मोड़कर तैयार किए हुए होते हैं। गायक गाते समय ऐसे रागों में मिश्र होनेवाले रागों के टुकड़ों के आधार पर 'तान' लेते हैं। मुख्य भाग बिलावल का ही रहेगा, यह न भूलना चाहिए।

प्रश्न : अब आप हमें कौन-सा राग बताएँगे ?

उत्तर : अब तुम्हें 'मलुहाकेदार' की ओर ले चलता हूँ। यह राग सभी गायकों को नहीं आता। मैंने तुम्हें केदार राग समझाते हुए उसके चार प्रकारों

का वर्णन किया था। इनमें से शुद्धकेदार और चांदनीकेदार पर विचार किया जा चुका है। मलुहाकेदार का ठाठ केदार के ठाठ से भिन्न मानने का कारण इतना ही है कि इस राग में तीव्र मध्यम नहीं लिया जाता। यह राग प्राचीन ग्रंथों में नहीं दिखाई पड़ता। इसके विषय में 'कल्पद्रुम' की व्याख्या इस प्रकार है:—

धैवतांशग्रहंन्यास पंचमपरिवर्जयेत् ।
ओडवसतुविज्ञेया मलोहा रात्री गीयते ।।
केदारजलधरयुक्ता मलार स्वरसंयुत ।
गीयते राग पुत्रस्यात् धनीसागमस्वरा ।।

इस ग्रंथ के राग-वर्णन के विषय में मैं तुम्हें बहुत-कुछ कह चुका हूँ। उपर्युक्त श्लोकों को शुद्ध कर उनका अर्थ निकाला जाए, तो यह अर्थ होगा—'मलोहा' राग औडव है; यह रात्रिगेय है; इसमें रे-प स्वर वर्ज्य किए जाते हैं; इसका ग्रह, अंश व न्यास स्वर धैवत है; केदार, जलधर और मल्हार राग इसमें मिश्रित हैं। इसे पुत्र रागों में माना जाता है; इसमें 'ध नि सा ग म' ये पाँच स्वर लगते हैं। यह मैं बता चुका हूँ कि किसी-किसी मत से एक-एक राग के आठ-आठ पुत्र माने जाते हैं। कोई कहते हैं कि रागों के पुत्र जोड़ने की कल्पना भरत की है, परन्तु यह कौन-सा भरत था ? इसका सन्तोषजनक उत्तर नहीं प्राप्त होता। बहुत से भरत हो गए हैं, यह कहा जा सकता है। परन्तु हमें इस विषय में वाद-विवाद करने की आवश्यकता नहीं है। प्रचार में 'रे-प' वर्ज्य कर मलुहा नहीं गाया जाता। इस समय तो आरोह में 'रे-ध' दुर्बल बनाकर 'मलुहा' गाने की प्रथा प्रचलित है। जयपुर के प्रसिद्ध गायक मुहम्मदअलीखाँ ने मुझे इसी प्रकार का स्वरूप बताया है। यह एक बड़े घराने के गायक हैं, अतः इनका मत काफी सम्मान देने-योग्य है।

प्रश्न : ये किस घराने के माने जाते हैं ?

उत्तर : बादशाही जमाने में 'मनरंग' नामक एक प्रसिद्ध दरबारी गायक हो गया है। उसी के यह वंशज हैं। इन्हीं का मत मैंने अनेकों स्थलों पर स्वीकार किया है। इनका-मेरा बहुत परिचय था। प्रचलित अनेक रागों की जानकारी इन्हींके द्वारा मुझे प्राप्त हुई। इसी प्रकार इन्होंने मुझे अपने गीत भी सिखाए हैं, वे सभी गीत मैंने स्वरलिपि-सहित लिख रखे हैं, जो मैं तुम्हें आगे चलकर सिखाऊँगा। मुहम्मदअली-जैसे गायक आजकल शायद ही दिखाई पड़ें।

'मलुहा' नाम कानों में विलक्षण सुनाई देता है। कोई-कोई कहते हैं कि यह शब्द 'मल्लूह' का अपभ्रंश है। प्रचार में मलुहा या मलोहा नाम प्रचलित है। यह राग केदार का एक प्रकार है। इसमें तुम्हें सा, म, प, ये तीन स्वर प्रबल दिखाई देंगे। यह राग मन्द्र-सप्तक में अधिक प्रमाण में गाया जाता है, और वहीं सुन्दर भी लगता है। इसे केदार राग से अलग करने के लिए कामोद का अंग मिश्रित करना पड़ता है। वह अंग 'ग म प, ग म रे सा' है। मन्द्र-सप्तक में

'रे सा, प़ म़ म़, प़' इस प्रकार स्वर लेकर गाया जाता है। इसका प्रभाव मन पर स्वतन्त्र ही होता है। इस प्रकार के स्वर लेकर गायक 'प़ नि़, सा, रे, सा' इस प्रकार आरोह करते हैं। आरोह में रे-ध स्वर बिलकुल वर्ज्य नहीं होने पर भी दुर्बल अवश्य ही रखे जाते हैं। किसी-किसी के मत से इस राग में धैवत वर्जित स्वर है। इस राग में श्याम और केदार का मिश्रण मानते हैं। 'श्याम' का मध्यम और नि़-सा स्वर-प्रयोग तुम्हें याद ही होगा। यह भाग इस राग में भी दिखाई देगा। विलम्बित रूप से गाने में बहुत ही सुन्दर दिखाई देता है। जबकि इस राग का ग्रंथाधार प्राप्त नहीं होता, तब इसका स्वर-विस्तार बता देना ही अधिक सुविधा-जनक होगा।

प्रश्न : हाँ, यही हम पूछनेवाले थे।

उत्तर : सुनो :—

सा, रे सा, प़, म़, प़, नि़, सा, रे रे, सा, नि़ सा रे सा, नि़ रे सा, प़ नि़ सा, रे रे सा, ग म प, ग म रे, सा।

सा सा ग ग, म रे, ग म प, ग म रे, नि़ सा, रे सा, प़ म़ प़, नि़, सा।

ग म रे सा, प ग म रे सा, नि़ रे सा, प़ म़ म़ प़, नि़ सा, ग म प ग म रे, नि़ सा नि़ सा ग म प, नि प, ग म रे, नि़ रे सा, ग म रे सा, प़, नि़ सा ग म प ग म रे, नि़ सा।

नि़ सा, प़, म़ म़ प़, नि़ प़ म़ प़, नि़ सा, म म रे, नि़ सा, ग म प रे, नि़ सा।

ग म प, सां, सां, रें सां, गं मं पं गं मं रें सां, सां सां रें सां, नि प, ग, म प, ग म रे, नि़ रे नि़ सा।

ग म प सां, सां, रें सां, प नि सां रें, सां नि ध प, ग म प ग म रे नि़ सा, सां, प ग म रे, नि़ रे सा, सा, प़ म़ म़, प़ सा, ग म प ग म रे, सा।

यहाँ आरोह में ऋषभ लेने पर छायानट का आभास होता है और अवरोह में धैवत लेने पर हेमकल्याण का आभास होता है; अतः इन दो स्वरों के प्रयोग पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

प्रश्न : अब हमें इस राग की ठीक कल्पना होगई। अगला राग शुरू कीजिए।

उत्तर : अब 'हेमकल्याण' राग की ओर विचार करें। यह राग बहुत-कुछ मलुहा-सरीखा ही समझ में आएगा। गायक लोग बार-बार 'हेमखेम' का संयुक्त नाम व्यवहार में प्रयोग करते हैं। हेम राग बहुत थोड़े गायकों को आता है। Capt. Willard साहब ने अपनी पुस्तक में Khem और Khem Kalian, ऐसे दो अलग-अलग राग बताए हैं। इनमें प्रथम खेम राग के अन्तर्गत कानड़ा, सरस्वती, कल्याण राग बताए हैं और खेमकल्याण के अन्तर्गत केदार और हमीर का मिश्रण बताया है। एक गायक ने मुझे दोनों ग तथा दोनों नि लिए जाने वाले राग-स्वरूप को बताकर कहा था कि इसमें हेम-खेम मिला दिए हैं। यह स्वरूप

मुझे थोड़ा-सा बागेश्वरी (बागेसरी)-जैसा दिखाई दिया। बागेश्वरी राग काफी ठाठ में है। Capt. Willard साहब खेम राग में कानड़ा का भाग बताते हैं। इस दृष्टि से देखने पर दोनों ग-नि का प्रयोग होना आश्चर्यजनक नहीं है। उस गायक के गाए हुए गीत के स्वर इस प्रकार थे:—

निसारेगम, निसारेगम, पगम, सांनिध, निधपमगम, पमगरेसा।

सां, निधप, मगम, पधनिसां, सांसांरेंनिसां, गंमंरेंनिसां, पनिप, मप, मगमप, म ग म प, मगरेसा।

यह सब तुम्हें जानकारी के लिए बता रहा हूँ। निस्संदेह यह राग विवाद-ग्रस्त रागों में से है। Willard साहब ने 'हेम' राग के विषय में कुछ भी नहीं लिखा है। उनका बताया हुआ 'खेमकल्याण' प्रचलित 'हेमकल्याण' से बहुत अंशों में समानता प्राप्त करता है। हमें 'लक्ष्यसंगीत' का मत ही स्वीकार करना चाहिए। 'लक्ष्यसंगीत' में कहा है:—

शंकराभरणे मेले हेमकल्याणनामकः।
सायंगेयः सांशकोऽपि लक्ष्यविद्भिः प्रकीर्तितः॥
षड्जस्वरो भवेद्वादी संवादी पंचमो मतः।
मन्द्रमध्यस्वरैरेव सर्वेषां रक्तिदो भवेत्॥
कल्याणमिश्रणात्तत्र कामोदस्य समुद्भवेत्।
रागोऽयमिति केषांचित्संमतं लक्ष्यवेदिनाम्॥
आरोहणे धहीनः स्यान्मन्द्रपोद्ग्राहकोभवेत्।
विलम्बितलये गीतो विशिष्टं सुखमावहेत्॥

इस मत के अनुसार यह राग रात्रिगेय है। इसका वादी स्वर षड्ज और संवादी स्वर पंचम है। इस राग का विस्तार मन्द्र और मध्य-सप्तकों में ही होता है। तार-सप्तक के स्वर लिए जाने पर इसका अन्य रागों में चले जाने का भय रहता है, अतः गायक तार-सप्तक के स्वरों का प्रयोग नहीं करते। मैंने इस राग के जो-जो गीत सुने हैं, वे सब मन्द्र और मध्य-सप्तक के ही थे। इस राग के आरोह में धैवत स्वर नहीं लिया जाता। मेरे विचार से इस राग में ग-नि स्वर बिलकुल दुर्बल माने गए हैं। मलुहा में हमने रे-ध स्वरों को दुर्बल माना था। निषाद स्वर हेमकल्याण में बिलकुल असत्प्राय है, परंतु इस दृष्टि से गांधार का फिर भी अनेक जगह प्रयोग होता है। इस राग में कामोद और कल्याण का मिश्रण माना जाता है। अनेक बार इस राग में मन्द्र-पंचम से गायकों को आलाप करते हुए पाया गया है। मलुहा, हेम, नवरोचिका (नवरोज) आदि राग एक-दूसरे के बहुत निकट हैं, अतः इन्हें अलग-अलग बनाए रखने में कुशलता की आवश्यकता होती है। ऐसे राग में कल्याण, हमीर, कामोद या केदार आदि रागों का मिश्रण होने से सदैव मतभेद की गुंजाइश हो जाती है। ऐसे

स्थानों पर ग्रंथों का उपयोग शायद ही कहीं हो सके। ऐसे रागों में तो केवल बहुमत को ही प्रधानता दी जाती है।

प्रश्न : यदि आप आज्ञा दें, तो हम एक प्रश्न स्पष्ट रूप से पूछना चाहते हैं!

उत्तर : तुम कौन-सा प्रश्न पूछना चाहते हो? बिलकुल संकोच छोड़कर प्रसन्नतापूर्वक पूछो!

प्रश्न : आपने अभी तक हमें बीस-पच्चीस रागों का वर्णन समझाया है और उन्हें समझाते हुए अपने भिन्न-भिन्न प्राचीन ग्रंथों के श्लोक भी सुनाए हैं; परंतु वास्तविक रूप से क्या उन ग्रंथोक्तियों का प्रचलित संगीत में कुछ भी उपयोग हो सकता है? जहाँ देखते हैं, वहाँ ग्रंथों में कुछ अलग कहा गया है और प्रचार में कुछ दूसरा ही वर्णन मिलता है। हम यह स्वीकार करते हैं कि 'लक्ष्यसंगीत' ग्रंथ हमारे लिए पद-पद पर उपयोगी सिद्ध होता है। इसके लिए तो आपने बताया है कि यह रचना 'पारिजात' के बाद की है और आधुनिक पद्धति का ही यह ग्रंथ है। यदि इसको एक ओर उठाकर रख दें, तो बाकी के ग्रंथों को हमारी पद्धति का समर्थक कैसे कहा जा सकता है? हमारे कथन पर रुष्ट न होइएगा। हमें जो कुछ ठीक रूप से दिखाई दिया, वही हम आपसे कह रहे हैं?

उत्तर : तुम्हारा ऐसा समझ लेना स्वाभाविक है, परंतु मेरे विचार से अभी इतनी शीघ्र ही तुम्हें अपना मत ठहराकर व्यक्त कर देने की जल्दबाजी नहीं करनी चाहिए। अभी तो तुम्हें सैकड़ों राग सीखने हैं; फिर यह भी तो सोचो कि क्या हम प्राचीन राग-रचना के तत्त्व स्वीकार नहीं करते हैं? किसी-किसी स्थान पर क्या प्राचीन ग्रंथों ने बताए हुए ठाठ प्रचलित ठाठों में नहीं मिलते? यदि हमारे प्रचलित राग-स्वरूप उन ग्रंथकारों के समय में इस प्रकार नहीं थे, तो फिर उसमें उन ग्रंथकारों का क्या दोष है? जबकि हमारे सुशिक्षित लोगों ने जान-बूझकर संगीत-विद्या अल्प महत्त्व की समझकर मियाँ साहबों के अधिकार में चली जाने दी और उनके सहवास से उसका रूपान्तर हो गया, तब फिर इसके दुष्परिणाम का जिम्मेदार कौन हुआ? अब हम चाहे कितना ही पश्चात्ताप क्यों न करें, तो भी उसका उपयोग अब होना सम्भव नहीं दिखाई देता। जिस प्रकार हमारे प्राचीन ऋषि मनु महाराज के समय के आचार-विचार इस समय समाज में पुनः प्रचलित करना असम्भव है, उसी प्रकार प्राचीन संगीत-ग्रंथों को प्रचलित करना अशक्य है। मेरा यह मत नहीं है कि मुसलमान गायकों ने हमारे संगीत की दुर्दशा की है। उनका दोष केवल इतना ही है कि उन्होंने जो-जो परिवर्तन किए, उनके नियम पद्धति के अनुसार नहीं लिख छोड़े। परंतु उनमें अधिकांश लिखने-पढ़नेवाले थे भी नहीं। हम लोगों की श्रद्धा और प्रेम मुसलमान गायकों के प्रति कितना बढ़ा-चढ़ा है, यह इसी बात से सिद्ध हो जाता है कि हमारे यहाँ कोई हिन्दू गायक कितना ही उत्तम गायक क्यों न हो, परंतु उसकी गुरु-परम्परा किसी खाँ साहब से सम्बद्ध नहीं है, तो वह बेचारा एक-मात्र भजन-गायन या कथा-वाचक ही ठहराया जाएगा। और मुसलमान गायकों को हमें अल्प महत्त्व का समझने का अधिकार ही क्या है? क्या हम स्वयं प्रचलित दृष्टि से उन्हीं के अनुयायी सिद्ध नहीं होते? हम तानसेन के गुरु हरिदास स्वामी का नाम बताकर अभिमान करते हैं, परंतु उनका ग्रंथ कौन-सा है? ऐसा प्रश्न किसीके द्वारा किया जाने पर हम उसे क्या उत्तर दे सकते हैं?

यद्यपि ऐसी स्थिति है, तो भी तुम्हें प्राचीन ग्रंथों के प्रति अश्रद्धालु नहीं होना चाहिए। ये ग्रंथ सम्पूर्ण रूप से निरुपयोगी नहीं हैं। जब तुम इन्हें पढ़ोगे, तब शान्त चित्त से विचार करने पर तुम इनका वास्तविक मूल्य निर्धारित कर सकोगे।

प्रश्न : नहीं-नहीं, हम प्राचीन ग्रंथों को बुरा नहीं बतलाते और हम उनके लिए आज ही अपना मत भी निश्चित नहीं करते। ग्रथों के आधार-स्वरूप प्रमाण (क्या उन्हें आधार कहा जा सकता है ?) आप अवश्य बतलाइए। परंतु जैसे आपने अभी कहा कि ग्रंथों के ठाठ अपने प्रचलित ठाठों से मिलते हुए हैं, भला केवल ठाठ-मात्र के मिल जाने से पूर्ण जानकारी कैसे हो सकती है! आरोह, अवरोह, वादी, संवादी आदि बातों में जबकि विरोध है, तब तो ग्रंथों में और प्रचार में परस्पर असम्बद्धता ही रहेगी। परंतु अभी हम आपके उपदेशानुसार अपना मत निश्चित करना स्थगित किए देते हैं। छोटे मुँह बड़ी बात करना सचमुच शोभनीय नहीं है। आप 'हेमकल्याण' के विषय में बता रहे थे, उसे ही चलने दीजिए।

उत्तर : ठीक है, दक्षिण-पद्धति से एक 'हेमवता' नाम का ठाठ है। इस ठाठ में कोमल ग तथा तीव्र म लिया जाता है। अपना हेम राग इस ठाठ का नहीं हो सकता। 'रागमाला' नामक 'मेषकर्ण' द्वारा लिखित ग्रंथ की चर्चा मैंने पहले भी की है। उसमें एक राग का नाम 'हेमाल' दिखाई पड़ता है। परतु उसमें राग के स्वरों का खुलासा नहीं पाया जाता। उस ग्रंथ में केवल यह बताया है कि 'हेमाल' दीपक राग का पुत्र है और साथ में इस राग का ध्यान अर्थात् चित्र बताया गया है।

प्रश्न : हेमकल्याण का स्वर-विस्तार कैसे किया जाता है ?

उत्तर : मैं एक प्रसिद्ध गीत के आधार पर इसका राग-विस्तार तुम्हें सुनाता हूँ:—

प़ प़ ध़ प़, सा, सा रे सा, ग रे सा, ग म प, ग म रे सा।

सा रे सा, ध़ ध़ प़, सा, ग म प, ग म रे सा।

सा सा रे सा, रे रे, प, म ग म रे, सा, ग म प, ग म रे, सा, सा सा, म ग, प, प ध प, प़ प़ सा, रे रे सा, ग म प, ग म रे, सा।

सा रे सा, ग म प, ध प, प ध प, सां, ध प, ग म प, ग म रे सा।

ध़ ध़ प़, ध़ प़ प़, सा, प ग म रे, सा रे सा, ध प, ग म रे सा, रे रे सा।

सा सा, ग ग, प, ध प, ग म प, ग म रे सा, सा म ग प, ध प, प ग म रे, सा, रेसा।

कोई-कोई गायक इस राग में तीव्र मध्यम का प्रयोग करते हुए पाए गए हैं, परन्तु अनेक बार बिना इस स्वर का प्रयोग किए हुए भी यह राग गाते हुए सुना गया है। यह राग रात्रिगेय है और कल्याण का अंग इसमें शोभा पाता है,

अतः इसमें तीव्र मध्यम का सीमित प्रयोग करने से राग-हानि नहीं हो सकती। कोई-कोई गायक ऐसा भी कहते हैं कि भूपाली राग यदि मंद्र-सप्तक और मध्य-सप्तकों में ही गाया जाए, तो हेमकल्याण हो जाता है। इन मतभेदों पर ध्यान देना आवश्यक नहीं है।

प्रश्न : अब आगे किसी राग का वर्णन कीजिए ?

उत्तर : अब हम 'दुर्गा' राग को लेंगे। यह राग अप्राप्य रागों में से ही एक माना जाता है। इसे गाने के दो प्रकार प्रचलित हैं—एक मल्हार-अंग से और दूसरा खमाज-अंग से। हम इस समय मल्हार-अंग के 'दुर्गा' का विचार करेंगे। खमाज-अंग के दुर्गा पर खमाज ठाठ में विचार किया जाएगा, क्योंकि उसके स्वरों में कोमल नि मुख्य स्वरों में से है। अपने विचारणीय प्रकार (बिलावल ठाठ मल्हार-अंग) के दुर्गा में ग-नि स्वर वर्ज्य किए जाते हैं। वादी स्वर मध्यम माना गया है। इस राग में शुद्ध मध्यम से ऋषभ पर बार-बार मीड़ ली जाती है; इस प्रकार यह राग 'शुद्धमल्हार' नामक राग के बहुत निकट आजाता है। 'श्यामकल्याण' राग में भी तुम्हें इसी प्रकार की मीड़ लेने को मैंने कहा था। दुर्गा का प्रारंभ 'प, म प ध, म रे, मरे, प' इस प्रकार से तुम्हें अनेक बार दिखाई देगा। इस राग का गायन-समय रात्रि का दूसरा प्रहर हमें मानना चाहिए। इस राग में पूर्वांग प्रधान होने के कारण इसमें प्रभात-काल का आभास नहीं होता। गांधार स्वर वर्ज्य करने से अन्य कुछ रागों के निकट यह राग चला जाता है। सारंग में भी गांधार नहीं लिया जाता। सोरठ में आरोह में नहीं, परंतु अवरोह में अल्पप्राय रूप से लिया जाता है।

प्रश्न : तब तो इन रागों में परस्पर गड़बड़ हो जाती होगी ?

उत्तर : नहीं-नहीं! इन रागों को अलग करना कठिन नहीं है। यद्यपि सारंग में गांधार नहीं लिया जाता, परंतु सारंग में धैवत भी नहीं है और निषाद स्वर लिया जाता है। इसी प्रकार सोरठ में भी निषाद वर्जित नहीं है। सोरठ का आरोह 'सा रे, म प, नि, सां' बहुत प्रसिद्ध है। 'दुर्गा' में 'रे-प' स्वर-संगति से कभी-कभी कामोद का आभास हो जाता है। शुद्धमल्हार में 'सा, रे म, म प प, म प ध सां, ध प म, सा रे म' इस प्रकार का भाग तुम्हें अनेक बार दिखाई देगा। वहाँ पर 'सा रे म' टुकड़े से ही मल्हार का बोध होगा। दुर्गा राग में बीच-बीच में मध्यम को खुला छोड़ दिया जाता है और ऐसा करना उत्तम दिखाई पड़ता है। दुर्गा राग के लिए तुम्हें ग्रंथों का आधार प्राप्त नहीं होगा। ग्रंथों में, शुद्ध ठाठ के ग-नि वर्ज्य राग अन्य नामों से बताए गए हैं। तुम्हारे प्रचलित रागों के नाम ग्रंथों में निराले ही बताए गए हैं। इस बात पर भी हम कभी आगे विचार करेंगे। Capt. Willard साहब ने मिश्र रागों के कोष्ठक में दुर्गा नामक एक राग बताया है और उसके अन्तर्गत मालश्री, लीलावती, गौरी और सारंग रागों का नाम बताया है। इतनी जानकारी से हमारी कुछ सहायता नहीं हो सकती। इन रागों के प्राचीन स्वरूप कौन-से थे और ये राग कैसे मिलाकर दुर्गा बनाया जाता है—आदि प्रश्न उत्पन्न हो जाते हैं। पुराने नाम और नवीन राग-रूप इनका

मिलान कैसे सुसंगत कहा जा सकता है? यदि इस समय के इन चारों रागों के प्रचलित रूपों से हम खोज करें, तो इनमें परस्पर बड़ा विरोध दिखाई देगा; फिर ये कैसे मिल सकते हैं?

प्रश्न : दुर्गा का राग-विस्तार समझा दीजिए!

उत्तर : सुनो :—

प, म प ध म, म रे, प, प ध म, रे प म, रे, सा रे सा, सां ध, सां रें, प ध म, प, म प ध म।

म रे सा, सा रे सा, प म रे सा, ध ध म, रे प, ध म, रे प म, सा रे सा, सा ध़ सा, म प ध म, सां ध, म, रे प ध म, प म, रे, ध म, प म रे सा, प, म प ध म।

म म प, सां, सां, सां रें मं रें, सा, प ध म, म प सां, रें रें ध सां, म प सां, प ध ध म, प म प ध, म, रे म, सा रे म, सा रे सा।

सां ध, सां रें, सां प, ध म, प म प ध म, म रे प प, ध ध म, प प म, सा रे रे सा, सां रें मं, सां, प ध म, रे प।

यह मैं तुम्हें बता ही चुका हूँ कि ऐसे अप्रसिद्ध रागों का स्वर-विस्तार गीतों की सहायता से ही बताया जा सकता है। मैंने प्रसिद्ध गायकों के निकट से जो-जो गीत प्राप्त किए हैं, वे तुम्हें आगे बताऊँगा। यदि तुम्हें उपर्युक्त राग-विस्तार अच्छी तरह तैयार हो गया, तो तुम्हें वे गीत सरलता से तैयार हो जाएँगे। अब इस दुर्गा राग के सम्बन्ध में तुम्हें लक्ष्यसंगीतकार का कथन सुना देता हूँ :—

द्राक्शुद्धस्वरसंमेलाद्दुर्गानाम्नी प्रजायते।
औडवा गनिहीनासौ मध्यमांशेनमंडिता॥
अत्रेपद्विलसेच्छाया शुद्धमल्लारिका पुनः।
पंडितैर्गानमेतस्या द्वितीयप्रहरे मतम्॥
गांधारस्य विलुप्तत्वात्प्रतीतः सोरटो भवेत्।
आरोहे धैवतः स्पष्टस्तद्रूपमपसारयेत्।
रिपयोः संगतिश्चात्र मल्लार्थंगं निवारयेत्।
व्यस्तमध्यमयोगोऽपि श्रोतृचित्तहरो भवेत्॥
निषादस्य प्रलुप्तत्वे कुतः सारंगसंभवः।
अवरोहे गसंयोगे सोमरागस्यनोद्भवः॥
ग्रन्थेषु कथितं रूपं शुद्धसावेरिनामकम्।
इदमेव कदाचित्स्याद्बुधः कुर्याद्यथोचितम्॥

ग्रंथों में शुद्ध स्वरों के ठाठ में एक 'सोम' राग बताया गया है, परंतु उसके अवरोह में गांधार लिया जाने से वह स्वरूप दुर्गा से भिन्न हो जाता है। ग्रंथों में प्रसिद्ध 'शुद्धसावेरी' राग दक्षिण में प्रसिद्ध है।

प्रश्न : अब किसी दूसरे राग को बताइए?

उत्तर : इस शुद्ध ठाठ के अधिकांश महत्त्वपूर्ण राग तो तुम्हें बता ही दिए हैं; अब केवल चार राग गुणकली, पहाड़ी, हंसध्वनि और माड़ ही रह गए हैं। हम 'लक्ष्यसंगीत' के अनुसार ही अधिकांश रूप में चल रहे हैं, क्योंकि लक्ष्यसंगीतकार ने प्रायः प्रचलित रागों का वर्णन दिया है। उपर्युक्त चार रागों में से 'हंसध्वनि' के विषय में अधिक नहीं कहा जा सकता। यह राग आरोह और अवरोह में ही अपने सभी राग-स्वरूपों से भिन्न है। इसके आरोह, अवरोह में म, ध स्वर वर्ज्य किए जाते हैं। तुमने शंकरा राग में मध्यम वर्ज्य किया था, परंतु वहाँ धैवत लिया जाता था। भूपाली में म, नि स्वर वर्ज्य हैं। चंद्रकांत के केवल आरोह में 'म' वर्ज्य होता है। शुद्धकल्याण के केवल आरोह में म, नि वर्ज्य किए जाते हैं। देशकार में म, नि वर्ज्य होते हैं। बिलावल के किसी भी प्रकार में म, ध वर्ज्य नहीं होते। बिहाग में मध्यम कभी नहीं छोड़ा जा सकता।

प्रश्न : मैं ठीक तरह समझ गया। इस 'हंसध्वनि' राग को अपने यहाँ के गायक किस प्रकार गाते हैं?

उत्तर : हमारे यहाँ के मुसलमान गायकों को तो यह अभी प्रिय नहीं हो पाया, परंतु कोई-कोई हिंदू गायक इसे गाते हुए पाए जाते हैं। यह दक्षिणी पद्धति का राग है। इसका वर्णन दक्षिण के ग्रंथों में एक-दो जगह दिखाई पड़ेगा। 'रागलक्षण' में इसका वर्णन बताया गया है। इस राग में म-ध वर्ज्य होने से इसमें शंकरा का आभास हो सकता है। शंकरा का यह भाग—'सा रे सा, ग प ग सा, सां नि प, नि प, ग प, सां, नि प, ग प, ग रे सा' प्रसिद्ध है। परतु दक्षिण के लोग इस राग (हंसध्वनि) को इतने विलक्षण रूप से गाते हैं कि उसमें अपने शंकरा का स्वरूप दिखाई नहीं दे सकता। 'सा रे ग सा, सा, ग प ग रे; ग प नि, प नि नि, सां, रें सां, रें ग रें सां नि, प नि रें सां नि, ग रे ग प नि नि, गं रें नि रें सां। सां रें सां नि नि, प नि सां नि प, ग प ग रे, प प, सा रे ग सा। प प नि नि सां, सां रें गं सां सां, सां रें गं पं गं रें, नि नि रें सां। सां नि प, ग प नि, सां रें गं रें सां नि, रें रें सां नि प ग, प ग रे सा।' —इस प्रकार के स्वर-प्रयोग से शंकरा नहीं दिखाई देता, परंतु हमारे यहाँ ऐसा स्वरूप उच्चकोटि का नहीं समझा जाता। यह स्वरूप किसी एक Tune जैसा दिखाई देगा। दक्षिण की ओर के एक प्रसिद्ध गायक ने इसी प्रकार गाकर सुनाया था। अपने यहाँ गायन में मीड़ का प्रयोग अधिक लोकप्रिय है, अथवा ऐसा कहा जा सकता है कि हमारे यहाँ मीड़-प्रणाली का गायन ही अधिक लोकप्रिय होता है। हंसध्वनि का वर्णन लक्ष्यसंगीतकार ने इस प्रकार किया है :—

हंसध्वन्याह्वयो रागः स्याच्छुद्धस्वरमेलनात्।
आरोहेप्यवरोहे च मधहीनो भवेत्सदा॥
स्वरः षड्जो मतो वादी केश्चिद्गांधारको ह्यसौ।
गानमस्य समादिष्टं रात्र्यां प्रथमयामके॥
हिंदुस्थानीयपद्धत्यां प्राचुर्यं नास्य दृश्यते।
संगीते दाक्षिणात्यानां सतु साधारणो मतः॥

गांधार स्वर को वादी करने पर पाँचों स्वरों से कल्याण-जैसा एक प्रकार निकल सकता है; जैसे 'नि़ रे ग रे, नि़ रे नि़ सा, नि़ प़ नि़ रे सा, सा सा ग रे ग, प ग, नि प, ग प ग रे सा' आदि। इन दोनों प्रकारों पर तुम्हें ध्यान देना चाहिए। जब यह रूप कल्यण-जैसा दिखाई दे, तब म, ध स्वरों के लोप होने पर उसे कोई भिन्न नाम दिया जाना चाहिए।

प्रश्न : आपने ऊपर 'गुणकली' का नाम लिया था, इस राग के क्या लक्षण हैं ?

उत्तर : ग्रंथों में तुम्हें गुणकली, गुणक्री, गुणकेली, गुंडक्री आदि नाम दिखाई देंगे। किसी का मत है कि ये सारे रागों के नाम एक ही राग के हैं। मेरे मत से गुणकली व गुणक्री राग भिन्न-भिन्न मानना उत्तम होगा। गुणक्री राग भैरवी ठाठ में आता है। 'गुणकली' नाम संस्कृत-ग्रंथों में नहीं दिखाई देता। कुछ लोग प्रचार में गुणकली को एक प्रभातकालीन रागों में से मानते हैं। यह राग बिलावल और कल्याण रागों के संयोग से बना हुआ दिखाई पड़ता है। इन दोनों के अंग इस राग में दिखाई पड़ते हैं। इस राग का वादी स्वर षड्ज है। इसके आरोह में कल्याण-अंग और अवरोह में बिलावल का अंग प्रयुक्त होता है। प्रातःकालीन राग होने के कारण इसमें उत्तरांग की प्रधानता होनी ही चाहिए। इस राग के आरोह में म, नि स्वर बिलकुल दुर्बल माने गए हैं। तुम्हें कुछ ऐसे व्यक्ति भी मिलेंगे जो कि गुणकली में कल्याण-अंग देखकर इसे रात्रिगेय रागों में से मानते हैं। मुझे दो प्रसिद्ध गायकों ने दो भिन्न-भिन्न गीत इस राग के बताए हैं। एक गीत में कल्याण-जैसा भाग अधिक है और दूसरे में (अंतरा में) बिलावल-अंश प्रधान है। ये दोनों गीत मैं तुम्हें बताऊँगा।

प्रश्न : उन गीतों के स्वरूप आप हमें अभी सुना दीजिए, जिससे हमारे ध्यान में ये दोनों प्रकार ठीक रूप से जम जाएँ।

उत्तर : ठीक है, मैं सुनाता हूँ :—

१. प प ध नि सां रें सां। (यह एक जलद-तान है, इसमें निषाद बहुत थोड़ा लगाया जाता है।)

सां नि ध, नि ध प, प सां सां ध ध प, ध प प, प प ध ध प प, ग म रे रे सा, सा ध़ प़, सा प प म ग, सा रे सा, सा रे ग म, रे रे सा।

प प प, सां ध, सां सां, गं गं, गं रें पं गं, प ग प, सां ध सां, सां ध प, ग, प ग, प, सां ध सां, सां, सां, रें गं सां, सां ध प, प ग, म रे रे सा।

यह एक प्रकार हुआ।

२. ग रे सा नि़ ध़ नि़ ध़ प़, सा, रे सा, ग ग, प रे, सा, सा, ग रे सा, सा नि़ ध़, नि़ ध़ प़, प़ ध़ सा, ग रे सा।

प प ध नि ध सां, सां नि ध, नि ध, सां रें सां नि ध प, प प ध सां ध ध प, ग प, ग रे सा, नि़ ध़, सा नि़ ध़ प़, सा, ग रे सा।

यह दूसरा प्रकार है।

इन दोनों प्रकारों को तुम्हें ध्यान में रखना है। ऐसे अप्रसिद्ध और विवादग्रस्त रागों के मार्ग-दर्शक केवल प्रसिद्ध गायकों के गीत ही हो सकते हैं, क्योंकि हमें वर्तमान प्रचलित संगीत पर ही विचार करना है। मेरे स्वरोच्चार और विश्रांति-स्थानों को सूक्ष्म रूप से देखकर ध्यान रखना, अन्यथा यह राग-रूप तुम भूल जाओगे। हमारे हिन्दुस्तानी संगीत में यह एक विलक्षण प्रथा कायम हो गई है कि इसमें स्वरों का उच्चारण एक-में-एक थोड़ा-बहुत मिलाकर किया जाता है। यदि खुले स्वर (जिन्हें गायक खड़े स्वर कहते हैं) गाए जाएँ, तो श्रोताओं को किसी पाश्चात्य (अँग्रेजी) संगीत-जैसा लगने लगता है। कोई-कोई पाश्चात्य संगीतज्ञ अपनी पद्धति में यह एक दोष बताते हैं। परंतु हमें तो अभी अपने समाज की रुचि के अनुरूप ही चलना है।

'गुणक्री' राग में रे, ध स्वर कोमल लगाए जाते हैं। इस राग को हम एक भिन्न राग मानते हैं। 'संगीतसार' के पृष्ठ ३४६ पर क्षेत्रमोहन गोस्वामी ने गुणकिरी या 'गुणकेली' नाम देकर राग का विस्तार स्वरों में दिया है। इस विस्तार में रे, ध कोमल और मध्यम तीव्र ग्रहण किया है। टिप्पणी में इसके सम्पूर्ण राग होने के लिए 'मतंग' का आधार बताया है। 'पूर्णा गुणकिरी प्रोक्ता मतंगमतसंमता'—'ध्वनिमंजरी' में इस प्रकार का उल्लेख मिलता है।

इस राग के विषय में हमें संस्कृत-ग्रंथों में शायद ही जानकारी प्राप्त हो। ग्रंथों में इसके नाम गुणक्री या गुण्डकी, गौड़क्रिया, गुण्डक्रिया, गौड़क्री आदि हैं। परंतु इन नामों से प्रसिद्ध राग भैरव ठाठ में हैं। भैरव ठाठ के राग सीखते समय गुणकली राग भी तुम्हारे सामने आएगा। श्री बनर्जी ने अपने ग्रंथ 'गीतसूत्रसार' में रागों का एक कोष्ठक दिया है; उसमें गुणकली को दोनों मध्यम व कोमल रे, ध स्वरवाला राग माना है। इसको देखते हुए ऐसा समझ में आता है कि पुराने समय में यह राग पूर्वी ठाठ में माना जाता होगा।

प्रश्न : अब हमें पहाड़ी राग के विषय में बताइए !

उत्तर : ठीक है, पहाड़ी राग इस समय शुद्ध स्वरों में गाए जाते हुए सुना जाता है। 'पहाड़ी' नाम सुनते ही यह समझ में आता है कि यह हिन्दी भाषा का शब्द है। हिन्दी भाषा में पहाड़ को पर्वत कहते हैं। इस नाम को सुनते ही यह अनुमान किया जा सकता है कि यह राग जंगली लोगों (जंगल में रहनेवालों) द्वारा गाया जानेवाला है। यह राग अनेक बार अत्यन्त हलके गाने गानेवालों के मुँह से सुनाई देता है। डफ (घेरा) पर लावनी गानेवाले लोग भी कभी-कभी ऐसा ही राग-प्रकार गाते हैं। ग्रंथों में 'पाड़ी' नाम दिखाई पड़ता है, परंतु वह प्रचलित पहाड़ी राग से बिलकुल भिन्न रूप है। वह मालवगौड़ अर्थात् भैरव ठाठ का एक राग है। बहुत-से ग्रंथों में पाड़ी को भैरव ठाठ में ही बताया है। कोई-कोई कहते हैं कि पाड़ी और पहाड़ी, दो भिन्न-भिन्न राग हैं। यदि यह ठीक हो तो मानना पड़ेगा कि पहाड़ी प्राचीन ग्रंथ-प्रकार नहीं, बल्कि आधुनिक प्रकार है। यदि हम 'संगीतपारिजात' को देखें, तो हमें पहाड़ी नाम स्पष्ट दिया हुआ मिलेगा। 'पारिजात' में राग-वर्णन इस प्रकार दिया हुआ है :—

गौर्युत्पन्नापहाडीस्याद्गांधारस्वरवर्जिता ।
उद्ग्राहे षड्जसंपन्ना न्यासांशयो रिशोभिता ॥

इस वर्णन में पहाड़ी की उत्पत्ति गौरी ठाठ से बताई गई है। गौरी ठाठ की व्याख्या इस प्रकार दी गई है :—

रिस्वरादिस्वरारम्भा रिकोमलधकोमला ।
गतीव्रा सा नितीव्राच गौरी न्यंशस्वरामता ॥

यह देखते हुए यही कहा जा सकता है कि प्रचलित पहाड़ी का यह स्वरूप नहीं है। रागविबोधे—

पाडीसायाह्वाह्वा गोना सांशग्रहन्यासा ।
मालवगौडमेले ॥

यहाँ भी उपर्युक्त रूप से कोमल रे, ध वाला ठाठ बताया है। रागलक्षणे—

मायामालवमेलाश्च जातोरागः सुनामकः ।
पाहाड्याह्वश्चसंप्रोक्तः सन्यासं सांशकं ध्रुवम् ।
आरोहे रिधवर्जं च पूर्णवक्रावरोहकम् ॥

इस मत से भी ठाठ भैरव ही निश्चित होता है। चतुर्दंडिप्रकाशिकायाम्—

पाडिरागो गौलमेलप्रभूतष्पाडवो मतः ।

इस ग्रंथ का गौलमेल प्रचलित भैरव ठाठ ही है। 'अनूपविलास' ने 'संगीत-पारिजात' का ही उद्धरण ले लिया है।

'रागचंद्रोदय' में मालवगौड़ ठाठ के स्वर बताकर इस प्रकार कहा है :—

मेलादतो मालवगौडनामा। गौडक्रिया गुर्जरिकाच टक्कः ।
पाडी कुरंजी बहुलीचपूर्वा। रामक्रिया द्राविडगौडनामा ॥

'संगीतसारामृत' में भी पाड़ा राग मालवगौड़ ठाठ में है। मेरे ख्याल से इस प्रकार अधिक मतों को देने से कोई लाभ नहीं। यह सहज ही निश्चित हो जाता है कि प्रचलित 'पहाड़ी' राग ग्रंथों में नहीं बताया गया है। अब हमें 'लक्ष्यसंगीत' का ही वर्णन स्वीकार करना होगा, क्योंकि हमें प्रचलित स्वरूप का ही आधार देखना है। 'लक्ष्यसंगीत' का वर्णन इस प्रकार है :—

शंकराभरणे मेले पाहाडिर्गीयतेऽधुना ।
मंद्रमध्यस्वरैश्चापि संमता सार्वकालिका ॥
षड्जपंचमयोरत्र संवादो रुचिरो मतः ।
मंद्रस्थो धैवतो नूनं वैचित्र्यं प्रतनोति सः ॥

भूपाल्याः प्रकृतिं धत्त गानमस्या यतोऽशतः ।
स्पर्शः शुद्धमध्यमस्यानुमतो लक्ष्यवेदिनाम् ॥

इस मत के अनुसार पहाड़ी में सभी स्वर शुद्ध लगते हैं। यह राग मंद्र व मध्य-सप्तकों में खूब खिलता है। पहाड़ी राग का समय निश्चित नहीं है, अर्थात् इसे चाहे जब गाया जा सकता है। इसका वादी स्वर षड्ज और संवादी पंचम है। इन दो स्वरों से यह राग बहुत ही सुंदर दिखाई देता है। इस राग में मंद्र-धैवत की ओर श्रोताओं का लक्ष्य विशेषकर जाता रहता है। इस स्वर के प्रयोग से इस राग का रूप कुछ निराला ही हो जाता है। 'ग, रे सा ध़, ग, रे ग, प, ग, रे सा ध़, प़, ध़ सा' यह स्वर-समुदाय एक बार सुनाई देने पर मन पर छा जाता है। मैं इसे किस तरह गाता हूँ, इसे ध्यान से देखो। इतने स्वरों को देखकर यह राग पहचान में भिन्न हो सकता है। पहाड़ी राग में म-नि स्वर दुर्बल लेने के कारण उसमें भूपाली-स्वरूप काफी प्रमाण में आ जाता है। कुशल गायक इस राग पर से भूपाली का प्रभाव अलग करने के लिए बड़ी सफाई से अवरोह में म-नि स्वरों का स्पर्श कर दिखाते हैं। यह काम बहुत सुंदर हो जाता है। मंद्र-स्थान के धैवत का प्रभाव इतना स्वतंत्र है कि भूपाली, शुद्धकल्याण आदि सम्प्राकृतिक रागों में भी यदि भूल से उसी प्रकार लग जाए, तो पहाड़ी का आभास स्पष्ट हो जाता है। मेरे ख्याल से तुम्हें यह राग बहुत अच्छी तरह तैयार कर लेना चाहिए। पहाड़ी में ऋषभ स्वर जान-बूझकर थोड़ा लिया जाता है। जलद-तानों में आते-जाते यह प्रयुक्त हो जाता है। गांधार पर आते-जाते ठहरते अवश्य हैं, परंतु उसे वादी स्वर नहीं बनाते। यदि इसे वादी बना दिया जाए, तो भूपाली स्पष्ट हो जाता है। इस राग में कभी-कभी तार-सप्तक में प्रवेश करते हैं, परंतु वहाँ अधिक समय नहीं रुकते। वहाँ यदि अधिक देर तक ठहर-कर काम किया जाए, तो यह राग रह नहीं पाता; बल्कि भूपाली या देशकार हो जाता है। पूर्व की ओर अर्थात् बंगाल में इस राग को संपूर्ण राग माना है और इसमें दोनों निषाद ग्रहण किए गए हैं। 'संगीतसार' में इस राग को संपूर्ण सिद्ध करने के लिए 'नारदसंहिता' और 'गीतसिद्धांतभास्कर' आदि को आधार बताया है। राजा साहब टैगोर ने 'नारदसंहिता' के 'रागाध्याय' को अपने 'संगीतसारसंग्रह' में उद्धृत किया है; वहाँ पृष्ठ ६२ पर 'पाहिड़ा' रागिनी का वर्णन इस प्रकार किया है :—

भर्तुर्दधाना चरणारविंदं ।
निषेधयंती परदेशयानम् ॥
प्रेमानुरागादतिकातराक्षी ।
सा पाहिडा संकथिता कवींद्रैः ॥

इन श्लोकों से बिलकुल स्वर-ज्ञान नहीं हो सकता। 'संगीतसारसंग्रह' के संग्रहकर्त्ता की निंदा करना मैं नहीं चाहता। उन्होंने बहुत परिश्रम व अत्यंत स्वार्थ-हीन बुद्धि से काम किया है, यह नहीं भुलाया जा सकता है। केवल उनके ग्रंथ में

जिन संस्कृत-ग्रंथों के आधार दिए गए हैं, उनके उपयोग के सम्बन्ध में मतभेद उत्पन्न हो सकता है; यही मेरे कहने का उद्देश्य है। ग्रंथों में अपूर्णता होने पर संग्रहकार क्या कर सकता है।

प्रश्न : आपने अभी बताया है कि बंगाल में दोनों निषाद लगाकर 'पहाड़ी' को गाते हैं। क्या आप हमें उधर का राग-स्वरूप बताएँगे ?

उत्तर : 'संगीतसार' में प्रत्येक राग का विस्तार स्वरों में कर दिखाया है। यह राग-विस्तार ग्रंथकर्त्ता ने ग्रंथ के आधार पर न करते हुए, अधिकांश रूप में प्रचार के अनुरूप किया है, ऐसा दिखाई देता है। स्थान-स्थान पर ग्रंथों के आधार अवश्य कहे हैं, परंतु वे राग में लगनेवाले स्वरों के विषय में नहीं हैं, ऐसा मेरी समझ में आता है। इसी ग्रंथ में पहाड़ी का स्वरूप इस प्रकार दिया हुआ है :—

नि़नि़सा, रेगरेममगरे, सा, गगरेसा, नि़ध़, ध़नि़सानि़ध़प़सानि़सा, रेगरेमममगरे, सागगरेसासा।

रेरेममपपपधमपध, रेमगरे, म, पमग, रेगरेसा, नि़सा, रेगरेमममगरे, गगरेसा, सा।

मेरे विचार से अब तुम अपने यहाँ के प्रचलित रूप को भी ध्यान से देख लो। हमारे यहाँ पहाड़ी का यह रूप प्रचलित है :—

सा, रेग, गरे, सारेगरे, सारेसा, नि़ध़, प़, ध़सारेग, गमगरे, सारेगसा, नि़ध़, ग, रेसा।

गगपप, धधपग, गरेसानि़ध़, प़ध़सा, गपधपग, रेसाध़, प़ध़सा, रेसा, सारेग, साध़, सांधप, ग, रेसाध़, प़ध़सा।

गग, गमगरे, रेगरेसानि़ध़, धधपग, गपग, मगरे, सानि़ध़, प़ध़सा, गगपध, सांध, पधप, गरेसाध़, रेसाध़, प़ध़सा।

सा, रेग, मगरे, सा, रेगरे, सारेसानि़ध़, प़ध़सा, रेगरेसा।

मन्द्र-सप्तक में जहाँ-जहाँ धैवत का प्रयोग हुआ है, वहाँ-वहाँ विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है; तभी तुम इस राग को उत्तम रूप से गा सकोगे।

प्रश्न : अब इस राग की हमें पर्याप्त जानकारी हो गई है ?

उत्तर : अब मैं तुम्हें कुछ बातें 'माड़' राग के विषय में और बता दूँ। फिर यह शुद्ध स्वरों का ठाठ पूर्ण हो जाएगा। 'माड़' राग को कहीं-कहीं 'मांड' भी कहते हैं। इस राग की गायकों द्वारा बहुत कम कीमत समझी जाती है। अक्सर बड़े-बड़े गायक इसे बिलकुल नहीं गाते। सामान्य लोगों की यह धारणा है कि इस राग का स्थान गुजरात प्रान्त है। यह बिलकुल नवीन स्वरूप नहीं है। इसमें सन्देह नहीं कि गुजरात की ओर इस प्रकार को गाने का अधिक रिवाज है। इस राग में खयाल, ध्रुपद आदि बड़ी मान्यता के गीत नहीं पाए जाते। गुजरात में, इस राग में जो गीत गाए जाते हैं, उन्हें 'गरभी' (गरवा) कहा जाता है। यद्यपि इन गीतों में मधुरता की कमी नहीं होती, फिर भी ये समाज में निम्नकोटि के गीत माने गए हैं। माड़ राग में सा, म, प, इन तीनों स्वरों की विचित्रता ध्यान देने-योग्य है। जहाँ-कहीं निषाद का प्रयोग आता है, उसे गायक कंपित करते हुए गाते हैं।

इससे राग की शोभा बढ़ जाती है। माड़ चाहे जब गाया जा सकता है। वह सदैव मनोहर लगता है। सूक्ष्म दृष्टि से इस राग का चलन देखने पर दिखाई देगा कि इस राग के आरोह में रे, ध स्वर दुर्बल किए जाते हैं। मार्मिक गायकों का कथन है कि इस राग का अवरोह बिलकुल वक्र है। मेरे विचार से उनका मत गलत नहीं है। 'सां ध, नि प, ध म, प ग, म रे, ग सा'—इस प्रकार का अवरोह विलंबित रूप से किए जाने पर माड़ राग बहुत स्पष्ट दिखाई देगा। कोई कहते हैं कि आरोह में 'सा रे म प ध सां' इस तरह स्वरों का प्रयोग करना चाहिए। दूसरे मत से आरोह में वक्रत्व दे देने से इस राग में अधिक स्पष्टता आ जाती है; जैसे—सा, ग रे, म, ग प, म ध, प नि ध सां'। इन सभी प्रकारों को तुम्हें ध्यान में रखना आवश्यक है। कल्याण ठाठ के दोनों मध्यमवाले राग बताते हुए मैंने इस प्रकार के वक्र प्रकार भी बताए थे।

यह स्मरण रखना चाहिए कि बिलावल ठाठ के रागों में माड़ राग ही ऐसा है, जो आरोह और अवरोह में वक्र है। माड़ का स्वरूप बिलकुल स्वतंत्र है। कुशल गायक इसमें बीच-बीच में मुक्त मध्यम का प्रयोग करते हैं, यह काम बहुत सुंदर हो जाता है। 'सां, नि ध, म' यह भाग तुम्हें बार-बार इस राग में दिखाई देगा। इस राग में वादी स्वर षड्ज और संवादी स्वर 'म' या 'प' माना जाता है। गुजरात में माड़ को भिन्न-भिन्न प्रकार से गाते हैं। कोई-कोई मध्यम स्वर को बढ़ाकर भी गाते हैं; इनके गाने में ग, नि स्वरों का महत्त्व रे, ध स्वरों की अपेक्षा अपने-आप कम हो जाता है। यह अत्यन्त सरल और साधारण राग है। जिन्हें गायन का ज्ञान नहीं होता, ऐसे भी लोग केवल सुनकर इसके स्वर अधिक अंशों में शुद्ध लगा लेते हैं। मुसलमान गायक सदैव इसे 'राग' नाम देने में ही अप्रसन्न होते हैं। वे इसे केवल एक 'धुन' बताते हैं। प्राचीन ग्रंथों में माड़ राग का नाम नहीं पाया जाता। 'लक्ष्यसंगीत' में यह नाम नहीं है। प्राचीन ग्रंथों में कहीं-कहीं 'मारू' शब्द या नाम आया है, परंतु वह अपना माड़ राग नहीं है। 'पारिजात' में मारू राग का वर्णन इस प्रकार दिया हुआ है:—

शुद्धस्वरसमुद्भूतो गांधारोद्ग्राहसंयुतः ।
आरोहे त्यक्तधो ज्ञेयो गांधारच्यवितोदितः ॥

'पारिजात' के शुद्ध स्वर प्रचलित काफी के स्वर हैं, यह प्रसिद्ध ही है। 'राग-तरंगिणी' में मारू राग शुद्ध स्वर के ठाठ में बताया गया है, परंतु अधिक स्पष्टता उसमें भी प्राप्त नहीं होती। फिर भी यह बात ध्यान रखने योग्य है।

प्रचलित माड़ के लक्षण 'लक्ष्यसंगीत' के अनुसार इस प्रकार हैं:—

वेलावलाख्यसंमेलान्माडस्योत्पत्तिरीरिता ।
मारूमेवाडदेशेऽस्य जन्मभूःश्रूयते क्वचित् ॥
प्राबल्यं समपानां स्यान्निषादस्यात्र कंपनम् ।
गानमनुमतं तज्ज्ञै रंजकं सार्वकालिकम् ॥

आरोहे रिधदौर्बल्यं वक्रत्वमवरोहणे ।
मध्यमस्यापि व्यस्तत्वं सर्वत्रातिमनोहरम् ॥
केचिदत्रारोहणेऽपि वक्रत्वमादिशंतितत् ।
मन्ये नूनमुपपन्नं लक्ष्यमार्गविचारतः ॥

प्रश्न : अब हमें प्रचलित राग का विस्तार स्वरों में बता दीजिए !

उत्तर : ठीक है, सुनो—

सा, ग, रे सा, म, प ग म, रे ग, रे सा, म, प, नि ध म, प ग, रे सा ।

सा ग रे म, रे ग रे सा, म प ध म, प, म, ग म, रे ग, रे सा, ध ध नि प, ध म, प ग, रे सा ।

म म, रे ग, रे सा, रे म, रे म प, प ध प, नि ध प, सां नि ध म, प ग, रे सा ।

म, प, ध नि, प, सां, रें गं, रें सां, सां नि ध, नि प, ध म, प ध सां, गं सां, नि, ध, नि प, ध म, प ग, सां नि ध म, प, ग म, रे ग रे सा ।

इस प्रकार हमारा दूसरा ठाठ पूर्ण हुआ । इसमें मैंने तुम्हें कुल अठारह रागों का वर्णन बताया है । इस ठाठ में कुछ राग ऐसे हैं, जिनका गाना वास्तव में सरल नहीं है । इन रागों के लक्षणों को पूर्ण रूप से ध्यान में जमा लेने पर उनका उपयोग अनेक स्थानों पर हो जाता है ।

प्रश्न : इस ठाठ के राग हमीर हमारे ध्यान में जिस प्रकार आए हैं, उसे सुन लीजिए । इन रागों में आठ-नौ तो बिलावल के ही भिन्न-भिन्न प्रकार हैं, जैसे शुद्ध-बिलावल, अल्हैया, देवगिरी, कुकुभ, सरपरदा, लच्छासाख, यमनी, नटबिलावल आदि । इनमें से यमनी राग, कल्याण ठाठ का होने पर भी बिलावल का एक प्रकार होने से इस ठाठ में बताया गया है । बिलावल में ग-नि की थोड़ी-बहुत वक्रता, ध-म की मधुर संगति और धैवत की संगति में आनेवाला कोमल निषाद का कण—बहुत ही स्मरणीय बातें हैं । नटबिलावल और शुक्लबिलावल में मध्यम स्वर मुक्त रूप से (खुला) लगता है, यह बात बहुत ध्यान में रखने का आदेश आपने दिया था । इस प्रकार का खुला मध्यम बिलावल के अन्य किसी प्रकार में नहीं लगाया जाता, अर्थात् यही मध्यम इन रागों की पकड़ है । नट-बिलावल में नट का एक भाग दिखाई देगा ही, अतः इसकी पहचान करना कठिन नहीं है । बिलावल के अन्य प्रकारों को उनके पूर्वांग से पहचान लिया जा सकता है, जैसे पूर्वांग में झिंझोटी या थोड़ा गौड़सारंग का भाग दिखाई देने पर 'लच्छासाख' हो जाता है । पूर्वांग में यदि जयजयवंती का भाग दिखाई दिया, तो कुकुभ हो जाएगा । यह सब हमारे ध्यान में है । इसी प्रकार पूर्वांग में कल्याण का भाग दिखाई देने पर देवगिरी हो जाएगा । यह सब हमारे ध्यान में ठीक से आगया है । 'सरपरदा' राग में गौड़सारंग की तान 'रे ग रे म ग, प रे सा' नहीं आती, यह हमें अच्छी तरह स्मरण है । बिलावल में 'ग म, रे, सा' स्वर-समुदाय का उत्तम

अभ्यास हो जाना चाहिए। यमन और यमनकल्याण को अलग-अलग गाते हुए जैसे गायकों को असमंजस होता है; उसी प्रकार शुद्धबिलावल और अल्हैया गाते हुए होता है।

जिस प्रकार नट राग में खुला मध्यम लगता है, वैसा ही प्रयोग दुर्गा में होता है। परंतु उनके भिन्न-भिन्न लक्षणों की सहायता से उन्हें अलग-अलग किया जा सकता है। नट में ग-ध स्वर केवल अवरोह में वर्ज्य किए जाते हैं और दुर्गा में ग-नि बिलकुल ही वर्ज्य किए जाते हैं। गांधार व निषाद छूट जाने पर बिलावल का संदेह भी नहीं रह पाता। मलुहा और हेमकल्याण का चलन और स्वरूप यद्यपि निकट और एक-सा ही है, क्योंकि ये दोनों मंद्र व मध्य-सप्तक में गायकों द्वारा गाए जाते हैं, परन्तु मलुहा में रे-ध दुर्बल और हेमकल्याण में ग-नि स्वर दुर्बल किए जाते हैं। यह उन्हें अलग-अलग करने का लक्षण है।

हम देशकार को भूपाली से अलग तत्काल ही पहचान सकते हैं। उसे उत्तरांग में सुनते ही (विशेषकर 'सां, ध प' स्वर-विभाग) शरीर के रोम-रोम खड़े हो जाते हैं। 'भूपाली' में हम रे-ग स्वरों के महत्त्व को अच्छी तरह समझ चुके हैं। 'हंसध्वनि' राग, जोकि अपने यहाँ अधिकतर नहीं सुनाई पड़ता, तो भी इसे हम पहचान सकते हैं, क्योंकि इसमें म-ध स्वर नहीं लिए जाते। इस जगह में हमें शंकरा राग से अलग देखने का प्रयत्न करना होगा; परंतु धैवत स्वर शंकरा राग में वर्ज्य नहीं होता, यह एक प्रधान लक्षण मिल जाता है। 'मांड़' राग का वक्र स्वरूप हमें तो बहुत पसंद आया है। चाहे लोग उसे अल्प महत्त्व का क्यों न कहें, परंतु हमें तो 'सां नि ध, म, प, ध नि, प' आदि उसके प्रकार बहुत पसंद आए हैं। 'पहाड़ी' राग सभी ग्रंथों में—भैरव ठाठ में बताया है और प्रचार में शुद्ध स्वरों में भूपाली-जैसा देखकर हमें आश्चर्य ही हुआ। फिर बंगाल का प्रकार तो और भी निराला है। गुणकली के दोनों प्रकार विवादग्रस्त हैं, अतः हमने दोनों स्वरूप कंठस्थ कर लिए हैं। भैरव ठाठ का वर्णन करते हुए आप 'गुणक्री' राग आगे बताएँगे ही !

उत्तर: शाबास ! शाबास !! तुमने इस ठाठ के संपूर्ण रागों को अच्छी तरह समझ लिया है। यह तुम्हारे ऊपर के वर्णन से मैं समझ गया हूँ। अब तुम्हारा बिलावल-विभाग सपूर्ण हो गया।

खमाज ठाठ के राग (प्रथमार्ध)

प्रश्न : अब आप अगले ठाठ के राग बताइए ?

उत्तर : ठीक है, अब हम खमाज ठाठ के रागों पर विचार करेंगे।

प्रश्न : खमाज ठाठ में शुद्ध ठाठ से आपने केवल कोमल निषाद का अंतर बताया है। आप इस ठाठ में हमें कौन-कौन-से राग बताएँगे ?

उत्तर : खमाज ठाठ के रागों के नाम इस प्रकार हैं—१. झिंझोटी, २. खमाज, ३. तिलंग, ४. खंबावती, ५. बड़हंस, ६. नारायणी, ७. प्रतापवराली, ८. नागस्वरावली, ९. सोरटी, १०. जयजयवंती, ११. देश, १२. तिलककामोद, १३. गौड़मल्हार, १४. दुर्गा, १५. रागेश्वरी, १६. गारा। इसके सिवाय मल्हार के एक-दो मिश्र प्रकारों के विषय में भी कुछ शब्द कहूँगा। यह मैं तुम्हें बता ही चुका हूँ कि ऐसे मिश्रित प्रकारों की खुलासा जानकारी नहीं दी जा सकती। ग्रंथकार भी ऐसे मिश्र रागों के विषय में केवल नाम बताकर चुप बैठे मिलेंगे। इस प्रकार के ग्रंथकारों के विषय में 'चतुर-पंडित' ने कहा है:—

विशिष्टलक्षणान्येषां रागाणां नैवचाब्रवीत् ।
ग्रंथकारो यथायोग्यं विचार्य तद्विचक्षणः ॥
प्रवचनं पुनस्तेषां क्लिष्टमेव भवेत्सदा ।
अतस्तेन धृतं मौनं नमेह्याश्चर्यकारणम् ॥
रागावयवभूतानामुत्तमांशान्विवृत्य ते ।
मुख्यरागान् पुरस्कृत्य गायंति लक्ष्यकोविदाः ॥

अपने प्रचार में भी यही विचारधारा काम करती दिखाई देगी। मल्हार के अनेक मिश्र प्रकारों में मल्हार मुख्य राग तो होता ही है, इसके सिवाय अन्य मिश्रित होनेवाले राग के योग्य अंश को पसंद कर उसमें मिला लिया जाता है। यह सब तुम्हें आगे आएगा।

प्रश्न : ठीक है ! अब आप हमें इस ठाठ में सर्वप्रथम कौन-सा राग सिखाएँगे ?

उत्तर : मैं यही विचार कर रहा था कि तुम्हें झिंझोटी राग पहले बताऊँ या खमाज राग बताऊँ। इस ठाठ का नाम तो 'खमाज' है, परंतु इसका आश्रय राग झिंझोटी ही है।

प्रश्न : ऐसा क्यों हुआ ? आपने ऊपर जिन दो ठाठों का वर्णन बताया है, उनके आश्रय रागों के नाम बिलकुल ठाठ के ही नाम थे। यदि यहाँ आश्रय-राग झिंझोटी है, तो फिर इसे झिंझोटी ठाठ क्यों नहीं कहा जाता ?

उत्तर : 'खमाज' नाम बहुत प्राचीन है। काम्भोजी ठाठ प्राचीन ग्रंथों में प्रसिद्ध है। उसी के स्वर अपने खमाज ठाठ में हैं, अतः इसका नाम उसी पर रख लिया गया है। यह भी एक कारण कहा जा सकता है कि लक्ष्यसंगीतकार ने इसी प्रकार का नामकरण किया है (अर्थात् ठाठ का नाम झिंझोटी न रखकर खमाज ठाठ ही रखा है)।

प्रश्न : खैर, कोई हर्ज नहीं। हमें उत्तम रूप से प्रत्येक राग समझ लेने के बाद ठाठों के झंझट में पड़ने की आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी। यह ठीक है कि झिंझोटी नाम आधुनिक दिखाई देता है, इस कारण गायक इसे प्रतिष्ठित नहीं समझते हैं। आपने पहले शायद इसी लिए कहा था कि इस राग में खयाल-ध्रुपद आदि उच्च कोटि के गीत नहीं पाए जाते।

उत्तर : तुम ठीक-ठीक समझते हो।

प्रश्न : तो फिर आप झिंझोटी राग ही पहले बताइए! यह आश्रय राग है, अतः इसमें विशेष नियमों की उलझन नहीं होगी!

उत्तर : नहीं, कोई उल्लेखनीय उलझनें न होने से झिंझोटी का वादी स्वर गांधार और इसका संवादी स्वर निषाद होता है।

प्रश्न : तो क्या कोमल निषाद संवादी होता है! यह कैसे संभव है?

उत्तर : इस जगह वादी-संवादी शब्दों के अनुसार हमें चलना पड़ेगा! कोई कहते हैं कि संवादी धैवत लिया जाए। इस ठाठ के चार-पाँच ऐसे राग हैं, जिनमें गांधार स्वर वादी माना गया है।

प्रश्न : तो फिर वे सब अलग-अलग कैसे किए जाते होंगे; इसे अच्छी तरह ध्यान में रखना पड़ेगा। झिंझोटी का मुख्य राग कौन-सा है?

उत्तर : 'ध़ सा, रे म ग' यह पकड़ तुम्हें कभी नहीं भूलनी चाहिए। यहाँ आरोह में 'रे' स्वर लिया जाता है, यह ध्यान में रखने की बात है। यदि तुम 'नि़ सा रे सा, नि़ ध़ प़, ध़ सा, रे म ग' इन स्वरों को गाओ, तो जानकार लोग कह देंगे कि तुम झिंझोटी राग गा रहे हो।

प्रश्न : 'सा रे ग, रे ग, ग रे सा' ये स्वर झिंझोटी के हैं और झिंझोटी में नियमों की उलझन नहीं..........!

उत्तर : परंतु यह भाग यमन, भूप आदि रागों का है। सुननेवालों के मन पर इन रागों की छाया उत्पन्न होना सम्भव है।

प्रश्न : ठीक है, शायद इसी लिए इसमें शुद्ध 'म' लिया गया है! आगे बताइए?

उत्तर : झिंझोटी को खमाज राग से बचाने की विशेष सावधानी रखनी पड़ती है। कल्याण-अंग के शुद्ध मध्यम और कोमल निषाद नहीं होने से यह राग अलग हो जाता है। खमाज के आरोह में ऋषभ वर्ज्य किया जाता है। इस प्रकार झिंझोटी

राग खमाज से भी अलग हो जाता है। यह मैं तुम्हें बता चुका हूँ कि गायक लोग इस राग में 'सा रे ग' इस प्रकार प्रयोग नहीं करते हुए 'सा रे म ग' इस प्रकार प्रयोग करते हैं। जिस प्रकार यह काम पूर्वांग में किया जाता है, उसी प्रकार उत्तरांग में बीच-बीच में 'नि' स्वर छोड़ा जाता है। परंतु इस राग के आरोह में ग-नि स्वर वर्ज्य नहीं किए जाते। मर्मज्ञ लोगों का मत है कि यह राग खमाज को तोड़-मोड़कर तैयार किया गया है।

यहाँ एक महत्त्वपूर्ण बात और बताना चाहता हूँ कि जिन रागों में नियमों की दृष्टि से कोमल निषाद बताया गया है, उन रागों में प्रचार में गायक लोग प्राय: आरोह में तीव्र निषाद ही लेते देखे जाते हैं।

प्रश्न : क्या जान-बूझकर ऐसा करते हैं ? ऐसा होना कैसे संभव है ?

उत्तर : यद्यपि ऐसा करना शास्त्रीय नियमों की कठोर कसौटी से खरा नहीं उतरता, परंतु मेरे खयाल से कभी-कभी ऐसा करना आवश्यक हो जाता है। विलंबित में अत्यंत दिलचस्पी से गाने पर आरोह में कोमल निषाद लगाया भी जा सकता है, परंतु जलद-तानों में जिस निषाद का प्रयोग अपने-आप हमारे द्वारा हो जाता है, वह वास्तव में कोमल निषाद से ऊपर का स्वर ही होता है। अभी तुम्हें काफी अनुभव नहीं है, परंतु अनुभवी मर्मज्ञ लोग जानते हैं कि आरोह में कोमल मानकर लिया हुआ स्वर अवरोह में उस स्वर के कोमल-स्थान से किंचित् ऊँचा ही लगता है। ऐसा होने का क्या कारण है ? यह एक निराला प्रश्न है। तुम्हें प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त किए बिना इस प्रश्न की उलझन में पड़ना ठीक नहीं है। हमारे गायक कितने कुशल हैं, यह विचारने की बात है। उन्होंने यह नियम भी बना दिया है कि जिस राग में तीव्र 'ग' और कोमल 'नि' स्वर नियमित रूप से बताए हों, उसके आरोह में निषाद स्वर तीव्र रूप में लेने से राग-हानि नहीं होती।

प्रश्न : आपने एक बार पहले बताया था कि एक श्रुति के चढ़ने-उतरने से विशेष हानि नहीं होती। क्या यह नियम इसी धारणा पर बनाया गया है ?

उत्तर : हाँ, यह ठीक है। साथ ही यह नियम सरल और उपयोगी भी है। इस प्रकार के उदाहरण तुम्हें काफी ठाठ में भी बहुत-से प्राप्त होंगे।

हमें इस तरह समझना चाहिए कि खमाज ठाठ में शंकराभरण राग का योग होने से दोनों निषाद उपयोगी हो जाते हैं। कोई-कोई चतुर गायक शुद्ध स्वर के ठाठ की उपमा शुद्ध पानी से देते हैं और कहते हैं कि जिस प्रकार शुद्ध जल अपने लिए अनेक मिश्रण तैयार करने में उपयोगी होता है; उसी प्रकार शुद्ध स्वरों के ठाठ के योग से अनेक निराले राग अपने प्रचार में उत्पन्न किए जा सकते हैं। खैर, यह निराला विषय है।

प्रश्न : अब आप हमें झिंझोटी का रूप स्वरों में बताइए ?

उत्तर : इसका रूप इस प्रकार होगा:—

सा, रे म ग, म ग प, म ग, सा, रे सा, ऩि ध़, ऩि ध़ प़, ध़ सा, रे म ग, ग म ग रे सा, सा रे ग म ग।

सा रे म ग, ग म प, ग म ग, ध ध प, ग म ग, सा रे ग म ग रे, सा, ऩि ध़ प़, ध़ सा, रे म ग।

ध नि ध प, प ध प, ग म ग, सा रे म ग, नि नि ध प, म ग, म प म ग, रे रे प म ग, सा रे ग म ग रे, सा, रे सा ऩि ध़ प़, ध़ सा, रे म ग।

सां, रें सां नि ध प, नि ध प, म ध प नि ध प, म ग, रे रे प म ग, म ग रे सा, सा रे ग म ग रे सा, रे सा ऩि ध़ प़, ध़ सा, रे म ग।

सा रे ग म प, ग म प, ग म प ध नि ध प, सां, नि ध प, ग म प ध प म ग, सा रे, म ग, म ग रे सा, रे रे सा ऩि ध़ प़, ध़ सा, रे म ग।

ग म प, नि नि ध प, सां नि ध प, गं मं गं रें सां, सां रें सां, नि ध प, म प ध प, म ग, सा, रे ग म ग, प, ग म ग, सा रे ग म ग रे सा, ऩि ध़ प़, ध़ सा, रे म ग।

Capt. Day साहब ने अपनी पुस्तक के पृष्ठ ५६ पर इस राग का आरोहावरोह इस प्रकार दिया है:—

'सा रे ग म प ध नि । ध प म ग रे सा'

अनेक बार तुम्हें इस प्रकार दिखाई देगा कि झिंझोटी के गीत मन्द्र और मध्य-सप्तकों में ही गाए जाते हैं। तो भी कहीं-कहीं तुम्हें तार-सप्तक का प्रयोग होता हुआ दिखाई पड़ेगा।

प्रश्न : उपर्युक्त सज्जन ने अपने संगीत के लिए बहुत ही परिश्रम किया है, ऐसा दिखाई देता है। हमने तो अनेकों के मुँह से यह सुना है कि यूरोपियन लोगों को हमारा संगीत जंगली (असभ्य) समझ में आता है।

उत्तर : Capt. Day साहब उन लोगों में से नहीं थे। ये बड़े खोजी व्यक्ति थे। इन्होंने अपने संगीत के गुण और दोष काफी मात्रा में स्पष्ट रूप से बता दिए हैं। उनके मत से, अमुक राग को सदा अमुक स्वर में गाना, उसमें कोई नवीन स्वर न लगाना आदि कठोर नियमों से अपना संगीत संकुचित हो गया है। वे कहते हैं:—

"The wide divergence of the taste in the matter of music between European and Asiatic nations has doubtless arisen from the fact that while the Western nations gradually discarded the employment of mode, and clothed the melody with harmony, the Eastern nations in this respect made little or no progress; and now, in India, the employment of authentic modes and melody types (or ragas) is still jealously adhered to.

Speaking of this Capt. Willard remarks, "To expect an endless variety in the melody of Hindustan would be an injudicious hope, as their authentic melody is limited to a certain number, said to have been composed by professors universally acknowledged to have possessed not only real merit but also the original genius of composition, beyond the precincts of whose authority it would be criminal to trespass. What the more reputed of the moderns have done is that they have adopted them to their own purposes, and found others by the combination of two or more of them. Thus far they are licensed, but they dare not proceed a step further. Whatever merit an entire modern cemposition might possess, should it have no resemblance to the established melody of the country, it would be looked upon as spurious. It is implicitly believed that it is impossible to add to the number of these one single melody of equal merit, so tenacious are the natives of Hindustan of the ancient practices."

The continued employment of mode, combined with the almost entire absence of harmony, has prevented Indian music from reaching any higher pitch of development, such as has been attained elsewhere. It stands to reason also that this is the chief cause of the monotony which causes Indian music to be little appreciated by, if not repellent to, European ears.

Since the early periods of Indian history, music would seem to have been cultivated more as a science than an art. More attention seems to have been paid to elaborate and tedious artistic skill than to simple and natural melody. Hence arose technical rules that marred the pristine sweetness of melody—the very life of all real music. To a great extent this must be attributed to the art falling into the hands of illiterate 'virtuosi.' Their influence, which caused music to suffer both in purity of style and simplicity is being felt less and less. The great aim of all music—'Rakti', or the power of affecting the heart now asserts itself more and more, and is slowly but surely bringing about a return to the early type of sweet, simple melody."

Capt. Day साहब का ग्रंथ दक्षिणी संगीत पर और Capt. Willard साहब का ग्रंथ 'हिन्दुस्तानी संगीत' पर है, यह ध्यान देने की बात है। हमारा

संगीत यूरोपियन लोगों को पसंद नहीं आता, इसका हमें कोई दुःख नहीं होना चाहिए। क्या उनका संगीत अपने लोगों को आज तक थोड़ा भी अनुकरणीय लगा है ? उन पंडितों (यूरोपियनों) का अभिमान तो यह है कि हमारा संगीत ही नाद-शास्त्र की दृष्टि से शुद्ध और रंजक है।

प्रश्न : चाहे वह नाद-शास्त्र की दृष्टि से शुद्ध भी हो, परंतु हमें तो वह (पश्चिमी संगीत) जरा भी पसन्द नहीं आया, यह स्पष्ट स्वीकार करते हुए हमें कोई झिझक नहीं है। हमने टाउन-हाल में Concerts सुने और Victoria Gardens में Bands भी सुने, परतु जो आनन्द हमें हमारे संगीत में प्राप्त होता है, वह वहाँ नहीं आया। किसी-किसी स्थान पर जहाँ हमारे संगीत-जैसे भाग आ जाते थे, वहाँ तो वे भाग हमें अच्छे लगते थे, परंतु जहाँ उन्होंने उनकी Harmony का प्रयोग किया कि हमें एक प्रकार की चीख और चिल्लाहट ही समझ में आती थी !

उत्तर : मेरे खयाल में यही तुम गलती करते हो। तुम्हें उस संगीत के नियमों की जानकारी नहीं है, इसलिए तुम्हें उसका वास्तविक आनन्द प्राप्त नहीं होता। शास्त्रीय दृष्टि से देखने पर उन्होंने इस विषय में हद दर्जे का कमाल कर दिखाया है, ऐसा जानकार लोगों का कथन है। मैं यह तो तुम्हें बता ही चुका हूँ कि मुझे अँग्रेजी संगीत नहीं आता, परंतु उसमें रंजकता का गुण नहीं है, ऐसा मैं नहीं कह सकता। उन संगीत के सच्चे कुशल लोगों का संगीत हमारे सुनने में नहीं आता है, अतः हमें उसकी वास्तविक विशेषताएँ नहीं दिखाई देतीं। अपनी दृष्टि सदैव न्याय की ओर रहनी चाहिए। अपने दक्षिण-संगीत के विषय में Day साहब क्या कहते हैं, देखो :—

"Comparatively few Indian airs have found their way to Europe. Those few, that have been published, are mostly from either Bengal or Northern India, so that there is but small resemblance in them to the national music of the Deccan or the South; for there is a marked difference between the music of the various parts of India, which to even the most casual observer is evident."

मेरे विचार से अभी हमारा इस विषयान्तर में जाना अच्छा नहीं है। Capt. willard और Capt. Day के ग्रंथों को पढ़ने के लिए मैंने तुम्हें इससे पूर्व ही कहा है। उनके ग्रंथों को सम्पूर्ण रूप से बिना पढ़े उनके कथन का रहस्य तुम्हें अच्छी तरह समझ में नहीं आ सकता, अस्तु हम झिझोटी का विचार तो कर चुके हैं।

प्रश्न : अब आप खमाज राग लीजिए !

उत्तर : ठीक है। खमाज का ठाठ तो तुम्हें बताने की आवश्यकता है ही नहीं। 'खमाज' नाम प्रचार का नाम है। कोई-कोई कहते हैं कि 'खमाज' शब्द

'कांभोजी' शब्द का अपभ्रंश रूप है। दूसरा मत है कि खमाज शब्द 'खम्बावती' का अपभ्रंश रूप है। इस समय प्रचार में ये तीनों—खमाज, खम्बावती और कांभोजी अलग-अलग प्रकार हैं। खमाज राग साधारण रागों में से है। इसे बहुत-से छोटे-बड़े गायक जानते हैं। इसके गाने का समय रात्रि का दूसरा प्रहर है। इस राग में गायक लोग सदैव गजल, टप्पे, ठुमरी आदि लोकप्रिय गीत गाते हैं। इसमें कभी-कभी ध्रुपद भी दिखाई पड़ जाते हैं, परंतु खयाल तो शायद ही कहीं दिखाई दें।

प्रश्न : क्यों भला ! जब ध्रुपद गाए जाते हैं, तब खयाल नहीं ?

उत्तर : मैंने यह नहीं कहा है कि इसमें खयाल बिलकुल ही नहीं गाए जाते। हाँ, इसमें बहुत खयाल नहीं पाए जाते। इसका कारण यही है—यदि गीत सावकाश (विलम्बित) में गाया जाए, तो ध्रुपद-जैसा दिखाई देता है। द्रुत लय में गाए जाने पर ठुमरी-जैसा दिखाई देने लगता है। इस राग में क्षुद्र गीत गाने की प्रथा अधिक है। अमुक राग में अमुक प्रकार के गीत क्यों नहीं हैं, इस विषय पर मैं तुम्हें श्री बनर्जी का कथन पहले ही बता चुका हूँ। इसपर अधिक विवेचना करने की अभी आवश्यकता नहीं दिखाई पड़ती।

खमाज राग में आरोह में ऋषभ स्वर वर्ज्य किया जाता है। पूर्वांग में इस स्वर के वर्ज्य होने से इसके संवादी स्वर धैवत के प्रयोग में भी थोड़े नियम पाए जाते हैं। आरोह में यद्यपि धैवत वर्ज्य नहीं किया जाता, फिर भी गायकों के द्वारा 'ग म प, नि सां' या 'ग म ध, नि सां' इस प्रकार उत्तरांग में आरोह किया जाता है। इस राग के अन्तर प्रायः उपर्युक्त दोनों प्रकार में से किसी एक प्रकार में होते हैं। ये प्रकार भी बहुत सुन्दर लगते हैं। अवरोह में यद्यपि यह राग संपूर्ण है, परंतु गायकों द्वारा धैवत से पंचम पर न आकर मध्यम में जाने का विचार अधिक है; जैसे :—

'सां नि ध, म म ग' अथवा 'सां नि ध प म ग' यह अवरोह गलत नहीं है, परंतु विलम्बित रूप से गाने में उत्तम नहीं दिखाई देता। इस प्रकार गाने से झिंझोटी का भाग अधिक उत्पन्न हो जाता है। खमाज का यह आरोह-अवरोह 'सा ग, म प, नि सां' सां नि ध, म म ग, रे सा' बुरा नहीं दिखाई देता। अंतरा इस प्रकार लिया जाता है—'ग म, ध नि सां, नि सां' यदि 'ग म प ध नि सां' इस प्रकार सरल तान ली गई, तो वह झिंझोटी-जैसा रूप बता देगी। कोई-कोई इस प्रकार स्थूल नियम बताते हैं कि खमाज के आरोह में धैवत और अवरोह में पंचम को महत्त्व नहीं दिया जाता। यह ठीक है कि एक ही तान में 'ध' और 'प' दोनों स्वर एक-से नहीं बढ़ाए जा सकते।

प्रश्न : इस राग का वादी स्वर तो गांधार ही है न ?

उत्तर : हाँ ! वही वादी स्वर है। खमाज में आरोह-अवरोह यदि कोई

'सा ग, म प, नि सां', 'सां नि ध प, म ग, रेसा' इस प्रकार कर दे, तो उसकी हँसी उड़ाना ठीक नहीं है। मुख्य नियम केवल ऋषभ स्वर वर्ज्य करने का है। अन्य प्रयोग तो इस राग को पहचानने-योग्य भिन्न प्रकार से गाने की युक्तियाँ-मात्र हैं। खमाज के अन्तरे प्रायः 'ग म ध नि सां, नि सां, नि नि सां रें, सां नि ध' इस प्रकार शुरू होते हैं। इसे ठीक से याद रखने पर इस राग को समप्राकृतिक रागों से अलग पहचानना सरल हो जाएगा।

प्रश्न : खमाज के समान दिखाई देनेवाला अन्य कौन-सा राग है ?

उत्तर : इसी प्रकार दिखाई देनेवाला एक राग तो 'तिलंग' है। यह राग खमाज के बिलकुल निकट का राग है। इन दोनों को, श्रोताओं को बार-बार पहचानने में गड़बड़ी हो जाती है।

प्रश्न : क्या 'तिलंग' में वादी स्वर गांधार ही है ?

उत्तर : हाँ, यही तो उलझन है।

प्रश्न : फिर हम तिलंग को अलग कैसे पहचानेंगे ?

उत्तर : मैं तिलंग के विषय में अलग से बतानेवाला था, पर अब ऐसा करने की आवश्यकता नहीं है। तिलंग में रे-ध स्वर वर्ज्य होते हैं...

प्रश्न : परंतु ये स्वर तो खमाज में भी वर्ज्य होते हैं। खमाज का आरोह आपने अभी बताया है—'ग म प, नि सां'।

उत्तर : तुमने मुझे वाक्य पूरा ही नहीं करने दिया। तिलंग में रे-ध स्वर अवरोह में भी वर्जित होते हैं।

प्रश्न : ऐसा है ! तब ठीक है। इस नियम से तिलंग का अवरोह 'सां नि प म ग, सा' हुआ। आपने झिंझोटी समझाते समय कहा था कि तीव्र 'ग' और कोमल 'नि' वाले राग में आरोह में निषाद तीव्र लिया जाता है। क्या इसी प्रकार इस राग में भी लिया जाएगा ?

उत्तर : हाँ, खमाज व तिलंग, दोनों के आरोह में गायक लोग निषाद तीव्र ही लेते हैं, ऐसा करना गलत नहीं है। तिलंग राग रात्रि के मध्य में गाया जाता है।

झिंझोटी, खमाज और तिलंग निकट के राग हैं। तिलंग का अंतरा 'ग म प, नि नि सां, नि सां' इस प्रकार आरम्भ होता है और खमाज का अंतरा 'म ध, नि सां, नि सां' इस प्रकार शुरू होता है। अवरोह में तिलंग का अंश 'सां नि प, ग म ग' और खमाज का अंश 'सां नि ध म म ग' आता है। दोनों रागों में 'नि सा, ग म प' ये भाग लिए जाते हैं, क्योंकि दोनों में ऋषभ स्वर वर्ज्य है। गायकगण प्रायः इसे मन्द्र-सप्तक में नहीं गाते, क्योंकि इस प्रकार इसमें झिंझोटी का आभास होना संभव हो जाता है। इन तीनों रागों के लक्षण तुम्हें इस प्रकार कंठस्थ कर लेने चाहिए।

कांभोजीमेलको ग्रन्थे खंमाजीनामकोऽधुना ।
तदुद्भवाश्च ये रागा निकोमलाः सुसंमताः ॥
झिंझूटिं प्रथमं वक्ष्ये मेलरागसमाश्रयाम् ।
गांधारांशादिकां पूर्णां सायंगेयां सुशोभनाम् ॥
आरोहे रिस्वरस्पर्शः खंमाजमपसारयेत् ।
सरलारोहणत्वाच्च गौडसारंगकोऽपि नो ॥

प्रश्न : वास्तव में 'रे म ग' स्वर-समुदाय गौड़सारंग में भी आया था, परंतु यह राग सरल आरोह का है और गौड़सारंग ऐसा नहीं है। यह इन दोनों की भिन्नता हम अच्छी तरह समझ गए।

उत्तर : अब खमाज के लक्षण सुनो :—

कांभोजीमेलसंजातो रागः खंमाजनामकः ।
आरोहे तु रिवर्ज्यं स्यादवरोहे समग्रकम् ॥
यदा हि धैवतो दीर्घस्तदा मध्यमसंगतिः ।
आरोहे पंचमाल्पत्वं निषादो रक्तिव्यंजकः ॥
प्रयोगस्तीव्रनेरेव मारोहे सर्वसंमतः ।
दृश्यते नियमोऽप्येष लक्ष्यज्ञानां विपश्चिताम् ॥

प्रश्न : यह सब आपके बताए प्रमाण के अनुसार है। सचमुच ये श्लोक कितने उपयोगी हैं!

उत्तर : मैं अपने प्रचलित संगीत के लिए 'लक्ष्यसंगीत' को ही आधार-ग्रंथ मानता हूँ। ये श्लोक उसी ग्रंथ के हैं; इन्हें याद करने पर तुम्हें दूसरे लक्षणों का जरूरत नहीं होगी।

प्रश्न : ठीक है, आगे सुनाइए ?

उत्तर : गांधारः संमतो वादी निषादोऽमात्यसंज्ञितः ।
गानमेतस्य रागस्य रात्र्यां यामे द्वितीयके ॥
संगतिर्धमयोरत्र विशेषेण सुखप्रदा ।
अवसानं गेस्वरेतद्वदेद्रागं परिस्फुटम् ॥

अब तिलंग के लक्षण सुनो, ये कितने रोचक हैं :—

जाता कांभोजिमेले या रागिणी सा तिलंगिका ।
आरोहे चावरोहेऽपि रिधहीनैव संमता ॥
गांधारोऽत्र भवेद्वादी निषादोऽमात्यसंनिभः ।
खंमाजीं प्रकृतिं धत्ते नीपयोः संगतिः सदा ॥

धैवतस्य विलुप्तत्वे सिद्धा खंमाजभिन्नता।
रिधहीना यतो गीता झिंझूटिर्नैव सर्वथा ॥
पंचमेन प्रस्फुटेन दुर्गाया नैवसंभवः ॥
गानमस्याः समीचीनं भूयाद्यामे द्वितीयके।

इन सब श्लोकों का भाव मैं तुम्हें बता ही चुका हूँ, इसलिए इन श्लोकों का भाषान्तर करना भी आवश्यक नहीं है।

प्रश्न : और ये श्लोक भी तो बिलकुल सरल भाषा में हैं, इसलिए इनके भाषान्तर के लिए हमने आपसे आग्रह नहीं किया है। अन्तिम श्लोक में दुर्गा राग का नाम बताया है। यह राग आप आगे बताएँगे न ?

उत्तर : हाँ, मैं तुम्हें आगे दुर्गा राग बताऊँगा। इससे पहले हम एक-दो ग्रंथों के मत और देख लें। झिंझोटी के विषय में तो किसी भी ग्रंथ में कुछ प्राप्त नहीं होता। 'चत्वारिंशच्छतरागनिरूपणम्' ग्रंथ में नटनारायण राग का परिवार बताते हुए 'कांभोजी' को नटनारायण की भार्या और त्रैलंगी को नटनारायण की पुत्र-वधू बताया गया है :—

चतुर्भुजः प्रावृतपीतवस्त्रः
कंठेतुदीर्घा शुभपुष्पमाला।
श्यामं वपुः सुन्दरतार्क्ष्यवाहः
नारायणोऽयंनटशब्दपूर्वः ॥
बंगाली शुद्धसालंका कांभोजी मधुमाधवी।
देवक्रीतिचपंचैता नटनारायणांगनाः ॥
शुद्धबंगालको नाटो गारुडो मोहनस्तथा।
नालीकनयना एते नटनारायणात्मजाः ॥
त्रैलंगी लांगलीचैव सुरटापिचहंबरी।
इमाः सुवेषा राजन्ति नटनारायणस्नुषाः ॥

इस ग्रंथ में नटनारायण के ठाठ का स्पष्ट वर्णन मिलता है। 'संगीतसारामृत' में इस राग का ठाठ खमाज ठाठ ही बताया है। वहाँ इसके ठाठ का नाम 'कांभोजी' कहा गया है।

'रागलक्षण' में इस प्रकार का स्पष्ट लक्षण बताया गया है :—

हरिकांबोधिमेलाच्च संजातश्चसुनामकः।
खमाचराग इत्युक्तः सन्यासं सांशकं ध्रुवम् ॥
संपूर्णं वक्रमारोहेऽप्यवरोहे तथैव च ॥

यहाँ पर आरोह में ऋषभ वर्ज्य करना नहीं बताया गया, परंतु यह अपना खमाज नहीं है। कोई-कोई कांभोजी को ही खमाज मानने को तैयार हो जाते हैं, परंतु कोई-कोई तो एक अलग स्वतंत्र राग मानते हैं। ग्रंथों में उसका वर्णन इस प्रकार किया गया है:—

मंजर्याम्—कांबोजी मनहीनांवा सत्रिः सांतरकाकली ॥
रागचन्द्रोदये—सांशग्रहा सांतवती मनिभ्यां।
सम्मुज्झिता वांतरकाकलीष्टा ॥
कांबोजिका सातुविगीयमाना।
विभातकाले नितरां विभाति ॥
नृत्यनिर्णये—कांबोजी मोहनीया द्विगतिगनिरिधा सत्रिकाद्यानिमावा।

कोई-कोई ऐसा भी सोचते हैं कि जब कांभोजी संपूर्ण और म-नि-वर्जित ऐसे दो प्रकार का कहा गया है, तब संपूर्ण-प्रकार अपना खमाज राग मानना चाहिए और म-नि-हीन प्रकार को भी एक स्वतंत्र राग मान लेना चाहिए। मेरे विचार से यह कल्पना भी विचार करने-योग्य है।

पारिजाते—

कांबोधी तीव्रगांधारा गांधारादिकमूर्च्छना।
आरोहे मनिहीनास्यान्मधांशस्वरभूषिता।
यदा गांधारहीनास्यान्मूर्च्छना चोत्तरायता ॥

अब कांभोजी राग के लिए अधिक मत एकत्र करने का कोई अर्थ नहीं दिखाई देता।

प्रश्न : हमें अब खमाज और तिलंग रागों के विस्तार समझाइए ?

उत्तर : ठीक है, सुनो :—

खमाज

सा, ग, मप, ऩिध, धमग, गमपगमग, रेसा।

ऩिऩिधप, मप, गमग, धमग, मप, गमग, रेसा। सासागमप, गमप, ऩिध, गमग, गमपधप, गमग, रेसा।

सासागमप, धमप, निसां, सांरेंसांऩिध, गमप, निसां, ऩिध, ममग, गमपगमग, सा।

ऩिसागमप, धप, धऩिधप, गमग, सां, ऩिध, पमग, गमपगमग, रेसा, ऩिसागमप, धप, गमग।

ममग, गमपध, ममग ऩिसाग, प, गमग, ऩिधऩिप, गमग, गमपगमग, रेसा।

गमध, निसां, निसां, निनिसांरें, सांनिध, निध, गमनिध, सांनिधरें सांनिध, निनिप, गमग, गमपधपमग, रेसा, सागम, निध, गमग।

तिलंग

सा–ग गमप, निप, गमग, पगमग, सा।

निसा, गमप, गमग, निनिप, सांनिप, गमग, सा। सासागमप, निनिप, सांनिप, निप, गमग, पगम, ग, निसा।

गमपगमग, निसाग, गमप, निनिसां, निनिप, सांनिनिप, गमप, निप, गमग, पगमग, सा।

गमग, निसा, सागमप, निप, सांनिप, गमग, सा।

गमप, निसां, निसां, सांगंसां, मंगंसां, निनिप, निप, गमप, निसां, गंमंगं, सां' सांनिनिप, गमग, मगसा।

इस स्वरूप में रे-ध वर्ज्य होने से किसी-किसी जगह पर श्रोताओं को बिहाग का आभास हो सकता है, परंतु ऐसे खयालों पर युक्तिपूर्वक कोमल स्वर का नीचा भाग लाया जाकर तिलंग को अलग किया जा सकता है। कोई-कोई गायक अवरोह में कहीं-कहीं ऋषभ का प्रयोग भी करते हैं। ऐसा प्रयोग अवरोह में थोड़ा-सा क्षम्य माना जाता है। खमाज और तिलंग के स्वर मिले-जुले ही अधिक समय तुम्हें दिखाई देंगे।

प्रश्न : ये राग हम समझ गए। अब आगे किसी राग का वर्णन कीजिए ?

उत्तर : अब हम खमाज-अंग के 'दुर्गा' को लेते हैं। यह अप्राप्य राग-रूपों में से है। मुझे एक प्रसिद्ध गायक ने यह राग बताया है। यह रूप बहुत विचित्र है। दुर्गा राग औडव है और इसका वादी स्वर गांधार है। शुद्ध ठाठ (बिलावल) में तुम्हें जिस दुर्गा राग का वर्णन बताया था, उसमें ग-नि स्वर वर्जित किए थे। यहाँ पर ऋषभ और पंचम स्वर वर्जित किए गए हैं। शुद्ध ठाठ में रे-प वर्ज्य करने पर भी एक राग-स्वरूप उत्पन्न हो जाता है। इसमें यदि धैवत या मध्यम वादी बनाया जाए, तो यह स्वरूप प्रभातकालीन राग दिखाई देता है। खुला मध्यम इसमें बहुत ही सुन्दर लगता है; जैसे :—

सां, निध, म, गमग, सा, निसा, गम, सागम, मधम, निसां, गंसां, निसां, निध, निध, म, ग, मग, सा, गम'। परंतु यह याद रखना चाहिए कि हमारे इस विचारणीय राग दुर्गा में इस स्वरूप में निषाद कोमल लिया जाता है।

प्रश्न : यह भी एक मजा ही है। यमन ठाठ में रे-प वर्ज्य करने पर हिंडोल हो जाता है ! इन दोनों ठाठों में भी 'रे-प' वर्ज्य करने पर ये दो स्वरूप उत्पन्न हो जाते हैं !

उत्तर : अन्य ठाठों में भी 'रे-प' वर्ज्य होनेवाले स्वरूप आगे चलकर दिखाई देंगे। यह हमारी पद्धति की ही एक विशेषता है। खैर, अपने इस दुर्गा राग में म-ध, इन स्वरों की संगति आरोह-अवरोह में दिखाई पड़ती है।

इस जगह श्रोताओं को थोड़े प्रमाण में बागेश्वरी नामक राग का आभास हो जाता है, परंतु बागेश्वरी में कोमल गांधार का प्रयोग होता है और रे-प स्वर भी वर्ज्य नहीं हैं। मेरे खयाल से अब तुम दुर्गा राग को झिझोटी, खमाज वगैरह रागों से सहज में ही अलग कर सकते हो।

प्रश्न : झिझोटी राग तो आश्रय-राग है ही; उसमें रे-प वर्ज्य नहीं होते, अतः उसकी भिन्नता तो स्पष्ट ही है। खमाज में अवरोह संपूर्ण है, तिलंग में धैवत स्वर बिलकुल वर्ज्य है और आते-जाते म, ध की संगति दिखाई देती है। इस प्रकार दुर्गा राग इनसे अलग हो जाता है?

उत्तर : ठीक है ! इस स्वरूप की ग्रंथों में खोज करने पर तुम्हें 'नाटकुरंजिका' नामक एक प्रकार दिखाई देता है। परंतु इसमें ऋषभ स्वर थोड़ा-सा लगता है। यह राग लक्ष्यसंगीतकार ने स्पष्ट बताया है। इसका लक्षण इस प्रकार कहा गया है:—

कांभोजीमेलकेऽप्यन्या दुर्गास्याल्लक्ष्यवर्त्मनि ।
औडवा रिपहीनाऽसौ गांधारांशेन भूषिता ॥
मधयोरत्रसंगत्या वागीश्वर्यङ्गसंभवः ।
गांधारः कोमलस्तत्र सचात्रैवास्ति तीव्रकः ॥
ऋषभस्य प्रलुप्तत्वे झिंझूटिर्नैव संभवेत् ।
धसंयोगात्पलुप्तत्वाद्विभिन्नापि तिलंगिका ॥
संपूर्णेनावरोहेण खंमाजो भिन्नतां भजेत् ।
गानमस्या मतं नित्यं रात्र्यां द्वितीयके ॥

प्रश्न : यह राग खमाज का अंग है, अतः इसके गाने का समय रात्रि का दूसरा प्रहर ठीक है। अब इसका स्वरूप बता दीजिए !

उत्तर : सुनो। दुर्गा का स्वर-विस्तार इस प्रकार होता है:—

सा, ग, मग, साऩिध़, सा, मग, गमध, निध, मगसा, ऩिध़, सामग।

मगमध, निधमग, धनिसां, निध, मधनिध, मग, सा, ऩिध़ऩिसा, मग।

सागमध, मग, सांनिधनिधमग, धनिसां, गंसां, निध, सांसांनिध, मग, मगसा, ध़ऩिसा, मग।

मगमध, निसां, गंगंसां, गं, मंगंसां, सांनिधनिधध, मग, धनिसां, निध, मग, मग, सा, ऩिध़, ऩिसा, मग।

इस राग में रे-प स्वर वर्ज्य होने के कारण इसका स्वरूप संकुचित होना स्वाभाविक है। इस राग के विषय में अधिक जानकारी नहीं है।

प्रश्न : ठीक है, आगे का राग बताइए ?

उ० : अब हम रागेश्वरी राग पर विचार करेंगे। इस राग का नाम सुनते ही हमें यह समझ में आ जाता है कि किसी आधुनिक गायक ने यह राग अपनी कल्पना से खड़ा किया है। परंतु यह राग संस्कृत-ग्रंथों में भी दिखाई पड़ता है। यद्यपि ग्रंथों में वर्णित स्वरूप प्रचलित स्वरूप से नहीं मिलता, फिर भी हमें इस कारण आश्चर्य न होना चाहिए। Capt. Willard साहब ने रागेश्वरी में मिश्रण होनेवाले रागों के नाम 'भैरव, गौरी, केदार, देवगिरी, देवगांधार, सिंदूरा, धनाश्री, कानड़ा और आसावरी' बताए हैं। इस मिश्रण की कल्पना कैसे की जा सकती है ? कोई कहते हैं कि 'रागमाला' या 'रागसागर' नामक गीतों में जब अनेक राग जोड़ दिए जाते हैं, तब इन नौ रागों का मिश्रण होना आश्चर्य की बात नहीं। यदि ये सब राग एक के बाद एक जोड़ देने पर रागेश्वरी के गीत तैयार हो जाते, तब तो कोई प्रश्न उठता ही नहीं। परंतु प्रचार में रागेश्वरी (गायक लोग 'रागेश्री' ही उच्चारण करते हैं) एक स्वतंत्र राग माना गया है, यही एक कठिनाई उपस्थित हो जाती है। इस राग का प्रचलित स्वरूप ही मैं तुम्हें बतानेवाला हूँ। 'दुर्गा' राग का स्वरूप तो तुम्हारे ध्यान में अच्छी तरह है ही। 'दुर्गा' राग में जो थोड़ा-सा स्वरूप बागेश्वरी का हो जाता है, वही इस राग में बढ़ा दिया जाता है। दुर्गा राग में 'रे-प' दोनों स्वर वर्ज्य किए जाते हैं, परंतु इसमें केवल पंचम स्वर ही वर्ज्य किया जाता है। इस राग में रे-ध स्वरों को जब लगाया जाता है, तब इस विषय में एक-दो नियम ध्यान में रखे जाते हैं। ऋषभ स्वर आरोह में नहीं लिया जाता और अवरोह में धैवत स्वर अनेक बार वक्र रूप में प्रयुक्त होता है; जैसे—'सां ऩि ध ऩि ध म'। यह बात नहीं है कि ध-म स्वर का प्रयोग होता ही नहीं है, परंतु ऊपर बताए हुए बागेश्वरी के अंग को तुम्हें खास तौर पर याद रखना चाहिए। पंचम वर्ज्य करते हुए व तीव्र गांधार लेकर यदि कोई बागेश्वरी गाए, तो वह अधिकतर रागेश्वरी ही हो जाती है। इस राग के आरंभ में—'रे सा, ऩि ध़ नि़ सा, म ग, म ध, ऩि ध, म ग' इस प्रकार का आरंभ बड़ा ही सुंदर दिखाई देगा। यह राग अप्रसिद्ध रागों में से है। यह तुम जान ही गए हो कि इस ठाठ के पहले बताए हुए चार रागों से यह भिन्न ही है। झिंझोटी, खमाज और तिलंग में पंचम स्वर वर्ज्य नहीं है, अतः यह राग इन रागों से तो अलग हो ही जाता है। दुर्गा में बिलकुल ऋषभ नहीं लिया जाता, अतः यह भी भिन्न राग हो जाता है। रागेश्वरी का वादी स्वर कोई मध्यम और कोई षड्ज स्वर मानते हैं। ध-म स्वरों की संगति बहुत सुंदर दिखाई देती है। यह संगति तुम्हें दुर्गा और बागेश्वरी रागों में दिखाई देगी। तुम्हें इस स्वर-संगति को अच्छी तरह से याद कर लेना चाहिए। दक्षिण की ओर खोज करने पर 'रविचंद्रिका' नामक राग इसी स्वरूप का दिखाई देता है। रागेश्वरी राग रात्रि के दूसरे प्रहर का है। खमाज-अंग के सभी राग रात्रि के इसी प्रहर के माने जाते हैं, यह ध्यान रखना चाहिए। इस राग के लक्षण इस प्रकार हैं:—

काम्भोजीमेलके तत्र रागेश्वरी बुधैर्मता ।
आरोहे चावरोहेऽपि पहीना षाडवा पुनः ॥

षड्जांशा मध्यमांशा वा गीयते लक्ष्यवर्त्मनि ।
संगतिर्मधयोर्नूनं विशेषेणाऽत्र रक्तिदा ॥
आरोहणे रिवर्जस्याद्धवक्रं चावरोहणे ।
गांधारस्य हि तीव्रत्वाद्वागीश्वर्याः प्रभिन्नता ॥
मते केषांचिदप्येषा खंमाजप्रकृतिर्यतः ।
प्रशस्तं गायनं तस्या नित्यं यामे द्वितीयके ॥

प्रश्न : ये लक्षण स्पष्ट रूप से समझने-योग्य हैं। आगे हमें ऐसे समप्राकृतिक रागों का कोष्ठक ही बना लेना पड़ेगा। ऐसा करने से इन रागों का परस्पर अंतर स्पष्ट रूप से समझ में आ सकेगा। अभी हमारा ज्ञान बिलकुल थोड़ा है। हमारे खयाल से ऐसे समप्राकृतिक राग बहुत होंगे, अतः उनका कोष्ठक तैयार कर लेना योग्य ही होगा।

उत्तर : मैंने प्रवास पर जाते समय एक ऐसा ही समप्राकृतिक रागों का कोष्ठक तैयार किया था; वह मैं तुम्हें आगे बताऊँगा। उसकी ठीकठीक जानकारी अभी तुम नहीं समझ सकोगे।

प्रश्न : ठीक है ! अब आप हमें रागेश्वरी का राग-विस्तार बता दीजिए !

उत्तर : इस प्रकार होगा :—

सा, रे सा ऩि ध़, ऩि सा, म, म ग, म ग, म ध म ग, म ग रे सा, ग म।

ग म, ध म, ध नि ध म, ग म ध, सां नि ध, नि ध म, ग रे सा। म ग म ध, नि सां, नि ध, रें सां नि ध, म, ध म, ध नि ध म, ग रे सा।

सा ग म, ध म, सां नि ध म, ध नि ध, म, ग, रे सा, ऩि ध़, ऩि सा, म।

म ध नि सां, नि सां, रें सां, गं मं, गं, रें सां, सां नि ध म, ग सा, ऩि ध़, ऩि सा, ग म, सां नि ध, नि ध, म ग, रे सा।

इस प्रकार से दुर्गा व बागेशरी (बागेश्वरी) से इस राग को बचाकर इसका स्वर-विस्तार युक्तिपूर्वक करते जाना चाहिए। मध्यम स्वर को वादी के स्थान पर उत्तम रूप से सँभालने पर यह राग निस्संदेह बहुत सुन्दर हो जाता है। यह राग बहुत प्राचीन नहीं कहा जा सकता। 'रत्नाकर' में यह नाम नहीं दिखाई पड़ता। 'नारदसंहिता' में भी इस राग का नाम नहीं है। इन ग्रंथों की अपेक्षा प्राचीन ग्रंथ मुझे अभी तक प्राप्त नहीं हुए। मैं यह तो तुम्हें बता ही चुका हूँ कि 'भरतनाट्यशास्त्र' में रागाध्याय प्राप्त नहीं होता; उसमें केवल श्रुति, ग्राम, मूर्च्छना, तान आदि का वर्णन ही पाया जाता है। भरत के ग्रंथ में रागों का विचार नहीं किया गया; इस विषय में Capt. Day इस प्रकार कहते हैं :—

"The word Rag does not appear to have been used in its present technical sense until a date later than has been generally supposed. It is worthy of note that in the oldest Indian musical treatise, the Bharat-Natya-Shastra, the word Rag appears hardly at all; and no special Adhyaya is devoted to it, as is invariably the case in all subsequent Sanscrit treatises. The employment of Raga, as understood in the Sangeet-Ratnakar and subsequently, was evidently unknown at the time when Bharat wrote. But in its place there was a system of what are called by Bharat "Jatis." This word meaning literally genus, would seem to be of kindred meaning to the old Greek musical term (—). Some centuries later, when the Sangeet-Ratnakar was written, the term Raga appears to have been substituted for "Jati."

कैप्टेन साहब का यह कथन युक्ति-संगत है या नहीं, इस विषय पर हम यहाँ विचार नहीं करेंगे। हमें यही बात याद रखनी है कि भरत के 'नाट्यशास्त्र' में रागाध्याय नहीं है। यह ग्रंथ इस समय प्रकाशित हो चुका है। मैं तुम्हें एक और भरत का मत बता चुका हूँ, जिसमें राग-रागिनियों व उनके पुत्रों के नाम बताए हैं। अधिक गहराई में जाने की जरूरत नहीं। हमें केवल अपने प्रचार की ओर ही ध्यान देना है।

प्रश्न : जी हाँ, आप ठीक कह रहे हैं। अब कौन-सा राग लेंगे ?

उत्तर : अब हम खंबावती राग पर विचार करेंगे। यह खमाज राग से बिलकुल भिन्न राग है। खंबावती नाम नवीन नहीं है। कोई कहते हैं कि 'रत्नाकर' में जो 'खंबाइति' नाम पाया जाता है, वह खंबावती का ही पर्यायवाची है। 'खंबाइति' को वहाँ 'स्तभतीर्थिका' कहते हैं। हमें इन नामों की ऐतिहासिक उलझनों में पड़ने की आवश्यकता नहीं है। 'रत्नाकर' में खंभाइति (खंबावती) को बिलावल का एक प्रकार कहा है, खंबावती नाम अन्य ग्रथों में भी है। 'रत्नाकर' में जब-जब ग्राम-रागों के ठाठों की स्पष्टता हो सकेगी, तब-तब उनके जन्य रागों की स्पष्टता हो सकती है। ग्राम-राग ककुभ की भाषा 'रगंती' और विभाषा 'भोगवर्धिनी' है। इस भोगवर्धिनी से बेलावली की उत्पत्ति बताई गई है और बेलावली का एक उपांग 'स्तंभतीर्थी' कहा गया है। इस परंपरा से हमें क्या पता लग सकता है? प्रचार में खंबावती को इस समय खमाज ठाठ के रागों में माना गया है। खमाज के मुख्य अंग में आरोह में ऋषभ स्वर वर्ज्य और अवरोह में ऋषभ स्वर ग्राह्य होता है। खंबावती में सदैव एक स्वतंत्र अंग 'ग म सा' माना जाता है। 'सा, रे म प, ध, प ध सां, नि ध प, ध म, ग, म सा' इस प्रकार के स्वरों को विलंबित रूप में गाने से खंबावती का स्वरूप बहुत-कुछ स्पष्ट हो जाता है। खमाज में 'रे म प' ऐसे स्वर कभी नहीं लिए जाते। दुर्गा, तिलंग और

रागेश्वरी में भी यह भाग नहीं आता। सिंदूरा राग सीखते समय कभी-कभी तुम्हारे देखने में 'ध नि ध, प ध सां, नि ध प' स्वर-समुदाय दिखाई पड़ेगा । इस राग का प्राण तो 'ग, म सा' स्वर-समुदाय है । इसे अच्छी तरह तैयार कर लेना चाहिए। पूर्वांग में बीच-बीच में इस राग में माड़ का आभास हो जाता है। परंतु उस राग के नियम मैंने तुम्हें स्पष्ट रूप से पहले बता ही दिए हैं। 'ध नि ध, प ध, म ग' स्वर-समुदाय खमाज का है; इसमें आगे 'रे सा' अवरोह लेने पर खमाज राग अवश्य ही हो जाता है। इस राग में ऐसा न करते हुए 'ग, म सा' का ही प्रयोग करते हैं। इसका छोटा-सा टुकड़ा राग के प्रभाव को बिलकुल अलग कर देता है। यह राग बहुत ही मधुर रागों में से है। इस राग के बीच-बीच में खुला मध्यम प्रयुक्त किया जाता है। इसका परिणाम बहुत ही विचित्र होता है; जैसे—'प ध म, ग म सा'। यह राग केवल आरोह-अवरोह में ही दिखाना हो, तो ऐसा किया जाता है—'सा, रे म प, ध सां, नि ध प ध म, ग, म सा'। खमाज में 'नि़ सा, ग म ध नि सां, नि ध, प म ग, रे सा' स्वर-समुदाय लिया जाता है। 'नि़ सा, ग म प, नि सां, नि प म ग सा' स्वर-समुदाय से तिलंग हो जाता है। 'सा रे, म ग, प म ग रे सा, नि़ ध़ प़, ध़ सा, रे, म ग' यह झिंझोटी का अंग तुम पहचान ही सकोगे। 'सा ग, म ध नि सां, नि ध म ग, सा' स्वर-समुदाय दुर्गा की पकड़ है। 'सा ग, म ध नि सां, रें सां नि ध, म, ग रे सा' रागेश्वरी का यह भाग पहचानने-योग्य है।

प्रश्न : ये सब स्वर-समुदाय हमारे ध्यान में अच्छी तरह आ गए हैं। अब यह बतलाइए कि खंबावती में वादी स्वर कौन-सा लिया जाता है ?

उत्तर : इसमें वादी स्वर षड्ज बड़ा अच्छा दिखाई देता है। इस राग में 'म ध' की स्वर-संगति बहुत सुंदर है, इसे न भूलना चाहिए। इस राग में खमाज का आभास कम करने के लिए अवरोह में पंचम को वक्र कर देते हैं; जैसे—'प ध म, ग'। इस राग के आरोह में तीव्र निषाद बहुत सुंदर लगता है। उत्तरांग में मुख्यतः अवरोह में बागेश्वरी का आभास होता है। यह रात्रि के मध्य का राग माना गया है। 'लक्ष्यसंगीत' में इसके लक्षण इस प्रकार बताए गए हैं :—

खंमाजीमेलके प्रोक्ता खंबावत्याह्वया शुभा ।
खंमाजनियमाना सा भवेन्नूनं विपर्ययात् ॥
आरोहे ऋषभः स्पृष्टस्त्यक्तोऽसौ चावरोहणे ।
मध्यमात्षड्जसंस्पर्शः सर्वथैव मनोहरः ॥
मधयोः संगतिः प्रोक्ता ह्यवरोहे पवक्रता ।
उत्तरार्धस्वरैः किंचिद्वागीश्वर्यंगमावहेत् ॥

प्राचुर्येरिधयोरत्र खंमाजांगं कथं भवेत् ।
गानमस्याः समादिष्टं राज्यां यामे द्वितीयके ॥

रागतरंगिणीकार ने 'खंबावती' को केदार ठाठ का राग माना है, यह मैं पहले ही कह चुका हूँ। उसका कथन है:—

केदारस्वरसंस्थाने श्रुतः केदारनाटकः ।
आभीरनाटनामा च गेयो रागस्तथापरः ॥
खंबावती ततो ज्ञेया शंकराभरणस्तथा ।

× × ×

मालश्रीशुद्धसंयोगान् मल्लारमिलनादपि ।
खंबावत्याः समुत्पत्तिं वदंति किल गायकाः ॥

'अनूपरत्नाकर' में खंबावती के लक्षण पारिजातकार अहोबल के ही उद्धृत कर दिए हैं। वे इस प्रकार हैं :—

खंबावती पहीना स्यात् कोमलीकृतधैवता ।
गांधारमूर्छनायुक्ता रिणा त्यक्तावरोहिका ॥

—पारिजाते

'संगीतदर्पण' में इस प्रकार का वर्णन मिलता है। उन्होंने इसे 'कौशिक-रागिनी' मानी है :—

धैवतांशग्रहन्यासा षाडवा त्यक्तपंचमा ।
खंबावती च विज्ञेया मूर्छना पौरवी मता ॥

'चत्वारिंशच्छतरागनिरूपणम्' में इस प्रकार लिखा है :—

गौरः सुनेत्रोधृतचापबाणस्तुरंगवाहः सुचरित्रलीलः ।
लोहानलास्त्रो वनसंस्थितोऽपि सपंचमो यः शुभदः सुलीलः ॥
त्रिवली वल्लकी खंबावती च ककुभाहरी ।
प्रियाः पंचमरागस्य पंचैता मुनिना स्मृताः ॥

यह ग्रंथ 'नारद' का है, यह मैं तुमसे एक बार पहले ही कह चुका हूँ। 'नारद-संहिता' में मुख्य छह राग माने गए हैं। इनके नाम ये बताए गए हैं :—

मालवश्चैव मल्लारः श्रीरागश्च बसंतकः ।
हिंदोलश्चाथ कर्णाट एते रागाः षडीरिताः ॥

इन रागों को बताकर प्रत्येक की छह-छह पत्नियाँ मानी गई हैं, परंतु उनमें खंबावती का नाम नहीं बताया है।

प्रश्न : यह मत तो उससे भिन्न ही दिखाई देता है। ये दो भिन्न नारद हो गए हैं क्या ?

उत्तर : ठहरो ! मथुरा के एक प्रसिद्ध पंडित ने मुझे एक पुस्तक दिखाई थी; उसमें भी एक नारद की रचना पाई जाती है। उस ग्रंथ का एक उद्धरण देखो:—

नारदोक्तरागरागिणीसमुदायः

भैरवो मेघमल्लारो दीपको मालकोशकः ।
श्रीरागश्चापि हिंदोलो रागाः षट्संप्रकीर्तिताः ॥
पंचभिश्च प्रियाभिश्च तनुजैरष्टभिः पृथक् ।
मूर्तिमन्तस्तुते तत्र विचरंति नरेश्वर ॥
भैरवो बभ्रुवर्णश्च मालकोशः शुकद्युतिः ।
मयूरद्युतिसंयुक्तो मेघमल्लार एव हि ॥
सुवर्णाभो दीपकश्च श्रीरागोऽरुणवर्णभाक् ।
हिंदोलो दिव्यहंसाभो राजते मिथिलेश्वर ॥
कालेन देशभेदेन क्रियया स्वरमिश्रया ।
भेदाश्च षष्ठिपंचाशत् कोट्यो गीतस्य कीर्तिताः ॥
अतो भेदा अनंताहि तेषां संति नृपेश्वर ।
विध्येनं रागमानंदं शब्दब्रह्ममयं हरिम् ॥
तस्मान्मुख्याश्च भेदास्ते वदिष्यामि तवाग्रतः ।
भैरवी पिंगला शंकी लीलावत्यागरी तथा ॥
भैरवस्यापि रागस्य रागिण्यः पंचकीर्तिताः ।
महर्षिश्च समृद्धश्च पिङ्गलो मागधस्तथा ॥
बिलावलश्च वैशाखो ललितः पंचमस्तथा ।
भैरवस्याष्टपुत्रास्ते गीयंते च पृथक्-पृथक् ॥
चित्रा जयजयावंती विचित्रा कथिता पुनः ।
व्रजमल्लार्यन्धकारी रागिण्योपि मनोहराः ॥
मेघमल्लाररागस्य कथिताः पंच मैथिल ।
श्यामाकारः सोरठश्च नट्टोऽड्डायन एव च ॥
केदारो व्रजहंसः स्यात् जलधारस्तथैव च ।
बिहागश्चेत्यष्टपुत्राः कथिताः पूर्वसूरिभिः ॥
मेघमल्लाररागस्य मैथिलेंद्र मनोहराः ।
कंचुकी मंजरी तोडी गुर्जरी शावरी तथा ॥

दीपकस्यापिरागस्य रागिण्यः पंचविश्रुताः ।
कल्याणः शुभकामश्च गौडकल्याण एव च ॥
कामरूपः कानरोऽपि रामसंजीवनस्था ।
सुखनामा मन्दहासः पुत्राश्चाष्टौ विदेहराट् ॥
रागस्य दीपकस्यापि कथिता रागपंडितैः ।
गांधारी वेदगांधारी धन्याश्रीः स्वर्मणिस्तथा ॥
गुणगिरीति रागिण्यः पंचैता मिथिलेश्वर ।
मालकोशस्य रागस्य कथिता रागमंडले ॥
मेघश्चाप्यचलो मारुः आचारः कौशिकस्तथा ।
चन्द्रहारो घुंघुटश्च बिहारो नन्द एव च ॥
मालकोशस्य रागस्य चाष्टपुत्राः प्रकीर्तिताः ।
वैराटी चैव कर्णाटी गौरी गौरावती तथा ॥
चतुश्चन्द्रकलाचैव रागिण्यः पंचविश्रुताः ।
श्रीरागस्यापि राजेन्द्र कथिताः पूर्वसूरिभिः ॥
सारंगः सागरो गौरो मरुत्पंचशरस्तथा ।
गोविंदश्च हमीरश्च भांगीरश्च तथैव च ॥
श्रीरागस्यापि राजेन्द्र अष्टौ पुत्रा मनोहराः ।
वसंती परजी हेरी तैलंगी सुन्दरी तथा ॥
हिंदोलस्यापि रागस्य रागिण्यः पंच विश्रुताः ।
मंगलश्च वसन्तश्च विनोदः कुमुदस्तथा ॥
एवं च विहितो नाम विभासः स्वरमंडले ।
पुत्राश्चाष्टौ समाख्याताः मिथिलेश पृथक्-पृथक् ॥

यह मत शायद ही तुम्हें कहीं दिखाई पड़ता, इसी लिए मैंने तुम्हें बता दिया है। परंतु फिर यह अन्य कौन नारद था ? यह प्रश्न उपस्थित हो जाता है। मैंने तुम्हें 'संगीतमकरंद' का नाम बताया है, वह भी नारद की रचना है, क्योंकि प्रत्येक अध्याय केअन्त में 'श्री नारदकृते संगीतमकरन्दे' लिखा हुआ मिलता है। इस ग्रंथ के कुछ श्लोक शब्दशः रत्नाकर, दर्पण और पारिजात के हैं, फिर इसमें प्राचीन आचार्यों के बताए हुए 'नारदस्तुम्बुरुस्तथा' भी कह दिए हैं। यह भी विचार करने-योग्य बात है। स्वरों के वर्ण, द्वीप, देवता आदि 'रत्नाकर' और 'दर्पण' के प्रमाण के अनुसार हैं।

प्रश्न : इन बातों का उपयोग कहाँ किया जाता है ?

उत्तर : इन बातों का उपयोग कहाँ पर और कैसे किया जाता है, इस विषय में बेचारे ग्रंथकार मौन ही हैं। उन्होंने तो यहाँ-वहाँ अपनी बुद्धि खर्च की है।

पुराणों में प्रसिद्ध सप्तद्वीप—जम्बू, शाक, कुश, क्रौंच, शाल्मली, श्वेत और पुष्कर हैं। इसका खुलासा वर्तमान प्रसिद्ध पंडितों ने पत्रों (पचांगों) में किया ही है। इन सात द्वीपों में सात स्वरों का सम्बन्ध ग्रंथकारों ने कैसे मिला दिया है, यह एक निराली ही बात है। तुम इस समय प्रचलित संगीत पर विचार कर रहे हो, अतः तुम्हें इन प्रश्नों में जाने की आवश्यकता नहीं है। एक बार पहले हम प्रचलित संगीत के अपने राग पूरे कर लें, फिर इस बात पर विचार करेंगे कि हमारे प्राचीन पंडितों ने कौन-कौनसी ऐसी बातें की हैं।

प्रश्न : ठीक है ! अब हमें खम्बावती का स्वर-विस्तार बताइए !

उत्तर : वह इस प्रकार होगा :—

सा, रे, मप, ध, पधसां, ऩिध, पधम, ग, मसा।

सा, ग, मगमसा, सापमग, मसा, गम, ऩिधऩिम, गमसा।

सागम, पधम, सांऩिध, सांऩिध, पधम, गमसा।

गम, धम, पधम, निसां, पनिसां, रेंगंसां, सांऩिध, ऩिध, पपधम, गग, मसा। ऩिऩिध, ऩिध, पधम, गग, मसा, पमगम, सा, ऩिसा, गम, रेमप, ध, पधसां, ऩिध, पधम, गग, मसा। मम, प, निनिसां, निनिसां, सां, रें, गंरेंसां, ऩिधधधपध, सांऩिध, पधम, गग, म, ऩिसा।

इसमें एक स्थान पर अवरोह में कोमलता का स्पर्श दिखाया गया है। इस प्रकार शान्त चित्त से, उत्तम मिले हुए तानपूरे पर तुम्हारे द्वारा स्वर कहने पर परिणाम बहुत चमत्कारपूर्ण होगा।

प्रश्न : इस समय तो हारमोनियम वाद्य बहुत लोकप्रिय हो रहा है; क्या इसकी संगति से उन स्वरों पर गाने से आनद नहीं होगा ? हारमोनियम वाद्य तो हमारे प्रत्येक स्वरों को उत्पन्न कर देता है।

उत्तर : मेरे विचार से उस वाद्य से हमारे उच्च कोटि के संगीत का उत्तम साथ नहीं हो सकता। इस वाद्य के स्वर हमारे स्वरों के बिलकुल निकट हैं, यह ठीक है; परंतु ये स्वर हमारे स्वरों से सूक्ष्म प्रमाण से भिन्न होने के कारण अनेक बार हमारे रागों का साथ उस वाद्य से सुसंगत नहीं हो सकता। तुम्हें जब अधिक अनुभव होगा, तब तुम मेरी बातों के तत्त्व को समझ सकोगे। यूरोप में हारमोनियम वाद्य के स्वर-सप्तक को Temperate Scale कहते हैं। इन स्वरों की योग्यता-अयोग्यता के विषय में Prof. Blasserna इस प्रकार कहते हैं :—

"The temperate scale has become generally accepted; it has so come into daily use that for the most part, our modern executant musicians no longer know that it is an incorrect scale, born of transition in order to avoid the practical difficulties of musical execution. The great progress made in instrumental music is due to this scale, and above all the ever-increasing importance of the pianoforte in social life is to be attributed to it.

But, no doubt, it does not represent all that can be done in this respect. It would certainly be very desirable to return to the exact scale with a few difficulties smoothed over to meet the requirements of practice; for it can not be denied that the temperate scale has destroyed many delicacies, and has given to music, founded on simple and exact laws, a character of almost coarse approximation. × × ×

It follows that music founded on the temperate scale must be considered as imperfect music, and far below our musical sensibility and aspirations. That it is endured, and even thought beautiful, only shows that our ears have been systematically falsified from infancy.

The wish may then be expressed that there may be a new and fruitful era at hand for music, in which we shall abandon the temperate scale and return to the exact scale, and in which a more satisfactory solution of the great difficulties of musical execution will be found than that furnished by the temperate scale, which simple though it may be, is too rude.

But all the Stringed instruments, which are the very soul of the orchestra, and the human voice, which will always be the most satisfactory and most mellow musical sound have their notes perfectly free, and can, therefore, be shifted, at the will of the artist. The return to the exact scale does not present any serious difficulty to them."

प्रश्न : यह सुनकर मुझे आश्चर्य होता है। परंतु हमारे इधर नाटक-थिएटरों में तो हारमोनियम संगीत का प्राण ही हो गया है !

उत्तर : परंतु यह संगीत कौन-सा है ?

प्रश्न : ऐसा क्यों कहते हैं ? यह संगीत यूरोपियन तो है ही नहीं।

उत्तर : हाँ, यूरोपियन तो नहीं है; परंतु तुम जिसे सीखते हो, वह भी नहीं है; ऐसा मान सकते हो।

प्रश्न : तो फिर मुझे दिखाई पड़ता है कि आपके विचार से वर्तमान नाटकों का संगीत उच्च नहीं है।

उत्तर : मेरे खयाल से अनेक व्यक्तियों का मत मेरे मत से मिलता-जुलता होगा। परंतु इस समय हमें इस विषय की ओर जाने की आवश्यकता नहीं है।

प्रश्न : अब आप कौन-सा राग बताएँगे ?

उत्तर : अब मैं नारायणी, प्रतापवराली और नागस्वरावली के विषय में थोड़ा-सा बताऊँगा। ये राग दक्षिण की ओर प्रसिद्ध हैं। कभी-कभी हमारे यहाँ भी सुनाई दे जाते हैं। दक्षिण-पद्धति के ग्रंथों में इन्हें स्पष्ट रूप से कहा गया है। नारायणी राग का लक्षण इस प्रकार है :—

कांभोजीमेलसंजाता नारायणी प्रकीर्तिता।
आरोहे गनिहीना सावरोहे गवर्जिता ॥
कैश्चित्सैव मनीत्यक्ता शंकराभरणे मता।
मतभेदास्तत्र संतु ग्रन्थेऽत्र प्रथमा मता ॥
ऋषभं वादिनं मत्वा भवेत्सारंगसंनिभा।
निवर्जत्वे धसंयोगे भवेत्तद्रूपवारणम् ॥

हम भी इसे ही स्वीकार करेंगे। नारायणी राग के आरोह में ग, नि स्वर वर्ज्य किए जाते हैं और अवरोह में 'ग' स्वर वर्ज्य किया जाता है। तुमने जो-जो राग इस ठाठ में सीखे हैं, उनमें से किसी में भी 'ग' स्वर सम्पूर्ण रूप से वर्ज्य नहीं होता। किसी-किसी ग्रंथ में इस राग को म, नि स्वर वर्जित कर शुद्ध स्वरों के ठाठ में रखा गया है। यह मत हमारे लिए उलझन से भरा है, अतः हम इसे स्वीकार नहीं करेंगे। इस राग में ऋषभ स्वर वादी है। सारंग में ग, ध, स्वर वर्ज्य होते हैं, और इस राग में धैवत महत्त्व का स्वर है, यह एक उत्तम स्पष्ट भेद है। यह राग मैंने मुसलमान गायकों के मुँह से नहीं सुना। हाँ, हिन्दू गायक इसे गाते हुए सुनाई पड़े हैं। दक्षिण की ओर के ग्रंथों में इस राग का वर्णन इस प्रकार किया गया है :—

रागलक्षणे :—

हरिकांबोधिमेलाच्च संजातश्च सुनामकः।
नारायणीतिरागश्च सन्यासं सांशकं ध्रुवम् ॥
आरोहणे गनित्यक्तो गहीनश्चावरोहणे।

स्वरमेलकलानिधौ :—

गांशो नारायणी रागो गांधारन्यासकग्रहः।
संपूर्णः प्रातरुद्गेयोऽवरोहे रिच्युतः क्वचित् ॥

यहाँ पर कांभोजी ठाठ होने पर भी राग-स्वरूप भिन्न है, अतः हम इस मत को स्वीकार नहीं करेंगे।

पारिजाते :—

नारायण्यां गनी तीव्रौ गांधारादिकमूर्च्छना।
आरोहे मनिवर्ज्या स्यान्न्यासांशधैवता स्मृता ॥

यह रूप 'स्वरमेलकलानिधि' के स्वरूप से मिलता है। अहोबल ने इस राग को प्रभातगेय माना है। Capt. Day साहब ने इस राग को कांभोजी ठाठ में ही माना है तथा इसके आरोह में 'ग-नि' स्वर वर्ज्य किए हैं। अवरोह में भी 'ग' स्वर वर्ज्य करने को लिखा है। यह रूप 'चतुर पंडित' के वर्णन से मिलता हुआ है।

मद्रास के प्रसिद्ध संगीतज्ञ श्री नायडू की पुस्तक 'गानविद्यासंजीवनी' में राग-लक्षणकार का ही मत स्वीकार किया गया है। ग्रंथों में जो राग 'नारायणगौड़' नाम से बताया गया है, उसे निराला ही राग मानना चाहिए।

नारायणी गत्रिका च संपूर्णा ह्युषसि प्रिया ॥

—रागमंजर्याम्

रागचंद्रोदय, नृत्यनिर्णय, हृदयप्रकाश आदि में इस राग का वर्णन नहीं पाया जाता। मेरे खयाल से अधिक मत खोजने की कोई आवश्यकता नहीं है।

प्रश्न : अब हमें इस राग का स्वर-विस्तार समझाइए ?

उत्तर : ठीक है; सुनो—

सां, ऩि ध, म प, ऩि ध प, म प म, रे, सा रे, म रे, ध़ सा।

म़ प़ ध़ सा, रे, म रे, ऩि ध प, म प ध प, म, रे, म रे सा।

ध ध प, म प, ध प, ध प, सां, ध ध प, ऩि ध प, म प म रे, सा सा रे, म प, ध सां, ऩि ध प, म प ऩि ध प, म रे, रे सा।

म प ध सां, सां, रें रें सां, मं रें सां, सां रें, सां रें सां ऩि ध प, म प ध सां, ध प, म रे, सा रे म रे, सा, ध़ ध़ सा।

यह रूप मैंने एक गीत के आधार पर बता दिया है। यह सारंग के निकट का राग है।

प्रश्न : अब आप नागस्वरावली और प्रतापवराली राग समझाइए ! ये राग भी दक्षिण के ही आपने बताए हैं !

प्रश्न : ठीक है ! उन्हीं को बताता हूँ। इन रागों को अपने यहाँ बहुत थोड़े गायकों द्वारा गाते हुए सुना जाता है। नागस्वरावली राग का वर्णन 'चतुर पंडित' ने इस प्रकार किया है :—

कांभोजीमेलके चापि जाता नागस्वरावली।
आरोहेऽप्यवरोहे च निरिवर्जं तथौडवम् ॥
षड्जांशा मध्यमांशा वा गीतासौ लक्ष्यपंडितैः।
गानं तस्याः समादिष्टं रात्र्यां यामे द्वितीयके ॥

दाक्षिणात्या मता रागास्त्रयोऽतिमा असंशयम् ।
दृष्टा लक्ष्ये यतोऽस्माभिरत्रग्रंथे सुलक्षिताः ।।

नागस्वरावली में निषाद और ऋषभ स्वर वर्ज्य किए जाते हैं । यह स्वरूप औडव है । इस राग में षड्ज अथवा मध्यम स्वर वादी होता है । इस राग को रात्रि के दूसरे प्रहर में गाने का कथन मिलता है । इस राग का दक्षिणी प्रकार होने से इसके विषय में अधिक कुछ कहना संभव भी नहीं है । इसका स्वरूप एक गायक के पास से निम्नलिखित स्वरों-जैसा प्राप्त हुआ था :—

पधसा, गमगसा, गमपग, मगसा ।
गमपध, सांपधम, पगमप, मगसा ।
गमपध, सांगंसां, गंमंपगं, मंगंसां ।
सांसांधप, धमपग, मसांधप, मगसा ।

दूसरे एक गायक ने यह राग इस प्रकार से गाकर सुनाया था:—

पपगमध, सांसां, धधप, पपधप, गमग, गमपग, मगसा ।
पधसां, सांगंसां, पंमंगंमं, गंगंसां, सां, सां, पधप, गमपग, मगसा ।

उत्तर की ओर के गायक इस राग-स्वरूप को उच्च कोटि का नहीं समझते; वे कहते हैं कि यह एक अँग्रेजी-गीत-जैसा दिखाई देता है । उनके इस कथन पर स्वतंत्र विचार आगे चलकर तुम्हीं कर लेना । दक्षिण की ओर के गायक जब इधर आते जाएँगे और जब वे यहाँ आकर इन रागों को सुनाएँगे, तब इनकी जानकारी अधिक उत्तम हो सकेगी । 'लक्ष्यसंगीत' में यह राग बताया गया है, इसलिए हम इस राग पर विचार कर रहे हैं ।

'प्रतापवराली' राग खमाज ठाठ का है । इसमें 'नागस्वरावली' की तरह आरोह में ग, नि वर्ज्य हैं, परंतु अवरोह में केवल निषाद वर्ज्य किया जाता है, जबकि 'नागस्वरावली' के अवरोह में 'ग' वर्ज्य करते हैं । इस राग का वादी स्वर ऋषभ माना गया है । इसके गायन का समय रात्रि का दूसरा प्रहर है । इस राग का लक्षण 'लक्ष्यसंगीत' में इस प्रकार बताया है :—

कांभोजीमेलकात्तत्र संजातो राग उत्तमः ।
प्रतापाद्यवराल्याख्यो ऋषभांशग्रहो मतः ।।
आरोहणे निगौ नस्तोऽवरोहे स्यान्निवर्जनम् ।
गानमस्य समादिष्टं द्वितीयप्रहरे निशि ।।

यह वर्णन समझने में सरल है । आगे 'चतुर पंडित' ने एक मतभेद का वर्णन कर उसे नापसंद करने का कारण भी बता दिया है । वह कारण अपने उत्तरी संगीत का एक महत्त्वपूर्ण नियम ही समझना चाहिए ।

केचिदत्र तीव्रमस्य प्रयोगमादिशंत्युत ।
न तद्युक्तमहंमन्ये निषादः कोमलो यतः ॥
सतीव्रेषु तु रागेषु कोमलो निर्नयुज्यते ।
नियमोऽयं मतस्तज्ज्ञैर्व्यवहारे सुसंगतः ॥

मेरे विचार से एक बार मैंने इस नियम की ओर तुम्हारा ध्यान आकर्षित किया भी था। तुम्हें इस नियम को पूरी तरह ध्यान में रखना चाहिए। उत्तर की तरफ के रागों में तुम्हें इस नियम का ठीक-ठीक पालन होते हुए दिखाई देगा। तीव्र मध्यमवाले रागों में कोमल नि का प्रयोग वास्तव में शोभनीय नहीं होता। किसी-किसी मिश्र राग में दोनों मध्यम और दोनों निषाद दिखाई पड़ सकते हैं। परंतु अकेला तीव्र 'म' अधिकतर कोमल निषाद की संगति में शोभा प्राप्त नहीं करता।

प्रश्न : इस राग का स्वरूप स्वरों में कैसा होगा ?

उत्तर : इस प्रकार:—

'सा, रेरे, मप, धप, मप, धसां, पधपमगरेगसा। सारेगसा, रेमप, धप, धधपम, गरे, गसा, रेरेमप, धप।

सा, रेरेसा, ममरेसा, रेमपधमप, मगरे, पमगरेसा, धधमप, धसांधप, सांपधप, मगरेसा, रेरे, मप, धधप।

मपधसां, सां, पधसां, सांरेंगंसां, मंमंपंपं, मंगंरेंसां, सांरेंसांध, पधमप, सांधपमगरेगसा, रेरे, मप, धधप।

अपने यहाँ के 'देस' राग के समान इस राग का स्वरूप बहुत अंशों में दिखाई पड़ता है। परंतु देस राग में निषाद लिया जाता है और इस राग में वह स्वर वर्जित है, यह नहीं भूलना चाहिए। 'प्रतापवराली' राग के विषय में दक्षिण के ग्रंथकारों में भी एक मत नहीं है।

रागलक्षणे—

हरिकांबोधिमेलाच्च संजातश्च सुनामकः।
स्यात् प्रतापवरालिश्च सन्यासं सांशकं ध्रुवम् ॥
आरोहे गनिवर्जंचाप्यवरोहे निवर्जितम् ॥

यह रूप हमारे स्वीकृत रूप से मिलता है। Capt. Day साहब ने इस राग के आरोह-अवरोह इस प्रकार बताए हैं—'सा रे म प ध नि ध प ध नि सां। सां नि ध प म ग रे सा।' श्री नायडू ने 'लक्ष्यसंगीत' का ही रूप बताया है, अर्थात् उनका 'रागलक्षण' ग्रंथ के मत से ही मिलता हुआ है।

प्राचीन ग्रंथों में वराटी के प्रकार (उपांग) अनेक बताए हैं; जैसे—कुंतलवराटी, सैंधवराटी, अपस्थानवराटी, हतस्वरवराटी, प्रतापवराटी, शुद्धवराटी, द्राविड़ीवराटी आदि। इनके लक्षण 'पारिजात' में स्पष्ट बताए हैं। ये प्रकार

हमारे यहाँ प्रचलित नहीं हैं; अतः इनकी चर्चा करने की आवश्यकता नहीं है। लक्ष्यसंगीतकार ने जिन-जिन रागों का उल्लेख किया है, उन्हीं की जानकारी तुम्हें अपनी बुद्धि के अनुसार देने की मेरी अभिलाषा है। उसने जिन-जिन ग्रंथों के विषय में अपने 'स्वराध्याय' में चर्चा की है, मैंने उन सभी ग्रंथों को संगृहीत कर और पढ़कर उनके प्रत्यक्ष मत की जाँच की है। इसलिए मैंने 'लक्ष्यसंगीत' को पसंद किया है। उससे अधिक उपयोगी ग्रंथ प्राप्त न होने तक मैं तुम्हें उसी ग्रंथ की पद्धति के अनुसार चलने का अनुरोध करूँगा।

उत्तर : हमने तो इस पद्धति से ही निश्चय कर लिया है। अभी हमारे यहाँ सार्वजनिक रूप से कुटुम्बों में (हिंदू-कुटुम्बों में) संगीत-अभिरुचि की बहुत कमी पाई जाती है। परंतु इसका यह भी कारण है कि सीखने-सिखाने के योग्य उत्तम पद्धति के न होने के कारण और उत्तम शिक्षकों के अभाव से ही सुशिक्षित लोगों का मन इस ओर नहीं था। अब इस ग्रंथ ('लक्ष्यसंगीत') की प्रसिद्धि हो जाने के कारण हमारे खयाल से ऐसे इच्छुक व्यक्तियों को बड़ी सुविधा हो जाएगी।

उत्तर : तुम ठीक कहते हो। अब हम इस ठाठ के आगे के राग सोरठ पर विचार करेंगे।

'सोरठ' नाम 'सौराष्ट्र' शब्द का अपभ्रंश होकर प्रचार में आया है। इस मत को कोई-कोई लोग मानते हैं। बंबई प्रांत के काठियावाड़-विभाग के एक प्रांत का नाम 'सोरठ' है। संभवतः प्राचीन समय में यह राग इस प्रांत में बहुत लोकप्रिय रहा होगा। प्रांतों और प्रदेशों के नामों पर रखे हुए राग-नाम हमारे यहाँ बहुत पाए जाते हैं। अब तक इस ठाठ के जितने राग तुम्हारे सामने आए हैं, उनमें खमाज-अंग की ही प्रधानता थी। इन रागों में गांधार स्वर महत्त्वपूर्ण था और उसके प्रमाण से ऋषभ स्वर अल्प महत्त्व का स्वर था। गांधार स्वर के महत्त्वपूर्ण होने के कारण निषाद स्वर का वैचित्र्य भी तुम्हारे ध्यान में आया है। अब प्रस्तुत राग 'सोरठ' में गांधार की अपेक्षा ऋषभ स्वर की प्रबलता अधिक दिखाई देगी। खमाज ठाठ के रागों में इस प्रकार के रागों का एक निराला ही वर्ग हो जाता है। इस वर्ग में ही सोरठ राग सम्मिलित होता है। इसका वादी स्वर ऋषभ सर्वत्र प्रसिद्ध है। इस वर्ग के रागों में श्रोताओं को खमाज की भ्रांति नहीं हो सकती। सोरठ, देश, जयजयवंती, तिलककामोद आदि रागों में लगने-वाले ऋषभ स्वर की ओर ध्यानपूर्वक लक्ष्य देने पर तुम्हें इस स्वर का चमत्कारिक माधुर्य इन रागों में दिखाई देगा। इस ठाठ के राग गाते हुए गायक प्रथम खमाज के अंग को गाकर बाद में सोरठ के अंग को लेते हैं। यह क्रम एक प्रकार से युक्ति-संगत ही है। कल्याण ठाठ में गांधार का प्रमुखत्व अनेक स्थानों पर दिखाई देता है। इसी प्रकार शुद्ध स्वरों के रागों में भी यह गांधार का प्रभुत्व कायम रहता है। इसके बाद गायक ने खमाज-अंग के राग आरंभ किए तो वे असंगत नहीं होंगे। इसके बाद सोरठ-अंग के राग गाकर गायक काफी ठाठ के राग गाने लगते हैं, इस प्रकार रंजकता बनी रहती है। मेरा यह कथन नहीं है कि मूल

ठाठ-व्यवस्था का निर्माण इसी विचारधारा पर हुआ है। परंतु यह व्यवस्था रागों को ध्यान में रखने के लिए अच्छी होती है। सोरठ-अंग के रागों में गारा, जयजयवन्ती के समान दोनों गांधारवाले रागों को गायक अन्त में रखते हैं, इसका कारण 'चतुर पंडित' के मत से ये राग 'परमेलप्रवेशक' माने जाते हैं। एक ठाठ से दूसरे ठाठ में जाते हुए ऐसे रागों की आवश्यकता होती ही है। जहाँ दो प्रांतों का संयोग होता है, वहाँ के निवासियों की भाषा, सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर, दोनों प्रान्तों की भाषा का मिश्रण ही पाई जाती है। यह तत्त्व हमारे कुशल विद्वानों ने संगीत में भी लगाया है। यमन, बिलावल, खमाज, काफी आदि ठाठों का एक से दूसरे का मिश्रण किस अज्ञात रूप से कर दिया गया है, इसे देखकर मर्मज्ञ लोगों को अपने संगीतज्ञों की कुशलता पर आश्चर्य और आनन्द होता है। कल्याण ठाठ के दोनों मध्यमवाले रागों को मिलाकर ठाठ में गायक का प्रवेश करा दिया गया है। इसी प्रकार शुद्ध ठाठ के रागों में किसी-किसी जगह कोमल किषाद का प्रयोग कर खमाज ठाठ में प्रवेश करा दिया है। खमाज ठाठ में आगे के काफी ठाठ के कानड़ा-जैसे राग के लिए जयजयवन्ती-जैसे दोनों गांधारवाले राग-प्रकार आ जाते हैं। लक्ष्यसंगीतकार जयजयवन्ती के दो गांधारों के विषय में एक जगह लिखते हैं :—

जयावन्तीहसा नूनं द्विगांधारसुयोगतः।
सूचयेत्परमेलं तं कर्णाटाख्यमसंशयम् ॥

ठाठ के पारस्परिक सम्बन्ध के विषय में दूसरे स्थान पर कहा है :—

प्रतिमेलं केचिद्रागाः परमेलप्रसूचकाः।
द्विरूपाणां स्वराणां च प्रयोगेण व्यवस्थिताः॥

मेरे विचार से अभी इस विषय को यहीं स्थगित कर दें। प्रचलित संगीत की समस्त जानकारी हो जाने पर यह सब बताना सरल होगा।

प्रश्न : ठीक है! अब आप सोरठ के विषय को ही चलने दीजिए।

उत्तर : सोरठ के आरोह में गांधार स्वर बिलकुल दुर्बल और 'असत्प्राय' ही समझा जाता है। सोरठ का आरोह-अवरोह इस प्रकार है—सा, रे म प, नि, सां। सां नि॒ ध प, म रे सा।

प्रश्न : यहाँ तो आपने गांधार स्वर को बिलकुल नहीं लिया ?

उत्तर : मध्यम में ऋषभ स्वर पर मीड़ लेते समय गांधार का प्रयोग मीड़ में हो जाता है। इसे यदि ऐसा नहीं लें, तो सारंग का आभास हो जाता है। तुम्हें श्याम राग का वर्णन समझाते हुए इस प्रकार के गुप्त गांधार की स्थिति मैंने समझाई भी थी, वह तुम्हें याद ही होगी। इस म रे स्वर-प्रयोग का प्रभाव बिलकुल स्वतन्त्र है। यह काम करना कठिन नहीं है। थोड़े प्रयत्न से ही यह उत्तम रूप से

ध्यान में आ जाता है। सोरठ राग का संवादी स्वर धैवत माना जाएगा। संस्कृत-ग्रंथों में सोरठ का अवरोह सम्पूर्ण बताया गया है, परंतु अपने यहाँ के गायक गांधार का प्रयोग ऊपर बताई हुई युक्ति से ही करते हैं। कोई-कोई गायक गांधार को बिलकुल स्पष्ट लगाते हैं और राग का नाम 'देस सोरठ' बताते हैं। यह नाम देना ठीक है। सोरठ के गीतों में अनेक बार अधिकांश रूप में मारवाड़ी या गुजराती भाषा के शब्द अपनी दृष्टि में पड़ते हैं। यह भी विचारणीय बात है। संस्कृत-ग्रंथों में 'सौराष्ट्र' नामक एक दूसरा राग भी है, अतः इस राग को उसमें नहीं मिला देना चाहिए। वह राग (सौराष्ट्र) मालवगौड़ ठाठ का है।

प्रश्न : उसे तो आप भैरव ठाठ का वर्णन करते हुए बताएँगे ही। मालवगौड़ ठाठ तो आपने प्राचीन संगीत का अत्यन्त प्रसिद्ध ठाठ बताया है।

उत्तर : हाँ, यह ठाठ बहुत प्रसिद्ध है। दक्षिण-पद्धति में इसके बराबर प्रसिद्ध ठाठ आज भी दूसरा नहीं माना जाता। 'रत्नाकर' ग्रंथ में ग्रंथकार शार्ङ्गदेव ने 'वाद्याध्याय' में इस ठाठ के विषय में लिखा है :—

तुरुष्कगौडः मालवगौड इति लोके

प्रश्न : तब तो फिर नवीन-प्राचीन ग्रंथों में एकीकरण के लिए इस प्रकार के कुछ साधन भी उपलब्ध हो जाते हैं ?

उत्तर : 'रत्नाकर' में अन्य भी कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं :—

देशवालगौड एव केदारगौड इति जनैरुच्यते (कल्लिनाथ)

'द्राविडगौडो लोके सालगगौडः' डोंबक्री राग के विषय में इस प्रकार कहा गया है, 'सा भूपाली श्रुतालोके' आदि। बिना इन ग्रंथों को अच्छी तरह देखे, इनकी एकवाक्यता कहाँ और कितनी की जाए, यह नहीं समझा जा सकता। मैं यह दावा तो नहीं कर सकता कि मैं इस कार्य को सन्तोषजनक रूप से कर सकता हूँ; परन्तु इस विषय में मैंने जो कुछ भी परिश्रम और तर्क किए हैं, उनके बारे में तुम्हें किसी अन्य प्रसंग पर बताऊँगा। इस समय अपना विषय 'लक्ष्यसंगीत' या 'प्रचलित संगीत' है। 'ग्रंथसंगीत' का विषय हमने निराला ही माना है।

अब मैं तुम्हारा ध्यान एक और बात की ओर खींचता हूँ। प्रचार में एक राग देस है। उसमें और सोरठ में बड़ी गड़बड़ हो जाती है। कोई-कोई तो इन दोनों को एक ही राग मानते हैं।

परंतु देस (कोई-कोई इसे 'देश' भी कहते हैं) राग सोरठ से बिलकुल भिन्न राग है। सोरठ के नियम बदलने पर ही देश हो जाता है। कोई-कोई गायक देश राग में वादी स्वर ऋषभ के बजाय पंचम मानने के पक्ष में हैं। अन्य कुछ गायकों का मत है कि गांधार का प्रयोग आरोह-अवरोह में करने से सोरठ से देश राग भिन्न हो जाता है। जो तन्तुवाद्य-वादक हैं, वे इसी प्रकार देश राग बजाते हैं। गायक लोगों में

'रेरे, मप, नि़धप, पधपमगरेगसा' देस राग की यह पकड़ प्रसिद्ध ही है। 'रेरे, मप, नि़धप' इस टुकड़े से कभी भी सोरठ राग नहीं हो सकता। ऋषभ स्वर को वादी मानकर यदि इसी रीति से गाया जाए, तो वह देस राग ही दिखाई देगा। जो गायक इसमें वादी स्वर पंचम मानते हैं, वे भी इसी टुकड़े में पंचम का ऐसा ही न्यास होना मानते हैं। अनेक बार देस राग का आरोह सोरठ-जैसा किया हुआ तुम्हें दिखाई देगा, परन्तु दोनों के अवरोह में बिलकुल भिन्नता है; जैसे सोरठ में—'सा, रे रे, म प, नि, सां—नि़ ध, प, म, रे, सा' स्वर हैं और देस में 'सा, रे रे, म प नि़ ध प, नि, सां—सां नि़ ध प, म ग रे, ग सा। निम्न दो टुकड़ों को अच्छी तरह तैयार करने पर तुम्हें देस राग पूरी तरह ध्यान में आ जाएगा :—

१. 'रे रे, म प नि़ ध प, और २. 'ध प म, ग रे ग सा'। देश की अपेक्षा सोरठ की प्रकृति अधिक गंभीर है। सोरठ का गायन सावकाश (विलंबित में) गाने पर अधिक उत्तम लगता है। सोरठ में 'म रे' स्वरों की मीड़ बहुत आकर्षक होती है। कोई-कोई मर्मज्ञ यह कहते हैं कि सोरठ में निषाद स्वर (आरोह में) अति तीव्र होता है, परंतु हमें इसके विवाद में जाने की आवश्यकता नहीं है। सोरठ गाने का समय रात्रि के दूसरे प्रहर के अन्त में माना गया है।

खमाज ठाठ के किसी-किसी राग में तार-सप्तक के ऋषभ की संगति में अवरोह करते हुए, अन्य रीति से गायकों द्वारा कभी-कभी कोमल गांधार का कण भी प्रयुक्त किया जाता है। यह निस्संदेह विवादी स्वर है, परंतु 'अवरोहे द्रुतगीतो न रक्तिहरः' इस नियम के अनुसार यह चल भी जाता है। इसके सुन्दर लगने का कारण हम इस समय केवल यही बता सकते हैं कि गांधार और निषाद स्वरों का संवाद होने के कारण मैत्री प्रसिद्ध ही है। उनमें से एक की भी (निषाद की) विकृति हो जाने से दूसरे को भी वैसा ही विकृत होना मैत्री-धर्म के कारण कठिन नहीं है। सोरठ के विषय में जो-जो बातें मैंने तुम्हें बताई हैं, उन्हें 'लक्ष्यसंगीत' में संक्षिप्त रूप से इस प्रकार कह दिया गया है :—

कांभोजीमेलकोत्पन्ना सोरटीनामिका पुनः।
आरोहे रिधवर्जं स्यादवरोहे समग्रकम् ॥
ऋषभोऽत्र मतो वादी सर्ववैचित्र्यकारणम्।
संवादी धैवतो मान्यो रक्तिनिर्वाहकस्ततः ॥
केचिद्वदंति सोरट्यां गस्पर्शाद्देशिका भवेत्।
लक्षणं तत्समीचीनं देशीभिन्नत्वसूचकम् ॥
अवरोहे गस्वरस्य प्रयोगो घर्षणान्वितः।
कार्यो यस्माद्भवेद्व्यक्ता सारंगस्य प्रभिन्नता ॥
मध्यमादृषभे पातः सोरट्यां जीवभूतकः।
तत्रैवहि निर्णयंति श्रोतारो रागिणीमिमाम् ॥

केचित्पंचमके न्यासं कृत्वा देशीं परिस्फुटाम् ।
दर्शयंति न तन्मन्ये दोषार्हमिह सर्वथा ॥

मेरे बताए हुए सभी नियम इन श्लोकों में तुम्हें दिखाई पड़ेंगे ।

प्रश्न : जी हाँ ! बिलकुल स्पष्ट रूप से हैं । यदि हमारे गायक इस प्रकार के वर्णन कंठस्थ कर लें और इनके अनुसार ही शिक्षण देने का निश्चय कर लें, तो कितना अच्छा हो। इस समय इस विषय में जो 'हम करें सो कायदा' चल रहा है, वह इस प्रकार करने से बंद हो सकता है। हमारे मत से तो संगीत के लिए यह एक उत्तम व्यवस्था है, परंतु अपने गायक इसे पसंद करें तभी इसका लाभ हो सकता है ।

उत्तर : तुम्हारा कथन निस्संदेह ठीक है। मुझे दिखाई देता है कि शीघ्र ही संगीत के अच्छे दिन आनेवाले हैं। हमारे शहर के ही किसी गायक ने 'स्वर-मालिका, लक्षण-गीत आदि कंठस्थ करने का काम आरंभ कर दिया है, ऐसा मैंने सुना है। थोड़े दिनों में ही तुम देखोगे कि जिन गायकों को यह स्वर-मालिका या ये गीत बिलकुल न आते हों, ऐसे संगीत-व्यवसायी मनुष्य ही नहीं प्राप्त होंगे। हमारे विद्वान् लोगों के मन में जब ऐसे गीतों को महत्त्वपूर्ण मानकर प्रचार में उत्तेजना देने का संकल्प हो जाएगा, तब गायकों को इन्हें सीखना आवश्यक हो जाएगा। वैसे इन लक्षण-गीत और स्वर-मालिकाओं को निराधार नहीं कहा जा सकता। इन्हें 'लक्ष्यसंगीत' का उत्तम आधार प्राप्त है और 'लक्ष्यसंगीत' भी प्रकाशित हो गया है। हाँ, यह ग्रंथ बिलकुल नए सीखनेवाले के समझने-योग्य नहीं है। संगीत के हमारे प्रायः सभी ग्रंथ इसी प्रकार संस्कृत के हैं। मैं तुम्हें इसी ग्रंथ की बातें बताता जा रहा हूँ, अब तुम खुद ही समझ लो कि वह तुम्हें कितना पसंद आता है। इस ग्रंथ के विषय में स्वयं ग्रंथकार ही कहता है कि बिलकुल नवीन सीखनेवालों के लिए यह ग्रंथ नहीं है :—

नूत्नशिष्यापेक्षयादौ स्युरिष्टा योग्यशिक्षकाः ।
अध्यापयिष्यंति तेऽमुं विषयं सम्यगेवहि ॥
ग्रंथस्योद्देश आदौ स्यादस्य शिक्षकनिर्मितिः ।
शिष्यानध्यापयिष्यंति तादृशाः शिक्षकास्ततः ॥

भावार्थ—'नवीन शिष्यों की अपेक्षा योग्य शिक्षकों की आवश्यकता अधिक है, जो इस विषय को उत्तम (पद्धति के अनुरूप) रूप से सीख सकें। इस ग्रंथ का उद्देश्य मुख्यतः ऐसे शिक्षकों को ही तैयार करना है। ऐसे शिक्षक एक बार तैयार हो जाने पर वे आगे अपने शिष्यों को सहज में ही तैयार कर सकते हैं।' अस्तु..........मेरे विचार से हमें अब 'सोरठ' का अधूरा प्रसंग पूरा कर देना चाहिए। अब हम भिन्न-भिन्न ग्रंथों के मतों पर थोड़ा-सा विचार करेंगे ।

'रागलक्षण' में इस प्रकार कथन है :—

हरिकांबोधिमेलाच्च संजातश्च सुनामकः ।
सूरटीराग इत्युक्तो निन्यासं न्यंशकग्रहम् ।
आरोहे गधवर्जंचाप्यवरोहे गवर्जितम् ॥

यह मत हमारे प्रचलित स्वरूप का बहुत अधिक समर्थन करता है।

रागचंद्रोदयकार ने 'सौराष्ट्री' को केदार मेल का राग बताया है। उसका वर्णन इस प्रकार है :—

सांशग्रहा सांतयुता च पूर्णा ।
सौराष्ट्रिका सायमियंविगेया ॥

अनूपसंगीतविलासे—

सत्रिः सायं च सौराष्ट्री पूर्णा शृङ्गारवल्लभा

नृत्यनिर्णये—

सावेरीमेलरक्ता स्वरसकलयुता सत्रिका स्वैरिणीया ।
× × × ×
सायं शृङ्गारपूर्णा मदनसहचरी भाति सौराष्ट्रिका सा ॥

हृदयप्रकाशे—

ऋषभादिस्तुसौराष्ट्री कंपांदोलनशोभिता ।

संगीतपारिजाते—

श्रीरागमेलसंभूता सोरठी रिस्वरोद्ग्रहा ।
पंचमाढ्र्‌फितोपेता रिपर्यंतं पुनस्तथा ॥
सहुंफिता मपर्यंतमग्रस्वस्थानषड्जका ।
तथैव पंचमोपेता रिस्वरच्यवितोदिता ॥

इस श्लोक में 'हुंफित' और 'अग्रस्वस्थान' नाम एक प्रकार की 'गमक' के हैं। श्रीराग (जिसके ठाठ में सोरठी बताई है) का ठाठ 'पारिजात' में इस प्रकार बताया है:—

रित्रयोद्ग्राहसंयुक्तः षड्जोद्ग्राहोऽथवामतः ।
श्रीरागस्तीव्रगांधार आरोहे गधवर्जितः ॥

'पारिजात' का शुद्ध ठाठ काफी का है। इसमें केवल गांधार स्वर ही तीव्र करने से इस ग्रंथ का श्रीराग कैसा हो जाता है, यह विचारणीय बात है! जब हम श्रीराग पर विचार करेंगे, तब इस बात को सोचेंगे। इस वर्णन में केवल सोरठ का ठाठ खमाज ही मिल जाता है। 'अनूपसंगीतरत्नाकर' में चंद्रोदय, मंजरी, नृत्यनिर्णय हृदयप्रकाश आदि ग्रंथों के उद्धरण ही लिए जाते हैं।

रागविबोधकार ने सौराष्ट्री को मल्लारी मेल में रखा है। इसका मल्लारी मेल अपना शुद्ध स्वरों का ठाठ समझना चाहिए।

भैरव ठाठ में जो एक राग सौराष्ट्र अथवा सौराष्ट्री नामक है, वह बिलकुल भिन्न राग है। यह तुम जानते ही हो।

'चत्वारिंशच्छतरागनिरूपणम्' में सौराष्ट्र को दीपक राग का पुत्र माना है। अब अधिक ग्रंथों के मतों के सुनाने की कोई आवश्यकता नहीं है।

प्रश्न : इस राग का विस्तार स्वरों में बताइए !

उत्तर : वह इस प्रकार होगा :—

सा, रे रे, म प, म रे, रे सा, नि़ रे सा, म रे, सा। नि़ सा रे, म रे, प म रे, म प ध म रे, रे प म रे सा, नि़ रे सा। नि़ सा रे, सा, रे सा, नि़॒ ध़ प़, नि़ सा, म रे, म प ध म रे सा। रे रे म प, नि॒ ध प, ध म रे, प म रे, सा, नि़ सा। रे रे सा। नि॒ नि॒ ध प, नि॒ ध प, म प नि सां, नि॒ ध प, म प ध प, ध म रे, सा। सा रे म रे, म प नि सां, रें सां, नि॒ ध प ध म रे, प म, रे, सा।

सा रे म प, रे म प, नि सां, नि सां, रें रें सां, रें सां, नि॒ ध प, मं रें सां, नि॒ नि॒ ध प, रे म प, नि नि सां, नि॒ ध म प, सां नि॒ ध प ध म रे, सा।

म म प, नि नि, सां, सां, नि सां सां, नि सां रें, मं मं रें, सां, नि सां रें मं रें रें नि सां, नि सां रें, सां नि॒ ध प, ध ध प, म प ध, ध प, ध म रे, रें मं रें सां, नि सां, म प नि सां, रें नि॒ ध प, ध म रे, रे, सा।

देस राग का स्वरूप इस प्रकार होगा :—

सा, रे रे, म प, नि ध प, प ध प म, ग रे ग सा, रे रे म प, नि॒ ध प। नि सां, नि॒ ध प, ध नि॒ ध प, म प ध ध, प म ग रे ग सा, रे, म प ध नि॒ ध प।

ग म ग रे, ग सा, रे रे, ग सा, ग म प ध प म ग, रे ग सा, रे रे म प, नि॒ ध प।

ध ध नि॒ प, सां, नि॒ ध नि॒ प, रें सां नि॒ ध नि प, प ध प म ग रे ग सा, रे म प, नि॒ ध प।

म म, प प, नि, सां, नि सां, रें सां, नि॒ ध प, प सां, नि सां, नि॒ ध प, गं मं गं रें गं सां, नि सां, रें रें, सां सां, नि॒ ध प, सां नि॒ ध प, ध म, ग रे ग सा, रे रे, म प, सां नि ध प, प ध प म ग रे ग सा, रे म प नि॒ ध प।

प्रश्न : अब हम सब समझ गए !

खमाज ठाठ के राग (उत्तरार्ध)

प्रश्न : अब हमें इस ठाठ के शेष राग समझाइए ?

उत्तर : इस ठाठ के शेष रागों में से हम 'तिलककामोद' पर विचार करेंगे। यह राग इस ठाठ के सोरठ-अंग के रागों में से है। सोरठ, देस, जयजयवंती, तिलककामोद आदि राग प्रायः रात्रि के ११ बजे के उपरांग गाए जाते हैं। कानड़ा राग और उसके प्रकार आरंभ होने के पूर्व इनके गाने की मान्यता है। ये सभी सोरठ-अंग के राग हैं। इस राग में गांधार का प्रयोग देखकर कोई-कोई इसे देस राग के अंग का भी मानते हैं। तिलककामोद में वादी स्वर षड्ज माना जाता है। यह संपूर्ण राग है। इसके गाने का समय उपर्युक्त कथन के अनुसार रात्रि का दूसरा प्रहर माना गया है। मर्मज्ञ लोगों द्वारा इस राग का लक्षण इस प्रकार बताया जाता है कि आरोह करते समय धैवत का प्रयोग करना चाहिए और अवरोह करते हुए ऋषभ स्वर को वक्र रूप में लेना चाहिए। 'प़ नि़ सा रे, नि़ सा, रे ग सा, प म ग, सा, नि़' यह स्वर-समुदाय जब अच्छी तरह गाया जाएगा, तभी इस राग का स्वरूप स्पष्ट हो जाएगा। इस राग में निषाद स्वर की विचित्रता इतनी चमत्कारपूर्ण है कि प्रायः सभी लोग इस राग की पहचान इस स्वर के प्रयोग से ही करते हैं।

गायक गाते हुए, अपने गीत का एक टुकड़ा, इस निषाद पर लाकर छोड़ देता है। लक्ष्यसंगीतकार ने इस निषाद का महत्त्व इसी प्रकार बताया है। सोरठ के आरोह में भी धैवत नहीं लिया जाता है, परंतु इसमें गांधार भी वर्ज्य किया जाता है। 'देस' में सभी स्वर लिए जाते हैं, परंतु निषाद का प्रयोग वहाँ भी नहीं किया जाता है। 'तिलककामोद' में देस के स्वर-समुदाय 'ग रे सा' में एक निषाद स्वर मिलाने से कितनी अद्भुत प्रबलता आ जाती है। 'ग रे ग, सा, नि़' स्वरों का प्रयोग होते ही यह राग स्पष्ट हो जाता है। इस प्रकार निषाद का प्रयोग मैंने तुम्हें बिहाग में भी बताया था, परंतु वहाँ अवरोह में ऋषभ स्वर वर्ज्य करने को भी कहा था। निषाद का यह विशिष्ट प्रयोग तुम्हें बहुत थोड़े रागों में किया हुआ दिखाई देगा, इसे अच्छी तरह तैयार कर लेना चाहिए।

खंबावती की पकड़ 'ग म, सा' है तथा आरोह में धैवत वर्जित नहीं है। रागेश्वरी में पंचम वर्ज्य है। दुर्गा में ऋषभ-पंचम और तिलंग में रे-ध स्वर नहीं लिए जाते। ये सभी राग 'तिलककामोद' से अलग हो जाते हैं। यदि किसी ने तुम्हें 'तिलककामोद' गाने के लिए कहा, तो तुम्हें 'प़ नि़ सा रे ग, सा, रे प, म ग, सा रे ग, सा, नि़ इस प्रकार के स्वरों से आरंभ करना चाहिए। इतने स्वरों से यह राग बिलकुल स्पष्ट हो जाता है। 'तिलककामोद' का स्वरूप यदि नियम-भ्रष्ट हो जाए, तो वह 'बिहारी' नामक राग हो जाता है। प्रचार में गायक लोग जलद-तान लेते हुए सारे नियमों को गड़बड़ करके मिलाजुलाकर, केवल निषाद के नियम को सँभालते हुए अनेक बार देखे जा सकते हैं। यह मैं तुम्हें एक बार और कह चुका हूँ कि इस समय इस तानबाजी के शैतान ने हमारे संगीत में प्रविष्ट होकर

बहुत-कुछ नाश कर दिया है। यद्यपि मैं स्वीकार करता हूँ कि हमारे देशी संगीत का लक्षण 'कामाचार प्रवर्तितत्वम्' भी है, परंतु हमें इसका अर्थ यही करना चाहिए कि प्राचीन ग्रंथों में बताए हुए नियम समाज की रुचि के अनुरूप कुशल गायकों द्वारा बदले जाकर जिस संगीत में नए नियम सम्मिलित हुए हों वह संगीत ही देशी संगीत है।

इस समय धीरे-धीरे हमारे यहाँ संगीत की उन्नति होने के चिह्न दिखाई देने लगे हैं। निरक्षर और जड़ बुद्धि के गायकों की दया पर निर्भर रहना हमारे सुशिक्षित वर्ग को अब पसंद नहीं है। केवल Musical gymnastics (तानों की कवायद) देखकर अब हम आश्चर्यान्वित होना छोड़ चुके हैं। अब तो हमें प्रत्येक राग के नियम जानने की उत्कंठा उत्पन्न हो जाती है। यह सोचना स्वाभाविक ही है कि यदि प्राचीन संगीत इस समय प्रचार में नहीं है, तो चाहे न हो; परंतु अर्वाचीन संगीत भी तो नियम-बद्ध होना चाहिए। लक्ष्यसंगीतकार ने यद्यपि प्राचीन संगीत-ग्रंथों का अनुशीलन किया होगा; परंतु अर्वाचीन संगीत के प्रति भी उसका प्रेम अतिशय रहा होगा, ऐसा दिखाई देता है। हालाँकि मुसलमान गायकों ने ग्रंथोक्त रूपों में बहुत हेर-फेर किए हैं, तो भी 'चतुर पंडित' ने उनकी निंदा करना पसंद नहीं किया है। 'चतुर पंडित' का मत है कि देश-काल की प्रवृत्तियों के अनुसार संगीत में परिवर्तन होता ही है। 'चतुर पंडित' ने यह विचार भी व्यक्त किया है कि जिस राग का स्वरूप ग्रंथों को छोड़कर बहुत दूर नहीं गया है, जिस राग को सरलता से नियम-बद्ध किया जा सकता है और जिस राग में गायकों के अज्ञान से या दृष्टि-भ्रम से भ्रष्टता आ गई है; इस प्रकार के राग को सुधारने का कर्त्तव्य सुशिक्षित लोगों का है। 'चतुर पंडित' का कथन है—

अस्मदीये च संगीते यवनैरप्यसंशयम् ।
नानाविधतया सद्यो विहितं परिवर्तनम् ॥
प्रमादादपि संमोहाद्य रागा भ्रष्टतांगताः ।
लक्ष्ये स्युस्ते सुनियताः कर्त्तव्याः शास्त्रकोविदैः ॥

इस काम को किस प्रकार करना चाहिए, इसका नमूना कुछ प्रमाण में स्वतः 'चतुर पंडित' ने कर दिखाया है। उसके ग्रंथ में अनेक मुसलमानी राग स्पष्ट देखे जा सकते हैं; परंतु उन रागों को उसने कैसा सुंदर और नियम-बद्ध बनाकर अपनी पद्धति में सम्मिलित कर लिया है, यह हम देखते ही हैं। मैं सदैव अपने शिष्यों और मित्रों को 'चतुर पंडित की पद्धति ही स्वीकार करने की राय देता हूँ; क्योंकि कैसी ही क्यों न हो, यह अपने प्रचलित संगीत की ही एक पद्धति है। अपने वर्तमान संगीत की स्थिति के विषय में और उसे सिखानेवाले किन्हीं-किन्हीं संगीत-व्यवसायी लोगों के विषय में मेरे एक मित्र (जो स्वतः हिंदुस्तान के एक प्रसिद्ध गायक हो गए हैं) ने एक दिन कुछ ऐसी बातें सुनाईं, जिन्हें सुनकर तुम्हें हँसी आए बिना न रहेगी।

प्रश्न : आप हमें उनकी बातें अवश्य सुनाइए। हम सुनना चाहते हैं कि उनके विचार इस विषय में क्या थे ?

उत्तर : उन्होंने मुझसे कहा—"पंडितजी ! मैं स्वयं एक गायक हूँ और मुझे अधिक लिखना-पढ़ना भी नहीं आता; फिर भी कुछ लोगों के वर्षों तक सहवास के कारण अच्छे और बुरे की परख, मैं थोड़ी-बहुत जानता ही हूँ। अपने गायकों की निन्दा मैं नहीं करना चाहता हूँ, परंतु अपना स्वयं का मत मैं आपको प्रामाणिक रूप से कह रहा हूँ।

हमारे वर्तमान गायकों में से कई लोगों ने सच्चे संगीत की बड़ी मिट्टी खराब कर दी है। अब भी कहीं-कहीं उच्च श्रेणी के गुणी लोग पाए जाते हैं, परंतु यह निस्संदेह कहा जा सकता है कि वैसे लोगों की संख्या अधिक नहीं है और न सदैव ऐसे लोग दिखाई ही पड़ सकते हैं। कुछ अंशों में इस अभाव का कारण हम लोग ही कहे जा सकते हैं। जब हम अपने शिष्यों को मुक्त हृदय से नहीं सिखाएँगे, तब ये बेचारे गाएँगे ही क्या ? समाज के पास वे साधन ही नहीं रहे कि वह उच्च श्रेणी और निम्न श्रेणी के संगीत की परख कर सके। प्राचीन गीतों की भाषा, उनका रस, भाव, स्वर-रचना आदि बातों को देखते हुए इस समय प्रचलित रूप को देखकर हार्दिक खेद उत्पन्न होता है। इस समय तो चाहे जो खड़ा हुआ और लगा गला फिराने। अजी साहब ! हमारे यहाँ के चिलम-हुक्का भरनेवाले, तम्बूरे साफ करनेवाले लोग भी, जिन्हें हमने दस-पाँच चीजें बताई हों या नहीं बताईं, ऐसे लोग भी इधर-उधर से टुकड़े-बदड़े इकट्ठे कर 'खाँ साहब' बनकर बैठे हुए हैं। इतना ही नहीं, परंतु वे इतने तालीमी (शिक्षण-कुशल) हैं कि उन्हें भोजन करने का भी वक्त नहीं मिलता। मैं सभी गायकों के विषय में ऐसा नहीं कहता। कुछ गायक अच्छे भी हैं और उनकी सभी ओर प्रसिद्धि भी है; परंतु केवल गले की तैयारी पर बने हुए गायक ही अधिक मात्रा में दिखाई पड़ते हैं। कभी-कभी ऐसे-ऐसे गायकों के मुँह से मेरे स्वयं के बनाए हुए गीत मुझे ही पहचान में नहीं आते। केवल स्थायी का थोड़ा भाग मेरा और आगे फिरत उनके द्वारा रचित ! कहाँ मूल राग और कहाँ उनकी वह फिरत !! परंतु धन्य हैं वे श्रोतागण ! बेचारे गायक की निरी तानबाजी पर व गायक की धूम-धाम पर आश्चर्यान्वित होकर 'सुबहान अल्लाः, माशा अल्लाः' की झड़ी लगा देते हैं। अनेक बार ऐसा देखा जा सकता है कि गायक का राग और गीत के शब्द समझनेवाले श्रोता बहुत ही थोड़े होते हैं। आपने ऐसे उदाहरण भी सुने होंगे कि गाते-गाते अमुक गायक ने अपनी जगह से उठकर अगल-बगल के लोगों पर उछलना-कूदना शुरू कर दिया।

पंडित जी ! गला तैयार करना एक अलग चीज है, परंतु उसका 'इल्म' (विद्या-कला) प्राप्त करना एक अलग चीज है। श्रोताओं को भी संपूर्ण रूप से दोषी नहीं कहा जा सकता। जब तक उन्हें उच्च श्रेणी का गायन सुनने का अवसर बार-बार नहीं मिलता, तब तक वे यह कैसे जान सकते हैं कि उत्तम श्रेणी के

गायन में क्या-क्या होना चाहिए ? किसी-किसी गायक की एक ही फिरत (तानबाजी) चाहे जिस राग में लगी हुई चलती है। यदि यहाँ स्पष्ट पहचानने-योग्य स्वर या नियम दिखाई भी दिए, तो यह तानबाजी किस राग की है, यह प्रश्न हो जाता है। जब गायक राग के नियम सीखा हुआ होगा, तभी वह श्रोताओं को दिखा सकेगा ? इसी प्रकार के किसी स्वयंसिद्ध गायक से यदि आप प्रश्न करें कि खाँ साहब ! शुद्ध-कल्याण, भूपाली, देशकार, जैत, विभास आदि रागों के अंतर क्या मुझे स्पष्ट रूप से समझा देंगे ! तब वह क्या कहेगा, यह भी सुन लीजिए। यदि वह असली धूर्त होगा, तो तुम्हारी और तुम्हारे प्रश्न की तारीफ कर छुट्टी पा लेगा—'अहा-हा ! क्या ही मार्मिक सवाल है। आप तो स्वयं संगीत के अवतार हैं; ऐसी कौन-सी बात है, जिसकी आपको जानकारी नहीं है ? यह बात आपके-जैसे कद्रदान लोगों के ही योग्य है।' परंतु ऐसे उत्तर से आपको क्या संतोष हो सकता है ? यदि उत्तरदाता कोई मूर्ख भांडखोर होगा, तो वह कहेगा कि ऐसी बातें अपने शागिर्दों के सिवाय अन्य किसी को हम नहीं बताया करते ! ऐसे लोगों से अधिक वाद-विवाद करने से झगड़ा होने की आशंका हो जाती है। आपने हमारे गायकों के खास जलसे देखे ही होंगे। वहाँ अनेक बार मार-पीट तक के प्रसंग आ गए, यह भी आपने सुना होगा।

इन बातों का मुख्य कारण क्या है ? बस, यही कि उन गायकों को उत्तम पद्धति-बद्ध तालीम (शिक्षा) नहीं मिली है। उत्तम रूप से सीखा हुआ गायक होगा, तो उसको ऐसे प्रश्न सुनकर आनंद ही होगा। वह अपने शिक्षण के अनुसार उन रागों के ठाठ, आरोह-अवरोह, वादी-संवादी आदि बताकर, बाद में उदाहरण-स्वरूप एक-एक राग की, प्रसिद्ध-प्रसिद्ध गायकों की दस-दस, पाँच-पाँच चीजें सुनाएगा। ऐसे का नाम है 'सच्चा गायक'। मुझे ऐसा दिखाई देता है कि आपके शहर के विद्वान् लोगों ने यह विषय अपने हाथ में लिया है; वे इस विषय में बड़ी पूछताछ (अन्वेषण) भी करते हैं। यह एक प्रकार से बहुत अच्छा है। आप शिक्षित लोग एक वर्ष में जितना सीख सकते हैं, उतना हमारे निरक्षर गायकों को बारह वर्ष में भी नहीं आ सकता।

ऐसे ही उद्‌गार एक वृद्ध गायक ने भी प्रकट किए थे। वे हैदराबाद के प्रसिद्ध गायक थे। उन्होंने और भी एक-दो मनोरंजक बातें सुनाईं। उन्होंने कहा :—

'पंडितजी ! आपको आश्चर्य होगा, परंतु किसी-किसी समय मेरे शागिर्द कहलानेवाले गायक मुझे ऐसा विलक्षण गायन सुनाते हैं कि मैं स्वयं भ्रम में पड़ जाता हूँ कि यह गायन-प्रकार मैंने इन्हें कब और कैसे सिखा दिया है ? यदि वे मेरे शागिर्द नहीं कहलाते, तो उनकी प्रतिष्ठा नष्ट हो जाती है और यदि मैं उन्हें मानने लगूँ, तो मुझे कहीं प्रत्यक्ष गायन गाकर सुनाने को कोई न कह दे, यह उलझन सदैव हो जाती है। परंतु 'मेरी भी चुप और तेरी भी चुप' यह मार्ग स्वीकार करके मैं रह जाता हूँ। अब मैं वृद्ध हो गया हूँ, अतः मुझमें पहले-जैसी ताकत और उत्साह भी कहाँ हो सकता है ? इस विषय में वाद-विवाद करने के दिन ही अब नहीं रहे !

अच्छा कौन है और बुरा कौन है, इसका निर्णय तो इस समय इस बात पर ही हो गया है कि किसकी मोटर अधिक भागती है! और इस वाद-विवाद में न्यायकर्ता कौन ? आप विद्वान् लोगों ने इतने दिनों तक इस विषय पर लक्ष्य नहीं किया, यह बुरा किया। अब कुछ-कुछ आपके प्रयत्नों से आशा हो जाती है; वैसे पुराने प्रसिद्ध लोग समाप्त होते जा रहे हैं। तो भी मुझे विश्वास है कि थोड़े दिनों में यह विषय आप विद्वानों के हाथ में पुनः चला जाएगा और हमारी अगली पीढ़ी के गायक यह शास्त्र फिर आप लोगों से ही सीखेंगे। मैं उस आगामी दिवस को बहुत सुदिन समझता हूँ।'

प्रश्न : आपने उत्तर की ओर प्रवास किया है। वहाँ किस शहर के गायक आपको अधिक पसन्द आए हैं ?

उत्तर : इस प्रश्न का उत्तर देना कठिन है। मैंने अनेक जगहों पर जाकर अनेक प्रकार के गायकों को सुना है; वे सभी अच्छे थे। परन्तु मेरे विचार से उदयपुर के गायकों के गायन में मुझे रंजकता अधिक प्राप्त हुई। मेरे मत से उनकी गायिकी (गायन-शैली) हमारे गायकों के लिए अनुकरणीय है। उधर के प्रान्त में वे गायक प्रसिद्ध हैं और उनकी प्रसिद्धि वास्तव में योग्य ही है। यद्यपि उन्होंने मुझे प्रसिद्ध रागों की ही चीजें सुनाईं, परंतु रागों का प्रारम्भिक विस्तार और क्रमानुसार तीनों लयों का काम (द्रुत, मध्य और विलम्बित) उत्तम रूप से कर दिखाया था। अस्तु, अब हमें तिलककामोद का अधूरा विषय पूरा कर लेना चाहिए।

प्रश्न : जी हाँ, अभी हमें तिलककामोद को पूरा करना है!

उत्तर : तुम्हें याद ही होगा कि कामोद के मिश्र प्रकार बतलाते हुए मैंने तुम्हें तिलककामोद का नाम भी बताया था। यदि तुम तिलककामोद में कामोद का अंग खोजने लगो, तो वह तुम्हें नहीं मिल सकेगा। इस बात को सुनकर तुम्हें आश्चर्य नहीं होना चाहिए। इसी प्रकार गौड़सारंग में सारंग का अंश तुम्हें नहीं दिखाई दिया होगा! मैंने पहले तुम्हें कामोद के भेद 'संकीर्णरागाध्याय' ग्रंथ से बताए थे। इस ग्रंथ में तिलककामोद के लिए कहा है कि यह राग 'कामोद' और 'खट' राग के मिश्रण से बनता है। खट राग के विषय में यह कहा जाता है कि यह राग ६ रागों का मिश्रित रूप है। ऐसी दशा में तिलककामोद का रूप ग्रंथों की दृष्टि से कैसे निश्चित किया जा सकता है ?

प्रश्न : खट राग में कौन-कौनसे ६ राग मिले हुए बताए जाते हैं ?

उत्तर : Capt. Willard साहब ने अपने ग्रंथ में इन ६ रागों का नाम बताया है—१. वराटी २. आसावरी ३. तोड़ी ४. श्याम ५. बहुली ६. गांधार। परंतु इन ६ रागों की सहायता से राग-रूप सिद्ध करने का झंझट तुम्हें नहीं करना चाहिए; क्योंकि यह तो 'अव्यापारेषु व्यापारः' होगा। अपने ग्रंथकारों ने भी इस प्रकार के झंझट उठाना पसंद नहीं किया है। तिलककामोद का विस्तृत वर्णन तुम्हें प्राचीन ग्रंथों में प्राप्त नहीं हो सकेगा। दक्षिण की ओर के ग्रंथों में भी कहीं यह दिया हुआ नहीं है।

प्रश्न : 'चतुर पंडित' ने इसका कैसा वर्णन किया है ?

उत्तर : उनका वर्णन इस प्रकार है :—

खंमाजीमेलके प्रोक्तः कामोदस्तिलकान्वितः ।
संपूर्णः सांशको गीतो रात्र्यां यामे द्वितीयके ।।
आरोहे धैवतस्त्यक्तो रिवक्रमवरोहणे ।
सोरटीदेशिकांगेन गायना उद्धरंत्यमुम् ।।
गांधारात्षड्जसंस्पर्शो नूनं स्यादतिरक्तिदः ।
अपन्यासो निषादेऽसौ सर्वदा भ्रांतिहारकः ।।

इसमें बताई हुई बातें मैं तुम्हें पहले ही सुना चुका हूँ ।

प्रश्न : आपने अभी कहा कि यह राग दक्षिण के ग्रंथों में नहीं बताया गया है, फिर भला यह उत्तर के ग्रंथों में क्या मिल सकेगा ?

उत्तर : नहीं-नहीं, मेरे कहने का यह उद्देश्य नहीं था । जो ग्रंथ इस समय उपलब्ध हैं, उनमें वर्णित बहुत-से राग दक्षिण-पद्धति में प्राप्त हो जाते हैं और उनके स्वरों के नाम भी दक्षिण-पद्धति के ही हैं, इसलिए मैंने ऊपर की बात कही है । यह तो तुम जानते ही हो कि अंतर, काकली, कैशिक आदि स्वर-नाम हमारी उत्तरी पद्धति में नहीं हैं ।

प्रश्न : जी हाँ ! उत्तर की ओर तो कोमल, तीव्र ही स्वरों के नाम पाए जाते हैं । क्या अपने यहाँ, तीव्र, कोमल आदि स्वरों का प्रचार बहुत पुराने समय से है ?

उत्तर : यह महत्त्व की बात है । ये शब्द 'रागतरंगिणी' ग्रंथ में भी प्राप्त होते हैं । यह ग्रंथ 'भुजवसुदशमितशाके' के मान से (१०८२ शाके) कितना प्राचीन निश्चित होता है ? इसपर किसी के तर्क से उत्तर-संगीत का दक्षिणी ग्रंथों से न मिलने का कारण यह बताया जाता है कि उत्तर-संगीत के ग्रंथ दक्षिणी संगीत से भिन्न ही हैं ।

'रागतरंगिणी', 'पारिजात' आदि इसी प्रकार के भिन्न ग्रंथ हैं । मेरे विचार से इस बात के लिए प्रत्यक्ष प्रमाण अधिक मिलना चाहिए । 'संगीतदर्पण' में राग अधिकांश अपने ही हैं, परंतु स्वरों के नाम दक्षिण के हैं । 'ग्रंथसंगीत' पर विचार करनेवाले को इन प्रश्नों पर विचार करना आवश्यक है ।

प्रश्न : 'रागतरंगिणी' में शुद्ध और विकृत स्वरों का वर्णन किस प्रकार किया गया है ?

उत्तर : इस ग्रंथ का शुद्ध ठाठ तो काफी का ही है । अब इसके विकृत स्वरों को देखो :—

स्वस्वशेषश्रुतिं त्यक्त्वा यदा ऋषभधैवती।
गीयेते गुणिभिः सर्वैस्तदा तौ कोमलौ मतौ॥
गृह्णाति मध्यमस्यापि गांधारः प्रथमां श्रुतिम्।
यदा तदा जनैरेष तीव्र इत्यभिधीयते॥
द्वितीयामपिचेदेवं तदा तीव्रतरः स्मृतः।
चतुर्थीमपिचेदेव मतितीव्रतमः स्मृतः॥
अतितीव्रतमो गस्तु सारंगे परिगीयते।
षड्जस्य च निषादश्चेद्गृह्णाति प्रथमांश्रुतिम्॥
तदासंगीतविद्भिः सः तीव्र इत्यभिधीयते।
द्वितीयामपिचेदेवं तदा तीव्रतमः स्मृतः॥
षड्जस्य द्वेश्रुती गृह्णन् निषादः काकली मतः।
तीव्रतमे निषादे च गेया सैव विचक्षणैः॥

मेरे विचार से अब हमें इस विषयांतर की ओर नहीं बढ़ना चाहिए। उत्तर के संगीत के यदि अन्य ग्रंथ आगे मिलें भी, तो भी अपने प्रचलित संगीत पर उसका प्रभाव बहुत अल्प प्रमाण में ही पड़ना संभव है। इस प्रचलित संगीत को हमारे 'चतुर पंडित' ने उत्तम रीति से व्यवस्थित कर ही दिया है।

प्रश्न : आपके कथन का तात्पर्य हम समझ गए। आपके मत से इस समय प्राचीन ग्रंथों का महत्त्व ऐतिहासिक दृष्टिकोण को समझने-मात्र का ही है। उनका प्रत्यक्ष उपयोग शायद ही हो ?

उत्तर : हाँ, ऐसा मानने में कोई हर्ज नहीं।

प्रश्न : ठीक है, अब आप तिलककामोद का स्वर-विस्तार समझा दीजिए ?

उत्तर : इस प्रकार होगा :—

सा, ऩिसा, प़ऩिसा, रेरे, पमग, सारेमग, साऩि, पऩिसा, रेगसा।
प़ऩिसारेऩिसा, गरेपमगग, सारेगग, सा, ऩि, प़ऩिसा, रेगसा।
रेगमप, गमप, धमग, रेरे, पमग, सारेगग, साऩि, पप़ऩिसा, रेसा।
धम, पग, मरे, रेगरे, पमग, सारेगमग, साऩि, प़ऩिसारेऩिसा।
ममग, पमग, रेग, रेगमप, गमप, धमग, सारेग, साऩि, प़ऩिसा।

ऩिसा, रेरेऩिसा, प़ऩिसा, ऩिसा, गसा, ममगगसा, सारेगमगग, साऩि, प़ऩिसारेगसा।

रेरे, मम, पप, निनिसां, निनिसां, निसां, रेंरेंसां, निध, मप धध, मग, रेपमग, सा, ऩि, प़ऩिसारेगसा।

ऩिसारेगसा, मगसा, रेप, मग, सा, धमगसा, रेरेपमग, साऩि, प़ऩिसा।

मेरे खयाल से इतना ही विस्तार तुम्हारे-जैसों के लिए काफी होगा। यद्यपि मैंने तुम्हें इतनी तानें बताई हैं, परंतु तुमको आवश्यक रूप से ध्यान में रखने-योग्य इनमें से दो-तीन ही हैं। वे इस प्रकार हैं—'प़ नि़ सा रे ग सा, रे प म ग, सा रे ग ग, सा नि़' केवल इतना मधुर स्वर-समुदाय गा देने पर मार्मिक श्रोता तिलककामोद को पहचान लेंगे। इस राग के आरोह में धैवत और अवरोह में ऋषभ स्वर विद्वानों द्वारा दुर्बल माने गए हैं। हमें इस राग का यह साधारण नियम मान लेना चाहिए। दुर्बल स्वर सदैव वर्ज्य नहीं होता, यह अवश्य ध्यान में रखने की बात है।

प्रश्न : अब आगे का राग आरंभ कीजिए !

उत्तर : अब हम 'जयजयवन्ती' राग को लेते हैं। जयजयवन्ती को कोई-कोई जयावन्ती, जयजयन्ती, जयन्ती, वैजयन्ती आदि नाम भी देते हैं। यह बहुत पुराना राग है और ग्रंथों में इसका वर्णन भी प्राप्त होता है।

प्रचार में इसे सोरठ-अंग का राग मानते हैं। यह मिश्र राग है। इसमें गौड़, बिलावल और सोरठ, ये तीन राग मिले हुए दिखाई पड़ेंगे। सोरठ के अनुसार इसके गाने का समय भी मध्यरात्रि का निश्चित किया गया है। इस राग में ध्यान देने लायक महत्त्वपूर्ण बात दोनों गांधारों का भी विचित्र प्रयोग है। इस राग में दोनों गांधार और दोनों निषादों का प्रयोग होता है। आरोह करते हुए तीव्र ग-नि और अवरोह करते हुए कोमल ग-नि का प्रयोग किया जाता है। अवरोह में कोमल गांधार का प्रयोग विशेष नियमित रूप से ही किया जाता है। यह बात नहीं है कि जयजयवन्ती के अवरोह में तीव्र गांधार बिलकुल नहीं लिया जाता। इस तीव्र गांधार का प्रयोग अवरोह में भी होता है, क्योंकि इस राग में गौड़ और बिलावल राग मिले हुए हैं। हाँ, यह कहा जा सकता है कि जब हमें कोमल गांधार का प्रयोग करना हो, तब केवल अवरोह में ही किया जा सकेगा। जयजयवन्ती का प्रधान अंग, जिसके संयोग से यह राग पहचाना जा सकता है, यह है:—'रे रे, रेग़ु रेसा, नि़॒ ध़ प़, प़ प़, रे'। इसी प्रकार की पंचम और ऋषभ की संगति तुम्हें छायानट में भी दिखाई गई थी। 'गौड़' की पकड़ 'रे ग, रे म ग' है। पूर्वांग में बिलावल का भाग 'ग म रे रे सा' इस राग में दिखाई भी पड़ता है। जयजयवन्ती के अवरोह में बिलावल के दोनों अंग दिखाई देते हैं, परंतु जो कोमल निषाद बिलावल का नियमित स्वर नहीं है, वह जयजयवन्ती के मुख्य स्वरों में से है। जयजयवन्ती में सोरठ का अंग प्रधान है, क्योंकि वह आरोह और अवरोह दोनों में स्पष्ट रूप से लगाया जाता है। जिन्हें इस राग की जानकारी नहीं होती, वे प्रायः इसे सोरठ ही समझ लेते हैं। सोरठ में 'रे ग॒ रे सा, नि़॒ ध़ प़' यह भाग नहीं होता और पूर्वांग में बिलावल का भाग भी नहीं होता। देस राग में भी इस प्रकार दोनों गांधार और 'प़-रे' की संगति कभी भी दिखाई नहीं देगी। यह राग, अवरोह में ऋषभ की वक्रता और निषाद का अपन्यास (लक्षण रूप से) नहीं होने से, तिलककामोद से भी भिन्न हो जाता है।

जयजयवन्ती के गीत ऋषभ स्वर से आरंभ किए हुए कई बार पाए जाएँगे। 'ऋषभ' पर गायकों द्वारा एक प्रकार का विशिष्ट आंदोलन दिया जाता है। इसी प्रकार का रूप थोड़ा-थोड़ा कुकुभ में भी बताया जाता है। इस राग का अंतरा तिलककामोद व सोरठ-जैसा ही 'म म प, नि नि सां सां, नि नि सां' शुरू होता है। गांधार स्वर की गौणता के कारण खमाज, तिलंग व दुर्गा आदि रागों का संदेह हो ही नहीं सकता। छायानट में 'प-रे' स्वर-संगति का रूप मध्य-सप्तक में 'प-रे' भी हो जाता है, परंतु इस राग में ऐसा कभी नहीं हो सकेगा। छायानट में 'रे, ग म प, म, ग, म रे, सा' अंग स्वतंत्र ही है। जयजयवन्ती राग श्रोताओं को खमाज ठाठ से आगे काफी ठाठ में ले जाने का काम करता है, यह मैं पहले ही कह चुका हूँ।

अब हम इस राग के विषय में कुछ ग्रंथों की सम्मतियाँ देखें। रागतरंगिणीकार ने 'जैजयन्ती' राग को कर्णाट ठाठ में बताया है। इस ठाठ में दोनों गांधारों का प्रयोग होता है।

उसका कथन है :—

षाडवः कानरो रागो देशीविख्यातिमागतः।
वागीश्वरी कानरश्च खंबाइची तु रागिणी॥
सोरटः परजो मारुर्जैजयन्ती तथापरा॥

'संगीतसंप्रदायप्रदर्शिनी' नामक जिस ग्रंथ को दक्षिण की ओर के पंडित सुब्रह्म दीक्षित ने प्रसिद्ध किया है, उसमें चतुर्दंडिकार पं० वेंकटमखी के नाम से उन्होंने इस राग के लक्षण निम्नलिखित बताए हैं :—

जयजयवंत्याख्यरागश्च संपूर्णः सग्रहान्वितः।
लक्ष्यमार्गानुसारेण गीयते गानकोविदैः॥

पहले चरण में 'जयावंत्याख्यरागश्च' इस प्रकार होना चाहिए। इस ग्रंथ ('संगीतसंप्रदायप्रदर्शिनी') में अनेक स्थलों में अशुद्ध संस्कृत-श्लोक दिखाई पड़ते हैं। कहीं-कहीं तो यह भ्रम होता है कि यह वेंकटमखी ग्रंथकार चतुर्दंडिकार वेंकटमखी नहीं हो सकता। चतुर्दंडिकार बहुत विद्वान् था; उसकी पद्धति अब भी दक्षिण की ओर प्रचलित है। स्वरमेलकलानिधिकार ने किसी-किसी ठाठ के विषय में टीका करते हुए जिस भाषा का प्रयोग किया है, उससे प्रकट हो जाता है कि ग्रंथकार कितने पानी में है। इस दृष्टि से देखने पर 'प्रदर्शिनी' ग्रंथ के श्लोक अनेक स्थलों पर भ्रष्ट दिखाई देते हैं। 'स्वरमेल' ग्रंथ पढ़ने पर तुम्हें पं० वेंकटमखी की टीका का मर्म समझ में आ सकेगा। जयजयवन्ती राग बहुत थोड़े ग्रन्थों में बताया गया है। इस राग में ग-नि स्वरों की ओर तुम्हें सदैव लक्ष्य देना पड़ेगा। कोमल गांधार का प्रयोग तो इसमें बहुत ही अद्भुत रूप से होता है। जहाँ-जहाँ कोमल गांधार लिया जाता है, वहाँ वह अधिकतर ऋषभ स्वर से लगा हुआ ही रहता है। कोमल गांधार को लेने के पहले गायक ऋषभ को लेगा और फिर कोमल ग का

कण लेकर अवरोह करेगा। आरोह में कोमल ग का प्रयोग कभी नहीं किया जाएगा। अवरोह में भी 'प म ग रे' इस प्रकार का प्रयोग बहुधा नहीं होता। जैसे यमन राग में कोमल म, बिलावल में कोमल नि दिखाए जाते हैं, इसी प्रकार इस राग में कोमल ग को मान लेने में कोई हानि नहीं। 'रे ग रे सा, नि़ ध़ प़' स्वर-समुदाय जयजयवन्ती की एक निश्चित पकड़ है। Capt. Willard साहब ने अपने ग्रन्थ में इस राग को सोरठ, धवलश्री तथा बिलावल का मिश्रण बताया है। एक अन्य मत के अनुसार इस राग में गौरी, बिहागड़ा व नट राग का मिश्रण किया गया है। तुम्हें अभी जिस नारद-मत का विवरण बताया था, उस मत के अनुसार जयजयवन्ती मेघ राग की रागिनी बताई गई है। इस ग्रंथ में स्वरों की स्पष्टता बिलकुल नहीं है।

प्रश्न : अब इस राग का स्वरूप स्वरों में समझाइए!

उत्तर : इसका राग-विस्तार इस प्रकार होगा :—

सा, रेरे, रेगग, मग, रेरेसा, नि़सा, रेरेसा, सानि़ध़प़, प़प़, रे रे, ग, मग, मरेसा।

नि़सारेसा, रेगरेसा, रेनि़सा, रेरे, गमप, गम, रेरेसा, नि़सारेगरेसा, नि़नि़ध़प़, रे, गमरेरेसा।

नि़सारेगरे, रेगरे, पधमगम, रेगरे, नि़सारेगरेसा, नि़ध़प़, रे, गमरेरेसा।

प़प़रे, गरे, मपधम, रेगरे, मप, निसां, निधप, धम, पगमग, मरेरेसा।

मम, प, नि, नि, सां, सांनिसां, निसां, रेंगंरेंसां, रेंसांनिधप, मपधनिधप, मपधम, गमप, गम, रेगरे, नि़सा, रेगरेसा, नि़ध़प़, रे, गम, रेरेसा।

रेरे, रेगसा, रेगमप, धमरे, निनिधप, मपमरेगरे, सां, रेंसांनिधप, निधप, धम, पगमप, रेगरे, नि़सारेगरे, सानि़ध़प़, रेसा।

प्रश्न : इस राग का वर्णन 'चतुर पंडित' ने किस प्रकार किया है?

उत्तर : इस प्रकार :—

कांभोजीमेलकेजाता जयावन्ती सुखप्रदा।
ऋषभांशा सुसम्पूर्णा सोरट्यंगेन मंडिता॥
तीव्रगस्य प्रयोगोऽत्र सोरटीमपसारयेत्।
अवरोहे रिसंलग्नं कोमलं गं बुधः स्पृशेत्॥
मंद्रस्थस्य पंचमस्य रिस्वरेण सुसंगतिः।
छायानट्टस्वरूपस्य क्वचित्सन्देहकारिणी॥
छायानटे मतः पातः पंचमादृषभे शुभः।
मध्यस्थानगतस्तज्ज्ञैरवश्यं रागव्यंजकः॥

प्रश्न : यह वर्णन बहुत स्पष्ट और स्मरणीय है। क्या अब आप गौड़मल्हार का वर्णन सुनाएँगे ?

उत्तर : अच्छा, उसे ही लें। गौड़मल्हार सरल रागों में गिना जाता है। इस संयुक्त नाम से ही दिखाई देता है कि इस राग में गौड़ और मल्हार का योग हुआ है। वास्तव में इस राग में उपर्युक्त दोनों रागों का योग हुआ भी है।

प्रश्न . आपने हमें गौड़ का अंग 'रे ग रे म ग' बताया था ?

उत्तर : ठीक है ! यह अंग तुम्हें इस राग में बीच-बीच में दिखाई पड़ेगा। इस राग में नवीन विद्यार्थियों को 'रे ग रे म ग रे सा सा, रे ग रे ग म प म ग' इस प्रकार स्वरों से आरंभ होनेवाली एक 'सरगम' सदैव सीख लेनी चाहिए।

प्रश्न : हमारी स्वरमालिका में एक इसी प्रकार की 'सरगम' है। इसमें 'रे ग रे म ग' स्वर तो 'गौड़' का अंग हैं, परंतु क्या आगे के स्वर 'रे रे म म, प प म प, ध सां ध प म प म' मल्हार का अंग कहलाएँगे ?

उत्तर : बिलकुल ठीक कहते हो ! यह अंग शुद्ध मल्हार का है। शुद्ध मल्हार में ग-नि स्वर नहीं लिए जाते। मल्हार की मुख्य पकड़ 'म प, ध सां ध प म' स्वर-समुदाय मानी जाती है। इस स्वर-समुदाय में यही विलक्षणता है कि इसका प्रयोग जिस-जिस राग के साथ किया जाए, उसमें थोड़े-बहुत प्रमाण में मल्हार का स्वरूप दिखाई देने लगेगा। गौड़मल्हार के अंतरे को ही देखो, इसमें 'प प, ध नि ध, नि सां, सां रें सां, सां नि ध, सां रें सां, नि ध प' स्वर-समुदाय बिलावल का, 'रे रे म म, प प ध सां, ध प म' भाग मल्हार का और अन्त का 'म प म ग, रे ग रे म ग' भाग गौड़ का है। ये भाग कितनी खूबी से लिए गए हैं। इन्हें ठीक से बताना ही बड़ी कुशलता का काम है।

प्रचार में गायकों ने मल्हार के अनेक प्रकार उत्पन्न किए हैं। इनमें से कुछ प्रकार तो स्पष्ट रूप से संयुक्त राग दिखाई देते हैं और कुछ ऐसे नहीं है। इन सबमें गायक कहीं पर भी और कैसे भी मल्हार का प्रमुख अंग, जिससे मल्हार की पहचान हो सके, अपने गायन में ले ही आते हैं। मल्हार के १५-१६ प्रकार कहे जाते हैं। इनमें से वे प्रकार, जो बहुत प्रसिद्ध और अच्छी तरह से अलग पहचाने जा सकते हैं, तुम्हें मैं बताऊँगा ! जिन प्रकारों में कोमल गांधार का प्रयोग किया जाता है, वे अपनी पद्धति में काफी ठाठ में माने जाते हैं।

प्रश्न : मल्हार के कौन-कौन-से भेद प्रचार में हैं !

उत्तर :
१. शुद्धमल्हार
२. गौड़मल्हार
३. नटमल्हार
४. सूरमल्हार
५. रामदासीमल्हार
६. धूंडियामल्हार
७. नायकीमल्हार
८. अरुणमल्हार
९. जयावन्तीमल्हार
१०. मेघमल्हार
११. देसमल्हार
१२. सोरठमल्हार, इत्यादि।

कोई-कोई मीराबाई की मल्हार, झांझमल्हार आदि प्रकार और भी बताते हैं। उनके संबंध में विवाद करने की आवश्यकता ही नहीं है, क्योंकि ये सभी राग मिश्र-राग हैं। हमारे देशी संगीत का पेट बड़ा भारी है। उसमें सभी के लिए स्थान है। 'तत्तद्देशजनमनोरंजनैकफलत्वेन कामाचारप्रवर्तित्वम् देशीत्वम्' इस सिद्धांत को सदैव ध्यान में रखते हुए हमने अपना हृदय सदैव उदार रखा है। पसंद आने-योग्य कोई नया प्रकार यदि किसी ने बताया, तो उसे सम्मान देते हुए उसके नियम उत्तम रूप से सीखने चाहिए।

प्रश्न : आपका कथन यथार्थ है। जबकि रामदास, सूरदास, तानसेन आदि गायकों के भेद आदरणीय हैं, तो फिर यदि एक भेद मीराबाई का भी हो गया; तो उसे भी सम्मान देना चाहिए। 'चतुर पंडित' ने मल्हार के कौन-कौनसे भेद बतलाए हैं ?

उत्तर : 'चतुर पंडित' द्वारा बताए हुए मल्हार के निम्नलिखित भेद हैं :—

मेघसोरटदेशाख्या जयावन्ती तथैव च।
स्याद्धुण्डिया सूरदासी नायकीनटशुद्धकाः॥
तानसेनी तथा गौंडो ह्यरुणी झांझनामिका।
इतिमल्लारिकाभेदा व्यवहारे बुधैर्मताः॥

गौड़मल्हार को किसी-किसी ग्रंथकार ने शंकराभरण ठाठ में बताया है, ऐसा मान लेने में भी कोई आपत्ति नहीं है। हम देखते हैं कि इस राग में कोमल निषाद का विशेष महत्त्व नहीं है। हम यह भी जानते हैं कि खमाज ठाठ के रागों में प्रायः आरोह में तीव्र निषाद ही लिया जाता है। गौड़मल्हार के आरोह में भी यही नियम लगता है। अवरोह में बिलावल-जैसा किंचित् कोमल निषाद का प्रयोग होता है। यह देखकर ही किसी-किसी पंडित ने इसे शंकराभरण ठाठ का राग कहा है। यह बहुमत है कि गौड़मल्हार के आरोह में निषाद स्वर दुर्बल है। इसमें मध्यम स्वर वादी है। मल्हार राग वर्षाऋतु में गाया जाता है, ऐसा विद्वानों का कथन है। यह राग अन्य ऋतुओं में गाया ही नहीं जाता अथवा अन्य ऋतुओं में गाने से इसका आनन्द ही नहीं आता, ऐसी कोई बात नहीं है। केवल इस राग के गीतों में वर्षाऋतु का वर्णन प्रायः पाया जाता है, अतः अन्य ऋतुओं में यह वर्णन असमय का दिखाई पड़ता है।

प्रश्न : शुद्धमल्हार का कैसा स्वरूप ध्यान में रखें ?

उत्तर : शुद्धमल्हार का स्वरूप यह है :—

'सारेम, ममपप, मप, धसां, धपम, सारेम, सारेम। ममपपधसां, सां, रेंसां, सांध, सां, रें, मरें, सांसांधप, मरेपप, मपधसां, धप, ममरेसा, सारेम'। इसी में योग्य स्थलों पर 'ग' और 'नि' स्वरों को लगा देने से गौड़मल्हार हो जाता है। तुमने गौड़-मल्हार की स्वर-मालिका सीखी ही है, अतः अन्य उदाहरण देने की आवश्यकता

नहीं है। उस स्वर-मालिका से यह राग अच्छी प्रकार समझा जा सकता है। मल्हार के साथ थोड़ा-सा छायानट का भाग मिलाने पर नटमल्हार हो जाता है। नटमल्हार में कोई-कोई कोमल गांधार का प्रयोग किए जाने का भी कथन करते हैं। रामदासी-मल्हार में दोनों गांधारों का प्रयोग माननेवाले पंडित भी मुझे मिले हैं। मुझे लखनऊ के एक प्रसिद्ध हिंदू संगीतज्ञ ने बताया है कि मल्हार और सुघराई मिलकर रामदासी-मल्हार, सिंदूरा मिलकर सूरदासीमल्हार, सोरठ मिलकर धूँडियामल्हार और कानड़ा मिलकर मियाँ की मल्हार तथा मल्हार और अड़ाना मिलकर मीरा की मल्हार हो जाते हैं।

देसमल्हार, सोरठमल्लार, जयावन्तीमल्हार, इनके स्वरूप सहज ही ध्यान में आ जाते हैं।

प्रश्न : संभवतः इन राग-रूपों में देस, सोरठ, जयजयवन्ती राग स्पष्ट दिखाई देते होंगे ?

उत्तर : तुम्हारा तर्क ठीक है ! केवल इन रागों के आरंभ में सभी में मल्हार का अंश ही प्रयुक्त होता है। अब 'गौड़मल्हार' के विषय में ग्रंथकारों के कथन पर विचार करें। किसी-किसी ग्रंथ में 'मल्हार' नाम का एक राग भैरव ठाठ में दिया है। वह बिलकुल भिन्न राग है।

पारिजाते—

तीव्रगांधारसंयुक्त आरोहे वर्जितौ गनी।
षड्जोद्ग्राहेण संपन्ने गौंड आम्रेडितस्वरैः॥

यह रूप अपने शुद्ध मल्हार-जैसा ही है।

रागमंजर्याम्—

धत्रिः सपाभ्यांहीनोऽयं मल्लारोत्युपसि प्रियः॥

यह स्वरूप अपने यहाँ प्रचलित नहीं है। इस रूप को 'रागमंजरी' में केदार ठाठ में बताया है।

रागचंद्रोदये—(ठाठ केदार ही बताया है।)

केदारनारायणगौडकाख्यौ वेलावली शंकरभूषणाख्यः।
स्यान्नट्टनारायणमध्यमादी मल्लारको गौडकनामधेयः॥
धांशग्रहो धांतयुतोऽसपश्च मल्लारनामोषसि गीयतेऽसौ।
धांशांतको धग्रहकश्चपूर्णो विभातकाले सच गौंडरागः॥

हृदयप्रकाशे—

गनिहीनस्तुमल्हारः सादिरौडवईरितः।

नृत्यनिर्णये—

'सावेरीमेलजातः सपपरिरहितो धग्रहन्यासकांशः।
× × उपसिमलहरोभाति मल्हारराग: ॥

रागविबोधे—

मल्लारिर्नटयुगपि स धांशातादिरगनिश्च संगवभाः ॥

टीका—'मल्लारिः अगनिः गांधारनिषादरहितः धांशातादिः धैवतग्रहांशन्यासः संगवभाः संगवे शोभितगानः।' इस ग्रंथ का 'मल्लारि' ठाठ अपना शुद्ध ठाठ ही है। इस ग्रंथ में 'गौड़' राग का स्वरूप इस प्रकार मल्लारि ठाठ में कहा गया है :—

न्यल्पो मध्याह्नार्हो धांशन्यासग्रहो गौंडः॥

'स्वरमेलकलानिधि' में 'मलहरी' नामक एक राग का वर्णन पाया जाता है; परंतु वह राग भैरव ठाठ में बताया गया है।

संगीतसारामृते—

गौंडमल्लाररागश्च शंकराभरणोद्भवः।
संपूर्णः सग्रहन्यासो वर्षास्वेषः प्रगीयते ॥

प्रश्न : अब 'लक्ष्यसंगीत' का मत कह सुनाइए।

उत्तर : सुनो :—

खम्माजीमेलकेख्यातो गौंडमल्लारनामकः।
शंकराभरणेऽप्येनं केचिदाहुर्विपश्चितः ॥
संपूर्णोऽयं मध्यमांशो गीयते लक्ष्यवर्त्मनि।
आरोहणे निदुर्बलो वर्षासु सुखदायकः ॥
गन्योरत्र परित्यागाच्छुद्धमल्लारसम्भवः।
मध्यमादृषभे पातो विशिष्टां रक्तिमावहेत् ॥

इसके आगे ग्रंथकार ने मल्लार के अन्य प्रकारों का विवेचन किया है। उसका सारांश मैं तुम्हें ऊपर बता ही चुका हूँ।

प्रश्न : यह राग अब हमें अच्छी तरह समझ में आ गया। अब आगे का राग बताइए!

उत्तर : अब हम 'गारा' राग पर विचार करें। यह एक आधुनिक राग-रूप है। कोई-कोई इसे 'धुन' भी कहते हैं। प्राचीन ग्रंथों में यह स्वरूप प्राप्त नहीं हो सकता, यह स्पष्ट ही है। 'गारा' दो-तीन रागों के मिश्रण से उत्पन्न किया हुआ राग है। यह संपूर्ण जाति का राग है और इसका वादी स्वर षड्ज माना जाता है। अधिकांश रूप में गायक इसे मंद्र और मध्य सप्तकों में ही गाते हैं और वहीं पर यह सुंदर भी लगता है। यह राग चाहे जिस समय गाया जाता है। इस राग में दोनों गांधारों और दोनों निषादों का प्रयोग किया जाता है। यह नियम तो

तुम जानते ही हो कि जहाँ एक स्वर के दोनों रूपों का प्रयोग एक ही राग-स्वरूप में होता है, वहाँ आरोह में तीव्र और अवरोह में कोमल रूप लिया जाता है।

'गारा' राग में 'पीलू' और 'झिंझोटी' का मिश्रण दिखाई पड़ता है। इस राग के गीतों की प्रकृति क्षुद्र मानी जाती है, क्योंकि इसमें साधारण गीतों का प्रयोग होता है! यदि यह राग सावकाश (विलम्बित) रूप से गाया जाए, तो उच्च कोटि के गीतों में भी अच्छा लग सकता है; परंतु यह नवीन उत्पन्न राग है, अतः गायक लोग इसे कम कीमत का ही समझते हैं। अनेक बार हमारे गायकों द्वारा इस राग को मन्द्र मध्यम से लेकर मध्य पंचम तक ही गाते हुए देखा गया है। 'लक्ष्यसंगीत' में इस राग को स्मरण रखने की एक उत्तम रीति बताई है। 'चतुर पंडित' का कथन है कि मन्द्र मध्यम से मध्य मध्यम तक के क्षेत्र में मन्द्र 'म' को षड्ज मानकर, आरोह यमन के स्वरों में और अवरोह झिंझोटी के स्वरों में करने से 'गारा' राग दिखाई देने लगता है। ऐसा करने से दोनों निषाद दोनों मध्यम दिखाई देंगे। यह भी एक मनोरंजक कल्पना है और मेरे विचार से भी ऐसा करने से 'गारा' का स्वरूप दिखाई देने लगेगा। चाहे यह राग-रूप इसी प्रकार उत्पन्न किया हो या नहीं किया हो, परंतु यह इस राग-रूप को स्मरण रखने की उत्तम युक्ति निस्संदेह है।

'रागतरंगिणी' ग्रंथ में एक राग 'गौर' नामक कर्नाट ठाठ में बताया है। वह राग 'गारा' ही है या नहीं, यह विवादग्रस्त विषय है। कर्नाट ठाठ में भी दोनों गांधार व दोनों निषाद लिए गए हैं, यह निश्चित है, दूसरी मनोरंजक बात यह भी है कि 'रागतरंगिणी' में 'गौरकानरः' नामक एक राग कर्णाट ठाठ में बताया है और प्रचलित संगीत में भी गायक एक 'गाराकानड़ा' नामक राग गाते हैं। तुम बुद्धिमान् हो, अतः 'गौर' राग क्या अपना 'गारा' हो गया है, इसका निर्णय धीरे-धीरे करना। मेरे विचार से तो 'गौर' और 'गारा' एक ही हैं। प्रचार में संधिप्रकाश (सायंकाल) के समय में गाया जानेवाला 'गौरा' अथवा 'मालीगौरा' एक अलग ही राग है, इसमें ऋषभ कोमल तथा गांधार सदैव तीव्र ही रहता है। Capt. Willard साहब ने अपने राग-रागिनी के कोष्ठक में 'गारा' राग में 'गौरी, नट, त्रिवण' रागों का सम्मिश्रण बताया है। यह वर्णन संभवतः सायंकाल के गारा (मालगौरा) के लिए अधिक ठीक दिखाई देता है।

प्रश्न : यह राग प्राचीन ग्रंथों में तो प्राप्त ही नहीं होता, अतः इसका राग-विस्तार और समझा दीजिए, तब इसका वर्णन समाप्त होगा।

उत्तर : हाँ, इसका राग-विस्तार इस प्रकार होगा :—

सा, गम, रेग̲रेसा, नि़सारेसा, ध़नि़̲ध़, म़म़ध़नि़सा, रेनि़सा।

नि़सारेनि़सा, गमप, गम, रेग̲रे, नि़सा, रेग̲रे, नि़सा, नि़̲ध़, नि़̲प़म़, म़नि़̲ध़नि़सा।

नि़सा, ध़नि़̲ध़, नि़सा, गमप, गम, ग̲रे, नि़सा, ग̲रे, नि़सानि़̲ध़प़म़, म़ध़नि़सा।

गम, गम, रेग̲रे, पम, रेग̲रे, नि़सारेग̲रे, धनि̲, पध, मप, गम, रेग̲रे, नि़साध़नि़̲, प़ध़, नि़सा।

धनिधपम, निधपम, धपम, मधनिसा, धनिसा, गमपगम, रेगुरेसा ।

पपध, मपगम, रेगुरे, निसा, गुरे, मपधनि धप, गमपगमरेगुरेनिसा, रेगुरेसा, निसा, पधनिनिसा ।

इस राग का स्वरूप बहुत ही लोकप्रिय है । इस राग में झिझोटी, खमाज, पीलू आदि रागों की छाया किस-किस प्रकार से दिखाई देती है, यह ध्यान रखने की बात है । इन भागों को अलग-अलग दिखाने के लिए मैं ऊपर के स्वर-विस्तार में कहाँ-कहाँ रुकता गया हूँ, इसे स्मरण रखना आवश्यक है । इस राग में यह सावधानी रखना आवश्यक है कि कहीं यह 'जयजयवन्ती' में प्रवेश न कर ले । यद्यपि जयजयवन्ती में सोरठ-अंग स्पष्ट है और इस राग में नहीं है । यह स्पष्ट भेद है, परंतु ऋषभ की संगति में कोमल गांधार का प्रयोग अधिकतर जयजयवन्ती के परिमाण से ही किया जाता है; अतः किसी-किसी समय श्रोताओं को भ्रम होना संभव है ।

प्रश्न : इस राग के लक्षण 'चतुर पंडित' ने किस प्रकार बताए हैं ?

उत्तर : इस प्रकार :—

हरिकांभोजिमेलेऽपि गारानाम्नी सुरागिणी ।
प्रकीर्तिता लक्ष्यविद्भिः संपूर्णा सांशिका सदा ॥
मंद्रमध्यस्वरैर्गीता सदैव स्यात् सुखप्रदा ।
गानमस्याः समीचीनं सुमतं सार्वकालिकम् ॥
गांधारौ द्वौ तथैवात्र निषादौ द्वौ समीरितौ ।
अवरोहे कोमलौ तौ रोहणे तीव्रकौ निगौ ॥
कल्याणीभ्रिकुटीयोगः कौशल्येन सुसाधितः ।
आरोहे प्रथमा व्यक्ता द्वितीया चावरोहणे ॥
क्षुद्रगीताईताप्यस्त सर्वेषामस्ति सम्मता ।
अतः साधारणं रूपमिदं तज्ज्ञैः सुनिश्चितम् ॥
मंद्रमे षड्जमारोप्य प्रायशो गायका अमुम् ।
आमध्यमध्यमं नूनं गायंति भूरिरक्तिदम् ॥

इन श्लोकों में बताई हुई सभी बातें मैं तुम्हें सुना ही चुका हूँ, फिर भी सारांश में पुनः सुना देता हूँ । 'गारा' रागिनी का ठाठ हरिकांभोजी, अर्थात् खमाज है । इसकी जाति सम्पूर्ण है और वादी स्वर षड्ज है । इसे गायक प्रायः मन्द्र और मध्य सप्तक में सुन्दर रूप से गाते हैं । इसे चाहे जब गाया जा सकता है ।

इस राग में दोनों गांधार व दोनों निषाद लगाए जाते हैं। ये दोनों स्वर आरोह में तीव्र और अवरोह में कोमल बनाकर लिए जाते हैं। इस राग में कल्याण और झिझोटी को बड़ी युक्ति से जोड़ दिया गया है। मर्मज्ञ लोगों को इस राग के आरोह में कल्याण और अवरोह में झिझोटी का भाग दिखाई पड़ेगा। इसमें क्षुद्र प्रकृति के गीत गाने की प्रथा है। यह राग साधारण माना गया है। मन्द्र-स्थान के मध्यम को षड्ज मानकर मध्य-सप्तक के मध्यम तक का क्षेत्र इस राग के विस्तार के लिए उपयोग में आता है।

प्रश्न : अब आगे किसी राग का वर्णन सुनाइए ?

उत्तर : मेरे खयाल से इस ठाठ का अब केवल एक राग 'बड़हंस' ही बताना रह गया है। प्रचार में 'बड़हंस' राग सारंग का एक प्रकार माना जाता है। इसे काफी ठाठ के वर्णन में आगे सारंग राग के साथ ही बताना चाहिए था, परंतु इसे लक्ष्यसंगीतकार ने इसी ठाठ में माना है और प्राचीन ग्रंथों में भी यह राग इसी ठाठ में पाया जाता है, अतः मैं तुम्हें इसको खमाज ठाठ के रागों के साथ ही बता रहा हूँ। फिर भी सारंग के भेद समझाते समय आगे और भी इस राग के सम्बन्ध में हम विचार करेंगे।

'बड़हंस' नाम हमारे कानों को विचित्र लगता है। किसी-किसी संस्कृत-ग्रंथ में 'बलहंस', 'वृद्धहंस' आदि नाम भी मुझे दिखाई दिए हैं। 'संगीतसार' में 'पठहंसिका' नाम भी दिया हुआ है। हमारे संगीत में इस प्रकार के उलटे-सीधे बिगड़े हुए नाम अन्य भी हैं, अतः हमें इस नाम के लिए आश्चर्य करने की आवश्यकता नहीं है। हम प्रचार की दृष्टि से 'बड़हंस' नाम ही स्वीकार करेंगे। यह राग सारंग का एक प्रकार है, अतः इसमें सारंग का भाग होना स्वाभाविक ही है। यह गाने में भी सारंग-जैसा ही दिखाई पड़ता है, यह स्वीकार करना पड़ेगा। हमारे यहाँ सारंग का मुख्य अंग गांधार और धैवत का लोप करना माना गया है। तुम्हें यह सामान्य नियम ही मान लेना चाहिए। जितना अधिक गांधार दिखाई देगा, उतना ही सारंग लुप्त होता जाएगा। जब तुम आगे काफी ठाठ के अन्तर्गत सारंग और उसके प्रकारों को सीखोगे, तब तुम्हें यह पता लगेगा कि इस राग के अनेक प्रकारों में इस विवादी स्वर का (गांधार का) प्रयोग किया जाता है। प्रायः गायक लोग किसी एक टुकड़े में विवादी स्वर का स्पष्ट प्रयोग कर दिखाते हैं और फिर बाद में विवादी को छोड़कर मुख्य राग के नियमित स्वरों पर ही विस्तार करने लगते हैं। वे गायक यह जानते हैं कि विवादी स्वर का अल्प मात्रा में उपयोग यदि अवरोह में किया जाए, तो राग-हानि नहीं होती और राग का नाम ही बदल जाए, इतना फेरफार भी नहीं होता। अतः वे ऐसे टुकड़े ही इस प्रयोग के लिए पसन्द करते हैं, जिनमें विवादी स्वर स्पष्ट रूप से कभी-कभी आरोह में दिखाया जा सके। यह मूर्खता नहीं है, बल्कि कुशलता है, इसे ध्यान में रखना चाहिए; परन्तु इसे जान-बूझकर राग की रंजकता बनाए रखते हुए प्रयोग करने में ही कुशलता है।

सारंग के भेद धैवत और गांधार की सहायता से कैसे और कितने ही क्यों न होते हों, परंतु सदैव श्रोताओं के सम्मुख प्रत्येक भेद में 'रे म प म रे, सा' स्वर-समुह गायकों को दिखाना ही पड़ता है; क्योंकि इसी स्वर-समूह से सारंग की पहचान होती है। ऋषभ स्वर ही सारंग का प्राण है। उसे महत्त्व देने पर गांधार को कभी महत्त्व प्राप्त नहीं हो पाता। जो लोग 'बड़हंस' में ध-ग स्वर वर्ज्य करते हैं, वे उसमें कोमल निषाद को वादी बनाते हैं। तो भी उन्हें उपर्युक्त सारंग का स्वर-समुदाय दिखाना ही पड़ता है। कोई-कोई गायक बड़हंस में स्पष्ट रूप से धैवत स्वर लेते हैं। इस राग के विषय में बहुत मतभेद हैं। कोई आरोह में धैवत का प्रयोग 'ध नि प' इस प्रकार करते हैं, कोई केवल अवरोह में ही धैवत के प्रयोग को स्वीकार करते हैं। मैंने यह राग दो प्रकार से सुना है। पहले प्रकार में आरोह-अवरोह दोनों में धैवत का प्रयोग होता है और दूसरे प्रकार में धैवत बिलकुल 'असत्प्राय' होता है। यदि लिया भी, तो कोमल निषाद की संगति में ही लिया जाता है। 'चतुर पंडित' ने केवल गांधार का लोप होना ही माना है, परंतु यह भी स्वीकार किया है कि प्रचार में अनेक बार गायक लोग गांधार और धैवत दोनों को वर्ज्य करते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि आरोह-अवरोह में धैवत का प्रयोग करने से एक अलग स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। परंतु 'म प ध नि सां' जैसा सरल अवरोह सारंग में अच्छा नहीं दिखाई दे सकता। मेरे विचार से धैवत का प्रयोग 'ध नि प, म प नि प, ध नि, म प, ध प, नि सां' इस प्रकार किया जाना चाहिए। जिस गायक ने मुझे ग और ध, दोनों स्वर वर्ज्य कर यह राग सुनाया था, उसने बीच-बीच में मध्यम स्वर व्यस्त (खुला) लगाया था। इस प्रकार के प्रयोग से उसके राग में बड़ी विलक्षणता उत्पन्न हो गई थी। मैंने तुम्हें जो मतभेद सुनाए हैं, उनसे तुम्हें कुछ उलझन तो नहीं हो गई ?

प्रश्न : जी हाँ, थोड़ी-सी उलझन इस धैवत के कारण हो गई है !

उत्तर : अच्छा, मैं वह राग फिर से समझाता हूँ ! सुनो, प्रचार में सारंग एक प्रसिद्ध राग है। इसकी स्वरमालिका तुमने तैयार की ही है। 'सारंग' के अनेक प्रकार प्रचार में हैं। सारंग का प्रधान लक्षण—इसमें सदैव गांधार और धैवत का पूर्ण रूप से वर्ज्य करना माना है। सारंग 'रे, म प नि प म रे, सा' स्वरों के प्रयोग करने पर तत्काल स्पष्ट हो जाता है। अब यदि सारंग का नवीन प्रकार तैयार करना हो, तो क्या किया जाएगा ? उसके प्रधान लक्षण में थोड़ा-सा परिवर्तन कर देने पर दूसरे प्रकार उत्पन्न हो सकते हैं। यदि बिलकुल सारंग का भाग न रह पाया, तो नया राग अवश्य हो जाएगा, परंतु वह सारंग का प्रकार नहीं हो सकेगा। हमें अब सारंग का एक उपांग (भेद या प्रकार) उत्पन्न करना है, अर्थात् हमें सारंग के मुख्य अंग को यथावत् कायम रखते हुए कुछ अन्य परिवर्तन या घुमाव करना चाहिए। यह तुम्हें समझ में आ गया है न ?

प्रश्न : जी हाँ, यहाँ तक हम ठीक-ठीक समझ गए !

उत्तर : अब आगे सुनो ! 'बड़हंस' को हमें सारंग का एक प्रकार न मानकर उसे एक स्वतंत्र राग मानना है, अतः इसमें सारंग के नियम जोड़ने की कोई आवश्यकता नहीं है।

प्रश्न : तो क्या कोई इसे सारंग का प्रकार मानते हैं ?

उत्तर : हाँ, प्रचार में तो इसे लोग सारंग का प्रकार ही मानते हैं, परंतु ग्रंथों में इस राग में तीव्र गांधार का प्रयोग कर यदि कोई गाने लगे, तब हमारा प्रचलित सारंग किस प्रकार दिखाई दे सकता है। हमें तो इस राग को 'बड़हंससारंग' ही मानकर आगे बढ़ने में सरलता होगी। जबकि हमने इसे 'बड़हंससारंग' मान लिया, तब हमें कोई ऐसी युक्ति करनी चाहिए कि सारंग का थोड़ा अंग बना रहे और सारंग के नियम में परिवर्तन भी हो जाए। इसी विचार से जानकार लोगों ने इस राग में सारंग का प्रधान अंश 'रे म प म, रे, सा' को कायम रखते हुए, इस राग के विवादी स्वर धैवत का प्रयोग युक्तिपूर्वक राग में करने की कल्पना निकाल ली। विवादी की व्याख्या तो तुम्हें याद होगी ही। किसी ने धैवत का प्रयोग केवल अवरोह में ही थोड़ा-सा किया। किसी ने इसे आरोह में 'मनाक् स्पर्श' रूप से प्रयुक्त किया और किसी ने इसी स्वर को अवरोह में मीड़ के रूप में प्रयोग करना स्वीकार किया। आरोह में धैवत का प्रयोग करना कठिन होने के कारण कुशलतापूर्ण कार्य है। सरल तान 'प ध नि सां' कानों को बिलकुल बुरी लगती है, अतः 'निनिप, धनिप, मप, सां, निप, धप, धमप, रेरेमप, धनिप, मरे' इस प्रकार प्रयोग किया गया। इस प्रयोग में तुम यह जान ही लोगे कि धैवत स्वर बिलकुल दुर्बल या गौड़ अथवा अनभ्यस्त रूप से प्रयुक्त हुआ है। इसकी ओर श्रोताओं का लक्ष्य नहीं होता। 'निनिपमरे, सा' भाग सुनते ही श्रोतागण समझ लेते हैं कि सारंग राग गाया जा रहा है। राग का मुख्य नाम निश्चित करने के बाद ही वे, उत्तरांग में क्या है, यह देखते हैं !

प्रश्न : आपने एक प्रकार ध-ग स्वर वर्ज्यकर गाने का भी बताया है। इस प्रकार को प्रत्यक्ष स्वर-विस्तार द्वारा समझाइए !

उत्तर : वह इस प्रकार है :—

निनिप, मपनिप, म, रेसा, रेम, मप, निनिपमरे, सा, म, मप, रेसा, पम, मप, नि, सां, सांरेंसां, नि, मप, निनिपमरेसा, सारेसाऩि, ऩिसा, रेमपमरेसा।

मप, पनिप, नि, नि, सांसां, सां, रेंरेंसां, नि, रेंसांनि, पपम, निनिप, म, रेसा, सारेऩि, सारेमप, निप, निनि।

इस प्रकार में बीच-बीच में खुला मध्यम कितना अच्छा दिखाई देता है। इसी प्रकार कोमल निषाद पर रुक जाने से राग में कितनी विचित्रता आ जाती है। 'संगीतसारकर्त्ता' ने बड़हंस का स्वरूप इस प्रकार माना है :—

'ऩिसाऩिसा, रेमपम, पनिधनिप, मपमप, रेम, गमरे, सा, ऩिसाऩिसा, रेमप, रेसप, निधनि, मपमप, रेम, गम, रेसारे, सा, मप, धनिसां, सां, निसांरेंसां, पनिधनि, मपमप, रेमगमरे, सारेसा' इत्यादि।

इसमें तीव्र गांधार अत्यन्त अल्प अर्थात् Grace-Nate जैसा आया है। ऐसा लेखक के लिखने से पता चलता है, क्योंकि उसने इस स्वर को लिखकर कालवाचक (समयविश्रांतिसूचक) कोई चिह्न नहीं लगाया है। ऐसा विश्रांति-चिह्न मध्यम स्वर पर लगाया गया है, अर्थात् मध्यम स्वर लेते हुए गांधार का थोड़ा-सा कण लेने का भाव ग्रंथकार का है।

'नादविनोद' में बड़हंस का उदाहरण इस प्रकार दिया गया है :—

रेरेसारेममममम, पपऩिऩिपपमम, रेरेरेम, रेमपधपमरेसा (स्थायी)

मममपपपनिनिनिसांसांनिसांरेंरेंसांधधप, मममपपधप, धपप, मरे, ऩिऩिपमरेऽ, मरेमप, ऩिपमरेसा (अन्तरा)

इस ग्रंथकार ने केवल अवरोह में ही धैवत लेना स्वीकार किया है। अन्तरे में एक जगह पर 'निनिपमरेऽ' स्वर लेते हुए ऋषभ पर आन्दोलन लेना बताया है, अर्थात् यहाँ पर थोड़ा-सा गांधार लेने का इशारा किया है। तुम्हें तो ध-ग-वर्ज्य-प्रकार मानकर चलना ही अच्छा है। बड़हंस का नियम यदि कोई पूछे, तो 'गांधार-लंघनम्' कहना ही पर्याप्त है।

बड़हंस का वादी स्वर पंचम है। यह सारंग-प्रकार है, अतः इसका गायन-समय दिन का दोपहर का समय ही माना जाता है। सारंग में मध्यम अधिक प्रयुक्त होने के कारण 'सूहा' राग का आभास होना संभव हो जाता है, परन्तु 'सूहा' में थोड़ा-सा कोमल गांधार भी लिया जाता है, अतः वह इससे अलग हो जाता है!

अब हम कुछ ग्रंथों की इस राग के विषय में सम्मति देखें :—

संगीतसारामृते—

बडहंसः सग्रहांशः कांभोजीमेलसंभवः।
संपूर्णः सायमेवैष गेयः संगीतकोविदः॥

इस ग्रंथ में इस राग का उदाहरण इस प्रकार दिया है:—

'पमरे, गमपमरे, मगरे, सा, रेगरे, सारेसाऩिध़प़, ध़सा, रेमगरे, ममधप, सांसां, ऩिधप, धपमग, पमग, मगरे, सारेसा, ऩिप़, ध़सा, रेरेसा।'

इस प्रकार से 'बड़हंस' गाने का आजकल प्रचार नहीं है।

रागलक्षणे—

हरिकांबोधिमेलाच्च संजातश्च सुनामकः।
बलहंस इति प्रोक्तः सन्यासं सांशकं ध्रुवम्॥
आरोहे गनिवर्जं च पूर्णवक्रावरोहकम्॥

इस ग्रंथ में आरोह-अवरोह निम्नलिखित रूप से दिए हुए हैं :—

'सारेमपधसां'; 'सांऩिधपधमगरेसा।'

संगीतपारिजाते—

बडहंसः सदागेयः शंकराभरणस्वरैः ।
षड्जादिः पंचमांशः स्यान्न्यासोऽपि पंचमस्वरः ॥
अवरोहे गहीनः स्यादारोहे तु धवर्जितः ॥

एक प्रसिद्ध गायक ने मुझे बताया कि मधुमाध और मेघ राग के मिश्रण से 'बड़हंस' हो जाता है। ऐसा भी हो सकता है।

'चत्वारिंशच्छतरागनिरूपणे'—

वलहंसश्चगांधारः देवहिन्दोलपावकौ ।
पंचमस्य कुमाराः स्युश्चत्वारः प्रथिताह्वयाः ॥

इस ग्रंथ में स्वर-विवरण न होने से स्पष्ट राग-स्वरूप नहीं समझा जा सकता। कोई-कोई इस प्रकार का निर्णय कर देते हैं कि शुद्ध स्वर के ठाठ में सिर्फ गांधार वर्ज्य करने से इस राग की उत्पत्ति होती है। इस रीति से बड़हस का आरोह-अवरोह 'सारेमपधनिसां; सांनिधपमरेसा' होगा। 'रागतरंगिणी' में यह राग सारंग ठाठ में बताया है।

प्रश्न : आपने बताया ही है कि 'रागतरंगिणी' का शुद्ध ठाठ काफी है। इस ग्रंथ के शुद्ध और विकृत स्वरों की जानकारी तो हमें हो गई है, अब इस ग्रंथ के राग-जनक (ठाठ) और बता दीजिए ?

उत्तर : इस प्रकार के राग-जनक 'रागतरंगिणी' में ऐसे माने हैं :—

तास्तु संस्थितयः प्राच्यो रागाणां द्वादश स्मृताः ।
याभी रागाः प्रगीयंते प्राचीना रागपारगैः ॥
भैरवी टोडिका तद्वद्गौरी कर्णाट एव च ।
केदार इमनस्तद्वत् सारंगो मेघरागकः ॥
धनाश्री पूरवी किंच मुखारी दीपकस्तथा ।
एतेषामेव संस्थाने येये रागा व्यवस्थिताः ॥
यथा यद्रागसंस्थानं तत्तथैव वदाम्यहम् ।

यह मैंने तुम्हें कई बार बताया है कि इस ग्रंथ का केदार ठाठ हमारा शुद्धस्वर-ठाठ (बिलावल ठाठ) है। इसमें 'ईमन ठाठ' इस प्रकार ग्रंथकार ने उत्पन्न किया है :—

एवं सति च संस्थाने मध्यमः पंचमस्य चेत् ।
गृह्णाति द्वे श्रुती राग ईमनो जायते तदा ॥

सब ठाठों के स्वर बताने से कोई लाभ नहीं; क्योंकि उनका उपयोग तुम इस समय नहीं कर सकोगे। 'बड़हस' राग का सारंग ठाठ प्रचलित खमाज ठाठ को ही समझना चाहिए। इस ठाठ में ग्रंथकार ने इस प्रकार के राग उत्पन्न किए हैं।—

सारंगस्वरसंस्थाने प्रथमा पटमंजरी ।
वृन्दावनी तथाज्ञेया सामन्तो बडहंसकः ॥

Capt. Willard साहब ने 'बड़हंस' के अन्तर्गत 'मारवा, रौराणी, चैती, दुर्गा व धनाश्री' रागों के नाम बताए हैं। इनके ग्रंथों में प्रत्यक्ष संगीत में उपयोगी सिद्ध होनेवाली अधिक जानकारी मुझे नहीं दिखाई दी। हाँ, ऐतिहासिक जानकारी की दृष्टि से इनके ग्रंथ बहुत मनोरंजक हैं।

Capt. Day साहब ने दक्षिण-पद्धति के अनुसार 'बड़हंस' का आरोह-अवरोह इस प्रकार बताया है—सा रे म प ध सां। सां नि ध प म रे म ग सा।

अब तुम्हें 'चतुर पंडित' द्वारा बताए हुए इस राग के लक्षण, जिन्हें तुम्हें विशेष रूप से याद रखना चाहिए, बताता हूँ :—

कांभोजीमेलकेऽप्यत्र बडहंसो मतो बुधैः ।
कैश्चिदन्यैर्वर्णितोऽसौ शंकराभरणे पुनः ॥
वादित्वं पंचमे प्रोक्तममात्यत्वं तु षड्जके ।
गानमस्य समीचीनं द्वितीयप्रहरे दिने ॥
सारंगस्य विशेषोयं संमतः सर्वतोऽधुना ।
गांधारस्यैव लोपोऽत्र स्वीकृत स्तेन हेतुना ॥
ग्रन्थेषु धगलोप्यत्वे मतैक्यं नोपलभ्यते ।
लंघनं तु तयोर्लक्ष्ये सुमतं तद्विदां ध्रुवम् ॥
स्याद्व्यस्तत्वं मध्यमे तन्नूनं रक्तिप्रदायकम् ।
गलुप्तत्वाद्भवेत्सद्यः सूहायाः प्रस्फुटा भिदा ॥
सारंगस्य विभेदास्ते मेलेऽस्मिन् कैश्चिदीरिताः ।
अस्माभिस्तु मता एते हरिप्रियाराख्यमेलने ॥

मैंने तुम्हें जिस गांधार-धैवत-वर्ज्य स्वरूप को गाकर दिखाया था, वही तुम्हें इस समय स्वीकार कर चलना है। काफी ठाठ के अन्तर्गत सारंग के भेद बताते हुए इस राग के विषय में तुम्हें और भी कुछ कह सुनाऊँगा।

प्रिय मित्रो! मैंने इस समय संगीत के उपयोग की साधारण जानकारी के साथ-साथ प्रथम तीन ठाठों के रागों का वर्णन यथासम्भव सरल भाषा में अपने निश्चय के अनुसार सुना दिया है। अब हम यहाँ पर विश्रान्ति लेंगे। अगले समय मैं तुम्हें शेष राग भी समझा दूँगा। इस बीच में तुम्हें मेरी बताई हुई बातों पर अच्छी तरह विचार करने का समय भी प्राप्त हो जाएगा।

मैंने तुम लोगों से 'लक्ष्यसंगीत' ग्रंथ की पद्धति को स्वीकार करने का बार-बार आग्रह किया है, इसका यह अर्थ नहीं है कि 'चतुर पंडित' (लक्ष्यसंगीतकार)

कोई अलौकिक बुद्धि का व्यक्ति था, अतः उसका मत सर्वमान्य होना ही चाहिए। मेरे कथन का उद्देश्य इतना ही है कि इस समय हम लोग अन्य विद्या-कला-कौशल में प्रवीणता प्राप्त कर चुकने पर भी इस विषय के लिए केवल निरक्षर गायकों की दया पर आश्रित रहकर जो अँधेरे में ठोकरें खाते रहते हैं, इसकी अपेक्षा यदि 'चतुर पंडित' द्वारा तैयार की हुई सुव्यवस्थित और सुसंगत पद्धति को अपनाने लगें, तो कोई नुकसान नहीं होगा।

खमाज ठाठ में संस्कृत-ग्रंथकारों ने अन्य कई रागों के नाम बताए हैं, परंतु वे प्रचार में नहीं हैं, अतः मैंने तुम्हें नहीं बताए हैं। जो-जो राग बताए हैं, उनके लक्षण उत्तम तैयार करना ही पर्याप्त हो जाएगा।

प्रश्न : इस ठाठ के सारे राग ध्यान में रखने की यदि कोई युक्ति हो, तो हमें बता दीजिए, जिससे हमें सरलता हो ?

उत्तर : इस ठाठ के रागों के नाम बताते हुए 'चतुर पंडित' ने इस प्रकार कहा है :—

कांभोजीमेलजारागा विभक्तास्ते द्विधा बुधैः।
गांशका यंशकाश्चेति रहस्यं गुणिसंमतम्॥
खम्माज्यंगा मता गांशाः सोरट्यङ्गास्तु यंशकाः।
तत्त्वं त्विदं स्मरेन्नित्यं लक्ष्यमार्गविशारदः॥
खम्माजी रागश्रीदुर्गा खम्बावती तिलंगिका।
गांधारांशे मता वर्गे मर्मज्ञैर्गीतवेदिभिः॥
सोरटी देशिका चैव कामोदस्तिलकान्वितः।
जयावन्त्यादिका वर्गे द्वितीये लक्षिताः पुनः॥

इस श्लोक का भावार्थ इस प्रकार होगा :—

खमाज ठाठ के अन्तर्गत रागों के दो वर्ग किए जा सकते हैं। पहले वर्ग में 'गांधारांश' राग (जिन रागों में वादी स्वर गांधार लिया जाता हो) आते हैं और दूसरे वर्ग में 'ऋषभांश' राग लिए जाते हैं। खमाज, झिझोटी, रागेश्वरी, खंबावती, तिलंग आदि राग पहले वर्ग में और सोरठ, देश, तिलककामोद, जयजयवंती, नारायणी, प्रतापवराली आदि राग दूसरे वर्ग में आ जाते हैं। झिझोटी राग इस ठाठ का आश्रय-राग है। यह सहज ही ध्यान में रखा जा सकता है।

आरोह-अवरोह में रे-ध स्वर न लिए जानेवाला राग केवल तिलंग ही है और इसी प्रकार आरोह-अवरोह में ऋषभ और निषाद वर्ज्य करनेवाला राग 'नाग-स्वरावली' है। इन दो रागों का अन्य रागों में मिलने का भय ही नहीं होता। नारायणी और प्रतापवराली में आरोह में ग-नि वर्ज्य किए जाते हैं, परन्तु दोनों के अवरोह भिन्न हैं। नारायणी के अवरोह में गांधार नहीं है और प्रतापवराली के अवरोह में निषाद नहीं है। नारायणी में गांधार सदैव न लेने से उसमें सारंग का

आभास हो जाता है। सारंग के अवरोह में निषाद स्वर बहुत महत्त्व का और विचित्रता-उत्पादक स्वर है। यह स्वर 'प्रतापवराली' में सदैव नहीं लिया जाता, अवरोह में ही प्रयुक्त होता है। खंबावती के आरोह में ऋषभ स्वर लिया जाता है और अवरोह में 'ग म सा' प्रयोग करते हुए अनेक बार षड्ज से मिलाया जाता है। ऐसा न करने पर 'खंबावती' नहीं दिखाई दे सकती।

प्रश्न : यह तो खंबावती की एक प्रधान पकड़ ही आपने बताई है !

उत्तर : ठीक है ! यह स्थान ऐसा ही महत्त्व का है। 'दुर्गा' राग में ऋषभ, पचम, ये दोनों स्वर नहीं लिए जाते; 'रागेश्वरी' में केवल पंचम नहीं लेते; यही भेद ध्यान में रखना चाहिए। यह न भूलना चाहिए कि बिलावल ठाठ की दुर्गा से इस दुर्गा का कोई सम्बन्ध नहीं है। ये दोनों अलग-अलग राग हैं।

प्रश्न : नहीं-नहीं ! उस दुर्गा में तो ग, नि स्वर वर्ज्य हैं और इस दुर्गा में 'ग' स्वर वादी है !

उत्तर : तुम्हें ठीक याद है ! दुर्गा और रागेश्वरी का उत्तरांग प्राय: एक-सा ही दिखाई देता है।

प्रश्न : जी हाँ ! क्योंकि दोनों में बागेश्वरी का अंग दिखाया जाता है। यही कारण है न ?

उत्तर : हाँ, यही बात है ! सोरठ-अंग के राग बहुत हैं, जैसे—सोरठ, तिलक-कामोद, देस, जयजयवन्ती आदि; परंतु इन्हें अलग-अलग करना कठिन नहीं है।

प्रश्न : सोरठ के आरोह में ग-ध वर्ज्य हैं, अवरोह में म रे स्वर का प्रयोग इसकी प्रधान पहचान है; यही आपने बताया है। देस के आरोह में गांधार लिया जा सकता है और उसकी पहचान के योग्य न्यास 'नि ध प' स्वर-समुदाय है, अत: ये दोनों राग अलग-अलग पहचाने जा सकते हैं ?

उत्तर : तुम ठीक कह रहे हो। तिलककामोद में यद्यपि अन्तरा सोरठ जैसा ही आरम्भ होता है, तो भी.....................।

प्रश्न : परंतु वहाँ पर सोरठ का 'म रे' अंग कहाँ है ? और तिलक में तो मन्द्र-निषाद का अपन्यास बहुत चमत्कारपूर्ण और स्वतन्त्र है ही ?

उत्तर : ठीक है ! जयजयवन्ती में दोनों गांधार लिए जाते हैं। गायक वहाँ मंद्र-पंचम से मध्यऋषभ पर मीड़ लेकर जाते हैं, यह ध्यान देने की बात है।

प्रश्न : जी हाँ, यह भी हमारे ध्यान में है कि छायानट में यही मीड़ होने पर इसको कैसे अलग किया जाता है ?

उत्तर : शाबाश ! जयजयवन्ती का अंतरा अनेक बार सोरठ के अंतरे-जैसा आरोह में होता है, परंतु अवरोह में इन दोनों रागों का भेद आगे जाकर स्पष्ट हो जाता है। हाँ, 'गारा' राग में भी दोनों गांधार लगाए जाते हैं, इसे कहीं 'जयजयवन्ती' न समझ लेना !

प्रश्न : नहीं-नहीं ! हम यह भूल नहीं कर सकते। 'गारा' में ऋषभ वादी नहीं, सोरठ का अंग नहीं, ये सब बातें हमारे ध्यान में हैं। हमें यह अच्छी तरह याद है कि 'गारा' में यमन और झिंझोटी का मिश्रण अत्यन्त कुशलतापूर्वक अज्ञात रूप से किया हुआ है !

उत्तर : ठीक है ! तुम्हें यह तो याद ही होगा कि 'गौड़मल्हार' में गौड़ और मल्हार का मधुर योग किया गया है।

प्रश्न : गौड़ का भाग 'रे ग रे म ग' और मल्हार का भाग 'रे रे म म प प, म प, ध सां, ध प म' है। इन्हीं का योग इसमें किया गया है !

उत्तर : हाँ, इसके सिवाय अंतरे में बिलावल का थोड़ा-सा भाग भी आ मिलता है और इसके मिलने से राग-वैचित्र्य भी बढ़ जाता है।

प्रश्न : शुद्ध ठाठ को आपने शुद्ध पानी के समान बताया है न ? केवल मिलने की कुशलता आवश्यक है, अन्यथा राग-वैचित्र्य कैसे दिखाई दे सकता है !

उत्तर : बिलकुल ठीक कहते हो। 'बड़हंस' को हमने एक सारंग-प्रकार माना है। इसे नारायणी से अलग मानना चाहिए।

प्रश्न : वह सहज ही किया जा सकता है। नारायणी में 'म प ध सां' प्रयोग किया जा सकता है, परंतु यह प्रयोग बड़हंस में घातक हो जाता है। बड़हंस में गांधार और धैवत वर्ज्य करने को ही हम आजकल मान्यता देते हैं। धैवत वर्ज्य न मानकर असत्प्राय भी माना जा सकता है !

उत्तर : शाबाश ! शाबास !! तुमने इस विषय को बहुत अच्छी तरह समझ लिया है, यह देखकर मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है। मुझे यह भी दिखाई देता है कि आगामी प्रसंग में यदि मैंने तुम्हें रागों की जानकारी व्याख्यान के रूप में बताई, तो भी तुम सहज ही उत्तम रूप से समझ सकोगे। तुम्हें इस प्रकार से प्रश्न विचारने का प्रयास भी नहीं करना पड़ेगा। खैर, अब तुम्हें छुट्टी देता हूँ।

प्रकाशक :
संगीत कार्यालय, हाथरस (उ० प्र०)

क्रमिक पुस्तक-मालिका [लेखक : वि० ना० भातखंडे]

प्रथम भाग (हिंदी) : दस ठाठों के १० आश्रय रागों की स्वरलिपियाँ इसमें दी गई हैं तथा आरंभ में प्रथम वर्ष के विद्यार्थियों के लिए बहुत-से अलंकार और पलटे दिए हैं।

आकार १८" × २२" अठपेजी, पृष्ठ-संख्या ६४, मूल्य ३), डाक-व्यय पृथक्।

दूसरा भाग (हिंदी) : यमन, यमनकल्याण, बिलावल, अल्हैयाबिलावल, खमाज, भैरव, पूर्वी, मारवा, काफी, आसावरी, भैरवी तथा तोड़ी—इन १२ रागों की थ्योरी तथा आलाप-सहित ३१९ चीजों की स्वरलिपियाँ दी गई हैं।

आकार १८" × २२" अठपेजी, पृष्ठ-संख्या ५०८, सजिल्द मूल्य १८), डाक व्यय पृथक्।

तीसरा भाग (हिंदी) : भूपाली, हमीर, केदार, बिहाग, देस, तिलककामोद, कालिंगड़ा, श्री, सोहनी, बागेश्री, वृंदावनीसारंग, भीमपलासी, पीलू, जौनपुरी और मालकौंस—इन १५ रागों की थ्योरी व आलाप-सहित ५१२ चीजों की स्वरलिपियाँ दी गई हैं।

आकार १८" × २२" अठपेजी, पृष्ठ-संख्या ७६४, सजिल्द मूल्य २५), डाक-व्यय पृथक्।

चौथा भाग (हिंदी) : शुद्धकल्याण, कामोद, छायानट, गौड़सारंग, हिंडोल, शंकरा, देशकार, जयजयवंती, रामकली, पूरियाधनाश्री, वसंत, परज, पूरिया, ललित, गौड़मल्लार, मियाँमल्लार, बहार, दरबारीकान्हड़ा, अडाणा, मुलतानी—इन २० रागों की ५३२ चीजों की स्वरलिपियों के अतिरिक्त शास्त्रीय विवरण और आलाप भी दिए हैं।

आकार १८" × २२" अठपेजी, पृष्ठ-संख्या ८६६, सजिल्द मूल्य २५), डाक-व्यय पृथक्।

पाँचवाँ भाग (हिंदी) : चंद्रकांत, सावनीकल्याण, जैतकल्याण, श्यामकल्याण, मालश्री, हेमकल्याण, यमनीबिलावल, देवगिरीबिलावल, औडुवदेवगिरी, सरपरदा, लच्छासाख, शुक्लबिलावल, ककुभ, नटनारायण, नटबिलावल, नटबिहाग, कामोदनाट, बिहागड़ा, पटबिहाग, सावनी, मलूहाकेदार, जलधरकेदार, दुर्गा, छाया, छायातिलक, गुणकली, पहाड़ी, माँड, मेवाड़ा, पटमंजरी, हंसध्वनि, दीपक, झिंझोटी, खंबावती, तिलंग, दुर्गा, रागेश्वरी, गारा, सोरठ, नारायणी, सावन, बंगालभैरव, सौराष्ट्रटंक, अहीरभैरव, प्रभात, ललितपंचम, मेघरंजनी, गुणकरी, जोगिया, देवरंजनी, विभास, झीलफ, गौरी, जंगूला, त्रिवेणी, श्रीटंक, मालवी, रेवा, जैतश्री, दीपक, हसनारायणी तथा मनोहर आदि ७० रागों की २५१ चीजों की स्वरलिपियाँ रागों के शास्त्रोक्त विवरण-सहित दी गई हैं।

आकार १८" × २२" अठपेजी, पृष्ठ-संख्या ५३६, सजिल्द मूल्य २५), डाक-व्यय पृथक्।

छठा भाग (हिंदी) : पूर्व्या, पूर्वकल्याण, मालीगौरा, जैत, वराटी, विभास, पंचम, भटियार, भंखार, साजगिरी, ललितगौरी, सैंधवी, सिंध, बरवा, पंजाबी बरवा, धनाश्री, धानी, प्रदीपकी, हंसकिंकणी, पलासी, मध्यमादिसारंग, शुद्धसारंग, बड़हंससारंग, सामंतसारंग, मियाँ की सारंग, लंकदहनसारंग, पटमंजरी, सूहासुघराई, सूहा, सुघराई, शहाना, नायकीकान्हरा, देवसाख, कौशिककान्हरा, मेघमल्लार, सूरमल्लार, रामदासी मल्लार, नटमल्लार, मीराबाईकी मल्लार, चरजूकी मल्लार, चंचलससमल्लार, रूपमंजरीमल्लार, श्रीरंजनी, आभोग, चंद्रकौंस, गौड़, मालगुंजी, देसी, कोमलदेसी, गांधार, देवगांधार, खट, खटतोड़ी, जंगला, झीलफ, गोपिकावसंत, सिंधभैरवी, बिलासखानीतोड़ी, मोटकी, भूपालतोड़ी, उत्तरी, गुणकली, बसंतमुखारी, लाचारीतोड़ी, बहादुरीतोड़ी अंजनीतोड़ी—इन ६८ रागों की २३७ चीजें स्वरलिपि, आलाप तथा शास्त्रीय विवरण-सहित दी गई हैं।

आकार १८" × २२" अठपेजी, पृष्ठ-संख्या ५४८, सजिल्द मूल्य २०), डाक-व्यय पृथक्।

प्रकाशक : संगीत कार्यालय, हाथरस (उ० प्र०)

'संगीत कार्यालय' के प्रकाशन

[१ दिसंबर, १९७४]

● कंठ-संगीत (Vocal Music)

बाल संगीत-शिक्षा (भाग १, २ व ३)—
कक्षा ६, ७ व ८ के लिए; मूल्य क्रमशः २), २)५० व ३)

संगीत-किशोर—कक्षा ९-१०; मूल्य ४)

गांधर्व संगीत-प्रवेशिका—'प्रवेशिका' परीक्षा के लिए शास्त्रीय व क्रियात्मक शिक्षा; मू० ५)

हिं० सं० प० क्रमिक पुस्तक-मालिका (भाग १ से ६ तक)—भातखंडे-पाठ्यक्रमानुसार मूल्य क्रमशः ३), १८), २५), २५), २५) व २०)

स्वर-मालिका—पं० विष्णुनारायण भातखंडे द्वारा संकलित ६२ रागों में १२३ सरगमें; मू०४)

संगीत-अर्चना—क्रमिक पुस्तक-मालिका, भाग ३ की तान-आलाप-सहित गायकी; मूल्य १०)

संगीत-कादंबिनी—क्रमिक पुस्तक - मालिका, भाग ४ की तान-आलाप-सहित गायकी; मूल्य ११)

मारिफुन्नगमात (भाग १) थ्योरी व १०थाटों के राग; मूल्य २२)

मारिफुन्नगमात (भाग २) २३२ प्राचीन चीजें; मूल्य १२)

मारिफुन्नगमात (भाग ३) प्राचीन होरी और ध्रुवद; मूल्य ४)

अप्रकाशित राग—(भाग १, २ व ३)— २०९ चीजें; मूल्य क्रमशः ४), ४) व ५)

मधुर चीजें—१११ राग-बंदिशें; मूल्य ५)

लक्षण-गीत अंक—१२९ लक्षण-गीत; मूल्य ८)

राग अंक—४४ रागों में ५१ चीजें; मूल्य ८)

राग-रागिनी अंक—५ शोध-निबंध व ७० से अधिक रागों में लगभग १०० बंदिशें; मूल्य १०)

बिलावल ठाठ अंक—६४ राग-रचनाएँ; मू०८)

कल्याण ठाठ अंक—७७ राग-रचनाएँ; मू०८)

भैरव ठाठ अंक—८४ राग-रचनाएँ; मूल्य ८)

खमाज ठाठ अंक—८८ राग-रचनाएँ; मू० ८)

काफी ठाठ अंक—७९ राग-रचनाएँ; मू० ८)

मारवा ठाठ अंक—८८ राग-रचनाएँ; मू० ८)

आसावरी ठाठ अंक—४८ राग-रच० मू० ८)

भैरवी ठाठ अंक—६६ राग-रचनाएँ; मूल्य ८)

ध्रुपद-धमार अंक—६० राग-रचनाएँ; मू० ८)

तराना अंक—१२३ राग-रचनाएँ; मूल्य ८)

ठुमरी-गायकी—४५ स्वरबद्ध ठुमरियाँ; मू०७)

संगीत-सागर—गायन, वादन व नृत्य; मू०१२)

कर्नाटक-संगीत अंक—शास्त्र व शिक्षा; मू०६)

भक्ति-संगीत अंक—१०२सस्वर भजन; मू०८)

संगीत-अष्टछाप—७३ स्वरबद्ध प्रबंध; मू० १०)

सूर-संगीत—(भाग १ व २)—भावार्थ व स्वर-लिपि सहित १२० पद; मूल्य क्रमशः ४) व ४)

रवींद्र-संगीत—२५ स्वरबद्ध गीत; मूल्य ७)

काव्य-संगीत अंक—५०स्वरबद्ध काव्य; मू०८)

गजल अंक—८३ स्वरबद्ध गजलें; मूल्य ८)

राष्ट्रीय संगीत—५३ स्वरबद्ध गीत; मूल्य ८)

लोक-संगीत अंक—१३७ सस्वरगीत; मूल्य१०)

फिल्मी शास्त्रीय गीत अंक—लोकप्रिय फिल्मों के ५० स्वरबद्ध शास्त्रीय गीत; मूल्य १०)

फिल्मी गजल अंक—मशहूर फिल्मों की ३५ स्वरबद्ध गजलें; मूल्य ६)

फिल्मी उल्लास-गीत अंक—प्रसिद्ध फिल्मों के ३५ स्वरबद्ध उल्लासपूर्ण गीत; मूल्य ६)

फिल्मी विरह-गीत अंक—प्रसिद्ध फिल्मों के ३५ स्वरबद्ध विरह-गीत; मूल्य ६)

फिल्मी युगल-गान अंक—प्रसिद्ध फिल्मों के ३५ स्वरबद्ध युगल-गान; मूल्य ६)

फिल्मी प्रणय-गीत अंक—प्रसिद्ध फिल्मों के ३५ स्वरबद्ध प्रणय-गीत; मूल्य ६)

फिल्मी भजन अंक—प्रसिद्ध फिल्मों के ३५ स्वरबद्ध भक्ति-गीत; मूल्य ६)

फिल्मी सांस्कृतिक गीत अंक—लोकप्रिय फिल्मों के ३५ स्वरबद्ध सांस्कृतिक गीत; मूल्य ६)

फिल्मी विविध गीत अंक-१—फिल्मों के ३५ स्वरबद्ध गीत; मूल्य ६)

फिल्मी विविध गीत अंक-२—फिल्मों के ३५ स्वरबद्ध विविध गीत; मूल्य ६)

फिल्मी विविध गीत अंक-३—फिल्मों के ३५ स्वरबद्ध विविध गीत; मूल्य ६)

● शास्त्र व इतिहास (Theory & History)

संगीत-शास्त्र—कक्षा १२ तक; मूल्य ३)५०

हाईस्कूल संगीत-शास्त्र—कक्षा१०तक; मू०५)५०

संगीत-विशारद—वर्ष १ से ५ तक; मू० १२)

राग-कोष—१४३८ रागों का विवरण; मू० ४)

भातखंडे संगीत-पाठमाला—प्रथम वर्ष; ३)

भातखंडे संगीत-शास्त्र (भाग १ से ४ तक)—भातखंडे-पाठ्यक्रमानुसार वर्ष १ से ७ तक मूल्य क्रमशः १४), १६), १८) व ३२)

संगीत-पद्धतियों का तुलनात्मक अध्ययन—प्राचीन १० संगीत-ग्रंथों के सार-सहित; मू० ७)

उत्तर-भारतीय संगीत का संक्षिप्त इतिहास—
भातखंडे के भाषणों का संग्रह; ५)
भारतीय संगीत का इतिहास—सुगम
ऐतिहासिक अध्ययन; मूल्य ६)
अलाउद्दीन खाँ स्मृति-अंक—सचित्र जीवनी ३)
'संगीत' रजत-जयंती अंक—२० शोध-निबंध
तथा २००० संगीत-ग्रंथों की सूची; मूल्य ८)
संगीत-निबंधावली—२३ निबंध; मूल्य ७)
संगीत-चिंतामणि—उच्च शिक्षार्थियों व शोध-कर्ताओं के लिए ३२ विस्तृत शोध-निबंध; मू० ३५)
संगीत-पारिजात (अहोबल-कृत)—५०० श्लोकों से संपन्न हिंदी-टीका-सहित; मूल्य १२)
संगीत-दर्पण (दामोदर-कृत)—हिंदी-टीका-सहित 'संगीत-रत्नाकर' का सार-रूप; मूल्य ६)
स्वरमेल-कलानिधि (रामामात्य-कृत)—दक्षिण-पद्धति का आधार-ग्रंथ, हिंदी-टीका-सहित; मू० ४)
दत्तिलम् (दत्तिल मुनि-कृत)—२४४ श्लोकों से संपन्न हिंदी-टीका-सहित; मूल्य ४)
पाश्चात्य संगीत-शिक्षा—स्टाफ नोटेशन की शास्त्रीय व क्रियात्मक सचित्र शिक्षा; मूल्य १२)
आवाज सुरीली कैसे करें—स्वर को मधुर बनाने के लिए सचित्र उपाय व औषधियाँ; मू० ६)

● वाद्य-संगीत (Instrumental Music)

वाद्य-वादन अंक—सचित्र वाद्य-शिक्षा; मूल्य १०)
ताल अंक—सचित्र तबला-शिक्षा; मूल्य ८)
ताल-प्रकाश—वर्ष १ से ८ तक; मूल्य १२)
ताल-मार्तंड—एम० म्यूज० तक; मूल्य १०)
तबले पर दिल्ली और पूरब—बी० म्यूज० से एम० म्यूज० तक शास्त्र व क्रियात्मक; मूल्य ६)
कायदा और पेशकार—क्रियात्मक; मू० ४)५०
मृदंग-तबला-प्रभाकर (भाग १ व २)—शुरू से क्रियात्मक शिक्षा; मूल्य क्रमशः ५) व ५)५०
मृदंग अंक—शोध-निबंध व सचित्र शिक्षा; मू० १०)
सितार-शिक्षा—सचित्र शिक्षा व गत-तोड़े ८)
सितार-मालिका—वर्ष १ से ८ तक; मूल्य १२)
बेंजो-मास्टर—सचित्र शिक्षा व धुनें; मू० ४)
गिटार-मास्टर—सचित्र शिक्षा व धुनें; मू० ४)
म्यूजिक-मास्टर (हिंदी)—हारमोनियम, तबला व बाँसुरी सिखानेवाली सरल पुस्तक; मूल्य ५)
म्यूजिक-मास्टर (उर्दू)—हारमोनियम, तबला व बाँसुरी सिखानेवाली सरल पुस्तक; मूल्य ५)
रविशंकर के आरकेस्ट्रा—६० बंदिशें; मू० १२)

● नृत्य (Dance)

नृत्य-भारती—सचित्र नृत्य-शिक्षा; ८)
नृत्य-नाटिका अंक—भारतीय बैले; मू० १०)
नृत्य अंक—सचित्र विविध नृत्य-सामग्री; मू० ८)
कथक नृत्य (भू० लेखक : शंभू महाराज)—उच्च शिक्षा व दुर्लभ सचित्र सामग्री; मू० १५)
कथकलि नृत्य-कला—सचित्र शिक्षा; मू० ८)
भारत के लोक-नृत्य—२०० सचित्र नृत्य; मू० १०)
नृत्य नाटिका अंक—लेख एवं १२ भारतीय नृत्य नाटिकाएँ; मू० १०)

● 'संगीत' मासिक पत्र

गत ४० वर्षों से संगीत-कला की सेवा में संलग्न शास्त्रीय संगीत का यह प्रतिनिधि मासिक पत्र है। इसका वार्षिक मूल्य २०) तथा साधारण एक अंक का मूल्य १)५० है। विदेशों के लिए इसका वार्षिक मूल्य २५), शि० २७, $ 3/50.

इस मासिक पत्र की सन् १९६१, ६२, ६३, ६४, ६५, ६६, ६७, ६८, ७०, ७१, ७२ तथा ७३ की फाइलें बिक्री के लिए अभी उपलब्ध हैं। प्रत्येक फाइल का मूल्य १५) तथा डाक-व्यय पृथक् है।

दीपावली—छूट ३१ दिसंबर-७४ तक प्रत्येक फाइल १०) डाक-व्यय पृथक्।

● 'फिल्म-संगीत' की फाइलें

यह पत्र कुछ वर्षों-पूर्व जब मासिक-रूप में प्रकाशित होता था, उस समय की केवल सन् १९६३ तथा ६७ की बारह-बारह अंकों की फाइलें अभी उपलब्ध हैं। प्रत्येक फाइल का मूल्य १५) तथा डाक-व्यय पृथक् है।

● म्यूजिक-मिरर (MUSIC MIRROR)

अँग्रेजी भाषा में प्रकाशित सचित्र मासिक पत्र 'म्यूजिक-मिरर' के उपलब्ध कुल छह अंकों की पूर्व-फाइलें बिक्री के लिए अभी मौजूद हैं। प्रत्येक फाइल का मूल्य १५) तथा डाक-व्यय पृथक् है।

प्रकाशक : संगीत कार्यालय, हाथरस (उ० प्र०)

